

दीनदयाल अपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय

खंड दस



एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

क्या बाजारवाद (पूँजीवाद) तथा राज्यवाद (साम्यवाद) विचारधाराएँ आधुनिक मानव को भीतरी सुख दिला सकती हैं? क्या इस देश के करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं? क्या भारत की प्रजा के पास इसका कोई समाधान नहीं है? भारत के एक युगत्रुषि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इन सवालों, इन खतरों को दशकों पहले ही भौंप लिया था और भारतीय परंपराओं के खजाने में ही इनके उत्तर भी खोज लिये थे। उन्होंने व्यष्टि बनाम समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय बताया था तथा व्यष्टि एवं समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। उन्होंने इस पहचान के लिए 'एकात्म मानवदर्शन' के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की थी।

पर विडंबना, उनकी यह खोज, उनका यह दर्शन आगे न बढ़ सका। प्रयास कुछ अधूरे रहे। दोष शायद परिस्थितियों का रहा। लेकिन इस शताब्दी के प्रारंभ में कुछ सामाजिक व अकादमिक कार्यकर्ताओं ने इस धारा को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। इस समूह का अनुभव रहा कि गहन अनुसंधान एवं व्यावहारिक परियोजनाओं का सूत्रपात करने से ही इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। उसी विचार व अनुभव में से उत्पत्ति हुई 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' की। इसके विभिन्न आयामों व पहलुओं पर नियमित परिचर्चाओं व प्रकाशनों के माध्यम से जो वातावरण बना, उसके परिणाम सामने आने लगे हैं। 'एकात्म मानवदर्शन' देश में वैचारिक बहस की मुख्यधारा का अहम हिस्सा बन गया है। प्रतिष्ठान के सामने अब लक्ष्य है, उसे वैश्विक स्तर पर ले जाने का।



११२५२२ ३५१२५५५

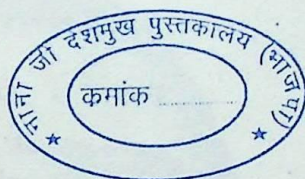
1

संपादक मंडल

- प्रो. देवेंद्र स्वरूप • श्री रामबहादुर राय • श्री अच्युतानंद मिश्र
- श्री जवाहरलाल कौल • श्री नंदकिशोर त्रिखा • श्री के.एन. गोविंदाचार्य
- श्री ब्रजकिशोर शर्मा • डॉ. विनय सहस्रबुद्धे • श्री अशोक टंडन
- डॉ. सीतेश आलोक • श्री आलोक कुमार • श्री बलबीर पुंज
- डॉ. चमनलाल गुप्त • डॉ. भारत दहिया • श्री बनवारी
- श्री हितेश शंकर • श्री प्रफुल्ल केतकर • डॉ. रामप्रकाश शर्मा 'सरस'
- श्री अतुल जैन • डॉ. राजीव रंजन गिरि • डॉ. वेद मित्र शुक्ल
- श्री राहुल देव • श्री उमेश उपाध्याय • श्री जगदीश उपासने
- श्री सुशील पंडित • श्री ज्ञानेंद्र बरतरिया • श्री भरत पंड्या
- श्री मुजफ्फर हुसैन • श्री प्रभात कुमार
- श्री स्वदेश शर्मा

दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय

खंड दस



संपादक

डॉ. महेश चंद्र शर्मा



**प्रभात
प्रकाशन**

ISO 9001:2008 प्रकाशक

www.prabhatbooks.com

एकात्म

मानवदर्शन



अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

ekatmrdvf@yahoo.co.in

प्रकाशक • प्रभात प्रकाशन

4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002

संकलन व संपादन • डॉ. महेश चंद्र शर्मा

अध्यक्ष, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान
एवं विकास प्रतिष्ठान, एकात्म भवन,
37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली-110002

© एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

संस्करण • प्रथम, 2016

लेआउट व आवरण • दीपा सूद

मूल्य • चार सौ रुपए (प्रति खंड)
छह हजार रुपए
(पंद्रह खंडों का सैट)

मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

DEENDAYAL UPADHYAYA SAMPOORNA VANGMAYA (VOL. X)

(Complete Works of Pandit Deendayal Upadhyaya)

Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2

e-mail: prabhatbooks@gmail.com

in association with

Research and Development Foundation for Integral Humanism,
Ekam Bhawan, 37, Deendayal Upadhyaya Marg, New Delhi-2

Vol. X

₹ 400.00

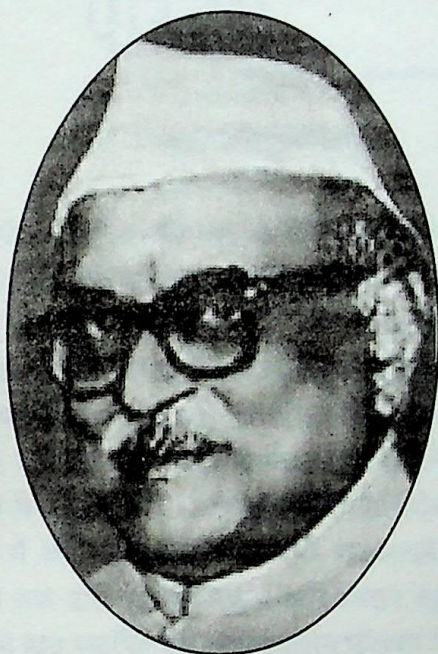
ISBN 978-93-86231-25-3

Set of Fifteen Vols.

₹ 6000.00

ISBN 978-93-86231-31-4

समर्पण

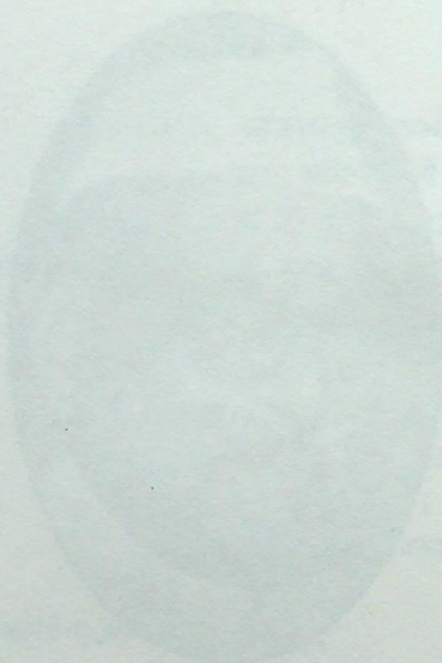


डॉ. संपूर्णानंद

(1 जनवरी, 1889-10 जनवरी, 1969)

उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री एवं राजस्थान के पूर्व राज्यपाल
को समर्पित

पुष्प



परिचय

डॉ. संपूर्णानंद

काशी में मुंशी विजयानंद और आनंदी देवी के परिवार में 1 जनवरी, 1889 को जन्मे संपूर्णानंदजी के पितामह काशी नरेश के दीवान थे। अघोराचार्य बाबा कीनाराम के कृपा प्रसाद स्वरूप 'आनंद' को नाम का अभिन्न अंग बना लेने वाले इस परिवार के लिए संस्कार और आध्यात्मिकता कोई ओढ़ी हुई चीज़ नहीं बल्कि जीवन का अनन्य भाग थी। मन में गहरे तक उतरे भारतीय संस्कारों के कारण ही संपूर्णानंदजी के व्यक्तित्व में दृढ़ता, वैचारिक साहस और स्पष्टता का अनूठा मेल दिखता है। संपूर्णानंदजी ने 18 वर्ष की उम्र में बी.एस.सी. की परीक्षा पास की, तदंतर अध्यापन की ओर प्रवृत्त हुए। शिक्षण क्षेत्र में भी उन्होंने विविध विषयों पर अच्छी पकड़ का परिचय दिया। उन्होंने कुछ समय तक हरिश्चंद्र हाई स्कूल और मिशन स्कूल में पढ़ाया। इसके बाद राजा महेंद्र प्रतापजी द्वारा स्थापित प्रेम महाविद्यालय वृंदावन में विज्ञान के अध्यापक रहे। कुछ समय बाद डेली कॉलेज इंदौर, जहाँ शाही घरानों के बच्चे पढ़ा करते थे, में गणित के अध्यापक बने। महाराजा बीकानेर ने 1918 में उन्हें बीकानेर बुलाया और डूंगर कॉलेज का प्राचार्य बना दिया। किंतु संपूर्णानंदजी असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए 1921 में यह पद त्याग वाराणसी लौट गए।

संस्कृत, अंग्रेज़ी, उर्दू, फारसी, हिंदी और फलित ज्योतिष के अधिकारी विद्वान् शिक्षक, पत्रकार, स्वतंत्रता सेनानी, साहित्यकार और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री एवं राजस्थान के राज्यपाल के रूप में प्रदत्त भूमिका को प्रतिबद्धता से निबाहते हुए भी उस दायरे से बाहर निकलकर नए, क्रांतिकारी तरीक़े से सोचने और नवीन विचार निर्भीकता से सामने रखने का गुण डॉ. संपूर्णानंद को तत्कालीन विभूतियों में अलग महत्त्व का स्थान देता है।

चीनी उकसावे और हमले के संदर्भ में उन्होंने लिखा—'हम शंकर के अनुयायी हैं, धर्मपथ से डिगना नहीं चाहते। कृतज्ञता का अर्थ जानते हैं, सौहार्द के नाम पर अपना

सब कुछ न्योछावर कर सकते हैं परंतु यदि कोई हमारे आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाता है, हमारे साथ विश्वासघात करता है, तो उस रौद्री शक्ति का भी आह्वान करते हैं, जिसका आसन हिमालय के शिखरों पर स्थित है।' ये शब्द ऐसे थे, जिनपर उस समय सत्तासूत्र सँभालने वालों की बोलती बंद थी, लेकिन समाज सही बात सुनना चाहता था। संपूर्णानंदजी ने उस समय सही बात कहने के लिए जनसंघ के तत्कालीन महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा स्थापित 'पाञ्चजन्य' (हिमालय रक्षा अंक) को चुना। यह अपने आप में कितनी बड़ी बात है! यह अपने तरह की कोई इकलौती घटना नहीं। सत्य कहने और सत्य की खोज करने के क्रम में राजनीतिक विरोध की परवाह वे नहीं करते थे। विरोधी खेमों में भी सहज प्रवेश और स्वीकार्यता का मेल उन्हें बड़ा बनाता है। यह 'बड़प्पन' संपूर्णानंदजी की पहचान है। प्राचीन ऋषियों की ही भाँति 'वादे वादे जयते तत्त्वबोधः' की राह के मनीषी डॉ. संपूर्णानंद से जब पं. दीनदयाल उपाध्याय के लेखों पर आधारित 'पोलिटिकल डायरी' की प्रस्तावना लिखने का आग्रह किया गया तो उन्होंने इसे सहज ही स्वीकार किया। उन्होंने लिखा—“ श्री दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के महान् नेताओं में से एक थे, और मैं अपने संपूर्ण राजनीतिक जीवन में कांग्रेस का सदस्य रहा हूँ। इन परिस्थितियों में कुछ लोगों को आश्चर्य हो सकता है कि यह अनुरोध कैसे किया गया, और कैसे स्वीकार कर लिया गया है? मैं इसको अनुभव करता हूँ। परंतु बात ऐसी है कि यदि अपने देश में जनतंत्र की जड़ें मजबूत करनी हैं तो यह सहिष्णुता के उस महान् गुण की मात्र सामान्य अभिव्यक्ति है, जिस पर आचरण करना हम सबको सीखना चाहिए। कोई भी व्यक्ति 'सत्य' पर अपना एकाधिकार होने का दावा नहीं कर सकता।”

मर्यादा नामक हिंदी पत्रिका और अंग्रेजी दैनिक 'टुडे' के संपादक रहे संपूर्णानंदजी कांग्रेस पार्टी में सक्रिय रहते हुए भी पाञ्चजन्य में समय-समय पर लेख भेजते थे। देश के सबसे पुराने साप्ताहिक पाञ्चजन्य के अभिलेखागार ने समय की उथल-पुथल से अप्रभावित स्थिर मना विभूतियों के ऐसे राष्ट्रीय चिंतन को सहेजा है।

पाञ्चजन्य के ही राष्ट्रीय सुरक्षा अंक में 'शांति के लिए युद्ध' आलेख में वे अहिंसा और मानवाधिकार की बहस में पड़े बिना युद्ध जैसे ज्वलंत प्रश्न का उत्तर सांस्कृतिक सूक्तों से उद्धृत करते हैं। उन्होंने लिखा—“...दुर्गा सप्तशती में वर्णन आया है महिषासुर वध का। जब देवों ने देवी की स्तुति की तो उन्होंने कहा, 'चित्ते कृपा समर निष्ठुरता।' हमारे चित्त में कृपा है, लेकिन यदि ज़रूरत पड़े तो समर की निष्ठुरता भी है। हम 'वार साइकोसिस' पैदा करना नहीं चाहते। लेकिन देश में 'डिफेंस साइकोसिस' न पैदा करें, लोगों को 'डिफेंस माइंडेड' भी न बनाए, यह तो बहुत बड़ी नालायकी होगी।”

तात्कालिक प्रश्नों पर दूरदृष्टि और विचारधाराओं की सही परख के कई उदाहरण सिद्ध करते हैं कि डॉ. संपूर्णानंद अपने समकालीन लोगों से कहीं आगे

और ज्यादा सही थे। उनके दो आलेख कथन लेते हैं, पहला चीन और दूसरा कश्मीर से जुड़ा है। दोनों मुद्दे ऐसे हैं, जिनके बारे में संपूर्णानंदजी द्वारा तब कही बात आज भी कसौटी पर खरी उतरती है।

जिस समय नेहरूजी 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' के गुलाबी सपने में खोए थे, संपूर्णानंदजी उस समय भारतीय कम्युनिस्टों की विदेशी आस्था पर पैनी नज़र रखे हुए थे और यह बात उजागर भी कर रहे थे। भारत-चीन सीमा विवाद के प्रश्न पर उत्तर प्रदेश विधान सभा में कामरेड झारखंडे राय के भाषण का संज्ञान लेते हुए उन्होंने तीखा और तथ्यपरक लेख लिखा। फरवरी 1960 में 'एक प्रसंग और कम्युनिस्टों की रीति-नीति' के शीर्षक से वे लिखते हैं—“इस प्रकार की घातक शक्ति (कम्युनिस्टों) से हमें सतर्क रहना होगा। यह वह जनसमूह है, जिसका तत्त्वज्ञान और कार्य नागरिक स्वतंत्रता और लोकतंत्र के प्रतिकूल है, पर जो उनका पुरस्कार करने का ढोंग करता हो, अहिंसा की घोषणाएँ करके परंपरागत नैतिक मूल्यों को नष्ट करना जिसका धर्म बन गया हो और जो स्वयं को स्वतंत्रता का सबसे बड़ा रक्षक घोषित करते हुए स्वाधीनता संग्राम सेनानियों का निषेध करता हो। कदाचित् हम पार्टी की घोषणाओं को सुनकर इस संकट को भूल जाएँ और देशभक्ति की आड़ में गृहयुद्ध की धमकी को नज़रअंदाज़ कर दें, पर यह आत्मसंतोष हमारे लिए आत्मघाती होगा।”

कश्मीर का सांस्कृतिक चरित्र बदलने वाले ऐतिहासिक घटनाक्रम पर व्यथित होकर और नेहरूजी की दोषपूर्ण कश्मीर नीति पर प्रश्न उठाते हुए 'अपना कश्मीर, अपनी भूल' आलेख में उन्होंने लिखा—“...आज कश्मीर का एक अंश पाकिस्तान के हाथ में है और इस बात की कोई संभावना प्रतीत नहीं होती है कि यह प्रश्न शीघ्र सुलझेगा। आशंका इस बात की होती है कि बहुत दिनों तक यही परिस्थिति बनी रहेगी और अंत में स्यात यही निर्णय होगा कि जो जिसके पास है, वह रह जाए।” (पाञ्चजन्य, कश्मीर अंक)

करीब चार दर्जन ग्रंथों, अनेक मंचों और अनवरत लेखन के माध्यम से दर्ज कराई गई दूरदेशी और खरेपन की यह 'संपूर्ण' दस्तक साहित्य, पत्रकारिता और राजनीति एवं समाज की थाती है।

अगस्त 1968 में अपने लेख 'भारतीय बुद्धिजीवी' (भाग-3) में लोकतंत्र एवं सामाजिक व्यवस्था की स्थापित परिभाषाओं का घेरा तोड़ते हुए डॉ. संपूर्णानंद एकात्म मानवदर्शन के अखंड मंडलाकार स्वरूप तक पहुँचते दीखते हैं। वे लिखते हैं—“हम भारतीयों ने लोकतंत्र को अपनी राजनीति का आधार बनाया है।” इस धारणा का आधार यह मान्यता है कि व्यक्ति साधन मात्र नहीं है, वरन् स्वयं साध्य है तथा उसके जीवन का एक अपना उद्देश्य एवं महत्त्व होता है। अवश्य ही वह उद्देश्य समाज में रहकर ही पूरा

हो सकता है। समाज के प्रति कर्तव्य की बात यहीं से उठती है और उसका औचित्य भी इसी से सिद्ध होता है। जीवन का यह चरम प्रयोजन और उद्देश्य क्या हो, इसका उत्तर धर्म और दर्शन ही दे सकते हैं। इस प्रश्न के उत्तर की खोज से अधिक महान् और आवश्यक शोधकार्य दूसरा नहीं है क्योंकि इसी पर मनुष्य और उसके समाज का संपूर्ण आचरण आधारित होगा।”

दीनदयालजी की पोलिटिकल डायरी पढ़ने के बाद उन्होंने श्री नानाजी देशमुख को आश्वासन दिया था कि वे एकात्म मानववाद पर लिखेंगे। लेकिन नियति ने उन्हें दीनदयालजी के जाने के बाद एक साल से भी कम समय में अपने पास बुला लिया; 10 जनवरी, 1969 को वे दिवंगत हो गए।

—हितेश शंकर

संपादकीय

1962 का वर्ष भारतीय राजनीति में एक मील का पत्थर है, जब जवाहरलालजी की अंतरराष्ट्रीयता एवं पंचशील की विचारधारा निर्णायक रूप से कठघरे में खड़ी कर दी गई। चीन ने भारत पर आक्रमण करके 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' के नारे को खोखला सिद्ध कर दिया।

सन् 1959 से ही दीनदयाल उपाध्याय निरंतर चीन के संदर्भ में शासन को सावधान एवं लोकमत को जाग्रत कर रहे थे। उनकी चेतावनियाँ सत्य सिद्ध हुईं। जवाहरलालजी ने कहा कि चीन ने हमको धोखा दिया है, जबकि दीनदयालजी का कहना था, यह हमारी आकाशचारी एवं असावधान कूटनीति का परिणाम है। चीनी आक्रमण के समय दीनदयाल उपाध्याय राजनीतिक सत्ता एवं विपक्ष की राजनीति भूलकर राष्ट्र रक्षार्थ सन्नद्ध होते हैं। वे आग्रहपूर्वक कहते हैं कि सरकार की आलोचना करते हुए भी हमें ऐसा नहीं बोलना चाहिए, जिससे जनता में किसी प्रकार की निराशा आए तथा विश्व में भारत की विभेदमूलक छवि बने।

1962 का वर्ष तृतीय महानिर्वाचन का भी वर्ष है। दीनदयालजी निर्वाचन पर्व को 'लोकमत परिष्कार' का योग्यतम समय मानते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने नौ आलेखों की एक लंबी लेखमाला लिखी। 'आपका मत' इस लेखमाला के नौ आलेख हम प्राप्त कर सके, लेकिन यह लेखमाला पहले 'ऑर्गनाइज़र' में प्रकाशित होनी प्रारंभ हुई तथा 'पाञ्चजन्य' में बाद में। हम क्रमशः न तो 'ऑर्गनाइज़र' के सभी नौ आलेख प्राप्त कर सके न 'पाञ्चजन्य' के। दोनों को मिलाकर हमें ये सभी आलेख प्राप्त हो गए, कालक्रमानुसार इनको संकलित करने में लेखमाला के क्रम में गड़बड़ी आ गई। हमारा यह संपूर्ण वाङ्मय क्योंकि कालक्रमानुसार नियोजित है, अतः संपादन में हमने कालक्रम को ही प्राथमिकता दी है, परिणामतः लेखमाला के क्रम को सँजोए रखना संभव नहीं हुआ।

‘ऑर्गनाइजर’ का उनका स्थायी स्तंभ ‘पोलिटिकल डायरी’ कुछ अनियमित हो गया तथा कुछ को हम प्राप्त नहीं कर सके, अतः ये स्तंभालेख भी अल्प मात्रा में ही संकलित हो सके हैं। संभवतः चुनाव व युद्ध का काल होने के कारण इसका लेखन कुछ विरल हो गया।

संघ शिक्षा वर्गों के बौद्धिक वर्गों की दृष्टि से यह खंड भरा-पूरा है, हम इस वर्ष 7 बौद्धिक वर्ग प्राप्त कर सके। साथ ही ‘राष्ट्रचिंतन’ में प्रकाशित उनके दो आलेख, जो खंड के अंत में दिए गए हैं, संभवतः संघ शिक्षा वर्गों के बौद्धिक वर्गों के आधार पर ही लिखे गए हैं। ‘राष्ट्रचिंतन’ में ही संपादित दो आलेख, जो हम उनकी मूल आलेखन तिथि के साथ कहीं प्राप्त नहीं कर सके, इनको भी इस खंड के अंत में समाहित किया गया है।

निर्वाचन एवं युद्ध की गहमा-गहमी में भी दीनदयालजी अपने वैचारिक आलेखन की निरंतरता को बनाए रखते हैं। इस वर्ष उन्होंने डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी तथा डॉ. हेडगेवार दोनों पर आलेख लिखे। आर्थिक विषयों पर भी आलेख तो हैं ही, लेकिन अर्थनीतिपरक आलेखों की वह परंपरा इस वर्ष नहीं निभ सकी, जो पिछले वर्षों में निरंतर रही है, इसी दिशा को संकेत करते हुए उन्होंने लिखा ‘घोर आर्थिक दृष्टिकोण से ही विकृतियाँ पनप रही हैं।’ भोपाल अधिवेशन की महामंत्री रिपोर्ट प्रतिवर्ष के समान ही महत्वपूर्ण है। प्रतिनिधि सभा के समय कार्यसमिति व स्वाध्याय शिविर की भी एक परंपरा बनी थी, लेकिन इस बार प्रतिनिधि सभा के साथ स्वाध्याय शिविर नहीं हुआ। कोटा में हुई प्रतिनिधि सभा का विवरण परिशिष्टों में शामिल किया गया है।

इस खंड की भूमिका लिखने का दायित्व रा.स्व. संघ के सह-संस्थापक डॉ. कृष्ण गोपालजी ने निभाया है तथा ‘वह काल’ का आलेखन श्री बनवारी ने किया है। शुभम्।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

भूमिका

कुछ लोग काल की भित्ति पर कुछ ऐसा लिख जाते हैं, जिसको दीर्घकाल तक लोग पढ़ते हैं, मनन करते हैं, दिशा पाते हैं और उनके मधुर स्मरण में श्रद्धा के साथ डूब जाते हैं। निष्ठुर काल सभी के ऊपर अपनी राख जमा देता है किंतु इन महापुरुषों की अनुयायी पीढ़ियाँ युग-युग में उस जमी राख को हटाती जाती हैं और अग्निशिखाएँ पुनः अपनी उसी तेजस्विता के साथ पुनर्दीप्त होकर उस नवीन युग का युगानुकूल मार्गदर्शन करती हैं। पंडित दीनदयालजी उसी शाश्वत ऋषि परंपरा के प्रकाशस्तंभ हैं।

व्यक्ति का मूल्यांकन इस बात से होता है कि उसके चले जाने के बाद कितनी दूर तक उस महापुरुष के विचारों को लेकर कितने लोग चलते हुए दिखते हैं? जिस उत्साह के साथ उनके जीवित रहते हुए लोग उनके अनुगामी बनकर चलते थे, क्या उसी उत्साह और आनंद के साथ उनके चले जाने के दशकों बाद आज भी लोग चल रहे हैं? पंडित दीनदयालजी विश्व के कुछ उन लोगों में से हैं, जिनकी कीर्ति वृद्धिगत है। उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ती ही जाती है। जो विचार दर्शन आज से 60-70 वर्ष पूर्व उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया था, वह आज और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है।

पंडित दीनदयालजी 1968 में अचानक चले गए। सहस्रदल कमल की कुछ पंखुड़ियाँ खुली ही थीं, सुवास अभी उठा ही था, मनोरम दृश्य का आभास होता था कि ग्रहण लगा और सूर्य अस्त हो गया। संपूर्ण जगत् को आलोकित करने का सामर्थ्य रखनेवाला वह उदित मार्तंड प्रकट हुए बिना ही डूब गया। पूर्णालोक देता कि चला गया। सारा देश स्तब्ध था कि यह हो क्या गया? नियति की क्रूर कथा! सभी असहाय थे। महामणि खो चुकी थी।

मथुरा में गांधी पार्क की शोकसभा में वक्ताओं को सुना और यह भी देखा कि एक के बाद एक कई वक्ता बोल न सके, उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई। गले रूँध गए।

तब हमको ध्यान में आया कि यह तो कोई विशिष्ट व्यक्ति थे। दीनदयालजी के एक मित्र श्री शरण बिहारी गोस्वामीजी ने उनकी श्रद्धांजलि में एक भावपूर्ण गीत गाया—

‘भारत के भाल पर कुमकुम के साथ लगा अक्षत एक,
असमय ही झर गया।’

गीत क्या हुआ लोग फूट-फूट कर रोने लगे। बाल मन का वह दृश्य स्थिर हो गया है।

जितने दिन भी दीनदयालजी रहे, प्रतिदिन कुछ न कुछ देते ही रहे। किंतु हम भी दुःख के सागर में ऐसे डूबे कि बहुत दिन बाद चैतन्य आया और अब चले दूँढ़ने, क्या कहा था दीनदयालजी ने? क्या-क्या लिखा था उन्होंने? एक कठिन कार्य! उनके सामने के बहुत लोग चले गए। अधिकांश स्मृतियाँ, संस्मरण, लेख अप्राप्य हो गए। किंतु डॉ. महेश चंद्र शर्माजी ने हार नहीं मानी। लगे खोजने। परिचित, मित्र, साथी, समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ आदि जहाँ से जो मिला, तिनका-तिनका बटोरकर लाने का असंभव सा कार्य आखिर कर ही डाला। साधना का सातत्य रंग लाया और 50 वर्षों के लंबे कालखंड के बाद भी 15 खंडों की विशाल सामग्री जुटा ली। बहुत कुछ गुम गया, कुछ मिला, वही सँजोकर रखा है इन ग्रंथों में, फिर भी यह दशम खंड अपनी विपुल सामग्री के साथ अपने आप में पूर्णता के साथ हमको दिखेगा।

इस ग्रंथ का काल 1962 का है। भारतीय इतिहास, देश की राजनीति, हमारी अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियाँ, चीन के साथ मित्रता और धोखा, भारतीय सेना का अतुलनीय पराक्रम और विलक्षण बलिदान, कूटनीतिक पराजय, अदूरदर्शी विदेश-नीति, अनसुनी चेतावनियाँ, युद्ध काल में देश की एकजुटता हेतु प्रयास, कम्युनिस्टों की देशघाती नीतियों का खुलासा, राजनीति का राष्ट्रीय दृष्टिकोण, मतदाताओं का प्रशिक्षण और प्रबोधन, लोकतंत्र और समाजवाद की भ्रमित राजनीति, नेहरूजी के विराट् व्यक्तित्व के सामने जूझते जनसंघ के कार्यकर्ताओं के मनोबल का प्रश्न, राजनीति में भी आदर्शों की रक्षा का आह्वान, धर्म की शाश्वत परिभाषा, राष्ट्रभाषा-राजभाषा के प्रश्न, देश की अर्थनीति, सहयोगी राजनीतिक दलों के नेताओं के साथ अपना व्यवहार, संघ के कार्यकर्ताओं के सामने शाश्वत ध्येय का प्रतिपादन एवं राष्ट्र का दर्शन आदि अनेक ऐसे पहलू हैं, जिन पर दीनदयालजी ने अपने विचार इस एक वर्ष में रखे हैं।

कभी वे जनसंघ के कार्यकर्ताओं के मध्य बोलते हैं तो कभी सार्वजनिक सभाओं में भाषण देते हुए दिखते हैं। कभी ट्रेन में बैठे ऑर्गनाइजर या पाञ्चजन्य के लिए लेख लिख रहे हैं तो कभी पत्रकारों को संबोधित करते हैं, कभी किसी आंदोलन के लिए आह्वान कर रहे हैं तो कभी कार्यकर्ताओं के प्रश्नों के उत्तर देते हैं। अत्यंत व्यस्तता में

भी शांत चित्त से दार्शनिक विषयों का प्रतिपादन बहुत सुंदरता से करते हैं, वहीं सरकार की अदूरदर्शी नीतियों के कारण आए देशव्यापी संकटों में भी धैर्य न खोकर आपसी मतभेदों को समाप्त कर संपूर्ण देश को एक परिवार की तरह एकजुट करके खड़ा करने का सफल प्रयास भी वे करते हैं। बड़े ही व्यापक फलक के रूप में दिखाई देता है यह 1962 का वर्ष। 1962 के काल का चिंतन करते समय यह आवश्यक है कि हम यह देखें कि उस समय विश्व परिदृश्य में परिस्थितियाँ कैसी थीं?

द्वितीय विश्व युद्ध (1938-44) के बाद विश्व मुख्यतः दो खेमों में बँटता जा रहा था। अमरीका तथा सहयोगी राष्ट्र विजयी हुए थे—इस कारण अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि देश अपनी विजयी धमक के साथ विश्व में खड़े हुए थे। पूँजीवादी व्यवस्था तथा लोकतंत्र की दुहाई देने वाला यह समूह नाटो (नॉर्थ एटलांटिक ट्रीटी ऑर्गनाइजेशन) के नाम से विश्व में अपनी विजयी मानसिकता के साथ प्रस्तुत था। इन्हीं के साथ कनाडा, ऑस्ट्रेलिया तथा यूरोप के छोटे-छोटे देश (स्विट्जरलैंड, फिनलैंड, नॉर्वे आदि) भी लोकतंत्र तथा पूँजीवादी व्यवस्था के साथ आगे बढ़ रहे थे। इनका एक बड़ा आकर्षण नव स्वतंत्र देशों के मध्य में था।

यद्यपि सोवियत संघ तो 1920 से ही कम्युनिज्म के विचार को लेकर चल रहा था। द्वितीय विश्व युद्ध के समय वह था तो मित्र राष्ट्रों के साथ ही किंतु उसने जो कम्युनिज्म की विचारधारा तथा पद्धति अपनाई थी, वह अन्य मित्र राष्ट्रों को भाती नहीं थी। सोवियत संघ ने अपने निकट के 17-18 अन्य छोटे-छोटे राज्यों को अपने में ही मिला लिया था। पूर्वी जर्मनी, रोमानिया, बुल्गारिया, यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी आदि देशों में भी साम्यवादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार कर उनको प्रभावित कर रखा था। चीन में माओत्से तुंग ने अपनी विशाल लाल सेना (रेड आर्मी) को लेकर, करोड़ों लोगों की हत्या करते हुए साम्यवादी विचारधारा के आधार पर शासन व्यवस्था स्थापित कर ली थी।

माओत्से तुंग (चीन); स्टालिन (रूस); मार्शल टीटो (यूगोस्लाविया); फिदेल कास्त्रो (क्यूबा); किम इल सुंग (उत्तर कोरिया) आदि कम्युनिस्ट देशों के नेताओं को विश्वव्यापी प्रसिद्धि मिल रही थी। ये कम्युनिस्ट नेतागण गर्व के साथ घोषणा कर रहे थे कि कम्युनिज्म की यह लहर मास्को से बीजिंग, कलकत्ता होते हुए लंदन तक जाएगी। कम्युनिज्म के विश्वव्यापी विस्तार की बड़ी महत्वाकांक्षी योजना विश्व के कम्युनिस्ट नेताओं ने बनाई थी।

भारत की सीमा पर स्थित तिब्बत की स्वतंत्रता को समाप्त कर चीन ने उसके ऊपर पूरी तरह से नियंत्रण कर लिया था तथा भारत के पूर्वी ओर के देशों में लाओस,

कंबोडिया, वियतनाम, कोरिया (नॉर्थ) में भी कम्युनिज्म की आँधी चल रही थी। कम्युनिज्म का एक विचित्र आकर्षण विश्व को चकाचौंध कर रहा था। विश्व का गरीब-पिछड़ा, कमजोर, मजदूर वर्ग कम्युनिज्म में अपने लिए एक बड़ी आशा की किरण देख रहा था।

चिंता की बात यह भी थी कि भारत में कुछ बड़े जाने-माने लोग यहाँ पर कम्युनिज्म के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे और इसके लिए वे इन विदेशी शक्तियों को पूरी सहायता करने को भी तैयार थे। भारत की गरीबी, अशिक्षा, लोकतांत्रिक पद्धति का अधूरा विकास, भारतीय दर्शन की अपूर्ण जानकारी तथा कम्युनिज्म के विनाशकारी प्रभाव के बारे में अनभिज्ञता आदि बातें ऐसी थीं, जिनके कारण कम्युनिस्टों को भारत में जड़ जमाना आसान लगता था। कांग्रेस के नेतृत्व में कम्युनिज्म का विरोध करनेवाले नेताओं में डॉ. राजेंद्र प्रसाद, श्री वल्लभभाई पटेल, श्री राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जैसे लोग या तो जा चुके थे या मूल धारा से दूर कर दिए गए थे। कांग्रेस के अंदर श्रीकृष्ण मेनन (रक्षा मंत्री) जैसे कम्युनिज्म के मित्र लोग नेहरूजी के विश्वासपात्र बन बैठे थे।

1956 में केरल (नया राज्य बना और वहाँ के चुनावों) में कम्युनिस्ट पार्टी लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनाव जीत कर सत्ता में आ गई। ऐसा विश्व में प्रथम बार ही हुआ था। बंगाल, बिहार, पंजाब, आंध्र, उत्तर प्रदेश आदि प्रांतों में भी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी थी। विविध चुनावों में उनके लोग विजयी होकर आते दिख रहे थे। लोकसभा में (1957 एवं 1962) कम्युनिस्ट सांसदों की संख्या क्रमशः 30 और 29 थी। इस प्रकार कांग्रेस के बाद संसद् में कम्युनिस्ट पार्टी का ही स्थान दिखाई दे रहा था। देश के कई मजदूर संगठनों (ट्रेड यूनियंस) पर भी वामपंथियों का नियंत्रण हो चुका था। लोकतंत्र में विश्वास रखने वाले और राष्ट्रवादी लोग इस खतरे के प्रति चिंतित थे। यह भी एक दृश्य था, जो 1962 में देश के सामने मुँह बाएँ खड़ा था। कांग्रेस में भी कम्युनिस्टों से सहानुभूति रखने वालों की अच्छी संख्या के कारण यह खतरा और गंभीर हो गया था।

पड़ोसी चीन को भारत अपना बड़ा विश्वसनीय मित्र मान बैठा था। भारत के प्रधानमंत्री महोदय को चीन पर बड़ा भरोसा था। किंतु चीन ने भारत के अक्साई चिन क्षेत्र से होकर तिब्बत जाने वाली एक बड़ी सड़क बना ली थी। भारत को इस बात की जानकारी भी विलंब से हुई। एक ओर पंचशील का समझौता और हिंदी-चीनी भाई-भाई के नारे गूँज रहे थे, वहीं दूसरी ओर यह विश्वासघात? भारत को इस बात से बड़ा धक्का लगा। एक अदूरदर्शी निर्णय के अनुसार भारत ने एक बार नहीं, दो बार सुरक्षा

परिषद् में मिलने वाले अपने स्थान को ठुकराकर अपनी जगह चीन की स्थायी सदस्यता का समर्थन किया था। भारत की विदेश नीति पूरी तरह नाकाम, निरर्थक और अप्रभावी सिद्ध हुई थी। चीन ने विश्व मान्यताओं की परवाह किए बिना तिब्बत पर अपना कब्जा जमा लिया तथा अक्सार्ई चिन में सड़क बनाने के साथ-साथ भारत की 15 हजार वर्ग कि.मी. से अधिक भूमि पर कब्जा भी कर लिया। भारत अपने आपको न केवल ठगा सा अनुभव कर रहा था, वरन् अपनी पुरानी नीतियों पर पुनर्विचार करने को मजबूर भी था। 1962 के वर्ष में ही चीन ने बड़ी सेना के साथ भारत पर आक्रमण कर दिया। पराजित भारतीय सेना राजनीतिक नेताओं के पाप का प्रक्षालन कर रही थी। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर भारतीय सैनिकों से प्रश्न करते हैं—

‘गरदन पर किसका भार वीर ढोते हो ? शोणित से तुम किसका कलंक धोते हो ?’

भारत की सीमा पर लगा पाकिस्तान किसी भी प्रकार से कश्मीर को अपने नियंत्रण में ले लेना चाहता था। 1948 के आक्रमण में उसने जम्मू-कश्मीर क्षेत्र के एक बड़े भाग पर अपना कब्जा जमा लिया। भारत ने अपने जम्मू-कश्मीर के हिस्से (pok) को न छोड़ाकर संयुक्त राष्ट्र संघ में जाने की भारी भूल कर डाली। हमारी विदेश नीति पूरी तरह विफल रही और आश्चर्यजनक बात यह थी कि उस समय (1948 में) संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारे प्रस्ताव के साथ विश्व का कोई भी महत्वपूर्ण देश खड़ा नहीं हुआ। कश्मीर का विषय बुरी तरह उलझ गया और भारत की स्थिति बड़ी अजीब हो रही थी। भारत अपने खाद्यान्नों तथा सैन्य आपूर्ति के लिए भी विदेशों पर निर्भर था। शक्तिशाली देश इस आपूर्ति के बदले में बड़ी कीमत चाहते थे। 1962 के समय विश्व परिदृश्य का यह एक सूक्ष्म चित्र है।

देश की आंतरिक स्थिति : अब हम भारत की उन दिनों की आंतरिक स्थिति पर एक दृष्टि डालते हैं।

अपना संविधान स्थापित होने के बाद भारत की शासन व्यवस्था यहाँ के संविधान के अनुसार चलने लगी। हमारी संसद्, न्यायालय, प्रशासनिक व्यवस्थाएँ, राज्यों की विधान सभाएँ आदि भारतीय नियंत्रण में आ चुकी थीं तथा सभी वयस्क लोगों को मतदान का अधिकार मिल चुका था। बिना किसी भेदभाव के मिलने वाला यह मताधिकार अपने आप में एक क्रांतिकारी कदम था। इन मतदाताओं की साक्षरता का प्रतिशत 15 प्रतिशत से भी कम था, किंतु वे सभी अपने मताधिकार को लेकर उत्साहित थे। वे अब भारत के भाग्य विधाता थे। किंतु आश्चर्य की बात यह थी कि लोकतांत्रिक दायित्वों को लेकर इन मतदाताओं के व्यापक प्रशिक्षण तथा प्रबोधन हेतु देश में कोई भी विचार नहीं किया गया था। अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रयोग वे किस प्रकार करेंगे, यह

नहीं जान पा रहे थे। राजनीतिक नेता और राजनीतिक दल इन भोले-भाले मतदाताओं को बहकाने में सफल थे।

गांधीजी का आग्रह था कि स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस को विसर्जित कर देना चाहिए। किंतु कांग्रेस के नेताओं को यह बात गले नहीं उतरी। वे सत्ता का सुख और उसके अधिकार देख चुके थे। कांग्रेस स्वतंत्रता दिलाने वाली पार्टी के रूप में देश में स्थापित थी। भोले-भाले मतदाताओं को भी यही लगता था कि कांग्रेस ही एकमात्र देशव्यापी दल है, जो शासन चलाने का अधिकार रखता है। इस कारण कांग्रेस ने देश भर में अधिकृत शासक दल के रूप में, भोली-भाली जनता के मन में अपना स्थान बनाया हुआ था। इस प्रकार कांग्रेस भी स्वतंत्रता सेनानियों के त्याग और संघर्ष का पूरा मूल्य वसूलने को तैयार थी। दिल्ली की केंद्रीय सत्ता और देश भर की विधानसभाओं में कांग्रेस की सत्ताएँ स्थापित हो चुकी थीं। कांग्रेस की इस देशव्यापी स्थापित राजनीतिक सत्ता को चुनौती देना पहाड़ से टकराने जैसा लगता था।

कांग्रेसी नेतागण भी राजाओं की तरह व्यवहार करते थे। जनता उनकी प्रजा थी। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं का प्रबोधन और प्रशिक्षण शून्य था। इसका कोई विचार इन नेताओं के मन में दूर-दूर तक नहीं था। जनता अपने नागरिक अधिकारों तथा लोकतांत्रिक कर्तव्यों एवं दायित्वों के बारे में दिशाशून्य थी।

लोकतांत्रिक अधिकार तथा लोक-दायित्वों के लिए लोक प्रशिक्षण की चिंता कौन करे? राजनीतिक दलों का निर्माण, उनकी दिशा और उनका अनुशासन, जनप्रतिनिधियों के कर्तव्य और उनके दायित्वों की जानकारी कौन दे? यह एक कठिन पहेली थी। जनता और राजनीतिक दलों के दायित्वों, कर्तव्यों, मानदंडों और उनके सम्मुख आदर्शों की कोई व्यवस्था नहीं दिखाई देती थी। लोकतंत्र के विशाल महल को खड़ा करने की तैयारी तो चल रही थी, किंतु उसकी नींव और उसकी अंतरात्मा के लिए कोई आधार ही नहीं था।

देश का दर्शन, देश का गंतव्य, राजनीतिक दलों का राष्ट्रीय दर्शन, नेताओं के चरित्र-संपन्न राष्ट्रीय-दृष्टिकोण हेतु कोई प्रयास दिखते नहीं थे। इन विषयों पर मतदाताओं का संस्कार और उनका परिष्कार आदि जो बातें नवजात लोकतांत्रिक परंपराओं के लिए प्राणस्वरूप होती हैं, कहीं कल्पनाओं में भी नहीं थीं।

अंग्रेजों के जाने के बाद देश भयंकर गरीबी, अशिक्षा, सामाजिक कुरीतियों एवं निरर्थक रूढ़ियों से जूझ रहा था। देश के आर्थिक विकास की दिशा क्या हो, एक बड़ा प्रश्न सामने था। समाजवादी, साम्यवादी या पूँजीवादी? साम्यवादी व्यवस्था में व्यक्ति की स्वतंत्रता, स्वच्छंद विचारों तथा स्वतंत्र चिंतन को कोई स्थान नहीं था, वहीं

पूँजीवादी व्यवस्था में निरंकुश स्वतंत्रता गरीबों की मजबूरी का लाभ उठाने से चूकती नहीं थी। गरीब लोग अकल्पनीय शोषण का शिकार होने को मजबूर थे। देश की 40 करोड़ जनसंख्या का पेट भरने तथा सैन्य संसाधनों की आपूर्ति के लिए हम अन्य देशों पर निर्भर थे। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ये वे परिस्थितियाँ थीं, जब दीनदयालजी हमारे सामने आते हैं।

दीनदयालजी का मार्गदर्शन : इस दसवें खंड में हम देखेंगे कि दीनदयालजी ने देश, समाज, सरकार तथा संगठन के सामने आनेवाली इन चुनौतियों के सम्मुख योग्य मार्गदर्शन हमारे सामने रखा है। इस दसवें खंड का फलक व्यापक है, किंतु हम मुख्य बिंदुओं की ही चर्चा यहाँ करते हैं।

दीनदयालजी का राजनीतिक प्रबोधन

स्वतंत्रता के बाद दीनदयालजी पहले ऐसे राजनीतिक चिंतक दिखाई देते हैं जो भारतीय मतदाता को, राजनीतिक दलों को तथा राजनीति में कार्य कर रहे नेतृत्व को व्यापक रूप से प्रशिक्षित करने का दायित्व अपने ऊपर लेते हैं। देश की राजनीति को वे एक स्वस्थ दिशा देना चाहते हैं। उनका यह प्रबोधन महत्त्वपूर्ण तथा शाश्वत है।

लोकमत जागरूक रहे : देश में संविधान लागू होते ही सभी वयस्कों को मताधिकार तो प्राप्त हो गया था किंतु इस लोकमत को सामाजिक, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को समझाना आवश्यक था। देश की परिस्थिति तथा सरकार की नीतियों में साम्य होना चाहिए। इस कारण मतदाता जागरूक रहे, उसकी समझदारी और चिंतन का स्तर बढ़े, इस दृष्टि से दीनदयालजी ने जो लेखन किया, उसमें से उनके दस लेख और वार्ताएँ इस ग्रंथ में समाहित की गई हैं। दीनदयालजी चाहते हैं कि मतदाता की जानकारी का स्तर बढ़े। वह तुलनात्मक विश्लेषण कर सके। इस दृष्टि से वे मतदाता प्रबोधन हेतु कोई भी प्रयास छोड़ते नहीं।

मतदाता का मत लोकाज्ञा है : दीनदयालजी कहते हैं कि 'मतदाता का मत 'पवित्र' है। प्रत्येक मत स्वयं एक 'निर्देश' और 'आज्ञा' का भाव रखता है। राष्ट्र की नीतियों तथा योजनाओं का संचालन उसके अनुसार होना चाहिए। मतदाता का मत लोकाज्ञा है।' मतदाता सचेत रहे, स्वविवेकी हो, दूरद्रष्टा हो तथा विविध विषयों का जानकार भी हो। अतः उसका प्रशिक्षित होना आवश्यक है। वे कहते हैं कि देश के सामान्य मतदाता का चिंतन और व्यवहार का स्तर उठाना चाहिए। 'देश का मतदाता देश का भाग्यविधाता है, वह हमारे सामने देव स्वरूप है। अतः 'लोकमत परिष्कार' प्रत्येक राजनीतिक दल का एक प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। भारतीय जनसंघ इस दृष्टि से देश

के सभी दलों के सामने अपना उदाहरण प्रस्तुत करे।'

प्रत्येक मत (वोट) के मूल्य को समझें : 'प्रयत्न करें कि आपका प्रत्याशी जीते। तथापि पराजित होने पर यह न सोचें कि आपका वोट व्यर्थ गया। यह व्यर्थ नहीं हुआ। यह जो भी आगामी सरकार हो, उसकी नीतियों और दृष्टिकोण को प्रभावित करेगा।' (पृ. 77)

मतदाताओं का प्रबोधन : लोकतांत्रिक व्यवस्था में मतदाता देश की वास्तविक स्थिति से अवगत हों, वे विचारवान हों तथा योग्य रीति से निर्णय लेने में सक्षम हों, यह आवश्यक है। इस हेतु से दीनदयालजी राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जागरूक करते हुए एक जनसभा में कहते हैं, 'इस अवधि में देश की समस्याएँ सुलझने की बजाय कई गुना बढ़ी हैं। भू-क्षेत्र की दृष्टि से भारत आज उस समय से छोटा हो गया है, जितना अंग्रेजों के छोड़ने के समय था। एक तिहाई कश्मीर पाकिस्तानी कब्जे में है, जबकि पूर्वी सीमाओं पर चीन ने अतिक्रमण कर रखा है।' (पृ. 5)

धन का प्रभाव : कुछ धनी लोग अपने धन के बल पर टिकट पाते हैं और प्रचुर धन का उपयोग करके विजयी होना चाहते हैं। दीनदयालजी कहते हैं कि 'वास्तव में वे जनता और राजनीतिक दलों से उनके मत और टिकट प्राप्त करने नहीं आते, वरन् उसे खरीदने आते हैं।' 'यदि समय रहते इस ओर ध्यान न दिया गया तो देश के विधानमंडलों में यह धनिक वर्ग अपना प्रभाव बढ़ा लेगा और उस अवस्था में अब किसी भी समस्या पर निर्णय राष्ट्रीय हितों अथवा लोक-कल्याण के आधार पर शायद ही कभी किया जा सके।' (पृ. 59-60)

घोषणा-पत्रों का तुलनात्मक अध्ययन : दीनदयाल उपाध्यायजी ने स्वस्थ लोकतांत्रिक परंपराओं का विकास हो, इस दृष्टि से सभी राजनीतिक दलों द्वारा जारी किए गए घोषणा-पत्रों का विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक अध्ययन प्रारंभ किया। दलों की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सोच क्या है, यह मतदाता को जानना चाहिए। जनसंघ इन सभी से किस प्रकार भिन्न है, यह अपने कार्यकर्ताओं को तथा मतदाता को ध्यान में रहे। वे लिखते हैं कि 'ये सभी राजनीतिक दल समाजवाद की चर्चा करते समय अपना ध्यान केवल नागरिकों की आर्थिक उन्नति पर ही दे रहे हैं। भारतीय जनसंघ ने कहा है कि राष्ट्र के स्थायी सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर हम देश का विकास करेंगे।'।'

दीनदयालजी ने उस समय देश के अन्य राजनीतिक दलों (कांग्रेस, स्वतंत्र तथा समाजवादी) के घोषणा-पत्रों तथा विकास की योजनाओं के सम्मुख भारतीय जनसंघ की विकास की योजनाओं को रखते हुए कुछ मौलिक अंतर स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि जनसंघ इन राजनीतिक दलों से इस विषय में भिन्नता रखता है, वह देश में उचित

तथा नवीन तकनीक के विकास के समय तीव्र औद्योगीकरण करते हुए इस बात का ध्यान रखेगा कि वह हमारी सामाजिक परिस्थितियों तथा सामाजिक संस्थाओं को सुधारे किंतु राष्ट्र के स्थायी सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण की व्यवस्था भी बनी रहे।

एक ओर समाजवादी तथा कम्युनिस्ट दलों की माँग थी कि अधिकतर उद्योग-धंधों का नियंत्रण सरकार के हाथ में हो, वहीं भारतीय जनसंघ का मानना था कि भविष्य में सरकार केवल सुरक्षा, तेल, खनिज, परमाणु ऊर्जा से संबंधित तथा कुछ मूलभूत आवश्यकता वाले उद्योगों को ही अपने नियंत्रण में रखें। दीनदयालजी चाहते हैं कि स्वस्थ लोकतांत्रिक स्वरूप में जनता इन विषयों की विश्लेषणात्मक समझ रखे।

राजनीतिक दलों से अपेक्षा : राजनीतिक दल तो लोकतंत्र की रीढ़ हैं। स्वतंत्रता के पूर्व सारा देश केवल एक ही दल कांग्रेस के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई लड़ रहा था। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता आते ही सत्ता भी उन्हीं के हाथों में आ गई। राजनीतिक दलों के स्वस्थ विकास की प्रक्रिया प्रारंभ ही नहीं हुई। दीनदयालजी चाहते थे कि कुछ वर्षों के अंदर ही देश भर में एक महान् राष्ट्रीय उद्देश्य को लेकर; उद्देश्य के लिए समर्पित, अनुशासित, प्रशिक्षित कार्यकर्ता खड़े कर दिए जाएँ और इस हेतु से उनका कार्यकर्ता प्रबोधन का कार्य अनवरत चलता रहता था।

अच्छा दल कौन सा है : दीनदयालजी कहते हैं कि 'जिस दल के कार्यकर्ताओं में सर्वोच्च पदाधिकारियों से लेकर साधारण कार्यकर्ता तक अपने आदर्शों के प्रति निष्ठा होगी।' अर्थात् जिस दल के सभी कार्यकर्ता कुछ उद्देश्यों तथा आदर्शों को सामने रखकर कार्य करते हैं, वे ही देश को कुछ दिशा दे सकते हैं।

राजनीतिक दलों का दायित्व : जब सब लोग चुनाव जीतना ही लक्ष्य रखते हों, उस समय दीनदयालजी ने राजनीतिक क्षेत्र में आदर्शों की स्थापना का लक्ष्य अपने सामने रखा। उनका मानना था कि राजनीतिक दलों का दायित्व है कि वे जब उम्मीदवारों का चयन करें तब यह ध्यान रखें—

(1) उम्मीदवारों की कुछ योग्यता होनी चाहिए। (2) उम्मीदवार स्वयं के दल का प्रतिनिधित्व करते हों। (3) वे अपने दल के प्रति अनुशासित हों। प्रत्याशी के लिए, जीतनेवाला है और पैसेवाला है, केवल यह आधार उचित नहीं है। विधायिका में धनपतियों का प्रभाव बढ़ने से राष्ट्रहित गौण हो जाएगा।

लोकतंत्र के लिए अच्छा स्वरूप कब? दीनदयालजी स्पष्ट करते हैं कि 'संगठित जागरूक समाज, सुव्यवस्थित राजनीतिक दल तथा राजनीतिक जीवन में आदर्शों की प्रस्तुति करनेवाले कार्यकर्ता जहाँ होंगे, वहाँ लोकतंत्र का आदर्श स्वरूप आ सकता है। इसके लिए दलों के सामने उच्च आदर्श, निस्स्वार्थ कार्यकर्ताओं की समर्पित टोली,

संगठन में अनुशासन और इस दृष्टि से वह दल कार्यक्रम करता है। इस दृष्टि से देखें तो ध्यान में आएगा कि क्या कांग्रेस के सामने कोई आदर्श है?’

राजनीतिक दलों के बड़े नेताओं का व्यवहार : दीनदयालजी का मत था कि अपने देश में लोकतंत्र का विकास हो रहा है। कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण चल रहा है। जैसा व्यवहार और आचरण हमारे नेता लोग करेंगे, वैसा ही अनुसरण हमारे कार्यकर्ता भी करेंगे। नेहरूजी का व्यवहार गरिमापूर्ण नहीं था। कांग्रेस के शीर्षस्थ लोगों के भाषण का एक उदाहरण देते हुए दीनदयालजी लिखते हैं—‘नेहरूजी कहते हैं कि कांग्रेस कहेगी कि बिजली के खंभे को वोट दो तो लोग वैसा ही करेंगे। क्या उनका यह कथन ठीक है? क्या यह लोकतंत्र को स्वस्थ करनेवाला कथन है? क्या हम अपने देश के मतदाताओं को विवेक शून्य नहीं बना रहे? यह चिंताजनक बात है। यह स्वस्थ लोकतंत्र के विकास में बाधक है।’

कांग्रेस अध्यक्ष कह रहे हैं कि ‘कांग्रेस का बुरे से बुरा व्यक्ति भी विपक्ष के अच्छे से अच्छे व्यक्ति से अच्छा है। यह मतदाताओं को कैसी शिक्षा दे रहे हैं?’ दीनदयालजी का कहना है कि ऐसी भाषा स्वस्थ लोकतंत्र के निर्माण में बाधक है। बड़े लोगों को अपनी वाणी की गरिमा बनाकर रखनी चाहिए।

‘स्वतंत्र पार्टी की आर्थिक नीतियों को खराब अर्थनीति करार देकर पंडित नेहरू ने किसी तरह से मतदाताओं को जागरूक करने का कार्य नहीं किया। एक अन्य दिन उन्होंने जनसंघ को जिन्ना का सच्चा अनुयायी बता डाला। इतने उच्च पद पर बैठे व्यक्ति को क्या इस तरह की बातें शोभा देती हैं? हर कोई जानता है कि पाकिस्तान बनानेवाले जिन्ना थे, भारतीय जनसंघ विभाजन का विरोधी है और देश का एकीकरण चाहता है।’ (पृ. 76) दीनदयालजी कहते हैं—‘मुसलमानों और ईसाइयों से कांग्रेस नेता कहते हैं कि अगर उनकी सत्ता गई और जनसंघ की आई तो वे कहीं के नहीं रहेंगे।’ (पृ. 74) कांग्रेसी नेताओं द्वारा वोट पाने के लिए झूठी बातें फैलाना उचित नहीं है।

राजनीतिक दलों का आपसी व्यवहार : दीनदयालजी को चिंता है कि ‘एक ही देश के राजनीतिक दलों का आपसी व्यवहार कैसा है? राजनीतिक दल कितने भी हों, सभी का उद्देश्य तो एक ही है कि देश की उन्नति हो। अपना देश आगे बढ़े। किंतु आपसी व्यवहार संकुचित हैं। राजनीतिक दल आपस में शत्रुवत् व्यवहार क्यों करते हैं? हम सभी विविध दल मिलकर अच्छा प्रेमपूर्ण व्यवहार क्यों नहीं कर सकते?’ वे कहते हैं—‘Different political parties in India seems to be at war with each other all through’ राजनीतिक दलों के ऐसे व्यवहार से सामान्य जनता क्या सीखेगी?

राजनीतिक नेताओं के प्रति मतदाताओं की धारणा अच्छी नहीं बनेगी। राजनीति का स्तर गिरेगा।

राजनीतिक अस्पृश्यता बहुत खराब है : दीनदयालजी का मानना है कि देश के विविध राजनीतिक दल आपसी सौहार्द बनाकर रखें। राजनीतिक दलों के आपसी संबंध इतने निम्न स्तर पर हैं कि किसी को शर्म आ जाए। ऐसा लगता है कि सभी दल आपस में युद्धरत हैं। कुछ दलों की आपस में निकटता हो सकती है किंतु इसका यह अर्थ नहीं हो सकता है कि अन्य दलों के साथ वे अस्पृश्यता का व्यवहार करेंगे। यदि हम सामाजिक अस्पृश्यता को बुरा मानते हैं तो इसकी तुलना में राजनीतिक क्षेत्र की अस्पृश्यता तो बहुत बुरी मानी जाएगी।

दीनदयालजी ने डॉ. राधाकृष्णनजी के प्रथम भाषण का उल्लेख किया और कहा कि 'हमारे सभी के आपसी संबंध आत्मीय और प्रेमपूर्ण होने चाहिए।' A nation is not juxtaposition of individuals. It is a society based on a communication of mind, a union of hearts.'

जाति के आधार पर राजनीति उचित नहीं : दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद से ही राजनीति में जातीयता का प्रयोग प्रारंभ हो गया था। राजनीतिक दलों ने जाति के आधार पर वोट माँगना प्रारंभ कर दिया था। और यह स्वभाव बढ़ता जा रहा था। दीनदयालजी सावधान करते हैं—'प्रत्याशी निर्धारित करते समय जातीयता का यह भूत राजनीतिक दलों को बहुत प्रभावित करता है। लेकिन यदि प्रत्याशी में अन्य सभी योग्यताएँ विद्यमान हैं तो मैं इस बात की चिंता करना आवश्यक नहीं समझता कि उम्मीदवार किस जाति विशेष का है।' (पृ. 59-60)

डॉ. राममनोहर लोहियाजी को एक निर्वाचन क्षेत्र इस कारण से छोड़ना पड़ा कि उस निर्वाचन क्षेत्र में उनकी जाति के लोग बहुत कम थे। दीनदयालजी ने इस प्रसंग की निंदा की। इस जातिवाद की राजनीति के समाधान हेतु दीनदयालजी कहते हैं कि 'दलों का व्यापक न होना और सुदृढ़ संगठनात्मक ढाँचे का अभाव भी इसका कारण है।' (पृ. 59)

अच्छे कार्यकर्ता किसी भी दल के विजयी हों : दीनदयालजी ने देखा कि राजनीतिक दलों के विद्वान् तथा प्रामाणिक लोग चुनाव हार जाते हैं, यह तो ठीक नहीं है। मतदाताओं को उनका आग्रह था कि प्रत्याशी का चयन करते समय पहले सिद्धांत, फिर पार्टी, फिर व्यक्ति का क्रम रहे। दीनदयालजी दुःख के साथ कहते हैं कि 'आचार्य कृपलानी और आचार्य नरेंद्र देव जैसे विद्वान् तथा अनुभवी लोगों को छुटभैयों के सामने हारना पड़ा। यह तो उचित नहीं है।' यद्यपि श्री कृपलानी तथा आचार्य नरेंद्र देव

जनसंघ के नेता नहीं थे। किंतु दीनदयालजी दुखी थे। दीनदयालजी चाहते थे कि अच्छे देशभक्त कार्यकर्ता चाहे वे किसी भी दल के क्यों न हों, विजयी होकर आगे आने चाहिए। इस कारण दीनदयालजी ने अन्य दलों के योग्य कार्यकर्ताओं (उम्मीदवारों) को भी विजयी बनाने के लिए अनेक बार आह्वान किया। समाजवादी दल के श्री राम मनोहर लोहिया (फूलपुर-इलाहाबाद) तथा आचार्य कृपलानी (उत्तर मुंबई) जैसे अनेक उम्मीदवारों को विजयी बनाने के लिए आह्वान किया और जनसंघ के कार्यकर्ताओं को उनके चुनावों में लगाया।

कम्युनिस्ट पार्टी विदेशी है : कम्युनिस्ट पार्टी के संबंध में दीनदयालजी के मन में कोई संभ्रम नहीं था। इस दल की प्रेरणा और निष्ठा इस देश की मिट्टी में नहीं है। इस देश के इतिहास, विचार, दर्शन, संस्कृति आदि से इस पार्टी का कोई नाता नहीं है। यह दल विदेशी है—पूर्णतया विदेशी। दीनदयालजी कहते हैं—‘भारत के प्रति वफ़ादार न होकर विदेशों से प्रेरणा ग्रहण करनेवाली उक्त संगठित पार्टी तो देश के लिए एक बड़ा खतरा ही है। अतः उसका समर्थन न करते हुए आवश्यक तो यही है कि उसकी राष्ट्रघातक-नीतियों का पर्दाफाश किया जाए, जिससे कि उसका प्रभाव बिल्कुल समाप्त हो जाए।’ (पृ. 67)

राष्ट्रीय हित का विचार करें : यद्यपि भारतीय जनसंघ की कांग्रेस से प्रतिद्वंद्विता थी किंतु दीनदयालजी कहते हैं—‘यदि तुम्हारे पास कोई राष्ट्रीय प्रत्याशी है तो आप कांग्रेस को पराजित करें और यदि कांग्रेस और कम्युनिस्ट प्रत्याशियों के मध्य किसी को चुनना है तो फिर आप किसी प्रकार कम्युनिस्ट प्रत्याशी की पराजय सुनिश्चित करें। कम्युनिस्टों की विजय लोकतंत्र को कमजोर ही करेगी। अतः कम्युनिस्टों को मतदान करने की भूल न करें।’

अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक की सोच घातक है

दीनदयालजी स्पष्ट करते हैं कि ‘कांग्रेस देश में राष्ट्रीय एकता प्रस्थापित करने के लिए अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की भाषा में सोचती है और प्रत्येक के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण निर्धारित करती है।’ (पृ. 9)

‘भारतीय जनसंघ एक प्रकार से बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की संज्ञाओं को न तो उचित समझता है और न उक्त विभाजन को स्वीकार करता है। वह भारत को एक अखंड, अविभाज्य एक राष्ट्र समझता है और संपूर्ण राष्ट्र की संस्कृति एक है, इस बात पर दृढ़ विश्वास एवं आस्था रखता है।’ (पृ. 12)

अल्पसंख्यक तुष्टीकरण ठीक नहीं : ‘कांग्रेस की अवसरवादी नीतियों ने सांप्रदायिक और जातिगत भावनाओं को बढ़ावा दिया है, जिसके फलस्वरूप धार्मिक

अल्पसंख्यकों में उचित या अनुचित एक भ्रम उत्पन्न हो जाता रहा है। उनके मस्तिष्क में व्याप्त इस भ्रम से राजनीतिक पूँजी एकत्र करने के लिए कतिपय निहित स्वार्थ वाले तत्त्व फिर प्रयत्नशील हो जाते हैं।' (पृ. 10)

दीनदयालजी ने सावधान किया कि जिस प्रकार कांग्रेस, समाजवादी पार्टी, स्वतंत्र पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी आदि सभी अल्पसंख्यकों के लिए अलग-अलग अधिकारों की माँग कर रहे हैं, यह घातक है। राजनीतिक दलों का यह स्वभाव राष्ट्र की स्वाभाविक एकता और एकात्मता को खंडित कर देगा। दीनदयालजी कहते हैं कि 'ये पार्टियाँ इस प्रकार का प्रचार कर चुनाव में लाभ उठाने के लिए एक फ़ौज तैयार करना चाहती हैं, जो कि अत्यंत निंदनीय है। इतना ही नहीं, यदि इन दलों द्वारा सुझाए गए उपायों का अवलंबन किया गया तो ये समुदाय राष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन से पूर्ण-रीति से पृथक् हो जाएँगे।' (पृ. 12)

अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक का विभाजन मान्य नहीं : दीनदयालजी ने एक शाश्वत नियम सामने रखकर कहा कि 'एक राष्ट्र, एक जन। अर्थात् संपूर्ण राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को 'एक जन' के रूप में ही मानना चाहिए।' दीनदयालजी का स्पष्ट मत है कि 'भारतीय जनसंघ एक प्रकार से बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की संज्ञाओं को न तो उचित समझता है और न उक्त विभाजन को स्वीकार करता है। वह भारत को एक अखंड, अविभाज्य एक राष्ट्र समझता है।' (पृ. 12)

मत, संप्रदाय के नाम पर संस्कृतियाँ नहीं बदलतीं : दीनदयालजी कहते हैं कि 'जनसंघ धर्म के आधार पर भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की कल्पना को स्वीकार नहीं करता। वह तो एक राष्ट्र एक संस्कृति और एक देश के सिद्धांत को मानता है, इस बात को जानते हुए भी कि ऐतिहासिक और कुछ अन्य कारणों से इस देश के जनसमाज का कुछ अंश राष्ट्र जीवन की पुनीत मूल धारा से पृथक् हो गया है और कुछ अंशों में राष्ट्रविरोधी भी हो गया है। उनका उपचार करने में जनसंघ विश्वास रखता है और उनकी पृथकतावादी मनोवृत्ति का समर्थन करने को वह कदापि तत्पर नहीं है।' (पृ. 12)

केरल में कांग्रेस ने मुसलिम लीग के साथ गठबंधन कर सरकार बना ली थी। देश का विभाजन करनेवाली मुसलिम लीग के साथ सरकार बनाने में कांग्रेस को लज्जा का अनुभव नहीं हुआ। दीनदयालजी ने इस घटना की निंदा की। राजनीतिक स्वार्थसिद्धि के लिए यह व्यवहार अशोभनीय है और राष्ट्रहित में घातक है।

देशभक्ति व्यापार नहीं

'राष्ट्रीयता का माप उनकी श्रद्धाओं से किया जाना चाहिए, न कि राजनीतिक

स्वार्थों के आधार पर।' (पृ. 12)

27 मार्च, 1962 को डॉक्टर राम मनोहर लोहियाजी का एक विचित्र सुझाव समाचार-पत्र में प्रकाशित हुआ था। उनका सुझाव था कि अखंड भारत की स्थापना के लिए भारत में संवैधानिक प्रावधान कुछ इस प्रकार होने चाहिए कि भारत में राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री का स्थान मुसलमानों के लिए आरक्षित कर दिया जाए। इस समाचार को पढ़ने के बाद दीनदयालजी ने प्रतिप्रश्न किया कि ईसाई, पारसी, यहूदी लोगों का क्या होगा? हिंदुओं में भी छोटे-छोटे संप्रदाय हैं, उनका क्या होगा? क्या वे भी आरक्षण नहीं माँगेंगे? डॉ. लोहियाजी का यह सुझाव हमारे सदियों पुराने सुंदर ताने-बाने को तार-तार कर देगा। क्या हम मुसलिम उप-राष्ट्रपति से हिंदू राष्ट्रपति का मुकाबला कराना चाहते हैं? राष्ट्रीय एकता राजनीतिक जोड़-तोड़ या सौदेबाजी से नहीं लाई जा सकती है। समाज का कोई भी वर्ग राष्ट्रीय एकता की क्रीमत लगाकर एकता नहीं ला सकता और किसी भी समाज को क्रीमत देकर राष्ट्रीय एकता के लिए लाकर खड़ा नहीं किया जा सकता। कांग्रेस ने मुसलमानों को देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में साथ लाने के लिए कौन से 'उपहार' नहीं दिए थे, किंतु हमको कोई सफलता नहीं मिली।... ध्यान में रखा जाना चाहिए कि देशभक्ति और व्यापार में अंतर होता है।

अपने देश का ढाँचा अपना हो

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश को अपनी विकास की दिशा तय करनी थी। भारतीय परंपरा, दर्शन तथा सांस्कृतिक अधिष्ठान को स्मरण में रखकर भविष्य का मानचित्र तैयार करना था। दीनदयालजी कहते हैं कि हम स्वयं अपने देश का ढाँचा (System) विकसित करें। 'मनुष्य आर्थिक प्राणी नहीं है। हम पश्चिमी जगत् की पूँजीवादी तथा समाजवादी शब्दावली से भ्रमित न हों। ये दोनों ही प्रणालियाँ संघर्ष की मान्यता पर विकसित धारणाएँ हैं। भारतीय दर्शन इस प्रकार के संघर्ष को नहीं मानता। पूँजीवादी व्यवस्था का आधार आर्थिक मनुष्य है, वहीं समाजवादी व्यवस्था वालों की धारणा सामूहिक मनुष्य (Mass Man) की है। पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति एवं उद्योगपति अपनी स्वतंत्रता की बात करता है किंतु वह कारखानों में कार्य करनेवाले लाखों मजदूरों को वही स्वतंत्रता व अधिकार देना नहीं चाहता।

दीनदयालजी कहते हैं कि 'समाजवाद की अवधारणा के पीछे आपसी संघर्ष प्रमुख है। समाजवादी दल वर्ग संघर्ष में विश्वास रखते हैं तथा समस्त राष्ट्रीय संपदा को बिना उत्पादन का विचार किए बाँट देना चाहते हैं। वे सिद्धांततः लोकतंत्र में विश्वास नहीं करते। भारतीय जनसंघ इन बातों में विश्वास नहीं करता। समाजवादी व्यवस्था में

सारी शक्ति राज्य के हाथ में केंद्रित होती जाती है। मनुष्य की स्थिति यथावत् हो जाती है। यहाँ भी सामान्य मनुष्य को कोई स्वतंत्रता नहीं मिलती। दोनों व्यवस्थाओं में मनुष्य के मन, उसकी इच्छाओं तथा भावनाओं का विचार नहीं है। दोनों ही दोषपूर्ण हैं।

हम अपने देश की संस्कृति, यहाँ के संसाधनों की उपलब्धता, हमारी आवश्यकता और यहाँ की विशेषताओं को ध्यान में रखकर अपना सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक ढाँचा खड़ा करें। किसी भी अन्य देश की व्यवस्था का यहाँ जस का तस आयात करना उचित और उपयुक्त नहीं होगा।

पाश्चात्य ढाँचा और विदेशी सिद्धांत : दीनदयालजी ने मतदाताओं को समझाने का प्रयास किया कि 'देश के अधिकांश राजनीतिक दल भारत की राजनीति को विदेशी ढाँचे के आधार अथवा कल्पनाओं एवं मान्यताओं के सहारे ही चलाना चाहते हैं। अपने देश के कांग्रेस, स्वतंत्र, प्र.स., समाजवादी और कम्युनिस्ट दल इसी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। 'इस देश के मौलिक राजदर्शन को अपनाना तो दूर उसके विषय में सोचने तक को वे तत्पर नहीं हैं।' (पृ. 71) 'यदि आप पाश्चात्य ढाँचे पर राष्ट्र को ढालना चाहते हों तो किसी भी एक समाजवादी को चुन लें; किंतु यदि आप देश की प्राचीन संस्कृति के आधार पर राष्ट्रजीवन का सुधार और परिष्कार करना चाहते हों, तो जनसंघ में सम्मिलित हो जाएँ।' (पृ. 72)

दक्षिण-वाम की शब्दावली ठीक नहीं : फ्रांस में 1790 के दशक में राजा लुईस (सोलहवें) के दरबार में बाँई ओर बैठने वाले लोग राजा की आलोचना करते थे, जिन्हें राक्षसी (Sinisters) कहा जाता था। वहाँ से यह वामपंथी (Leftist) शब्द प्रारंभ हुआ। राजा के पक्ष वाले लोग दाहिनी ओर बैठते थे और दक्षिणपंथी कहलाने लगे। दीनदयालजी इस शब्दावली का प्रयोग अपने देश में उचित नहीं मानते। दीनदयालजी कहते हैं कि 'पश्चिमी देशों में राजनीतिक दलों का वर्गीकरण दक्षिणपंथी और वामपंथी कहकर किया जाता है। भारतवर्ष में भी भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों के लिए इसी शब्दावली का प्रयोग कर उनकी विशेषताएँ और उद्देश्य बताए जाते हैं।' (पृ. 70) यह उचित नहीं है।

भारतीय भाषाएँ और अंग्रेज़ी

दीनदयालजी का निश्चित मत था कि देश को स्वतंत्रता मिली है और अंग्रेज़ों के जाने के बाद हम अपनी भारतीय भाषाओं की प्रगति पर ध्यान दें। हिंदी को देश भर में पहुँचाने के लिए उन्होंने राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडनजी की प्रशंसा की। भाषा विषय पर दीनदयालजी कहते हैं कि देश की सभी भाषाएँ भारतीय हैं, महत्त्वपूर्ण हैं तथा सम्माननीय हैं। अंग्रेज़ी उनका स्थान नहीं ले सकती। 'जब तक

भारत की उर्वर और समृद्ध भाषाएँ हैं, तब तक कोई भी शक्ति यहाँ अंग्रेज़ी को बनाए नहीं रख सकती।' इसका निर्णय उसी दिन सुना दिया गया था, जिस दिन अंग्रेज़ों ने भारत छोड़ा।' (पृ. 201) भारतीय भाषाओं के बारे में वे कहते हैं कि 'प्रथम भाषा आयोग की संस्तुतियाँ कूड़ेदान के हवाले की जा चुकी हैं और संसदीय समिति की रिपोर्ट पर राष्ट्रपति के निर्देशों को विस्मृत किया जा चुका है।' (पृ. 205)

भारत की सभी स्थानीय, प्रांतीय भाषाओं में आपस में कोई विरोध नहीं है। 'वास्तव में भारत की सभी भाषाएँ एक ही परिवार की सदस्या हैं। इसलिए उनका परस्पर एक साथ जितना मेल हो सकता है, अंग्रेज़ी के साथ उतना नहीं हो सकता।' (पृ. 225) दीनदयालजी कहते हैं कि जितना जल्दी हो उतना शीघ्र भारत अपनी स्वदेशी भाषाओं के साथ खड़ा हो जाए किंतु सरकार में बैठे कुछ लोग 'देश की भाषा-नीति में अंग्रेज़ी को 'सखी राजभाषा' (Associate Language) बनाए रखने के लिए शासन की ओर से विधेयक प्रस्तुत करने की बात कही जा रही है। यह बात देश के लिए अत्यंत घातक है।' (पृ. 224) 'संविधान बनते समय उसके बनानेवाले भारत के सभी भाषा-भाषी थे और अपनी भाषा की नीति उसी समय संविधान के द्वारा स्वीकृत हो चुकी है।' मालवीयजी ने कहा था, "अपने देश में अपना राज। यदि यहाँ अंग्रेज़ी में राजकाज चलेगा, वह कैसे अपना राज बनेगा? (पृ. 225) राज्यों की सरकारें "अपने प्रदेश से अंग्रेज़ी को निकाल दीजिए। प्रदेश की भाषा से राजकाज तथा अन्य काम चलाइए। फिर हिंदी स्वयं और स्वाभाविक रूप से जितना आवश्यक होगा, उतना स्थान बना लेगी।" (पृ. 225)

एक नई हिंदुस्तानी भाषा के नाम पर हिंदी में फ़ारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग पर उन्होंने आपत्ति व्यक्त की और कहा कि भारत के लोगों को असंस्कृत बनाने का यह एक षड्यंत्र है।

सम्यक् आर्थिक चिंतन आवश्यक

190 वर्षों के अंग्रेज़ी राज्य ने भारतीय अर्थव्यवस्था को चौपट कर दिया था। ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत आने के समय भारत की विश्व व्यापार में भागीदारी 23 प्रतिशत थी किंतु जब अंग्रेज़ भारत से गए, तब यह हिस्सेदारी केवल 1 प्रतिशत तक रह गई। निर्यात नगण्य रह गया था और देश में पड़ने वाले अकालों से करोड़ों लोगों की मृत्यु होती थी। शस्यश्यामला धरती बाहर से खाद्यान्नों का आयात करती थी। पुराने उद्योग चौपट हो चुके थे और नवीन उद्योगों का कोई वातावरण नहीं था। देश भयंकर गरीबी से जूझ रहा था। दीनदयालजी का मानना था कि भारत अपनी परिस्थितियों,

आवश्यकताओं तथा अपने संसाधनों के अनुसार अपनी आर्थिक नीतियों का विकास करे। अमरीका, रूस या यूरोप की परिस्थितियाँ हमसे बहुत भिन्न हैं। हम उनका अनुसरण करके कहीं के भी नहीं रहेंगे।

दीनदयालजी कहते हैं—‘भारतीय जनसंघ इस तरह की नई तकनीकों का विकास चाहता है, जहाँ कि एक विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था में प्रत्येक परिवार एक उत्पादक इकाई बन सके।’ (पृ. 40) बड़े-बड़े उद्योगों में बहुत पूँजी लगती है और रोज़गार कम उपलब्ध होते हैं। इससे बेरोज़गारी बढ़ेगी। भारत जैसे देश के लिए रोज़गारोन्मुखी योजनाएँ लागू करनी होंगी।

“उत्पादन के कार्यक्रमों की योजना इस प्रकार बने कि आर्थिक शक्ति का केंद्रीकरण न हो तथा वर्तमान की आर्थिक असमानता को दूर किया जा सके। सामान्य व्यक्ति की क्रयशक्ति को तभी बढ़ाया जा सकेगा, जब सभी के हाथों में रोज़गार होगा।”

दीनदयालजी कहते हैं कि ‘उचित तथा तीव्र औद्योगीकरण करते हुए हमारी प्राथमिकता इस बात पर होनी चाहिए कि किस प्रकार हमारा देश खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो। दूसरी ओर हम लघु उद्योगों तथा सामान्य उपयोग में आनेवाले उत्पादों को बनानेवाले कारख़ानों को खड़ा करने में ध्यान दें।’ दीनदयालजी की दृष्टि स्पष्ट है कि बढ़ती आबादी के लिए खाद्यान्न का उत्पादन देश में ही होना चाहिए।

कृषि क्षेत्र को प्रमुखता मिले : जनसंघ के घोषणा-पत्र में वे कहते हैं—‘पहली प्राथमिकता कृषि क्षेत्र को मिलनी चाहिए, ताकि देश खाद्यान्न और खेती से जुड़े कच्चे माल के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो सके। दूसरे, बड़े पैमाने पर लघु उद्योगों व उपभोक्ता उद्योगों की स्थापना की जाए।’ (पृ. 41)

कृषक की क्रयशक्ति बढ़े : दीनदयालजी कहते हैं कि यदि देश के कृषक की क्रयशक्ति बढ़ गई तो यह अन्य उद्योगों के उत्पादों को भी ख़रीदेगा और उद्योग-धंधे भी अच्छे चलेंगे। “एक संपन्न कृषक वर्ग अकेले ही उद्योगों के लिए सबसे बड़ा बाज़ार उपलब्ध करा सकता है।” दूसरी पंचवर्षीय योजना इस संबंध में बुरी तरह विफल हो गई। इसका पूरा जोर औद्योगिक विकास और वह भी भारी उद्योगों पर रहा।” (पृ. 46)

दीनदयालजी कहते हैं कि “देश की 72 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है और इसकी सकल राष्ट्रीय आय में भागीदारी लगभग आधी है।” रूस को देखकर हमने भी कृषि में यंत्रीकरण प्रारंभ कर दिया। यंत्रीकरण ने बड़ी संख्या में लोगों को बेरोज़गार कर दिया। रूस को देखकर साठ के दशक में कांग्रेस कोऑपरेटिव फार्मिंग की योजना लेकर आई थी। भारतीय जनसंघ ने इसका तीव्र विरोध किया। कांग्रेस को

यह योजना वापस लेनी पड़ी। दीनदयालजी का मानना था कि कृषक के लिए भूमि माँ सदृश्य है। वह किसी भी क्रीमत पर अपनी भूमि को छोड़ना नहीं चाहेगा और इस योजना से कृषि का उत्पादन बढ़ेगा नहीं वरन् घटेगा।

कृषि का लाभकारी मूल्य दो : दीनदयालजी कहते थे कि कृषक को उसकी उपज का लाभकारी मूल्य मिलेगा, तभी कृषक की स्थिति सुधरेगी, देश का उत्पादन बढ़ेगा और देश स्वावलंबी बनेगा। “फसल के समय बाजार पर खरीदार का क्रब्जा रहता है और इसके बाद विक्रेता का।” (पृ. 55) कृषि करना लाभकारी होगा, तभी कृषक संपन्न होगा। “इस न्यूनतम मूल्य को निर्धारित करने के दौरान लागत के अतिरिक्त लाभ के रूप में कुछ और रकम भी जोड़ी जाएगी।” (पृ. 55)

भारतवर्ष में गाय, बैल कृषि का आधार : इसी कारण से गाय के प्रति बड़ी श्रद्धा है। दीनदयालजी कहते हैं—“यह एक राष्ट्रीय भावना है। स्वतंत्र भारत में सदैव ही गाय और इसकी संततियों का वध निषिद्ध रहा है। दुर्भाग्य से वर्तमान शासन इस नियम का अपवाद है।” भारतीय जनसंघ के अपवाद को छोड़ दें तो प्रायः सभी पार्टियाँ गो-वध को जारी रखने के पक्ष में हैं। तथापि जनसंघ का प्रण है कि वह गाय और इसकी संततियों के वध पर प्रतिबंध के लिए संविधान में संशोधन लाएगा।” (पृ. 56)

न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी हो : “यदि सभी के लिए काम के प्रावधान और सेवाओं या उत्पादित वस्तु पर पर्याप्त प्रतिफल के जरिए आम आदमी की क्रयशक्ति बढ़ती है तो सामाजिक और आर्थिक असंतुलन को परिशोधित किया जा सकता है। सबसे निचले स्तर पर उत्पादकता और मजदूरी में वृद्धि का स्वतः अर्थ होगा, दूसरों के लिए रोजगार।” इसलिए भारतीय जनसंघ ने न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी, न्यायोचित वितरण और पूर्ण रोजगार को किसी नियोजन के उद्देश्य के रूप में अपने सामने रखा है।” (पृ. 16)

कांग्रेस का विकल्प चाहिए

संयुक्त मोरचा नहीं, मजबूत दल ही चाहिए : स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस सत्ता में आ गई और यह स्वाभाविक भी था। जनता के मन में यही विश्वास बना रहा कि इसी कांग्रेस ने स्वतंत्रता दिलाई है। किंतु कांग्रेस का अहंकार सातवें आसमान पर था। नेहरूजी के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने तो पाश्चात्य देशों का अनुसरण करने का ही तय किया हुआ था। देश विकल्प चाहता था। कांग्रेस के विरोध में भिन्न-भिन्न दलों से आए असंतुष्ट व्यक्तियों को एकत्र करके कांग्रेस के विरुद्ध मोरचा बनाने का विचार लोगों के मन में चलता था। कांग्रेस को पराजित करना ही एकमात्र उद्देश्य नहीं हो

सकता। दीनदयालजी सावधान करते हैं कि 'कुछ ऐसे राजनीतिक दल भी हैं, जो पुराने कांग्रेसियों द्वारा बनाए गए हैं और जो कांग्रेस से निकलकर आनेवाले व्यक्तियों की भरती करते रहते हैं। अतः उनको तो निराश और असंतुष्ट व्यक्तियों का आश्रय-स्थल कहना ही उपयुक्त होगा।' (पृ. 67)

दीनदयालजी का मानना है कि कांग्रेस से निराश होकर आए दुःखी लोग देश को सकारात्मक विकल्प नहीं दे सकते। "कांग्रेस इतर दलों के आदर्श और कार्यक्रमों में परस्पर इतनी भिन्नता है कि केवल 'विरोध पक्ष संगठित हो' के नाम पर उनका संयुक्त मोरचा बनाना संभव नहीं है।" (पृ. 68) दीनदयालजी कहते हैं—“आज हमें कांग्रेस को अपदस्थ करने के लिए संयुक्त मोरचे की नहीं अपितु अकेले एक ऐसे दल की आवश्यकता है, जिसका कार्य ठोस हो।” (पृ. 69) सभी लोग इस बात को समझें और धीरे-धीरे जनसंघ के चारों ओर एकत्र होने का प्रयास करें। समान विचारधारा वाले दलों को एक साथ आने को बाध्य करें।

अनुशासित और सिद्धांतवादी दल चाहिए : यह बात ठीक है कि कांग्रेस का विकल्प होना चाहिए किंतु विकल्प किस प्रकार खड़ा होगा और किस प्रकार के लोग उसमें जुड़ेंगे, यह भी महत्वपूर्ण है। एक राष्ट्रीय विकल्प के लिए बहुत गंभीर प्रयास करने होंगे। अवसरवादी, स्वार्थी लोगों के जमावड़े से कोई दल अनुशासित और सिद्धांतवादी नहीं बन सकता। उसको तो धैर्य के साथ लंबी साधना करनी पड़ती है। दीनदयालजी सावधान करते हैं—“हमारा निश्चित मत है कि सब प्रकार के अवसरवादी तत्त्वों को किसी भी प्रकार बाँध रखने के स्थान पर कठोरता और अनुशासन का पालन करते हुए संस्था की पवित्रता को बनाए रखना अधिक आवश्यक है और उससे लाभ भी अधिक होता है।” (पृ. 67)

अच्छा राजनीतिक दल कौन? अच्छा दल वह तो नहीं होगा, जो केवल सत्ता प्राप्ति के उद्देश्य से लोगों के झुंड के रूप में खड़ा है। राजनीतिक दल का आदर्श क्या है? “ऐसे दल की दृष्टि में सत्ता पर अधिकार करना उसका उद्दिष्ट न होकर अपने सिद्धांतों और कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का एक साधन होगा और इसलिए उस दल के सर्वोच्च पदाधिकारियों से लेकर साधारण से साधारण सदस्य तक में अपने उस आदर्शवाद के प्रति एक निष्ठा होगी। हमें स्मरण रखना चाहिए कि यह निष्ठा ही अनुशासन और आत्मसमर्पण की भावना उत्पन्न करती है।” (पृ. 64-65) दीनदयालजी कहते हैं कि ‘उच्चादर्शों से प्रभावित, अनुशासित और निःस्वार्थी कार्यकर्ताओं के समुच्चय से गठित राजनीतिक दल आपके मनोभिलषित कार्यस्म की कमी को उस सीमा तक पूरा कर सकता है।’ (पृ. 66)

विदेश नीति के संबंध में

भारत स्वतंत्र हुआ तब विश्व में भारत का कोई भी शत्रु नहीं था। किंतु 1948 में जब कश्मीर पर पाकिस्तान ने आक्रमण किया, तब भारत के पक्ष में कोई भी महत्वपूर्ण राष्ट्र खड़ा नहीं हुआ। ऐसा क्यों हुआ? किसी सशक्त और स्वाभिमानी राष्ट्र की विदेशनीति कैसी हो, इस पर भी दीनदयालजी ने अपने विचार रखे हैं। भारत किसी गुट में शामिल न हो यह तो ठीक है किंतु इसके लिए भारत को पर्याप्त शक्ति संपन्न होना होगा। प्रस्तुत ग्रंथ में अनेक स्थानों पर हम अंतरराष्ट्रीय विषयों पर दीनदयालजी को लिखते-बोलते पाते हैं।

पाकिस्तान तथा चीन की सीमा पर सुरक्षा के लिए खतरा बढ़ता जा रहा था। दीनदयालजी ने भारत सरकार को सावधान किया कि “वह संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्देश पर कांगो में गई अपनी सेना को तुरंत वापस बुला ले और अपनी सीमाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित करे।”

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत के ऊपर दबाव डाला जा रहा था कि भारत कश्मीर के अंदर युद्ध विराम की सीमा को ही स्थायी सीमा मान ले। दीनदयालजी ने कहा कि भारत को किसी भी प्रकार के दबाव में आने की आवश्यकता नहीं और युद्ध विराम की सीमा को वास्तविक सीमा नहीं माना जा सकता।

दीनदयालजी ने भारत सरकार से माँग की कि भारत सरकार चीन के साथ अपने सभी राजनीतिक संबंधों को समाप्त करे और तिब्बत पर चीन के आधिपत्य को अस्वीकार कर दे।

सुरक्षा परिषद् में पाकिस्तान के मोहम्मद जफरुल्ला ने भाषण में कहा, “कश्मीर में अधिसंख्य जनता के मुसलमान होने के कारण यह प्रदेश पाकिस्तान में होना चाहिए।” दीनदयालजी ने कहा, “यदि ऐसा होता तो भारत में एक भी मुसलमान और पाकिस्तान में एक भी हिंदू नहीं रहा होता।” (पृ. 95) दीनदयालजी सावधान करते हैं कि कश्मीर के मामले में चीन और पाकिस्तान भारत के विरुद्ध एकजुट हो सकते हैं।

दीनदयालजी ने सुरक्षा परिषद् द्वारा भारत को न्याय मिलने की संभावना से मना कर दिया। हमको तो अपनी ही शक्ति से इस समस्या का समाधान खोजना है। कश्मीर विषय पर वे कहते हैं, “अमरीका, ब्रिटेन तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्रों ने इस विषय पर जो रुख अपनाया है, वह संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांतों एवं उद्देश्यों, समस्या के तथ्यों, विश्व शांति और सद्भावना की आवश्यकताओं तथा संबंधित जन समुदाय की भावनाओं, इच्छाओं और हितों के विपरीत है।” (पृ. 192) भारत ने गुटनिरपेक्ष नीति अपनाई थी किंतु क्या भारत अमरीका, फ्रांस आदि के दबाव में नहीं आएगा? दीनदयालजी ने कहा

है कि “गुटनिरपेक्षता तो ठीक है किंतु अमरीकी दबाव का उत्तर रूस की छत्रच्छाया नहीं, स्वाभिमान और दृढता है।” (पृ. 194)

दीनदयालजी ने तिब्बत की स्वतंत्रता नष्ट होने के विषय पर चिंता व्यक्त की थी। तिब्बत के ऊपर चीन ने क़ब्ज़ा कर लिया, भारत शांत रहा और कुछ भी नहीं बोला। इतना ही नहीं, भारत ने तिब्बत की रक्षा हेतु विश्व के अन्य किसी देश को आने भी नहीं दिया। चीन की सीमाएँ भारत से मिल गईं। ख़तरा भारत की सीमाओं पर आ गया। भारत की यह एक बड़ी कूटनीतिक पराजय थी।

चीन के आक्रमण के समय

इस दसवें खंड में चीन के आक्रमण से पूर्व का वातावरण और भारत पर चीन के आक्रमण का कालखंड हमको दिखाई देता है। चीन का आक्रमण एक अपमानजनक घटना थी, यह एक विश्वासघात था। स्वप्न-लोक में विचरने वाले हमारे प्रधानमंत्री श्री जवाहरलालजी उस सदमे से कभी उबर न सके। भारतीय जनसंघ उन दिनों बहुत छोटा और अनुभव से नवीन ही था। किंतु इस कठिन प्रसंग पर दीनदयालजी का विस्तृत, गहन और दूरगामी चिंतन हमें देखने को मिलता है। राष्ट्रहित सर्वोपरि की भूमिका से दीनदयालजी ने अपने कार्यकर्ताओं, देश के नागरिकों तथा सभी राजनीतिक दलों सहित भारत सरकार को योग्यतम सलाह दी। दीनदयालजी ने जो मार्गदर्शन इस कठिन घड़ी में किया, वह युगों तक लोगों का दिग्दर्शन करेगा और वही एक राष्ट्रीय विकल्प हो सकेगा। प्रस्तुत ग्रंथ में हम चीन से संबंधित मुद्दों को कई स्थानों पर देखते हैं। चीन के आक्रमण से पूर्व ही दीनदयालजी चीन से सावधान रहने की चेतावनी देते हैं। वे कहते हैं, “विगत 8 वर्षों से चीन ने (1953 से) हमारी अक्साई चिन की भूमि पर क़ब्ज़ा किया हुआ है। चीन ने लद्दाख क्षेत्र में अपनी सड़क बना ली है। तिब्बत पर चीन ने क़ब्ज़ा कर लिया, हमने विरोध क्यों नहीं किया? भारत को सुरक्षा परिषद् में स्थान मिल रहा था, हमने वह स्थान क्यों छोड़ दिया और वहाँ चीन की पैरवी क्यों कर रहे हैं? पंचशील का समझौता एक धोखा है, भारत इस बात को समझे। राष्ट्रीय सुरक्षा महत्वपूर्ण है, अतः राष्ट्र को मानसिक व सैन्य दृष्टि से सन्नद्ध रहना चाहिए। कांग्रेस के घोषणा-पत्र (1957) में यह कहा गया है कि चीन भारत का एक महान् पड़ोसी मित्र राष्ट्र है और चीन को राष्ट्रसंघ में स्थान मिलना चाहिए। यह तो देशद्रोह है।”

चीन के ख़तरे के बारे में चेताया था : दीनदयालजी कहते हैं कि “जनसंघ ने तो 1951 के अपने चुनाव घोषणा-पत्र में लिखा था कि भारत का उत्तरी सीमांत भी सुरक्षित नहीं है।” सन् 1957 में जनसंघ ने उस समय सुरक्षा के प्रश्न को सर्वोपरि

महत्त्व का प्रश्न बताया था। "युवकों के लिए अनिवार्य सैनिक शिक्षा दिए जाने का भी हमने सुझाव दिया था।" (पृ. 20)

राष्ट्रीय सुरक्षा सुदृढ़ चाहिए : आश्चर्य की बात यह भी थी कि केवल जनसंघ ही चीन का लगातार विरोध कर रहा था। कोई भी अन्य दल मुखरता के साथ सामने नहीं आया। दीनदयालजी ने राष्ट्रीय सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए 'सीमांत पुलिस एस्टेब्लिशमेंट बल' बनाने की बात कही थी। जब दीनदयालजी ने कहा कि 'सेना अत्याधुनिक हथियारों से लैस होनी चाहिए, प्रक्षेपास्त्र, पनडुब्बी, युद्धक विमान आदि सभी कुछ सेना को चाहिए तथा राष्ट्र का सैनिकीकरण तथा सेना का आधुनिकीकरण होना चाहिए।' क्या दीनदयालजी का यह सुझाव अनुचित था? कुछ बड़े कांग्रेसी नेता कहने लगे कि जनसंघ तो War Monger (युद्ध पिपासु) है।

चीन के साथ युद्ध के समय दीनदयालजी ने सुझाव दिया कि देश में एक राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् का गठन किया जाए। सभी देशवासी देश की सुरक्षा के बारे में मिलकर विचार करें, यह आवश्यक है। चीन के आक्रमण के बाद दीनदयालजी ने कहा कि 'हम तुरंत 10 लाख युवकों की प्रशिक्षित सेना तैयार करें और युद्ध की सामग्री जहाँ से भी संभव हो मँगा ली जाए।'

दीनदयालजी कहते हैं कि 'इस कठिन समय में जो चीन की सेना का स्वागत करने के नारे लगाते हैं, ऐसे कम्युनिस्टों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। सी.पी.आई. को बैन कर दिया जाना चाहिए।' भारत के रक्षा मंत्री मेनन स्वयं कम्युनिस्ट विचारधारा के होने के कारण चीन के साथ उनके संबंध अच्छे बने रहे। कृष्ण मेनन ने भारत के प्रधानमंत्री को लगातार धोखे में रखा। श्री जवाहरलालजी को अपनी भूल का अहसास हुआ और युद्ध के बीच में ही श्री मेनन को हटाया गया। श्री यशवंत राव चव्हाण को भारत का रक्षा मंत्री बनाना पड़ा। दीनदयालजी ने श्री चव्हाण को रक्षा मंत्री बनाने का स्वागत किया।

युद्ध की परिस्थितियों में भी कांग्रेस की कार्यकारिणी में घुस बैठे कम्युनिस्ट यह घोषित कर रहे थे कि भारतीय जनसंघ तथा स्वतंत्र पार्टी के लोग देशद्रोही हैं और कम्युनिस्ट पार्टी के लोगों को वे शत-प्रतिशत देशभक्त कहकर सम्मानित कर रहे थे। इस अशोभनीय प्रसंग पर दीनदयालजी ने कहा, "हमारा अपराध केवल इतना ही है कि हमारी भक्ति केवल मातृभूमि के प्रति है। जो हम विगत वर्षों से कह रहे थे, वह कांग्रेसी नेता आज कह रहे हैं।"

चीन के आक्रमण से भारतीय सेना छिन्न-भिन्न हो गई थी। चीन भारत की सीमा में अंदर तक प्रवेश कर गया था। देश भर में अवसाद का वातावरण था। इस प्रसंग पर

प्रस्तुत ग्रंथ में दीनदयालजी कहते हैं, “हमारा देश बार-बार उठकर खड़ा होता है, यह इसकी विशेषता है। विश्व में कोई भी देश ऐसा नहीं है, जो हारा न हो, किंतु किसी भी देश की क्षमता उसके पुनः खड़ा हो जाने में होती है। विश्व में कोई भी अन्य देश ऐसा नहीं है, जो इतने आक्रमणों के बाद भी खड़ा हो सका हो, जब तक देश में मदनलाल धींगरा रहेगा, तब तक ‘जलियाँ वाला बाग’ को कोई कमजोरी नहीं कहेगा।”

सभी मतभेदों को भुलाकर हम एकजुट हों : युद्ध के समय दीनदयालजी ने कहा कि ‘सभी दलों को, सभी प्रकार के मतभेदों को भुलाकर प्रधानमंत्रीजी के साथ एकजुट हो जाना चाहिए। अब इस सरकार को कांग्रेस की सरकार नहीं मानना, वरन् यह एक राष्ट्रीय सरकार है, जो युद्ध लड़ रही है।’

राष्ट्रीय आह्वान : दीनदयालजी ने समस्त देशवासियों और विशेषकर जनसंघ के कार्यकर्ताओं को आह्वान किया कि ‘इस अवसर पर एकजुट होकर खड़े हो जाओ। आज हमारी लड़ाई कांग्रेस से नहीं वरन् चीन से है। कांग्रेस असफल हो सकती है, किंतु हमको असफल नहीं होना है। हमको किसी प्रमाणपत्र की भी चिंता नहीं करनी है। सेवा अपने आप में एक पुरस्कार है। देशभक्ति को किसी की मान्यता की आवश्यकता नहीं है और किसी के विरोध करने से वह नष्ट भी नहीं होने वाली। हमको अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षा हेतु अपने आपको निस्स्वार्थ भाव से समर्पित कर देना चाहिए।”

युद्ध प्रारंभ होते ही देशभर में नवीन सैनिकों की भरती हो रही थी। ग्राम-ग्राम से युवक सेना में भरती होकर युद्ध के मोरचे पर जा रहे थे। ऐसे प्रसंग पर इन सैनिकों के उत्साहवर्धन के लिए दीनदयालजी जनसंघ के कार्यकर्ता को आग्रह करते हैं। “जनसंघ के हर कार्यकर्ता को संकल्प लेना चाहिए कि चाहे कितनी भी नकारात्मक परिस्थिति क्यों न आए, वो अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटेगा।” सेना में भरती होने वाले हर जवान को उसके परिवार और गाँव की ओर से भावभीनी विदाई दी जानी चाहिए। “कार्यकर्ताओं को जवानों के परिवारों से संपर्क बनाए रखना चाहिए।” (पृ. 330)

“मेरी आप सब से अपील है : राजनीतिक हितों की चिंता न करें। अभी केवल राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य के विषय में सोचें और युद्ध में सफलता के लिए इससे संबंधित प्रयासों में अपनी संपूर्ण सामर्थ्य के साथ जुट जाएँ।” (पृ. 329)

यह ईश्वर प्रदत्त अवसर है : दीनदयालजी कहते हैं—“हमारे जवान सीमा पर अत्यंत बहादुरी से संघर्ष करते हुए अपने प्राण न्योछावर कर रहे हैं, हमें अपनी प्रसिद्धि और मान्यता के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। आज की राजनीति का अर्थ है सेवा, राष्ट्र के लिए अनुपम सेवा, यह ईश्वर प्रदत्त अवसर है, जो हमको प्राप्त हुआ है। विगत 15 वर्षों में जो भी राजनीतिक दरारें हमारे राष्ट्र जीवन में आ गई हैं, हम उन सबको

तुरंत मिटा दें। राष्ट्रीय गंगा का प्रवाह हमारे द्वार पर आ पहुँचा है। वह जो इसमें स्नान नहीं करेगा, दुर्भाग्यशाली ही कहलाएगा। आज देश में जाति, धर्म आदि सभी की दीवारें ध्वस्त हो गई हैं। क्या राजनीतिक दलों को भी इस सुंदर उदाहरण का अनुसरण नहीं करना चाहिए? मुझे विश्वास है कि भारतीय जनसंघ के कार्यकर्ता देश भर में समस्त विभेदकारी बातों को छोड़कर निस्स्वार्थ भाव से भारत माता की सेवा करने का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।” दीनदयालजी ने एक सुभाषित भी प्रस्तुत किया—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीःसमाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैवा मरणमस्तु युगान्तरेवा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

(अर्थात् हमारी कोई निंदा करेगा या स्तुति करेगा, धन-संपदा रहेगी या न रहेगी, मृत्यु आज ही मिलेगी अथवा युगों तक जीवन रहेगा; न्याय के मार्ग पर चलने वाले धीर लोग कभी भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होते हैं।) दीनदयालजी कहते हैं, “हमारी मातृभूमि में एक भी चीनी सैनिक के नहीं रहने देने तक हमारा संघर्ष जारी रहेगा, अन्यथा हमारा जीवन व्यर्थ है और इस कार्य में मरना भी श्रेयष्कर है।”

यह था दीनदयालजी का अपने कार्यकर्ताओं के लिए एक राष्ट्रीय आह्वान, जो उन्होंने चीन के आक्रमण के समय समस्त देश के सामने रखा। देखते ही देखते जनसंघ के हजारों कार्यकर्ता राजनीतिक भेदभाव भुलाकर देश भर में एकजुट होकर खड़े हो गए। पूरा देश देशभक्ति के इस ज्वार के साथ सारे मतभेदों के बावजूद संघर्ष के लिए सन्नद्ध हो गया। दीनदयालजी का देशभक्ति से परिपूर्ण यह करिश्माई और दिव्य नेतृत्व युगों तक स्मरण में रहेगा। इस सुंदर राष्ट्रीय आह्वान को विस्तृत रूप में हम इस ग्रंथ में पाएँगे।

जनसंघ के कार्यकर्ताओं का प्रबोधन

प्रस्तुत खंड में दीनदयालजी ने कई अध्यायों में जनसंघ के कार्यकर्ताओं का सुंदर और सिद्धांतसम्मत प्रबोधन किया है। देश में एक ओर जड़ जमा कर बैठी सत्ता के नशे में चूर कांग्रेस थी, वहीं दूसरी ओर पूरी तरह अराष्ट्रीय भूमिका लेकर कार्य कर रहे कम्युनिस्ट थे। जनसंघ तो अभी धीरे-धीरे अपना स्थान बना रहा था और एक नवीन राजनीतिक दल का प्रादुर्भाव हो रहा था। दीनदयालजी ने बड़ी कुशलता और परिश्रमपूर्वक जनसंघ की प्रथम पीढ़ी के कार्यकर्ताओं को गढ़ा और दीर्घयात्रा के लिए तैयार किया।

राजनीतिक महत्वाकांक्षा, पद-प्रतिष्ठा आदि की चाह से प्रेरित होकर कार्य करनेवाले

लोगों को एकत्र कर सफलता पाना राजनीति में स्वाभाविक और सरल था, किंतु दीनदयालजी को यह मार्ग कभी अभीष्ट नहीं रहा। उन्होंने तो अपनी महान् और पवित्र मातृभूमि का उत्कर्ष तथा अपने देशवासियों की वर्तमान दुरावस्था को दूर करने के प्रति कर्तव्यानुभूति को जगाकर, अनुशासित भाव से कार्य करनेवालों का विराट् समूह खड़ा करने का उद्देश्य सामने रखा। यह धारा के विपरीत चलना था। अपने दुर्दम्य विश्वास के साथ वे चल पड़े। देखते ही देखते हजारों कार्यकर्ता दीनदयालजी की मनोकांक्षा के अनुसार मातृभूमि के प्रति अपने दायित्व बोध के साथ अग्रसर होते चले गए। 1952 में दिखने वाली जनसंघ की क्षीण सी धारा एक विशाल प्रवाह में बदलने लगी। दीनदयालजी का वह देशभक्ति से परिपूर्ण, सात्त्विक भावों को कार्यकर्ताओं के हृदय में स्थापित करनेवाला आह्वान बड़ा ही अद्भुत, अभूतपूर्व, रोमांचकारी और शाश्वत दिखता है। इस आह्वान को हम स्थान-स्थान पर इस ग्रंथ में पाते हैं।

संसाधनों की कमी परिश्रम से पूरी करें : जनसंघ के पास साधनों का भारी अभाव था। कार्यकर्ताओं का उत्साह, उनका आत्मविश्वास और उनकी निस्स्वार्थ परिश्रमशीलता ही उनकी कुल पूँजी होती थी। ऐसे अभाव की स्थिति में कार्यकर्ताओं को उत्साह और आनंद के साथ कार्य में लगा लेने की विलक्षण क्षमता दीनदयालजी के पास थी। दीनदयालजी कहते हैं कि 'हमारे साधन सीमित हैं। किंतु संकल्प की शक्ति बड़ी है। साधनों की कमी परिश्रम से पूरी करें। मन में विवशता और दुर्बलता का भाव न आने दें। भारत की यह परंपरा नहीं। जनसंघ के कार्यकर्ता की यह ख्याति नहीं। जनसंघ अपने कार्यकर्ताओं की लगन, त्याग, भावना, अध्यवसाय और सूझ-बूझ के लिए प्रसिद्ध है। आज हमें अपने गुणों को साकार करने का अवसर मिला है।'

झूठे प्रचार का कोई असर नहीं : दीनदयालजी कहते हैं "केवल चुनावों में विजय प्राप्त करने की नीयत से अन्य राजनीतिक दल झूठा अपप्रचार करते हैं और जनसंघ को ब्राह्मणों का, हरिजन विरोधी, मराठों का, गांधीजी की हत्या करनेवाला, पूँजीपतियों का दल बताते हैं, किंतु हमारे कार्यकर्ताओं की समझदारी के कारण इस प्रकार के झूठे अपप्रचार का कोई भी असर कार्यकर्ताओं पर नहीं पड़ता।"

हमारा कुछ मौलिक मतभेद है : दीनदयालजी ने अपने कार्यकर्ताओं के सामने रखा—“हमारा कांग्रेस तथा उसमें से निकले हुए अन्य दलों के साथ मौलिक और सैद्धांतिक मतभेद होने के कारण तथा हमारे पास एक पर्याय नीति और कार्यक्रम, जिसकी जड़ें देश की भूमि और संस्कृति में हैं, होने के कारण, हमारी आलोचनाएँ आधारभूत तथा अन्य दलों का मूलोच्छेदन करनेवाली होती थीं।” (पृ. 112)

सार्वजनिक जीवन में प्रामाणिकता : दीनदयालजी ने प्रारंभ से ही कार्यकर्ताओं

के मन में प्रामाणिकता और सत्यनिष्ठा के आग्रह को लगातार बनाए रखा। साधनों की शुचिता पर उनका विश्वास अटूट था। समाचार सुनने के लिए वे स्वयं एक ट्रांजिस्टर अपने पास रखते थे, किंतु उनका कर भरने की तिथि निकट जाने के बाद यदि कर नहीं भरा तो उसको सुनना बंद कर देते थे। जनसंघ के कार्यकर्ता रेलवे स्टेशन पर प्रदर्शन करने जाते थे, तब वे सभी प्लेटफॉर्म टिकट लेकर ही जाते थे। बिना टिकट लिये प्लेटफॉर्म पर जाने की अनुमति दीनदयालजी ने कभी नहीं दी।

एक दिन हम विकल्प अवश्य देंगे : 1962 में जनसंघ बहुत ही छोटा राजनीतिक दल था। यह विश्वास करना कठिन था कि जनसंघ कभी इस देश में राजनीतिक विकल्प दे सकेगा, किंतु दीनदयालजी ने यह विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि एक दिन हम विकल्प देंगे। वे स्पष्ट कहते हैं—“भारतीय जनसंघ विरोध की अवधारणा में विश्वास नहीं करता। यह स्वयं एक विकल्प के रूप में उभरने के लिए प्रयत्नशील है।” एक-एक वोट और एक-एक सीट से इसका निर्माण होगा। आपके वोट का रचनात्मक उपयोग हो।” (पृ. 77-78)

“हमारे संगठन का आधार स्वार्थ नहीं। हमने जिस आधार पर अपना संगठन खड़ा किया है, उसमें अपने राष्ट्र जीवन की एकात्मता का दर्शन होता है। यही भाव हम विश्व के संबंध में भी रखते हैं। संपूर्ण विश्व योग्य दृष्टि देने का हिंदू राष्ट्र का यह अवतार कार्य है। इस अवतार कार्य को पूरा करना यही परम वैभव है।” (पृ. 159)

हमारी कार्य की प्रेरणा हमारी मातृभूमि : दीनदयालजी ने कार्यकर्ताओं के हृदय में क्षुद्र स्वार्थों के स्थान पर मातृभूमि के प्रति भक्ति का भाव जाग्रत् किया। व्यक्तिगत स्वार्थों से दूर कार्यकर्ताओं के सात्त्विक एवं दैवीय गुणों को झंकृत कर देने वाला दीनदयालजी का आह्वान ऐसा होता था कि जिसको पाकर कार्यकर्ता अपना सबकुछ बलिदान करने के लिए दौड़ पड़ते थे। दीनदयालजी कहते हैं, “जनता को संगठित करने का स्वर्ण अवसर है। गाँवों और वनों में दूर-दूर रहने वाले भारत माता के लाड़ले हमारी बाट जोह रहे हैं। ऐसा कौन सा दल है, जिसके कार्यकर्ता उनके पास जाकर उन्हें भारत माता का साक्षात्कार करा सकेंगे? उनमें सुप्त भारतीयता और पौरुष को जगा सकेंगे तथा अपनी राष्ट्रीय एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सर्वस्व की बाज़ी लगाने का संकल्प पैदा कर सकेंगे। आपके ऊपर ही यह भार आ पड़ा है। उसे निबाहना ही होगा।” (पृ. 81-82)

भारत माता के सत्य स्वरूप का स्मरण करें : दीनदयालजी अपने कार्यकर्ताओं को अपने महान् ध्येय का स्मरण कराते हैं। लालच, महत्वाकांक्षा या क्षुद्र स्वार्थों को जगाकर राजनीति में लगाना स्वाभाविक कार्य है। अन्य राजनीतिक दल ऐसा ही करते

हैं। किंतु ध्येय का साक्षात्कार और भारत माता के सत्य-स्वरूप का स्मरण कर कार्य करनेवालों के अंदर एक दैवीय शक्ति अवतरित होती है। दीनदयालजी कहते हैं—
 “मंत्र (जनसंघ का सिद्धांत) अपने पास, तंत्र की व्यवस्था करें। रात और दिन अक्षरशः एक करने की आवश्यकता है। एक बार देश को फिर से पता लग जाने दीजिए कि चने चबाकर लड़ने वालों का मुकाबला करना लोहे के चने चबाना है। अपने ध्येय का साक्षात्कार कर भारत माता के सत्य स्वरूप का ध्यान रखकर, अपने कार्य में जुट जाएँ। भगवान् ने हमें अमिट सामर्थ्य दिया है, उसका आविष्कार करें और उसकी योजना को पूरा करने के लिए आगे बढ़ें।” (पृ. 82)

महान् गरिमामयी भारत से भी अधिक गौरवयुक्त भारत : दीनदयालजी ने छोटे-मोटे स्वार्थों को जगाकर कार्यकर्ताओं को उत्साह नहीं दिलाया था। उन्होंने कार्यकर्ताओं के सम्मुख सदैव एक श्रेष्ठ और महान् भारत का लक्ष्य ही रखा। वे कहते हैं, “प्रत्येक मतदाता को अपनी भूमिका निभानी है। संभव है कि आप सुयोग्य रीति से यह भूमिका निभाएँ, जो एक ऐसे लोकतांत्रिक देश के अनुरूप हो, जो अपनी राष्ट्रीय एवं जनता के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा के लिए दृढप्रतिज्ञ है और जो एक ऐसे गौरवशाली भविष्य का निर्माण करे, जो हमारे सबसे यशस्वी अतीत से भी अधिक यशस्वी हो।” (पृ. 78)

उन दिनों विविध राजनीतिक दलों में कार्य करनेवाले अपने कार्यकर्ताओं को ऐसे आह्लादकारी और प्रेरक शब्दों में आह्वान करने का सामर्थ्य किस में था? ऐसा आह्वान स्वतंत्रता के पूर्व क्रांतिकारी ही किया करते थे। ऐसा लगता है कि दीनदयालजी साक्षात् विवेकानंद की तरह युवाओं को प्रेरित करते हैं, पुकारते हैं और मातृभूमि एवं अपने पवित्र समाज के प्रति भक्ति-भाव को जाग्रत् करते हैं। क्या इस देश के राजनीतिक परिदृश्य में किसी भी राजनीतिक दल के नेता ने अपने दल के कार्यकर्ताओं तथा मतदाताओं के सम्मुख इस प्रकार से अपनी मातृभूमि के सुंदरतम भविष्य के निर्माण में उसकी पवित्र भूमिका हेतु आह्वान किया है?

धर्म के मर्म को समझें

दीनदयालजी ने चिंता व्यक्त की है कि पाश्चात्य जगत् भारत की धर्म शब्द की गंभीरता और गहराई को समझ नहीं सका और पश्चिमी जगत् का रिलिजन (Religion) शब्द धर्म का पर्यायवाची या समानार्थी के रूप में यहाँ उपयोग में आने लगा। इसके कारण अपने देश में बड़ा संभ्रम उत्पन्न हुआ है। दीनदयालजी कहते हैं कि ‘हम जब हिंदू धर्म की रक्षा की बात करते हैं, तब वह कोई (Religion) नहीं है। धर्म वही

है, जो सबको लाभकर हो। धर्म सामंजस्य बैठाता है। जिस बात से सभी के मध्य संघर्ष मिटता है, सामंजस्य व सहयोग बढ़ता है, वह धर्म है।'

धर्म के व्यापक स्वरूप को समझें : दीनदयालजी ने धर्म की व्यापकता को समझाने का प्रयत्न किया है—धर्म बहुत व्यापक है, “मत अलग हैं, पंथ अलग हैं। धर्म एक ही है। वह धर्म सबके लिए लाभकर हो।” (पृ. 138) “सामंजस्य बिठाने का, संबंध बनाने का काम धर्म करता है।” (पृ. 143) “हमारे धर्म का दृष्टिकोण ताल-मेल बैठाने वाला है।” (पृ. 145) “व्यक्तियों के समूह बनते हैं, उनके बीच में कोई संघर्ष न आए।...संपूर्ण प्राणिमात्र और मानव उनके बीच किसी प्रकार का संघर्ष उपस्थित न हो। संपूर्ण प्राणी जगत् और प्रगति के बीच में किसी प्रकार का संघर्ष उपस्थित न हो, बल्कि सब एक-दूसरे के लिए पूरकता का भाव लेकर विकास के लिए विचार करते हुए आगे बढ़ें—यह धर्म है।” (पृ. 149) अतः “धर्म एकांगी नहीं, वह तो सर्वांगीण है, व्यापक है, सबका विचार करके चलने वाला है।” (पृ. 149)

हिंदुत्व कोई रिलीजन Religion नहीं है : दीनदयालजी कहते हैं कि पश्चिमी जगत् से आए रिलीजन (Religion) की तरह “हिंदुत्व कोई संप्रदाय नहीं है।” वरन् यह तो अनेक संप्रदायों के संघ की तरह है। हिंदुत्व से डरने की नहीं वरन् हिंदुत्व को समझने की आवश्यकता है। दीनदयालजी कहते हैं—“यह सभी संप्रदायों का राष्ट्रमंडल है।” (पृ. 28)

दीनदयालजी स्पष्ट करते हैं कि ‘वस्तुतः वे (ईसाइयत और इसलाम) उसी स्थित में अपना अस्तित्व बचा सकते हैं, जब इस देश में हिंदू धर्म का प्राधान्य हो, अन्यथा इस देश में क्रूसेड्स और स्पेन, दोनों का ही इतिहास दोहराया जा सकता है।’ (पृ. 28)

हिंदू सभी को साथ लेकर चल सकता है : दीनदयालजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शिक्षा वर्गों में जाने के लिए प्रतिवर्ष समय निकालते थे। संघ शिक्षा वर्गों में दिए गए 8 भाषण इस ग्रंथ में हम को प्राप्त होते हैं। इनमें वे मौलिक सिद्धांत की बात समझाते हैं, “विश्व भर में हम हजारों प्रकार के संगठन देखते हैं। उन सभी के सीमित उद्देश्य हैं। हिंदू संगठन का आधार क्या हो? राष्ट्र ही एक ऐसा आधार है, जो हम सभी को जोड़ सकता है। शेष सभी आधार छोटे होंगे। हिंदू एक ऐसा भाव है, जो सभी को सरलता से जोड़कर रखने में सामर्थ्यवान है। हिंदू कहते ही उत्तर-दक्षिण का भेद, जाति-वर्ग का भेद, भाषा-प्रांत का भेद समाप्त हो जाता है। हिंदू कहते ही कन्याकुमारी से लेकर कैलाश पर्वत तक का भू-भाग पवित्र लगने लगता है। हिंदू में इतना सामर्थ्य है कि वह सभी को साथ लेकर चल सकता है। ‘धर्म, संस्कृति और समाज का संरक्षण करते हुए राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति करने का हमारा संकल्प है। यह धर्म Religion नहीं है।’ धर्म

का संरक्षण करते ही सभी व्यवस्थाएँ ठीक हो जाएँगी, ऐसा हमारा मानना है।”

राष्ट्र की उत्पत्ति : दीनदयालजी ने राष्ट्र को स्पष्ट करते हुए कहा कि ‘भूमि, जन, और संस्कृति से राष्ट्र उत्पन्न होता है। जिससे इन तीनों की अभिवृद्धि, समृद्धि होती है, वह धर्म है। धर्म राज्य में भूमि की एकता, अखंडता और उसके प्रति श्रद्धा रहेगी। सांस्कृतिक दृष्टि से धर्म एकात्मवादी है।’ धर्म-राज्य सभी में सामंजस्य बैठकर चलता है। धर्म व्यापक है। धर्म-राज्य का अर्थ Theocratic State नहीं है। धर्म-राज्य Theocratic State की तरह किसी पुस्तक पर आधारित नहीं है।’

दीनदयालजी राष्ट्र के सर्व समावेशी स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—“राष्ट्र जीवन के इस प्रवाह में शक, हूण आदि अनेक जातियाँ आकर मिली हैं और एकरस हो चुकी हैं। यदि कोई जाति इस मूल जीवन से पृथक् रहने की चेष्टा करती है तो उससे विकृति का जन्म होता है। हमारी आध्यत्मिक शक्ति हमारे समन्वय और सामंजस्य का आधार है। मातृभूमि के प्रति श्रद्धा का भाव सभी प्रकार की विविधताओं में समन्वय स्थापित कर देता है। मातृभूमि के प्रति श्रद्धा के अभाव में विघटन पैदा होगा।” जवाहरलालजी का अपनी मातृभूमि के बारे में यह कथन—“वहाँ घास भी नहीं उगती, अतः उसके लिए संघर्ष नहीं किया जा सकता, मातृभक्ति की भावना के प्रतिकूल है।” (पृ. 245)

संस्कृति और विकृति को समझना होगा : प्रत्येक देश का अपना एक विशिष्ट स्वभाव होता है। हमारे देश में भी हमारी संस्कृति और हमारे जीवन का एक विशिष्ट स्वभाव है। जीवन के प्रति हमारा जो विशिष्ट दृष्टिकोण है, उससे हमारे समाज की एक प्रकृति बनी। इस प्रकृति के कारण एक विशिष्ट स्वभाव बना, इस विशिष्ट स्वभाव को दीनदयालजी ‘चिति’ कहते हैं। यह ‘चिति’ जब विशिष्ट संस्कारों से युक्त हो जाती है; तब वह संस्कृति कहलाती है। हमारा ‘एकात्मता’ का स्वभाव ही हमारी चिति का आधार है। कितनी भी विविधताओं और विरोधाभासों के बावजूद भी हम अपनत्व के भाव को नहीं छोड़ते।

भारतीय संस्कृति : भारतीय संस्कृति के बारे में बोलते हुए दीनदयालजी कहते हैं, “भारतीय संस्कृति को परिभाषित करना कठिन है, परंतु इसे महसूस किया जा सकता है।” यह किसी की वैयक्तिकता का विध्वंस किए बिना सामाजिक चेतना का निर्माण करती है। “सिर्फ भारतीय संस्कृति ही पूरे भारत के लोगों को एक सूत्र में पिरो सकती है, यही हमारे मन में मातृभूमि के प्रति प्रेम और श्रद्धा व गौरव की भावना का संचार कर सकती है।” यह संस्कृति जीवन के सभी पक्षों को दिशा देती है। (पृ. 34-35)

उदाहरणस्वरूप—अर्थ हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही है,

वह साध्य नहीं हो सकता। जीवन के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन भारतीय संस्कृति के आदर्शों के आधार पर हो सकता है।

पश्चिम जगत् की धारणा है—“दो व्यक्ति मिलते भी हैं तो इसलिए मिलते हैं कि उनके समान स्वार्थ हैं।” राष्ट्र के संबंध में उनकी कल्पनाएँ हैं कि एक देश में रहने वाले लोग जिनके समान स्वार्थ हैं, ऐसे लोगों का मिला एक राष्ट्र है।” (पृ. 152)
“हमारी प्रेरणा अधिकारों की नहीं है, अपितु कर्तव्य की है। हम कर्तव्य को आधार लेकर चलते हैं।” अपनी एकात्मता है, उसका अनुभव करते हैं।” (पृ. 155)

दीनदयालजी समझाते हैं कि रावण बुरा है, किंतु अपना है, दुर्योधन, कंस, जयचंद्र जैसे लोग खराब हैं किंतु अपने ही हैं। यह चिंतन, यह स्वभाव, यह व्यवहार इस ‘एकात्मता’ की दृष्टि से ही निर्माण हो सकता है। “मसजिद में जाना विकृति नहीं, जो इस देश का है वह मेरा नहीं यह विकृति है। हमने संपूर्ण देश को पुण्यभूमि कहा है, परंतु कुछ भाग को पाकिस्तान तथा बाक्री को ना पाकिस्तान कहना विकृति है।” (पृ. 221) भारतीय संस्कृति में भेद है किंतु पृथकता नहीं है, विविधताएँ हैं, किंतु मूलभूत एकता सन्निहित है।

एक देश, एक जन, एक संस्कृति पर बोलते हुए दीनदयालजी कहते हैं—“एक देश, एक राष्ट्र और एक संस्कृति’ सिर्फ एक नारा नहीं है। यह उस मिथक का विध्वंस करता है, जो यह सोचता है कि भारत में विभिन्न संस्कृतियाँ हैं और इसलिए यह विभिन्न राष्ट्रीयताओं वाला उपमहाद्वीप है। हमारे राष्ट्रीय जीवन की विविधताएँ दिखावटी व सतही हैं और इसमें अंतर्निहित एकता एक वास्तविक सच्चाई है।” (पृ. 34)

राष्ट्र की अवधारणा

दीनदयालजी कहते हैं कि राष्ट्र एक शाश्वत और जीवमान इकाई है। इसका निर्माण हजारों वर्षों में होता है। भारत का एक विशिष्ट सनातन राष्ट्र दर्शन है और वह ‘हिंदू-राष्ट्र-दर्शन’ ही है। “मैं हिंदू हूँ, वह एक चिरंतन वस्तु है। यह वह धागा है, जिससे सब बँधते हैं।” कश्मीर से कन्याकुमारी तक रहने वाले सभी केवल इस धागे से ही बँधे हैं हम भारत माता की संतान हैं।” मकान बनाना और राष्ट्र बनाना एक बात नहीं।” हम हिंदू नहीं तो फिर कैलाश पर लद्दाख पर आक्रमण हो तो हमारे मन पर कोई परिणाम नहीं होगा। रामेश्वरम् में रहने वाला यदि अपने को हिंदू समझता है तो वह द्रविड़ स्थान बनाने का नहीं सोचेगा। वह राम की अयोध्या को कैसे भूल सकता है। हिंदुत्व का भाव ही हमारी असलियत को प्रकट करता है।” जिसके आधार पर यह कलकल बहने वाली नदियाँ हमारे लिए पवित्र हैं।” (पृ. 108-109)

“हम अपने स्वार्थ भोग के लिए नहीं हैं, संपूर्ण मानव भी इस आधार पर शांति से रहकर प्रगति के लिए प्रयत्न कर सकता है। वह हिंदू ही होगा।” भगवान् के द्वारा प्रदत्त एक मार्ग लेकर मानो राष्ट्रीय अस्मिता को लेकर हम पैदा हुए हैं।” (पृ. 109)

दीनदयालजी कहते हैं, “प्रत्येक राष्ट्र की एक विशिष्ट प्रकृति होती है, हमारे राष्ट्र की मूल प्रकृति अध्यात्म प्रधान रही है। आध्यात्मिक दृष्टि ही समन्वय का माध्यम है। मातृभूमि के प्रति असीम श्रद्धा की अनुभूति होना प्रथम आवश्यकता है। श्रद्धा के कारण सभी विविधताओं में भी समन्वय प्रस्थापित किया जा सकता है। गौरवमयी संस्कृति की पुनःप्रतिष्ठापना से ही राष्ट्र जीवन में चतुर्दिक् परिव्याप्त विकृतियों का शमन एवं निराकरण हो सकता है।” (पृ. 247)

हमारे राष्ट्र की मूल प्रकृति आध्यात्मिक है : हमारे देश की अपनी एक मूल प्रकृति है। भौतिक प्रगति के विकास में हम अपनी इस प्रकृति की उपेक्षा न करें। हमारी वृत्तियाँ धार्मिक और आध्यात्मिक हैं। भौतिक प्रगति की ओर बढ़ने की होड़ में हम प्रादेशिकता, जातीयता, भाषावाद की ओर अधिक बढ़ रहे हैं। दीनदयालजी कहते हैं— “जिनके हृदयों में मातृभूमि के प्रति असंदिग्ध श्रद्धा का भाव हो, जिनके जीवनादर्शों में साम्य हो, जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टि हो, शत्रु-मित्र समान हों, ऐतिहासिक महापुरुष एक हों, राष्ट्र का निर्माण होता है।” (पृ. 243)

महान् राष्ट्र परंपरा

इस ग्रंथ में हम देखते हैं कि जनसंघ के प्रारंभ काल से ही दीनदयालजी ने जनसंघ के कार्यकर्ताओं के सम्मुख एक ‘राष्ट्रीय कर्तव्य’ रखा था। मातृभूमि का उत्कर्ष, यहाँ के नागरिकों की समस्याओं का समाधान, चार हजार वर्षों का सनातन राष्ट्रीय उद्देश्य ध्यान में रखकर किसी भी प्रकार की महत्वाकांक्षा से दूर रहते हुए राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले कार्यकर्ताओं की विशाल टोली निर्माण करने का कार्य दीनदयालजी कर रहे थे। दीनदयालजी कहते हैं कि हमारे राष्ट्र की परंपरा “40 सदी की बात है, 40 वर्ष या 40 दशक की नहीं। यदि हम 40 सदी की परंपराओं को याद कर सकें और उन्हें आगे ले जाने का प्रयास कर सकें तो राष्ट्रीय एकता की समस्या कठिन नहीं होगी।” (पृ. 130)

स्वतंत्रता के साथ ही भारत का विभाजन हुआ था। मातृभूमि खंडित हो गई। दीनदयालजी के लिए यह दुखद ऐतिहासिक स्मृति थी। एक कार्यकर्ता ने प्रश्न पूछ लिया—क्या नेहरूजी, अखंड भारत की माँग पर सहमत हो सकते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में दीनदयालजी कहते हैं कि उन्होंने (नेहरूजी ने) “3 जून, 1947 को विभाजन पर सहमति

जताई थी। "इस तरह की इतनी बड़ी चूक को स्वीकार करने के लिए बहुत बड़ा मन चाहिए।" (पृ. 28)

एक राष्ट्र, एक संस्कृति शाश्वत है : दीनदयालजी सनातन राष्ट्रीय सच को उजागर करते हुए स्पष्ट करते हैं कि 'एक देश, एक राष्ट्र और एक संस्कृति' यह कोई नारा या उद्घोष नहीं है। यह एक सच्चाई है। जो लोग यह मानते हैं कि यहाँ अनेक संस्कृतियाँ हैं और यह एक उपमहाद्वीप है, यह उनका भ्रम है। हमारे राष्ट्रजीवन की विविधताएँ बाह्य और ऊपरी हैं तथा अंदर की एकता वास्तविक और यथार्थ है।'

समापन : इस ग्रंथ की भूमिका लिखना सच में बहुत ही दुष्कर कार्य है। जिस विविधता के साथ दीनदयालजी ने इस वर्ष की प्रस्तुति की है, वह अद्भुत है। भूमिका के प्रारंभ में ही स्पष्ट किया है कि इस वर्ष का फलक बहुत व्यापक है तथा यह वर्ष विविधताओं से भरा भी है। अतः एक वर्ष के इस संकलन में ही अनेक विषयों पर दीनदयालजी का विचार जानने को मिल सकेगा।

प्रस्तुत भूमिका में हमने कुछ प्रमुख विषयों की ही चर्चा की है। किंतु दीनदयालजी ने 1962 के वर्ष में और भी अनेक विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण विषय हैं, जिनकी चर्चा हमने भूमिका में नहीं की है, हमारा विश्वास है कि पाठकगण इन विषयों को इस ग्रंथ में भिन्न-भिन्न अध्यायों में पा जाएँगे। इन विषयों में चुनावों में सुधार, राष्ट्रमंडल की सदस्यता के निर्धारण की नीति, शिक्षक का दायित्व, पाकिस्तान तथा चीन के साथ युद्ध निषेध प्रस्ताव, विकास और पाश्चात्यकरण, अर्थवादी दृष्टिकोण की समस्या, कच्छ का संघर्ष, अमरीकी सहायता, डॉ. हेडगेवारजी का संदेश आदि प्रमुख हैं। हमारा विश्वास है कि पाठकगण इन विषयों पर दीनदयालजी के विचारों को इस ग्रंथ में विस्तार से पा सकेंगे।

महापुरुष सूत्र में बात कहते हैं। किंतु उस सूत्र में सार्थकता और सामर्थ्य के साथ किसी भी विषय पर दीर्घकाल का दिशादर्शन भी सन्निहित रहता है। दीनदयालजी के इन विचारों को अर्धशताब्दी से अधिक समय बीत गया। जनसंघ भी अपनी बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था में भा.ज.पा. का रूप धरकर राष्ट्र के सामने प्रस्तुत है।

यद्यपि दीनदयालजी राजनीतिक दल के नेता हैं, किंतु वे कार्यकर्ताओं के राजनीतिक स्वार्थों को नहीं जगाते बल्कि उनके हृदय में अपनी मातृभूमि के प्रति भक्तिभाव जगाते हैं। समाज को आराध्य मानते हुए उसके प्रति दायित्व भाव उत्पन्न करते हैं। देश के अंदर किसी भी प्रकार के विभाजन या विभेदों को समाप्त कर एक अविभाज्य, अखंड, एकात्म राष्ट्र के शाश्वत भाव को स्थापित करने में सफल रहते हैं।

घनघोर निराशा में भी 'आशा', विश्वास और उत्साह निर्माण करने में वे अतुलनीय

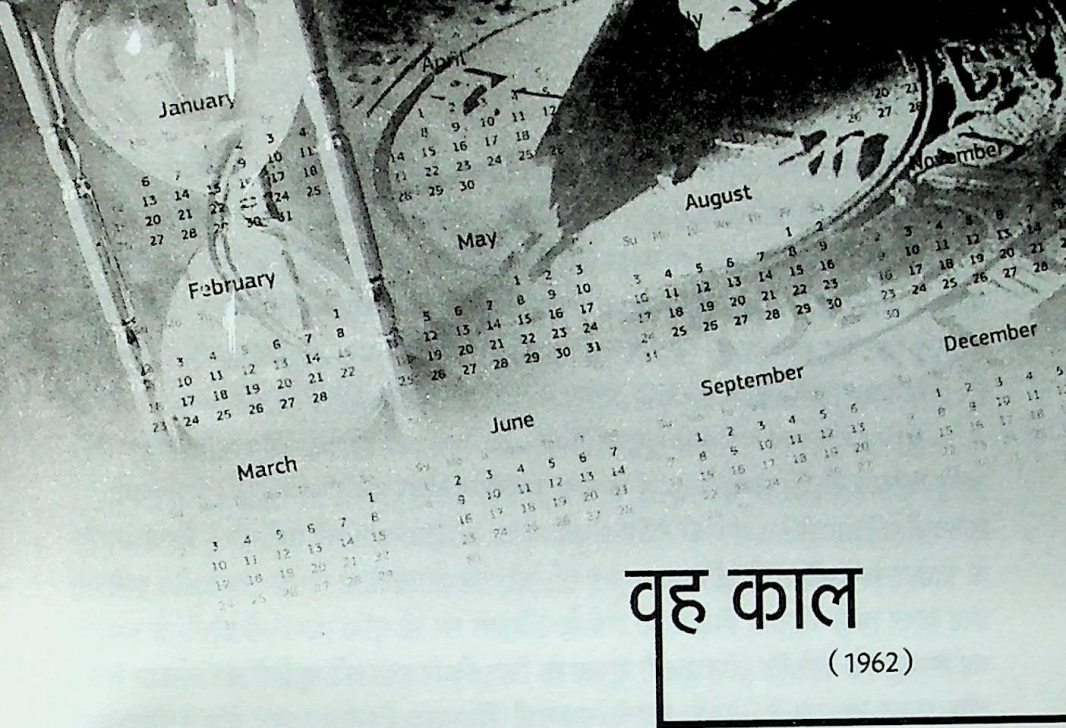
हैं, साधन तथा अनुभवहीन अपने कार्यकर्ताओं को देशभक्ति का 'अमृत छकाकर' उन्होंने एक ऐसी सेना खड़ी की, जो सनातन और शाश्वत सिद्धांतों के लिए अंतिम श्वास तक संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध हो गई। उनके अप्रतिम और अतुलनीय नेतृत्व ने गजब की स्फूर्ति और विश्वास का सृजन किया और देखते-ही-देखते भारतीय जनसंघ विशुद्ध भारतीय भाव लेकर युद्ध क्षेत्र में उतर आया। जनसंघ ने किसी को शत्रु नहीं माना। यह एक निर्वैर युद्ध था। दीनदयालजी ने किसी के भी प्रति वैर भाव का अंकुर नहीं जमने दिया। उन दिनों की भारतीय परिस्थितियों में वे 'अजातशत्रु' के रूप में अवतरित हुए थे। समुद्र में तैरते हुए हिमखंड की भाँति वे स्वयं बहुत कम दिखाई देते थे। इस खंड में हम उनकी प्रेरणादायी और अकल्पनीय प्रतिभा का एक लघु रूप अवश्य देख सकेंगे। इसी खंड में वर्णित सामग्री में से कुछ निकालकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

दीनदयालजी का प्रत्येक संदेश इस मातृभूमि के उत्कर्ष के लिए ही है। उन्होंने कहीं भी बोला या लिखा, उसका निहितार्थ एक ही है कि इस महान् राष्ट्र का उत्कर्ष ऐसा हो, जो उसके अतीत के श्रेष्ठतम स्वरूप से भी अधिक भव्यता लिये हुए हो। (A Glorious Future, More Glorious Than Most Glorious Past) दीनदयालजी की करुणार्द्र आँखों से ग्राम या नगर का अत्यंत निर्धन व्यक्ति कभी भी ओझल नहीं हुआ है। विकास के हमारे दृष्टिपथ में वह अंतिम व्यक्ति और साथ ही राष्ट्र के सांस्कृतिक अधिष्ठान की भव्यता का प्रकाश सदैव मिलकर चलता रहे।

लाखों लोगों को प्रेरणा देने वाले इस परिव्राजक का जीवन इसी महान् उद्देश्य के लिए ही रहा। वे यही कहते थे कि अपने उदात्त संकल्प का हम स्मरण करें। हम यह भी स्मरण करें कि अपने संकल्प के अनुसार हमने किया क्या है? हमको करना क्या था? यही इस 'दशम् ग्रंथ' का संदेश है।

ॐ कृतो स्मर कृतं स्मर,
कृतो स्मर कृतं स्मर॥ (ईश. 17)

—डॉ. कृष्ण गोपाल



वह काल
(1962)

आशाओं का अंधकार में लोप

ईसाई संवत् 1962 आते-आते स्वतंत्रता प्राप्ति का डेढ़ दशक लंबा काल बीत चुका था। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय कई शताब्दियों की पराधीनता के बाद अपनी शक्ति और सभ्यता को फिर से प्राप्त करने की जो आशा और उत्साह पैदा हुआ था, वह धूमिल हो चुका था। यह वर्ष तीसरे आम चुनाव से आरंभ हुआ था और उसका अंत चीन के हाथों मिली पराजय से। अब तक देश के साधारण लोग भविष्य के सुधरने की जो आशा लिये बैठे थे, वह इस पराजय से तिरोहित हो गई। इस पराजय को बड़ी चुनौती मानकर अपनी शक्ति और सीमाओं को अनुलंघनीय बनाने का जो संकल्प पैदा होना चाहिए था, वह शब्दों तक सीमित होकर रह गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पहली बार लोगों को लगा कि देश थके-हारे नेताओं के हाथ में है। इससे पराजय का अवसाद और बढ़ गया।

उस समय चीन के व्यवहार को लेकर देशभर में आक्रोश पैदा हुआ था। उस समय चीन के व्यवहार को विश्वासघात मानकर हमने अपनी कमजोरी के कारणों को विस्तार से समझने का प्रयत्न नहीं किया। हमारी पराजय का कारण केवल यह नहीं था कि हमारी सैनिक शक्ति अपर्याप्त थी या हमने चीन के मंसूबे को समय रहते भाँपा नहीं था। ये दोनों बातें अपनी जगह सही थीं, पर वे हमारी कमजोरी के लक्षण थे, मूल कारण नहीं। उसका मूल कारण यह था कि हमने एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में दुनिया को समझना और अपनी नीतियाँ निर्धारित करना आरंभ ही नहीं किया था।

हमने 1947 में जो स्वतंत्रता प्राप्त की थी, वह केवल औपचारिक स्वतंत्रता थी। अंग्रेज चले गए थे, लेकिन उनका बनाया औपनिवेशिक तंत्र ज्यों का त्यों अंगीकार कर लिया गया था। महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता संग्राम की कमान अपने हाथ में लेते समय ही कहा था कि वे यूरोपीय सभ्यता के प्रतिनिधि अंग्रेजों के बनाए औपनिवेशिक तंत्र को हटाकर भारतीय सभ्यता के अनुरूप व्यवस्थाएँ पुनर्स्थापित करने के अभियान में उतरे हैं। उन्हें केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति में कोई रुचि नहीं है।

अगर हमने 1947 में पीछे मुड़कर पिछले 50 साल को ही देख लिया होता तो हम अपने वर्तमान की दो विभीषिकाओं से बच गए होते। अगर हमने मध्य-पूर्व में पश्चिमी शक्तियों की पिछले 50 वर्ष की गतिविधियों को देख लिया होता तो हम भारत विभाजन के पीछे उनकी कौन-सी दृष्टि काम कर रही थी, यह आसानी से समझ सकते थे। इसी तरह अगर हमने चीन के पिछले 50 वर्ष के इतिहास पर ही दृष्टि डाल ली होती तो हम यह समझ सके होते कि चीन हमारी सुरक्षा के लिए किस तरह की चुनौती बन सकता है और बनता जा रहा है। हमने अपनी नासमझी में भारत विभाजन को केवल हिंदू-मुसलिम समस्या में सीमित करके देखा। इस नासमझी के कारण हम पश्चिमी शक्तियों के और चीन के वृहत्तर भू-राजनीतिक उद्देश्य को देखने में असमर्थ रहे।

1962 के बाद चीन के लिए भी पाकिस्तान उपयोगी हो गया था। उसने भी पाकिस्तान का उपयोग भारत को दबाव में बनाए रखने के लिए आरंभ किया। 1962 से ही चीन को अपनी पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने में पाकिस्तान का सहयोग आवश्यक दिख रहा था। इसलिए उसने पाकिस्तान से अपने सीमा विवाद जल्दी निपटा लिए और वह उसका सदाबहार सहयोगी हो गया।

अगर हमारे नेताओं ने दोनों महायुद्धों के बीच की अंतरराष्ट्रीय घटनाओं को ठीक से समझा होता तो उन्हें आसानी से यह दिखाई दे जाता कि पाकिस्तान बना तो पश्चिमी सीमा पर भारत की चुनौतियाँ कितनी बढ़ जाएँगी। इस अवधि में चीन में जो हो रहा था, वह भी ध्यान देने योग्य था। चीन के पिछले 50 वर्ष आंतरिक युद्ध में और जापान के आक्रमण को झेलने में बीते थे। 1927 से 1949 के बीच चीनी राष्ट्रवादी दल और चीनी साम्यवादी दल के बीच सत्ता पर नियंत्रण के लिए सशस्त्र संघर्ष होता रहा। इस बीच 1937 में दूसरी बार जापान ने चीन पर आक्रमण किया और यह युद्ध 1945 में दूसरे महायुद्ध में जापान की पराजय तक चला। दूसरे महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों के खेमे में होने के कारण युद्ध की समाप्ति के बाद चीन की गिनती महाशक्तियों में होने लगी और 1945 में संयुक्त राष्ट्र की स्थापना करनेवाली मूल पाँच शक्तियों में अमरीका, सोवियत रूस, फ्रांस और ब्रिटेन के साथ चीन की भी गिनती हुई और वह सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य बना दिया गया।

जिस गृहयुद्ध में विजयी होकर चीनी साम्यवादी नेता सत्ता में आए थे, उसमें लगभग एक करोड़ सशस्त्र योद्धा और साधारण नागरिक मारे गए थे। उसी के बीच जापान से हुए युद्ध में एक करोड़ सैनिक और दो करोड़ नागरिक मारे गए थे। इतने भीषण संघर्ष से सत्ता में पहुँचने वाला नेतृत्व कितना हठी, निर्मम और निरंकुश हो गया होगा, इसका हम सहज अनुमान कर सकते हैं, विशेषकर तब, जब वह साम्यवादी धारा का हो। 1949 में सत्ता में पहुँचने के बाद चीन के नेताओं ने सबसे पहले चीन की सुरक्षा निश्चित करने की ओर ध्यान दिया।

चीन पर थोड़े समय के लिए तिब्बतियों का भी शासन रहा था। लेकिन मुख्यतः सीमापार उत्तरी क्षेत्रों से आनेवाले मंगोल और मांचू कबीलों ने उस पर शासन किया था। इसलिए 1949 में सत्ता में आते ही सबसे पहले चीन ने इन्हीं क्षेत्रों का अधिग्रहण किया। इसी क्रम में 1950 में उसने तिब्बत पर आक्रमण करके उसे अपने नियंत्रण में ले लिया। आम भारतीयों की भावना के विपरीत भारत सरकार ने आसानी से तिब्बत पर चीन के नियंत्रण को मान लिया। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर वह यह सोचकर चीन का साथ देता रहा कि इससे चीन खुश होगा और भारत और चीन की एक एशियाई धुरी बन जाएगी और विश्व में हम अपनी शक्ति दिखा सकेंगे। चीन ऐसी कपोल कल्पनाओं में कभी नहीं पड़ा। उसे मंगोलिया और मंचूरिया के एक बड़े भाग को हथियाने में आसानी से सफलता मिल गई थी, क्योंकि रूस अपना भाग लेकर उसके लिए सहमत हो गया। लेकिन तिब्बत में चीन के आक्रमण का स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तर पर विरोध हुआ।

तिब्बत पर अपना नियंत्रण दृढ़ करने के लिए चीन अक्साई चिन चाहता था, क्योंकि उसके पश्चिमी प्रांत सिक्कांग से अक्साई चिन के रास्ते ही तिब्बत जाया जा सकता था। उसने भारत के सामने प्रस्ताव रखा कि भारत अक्साई चिन पर दावा छोड़ दे तो चीन पूर्वी क्षेत्र में अपना दावा छोड़ देगा। जब उसने देखा कि भारतीय नेता ब्रिटिश शासन के भारत विभाजन के प्रस्ताव पर झुक गए थे, लेकिन अक्साई चिन पर चीन से समझौते के लिए तैयार नहीं है तो उसने भारत से शत्रुता गाँठ ली। फिर भी 1959 तक वह भारत को झाँसे में रखता रहा। इस बीच अक्साई चिन में उसने तिब्बत तक के लिए सड़क बना ली थी, लेकिन सार्वजनिक रूप से वह दोहराता रहा था कि भारत के किसी क्षेत्र पर वह अपना दावा नहीं कर रहा। जब 1959 में तिब्बती विद्रोह के बाद दलाई लामा को भारत में शरण मिली तो चीन ने सार्वजनिक रूप से भारत की भर्त्सना आरंभ की और स्वयं माओ त्से तुंग ने उसे विस्तारवादी घोषित कर दिया था।

चीन के नेता चीन को महाशक्ति बनाने के लिए उतावले थे। इस उतावली ने ही चीन को 1959-1961 में महा अकाल के हवाले कर दिया था, जिसमें तीन से चार करोड़ नागरिक मारे गए थे। ऐसे नेतृत्व से मित्रवत् संबंधों की आशा दिवास्वप्न जैसी

थी। चीन को आरंभ में सोवियत रूस से सामरिक, वैज्ञानिक और आर्थिक सहयोग मिला था। लेकिन 1953 में स्टालिन की मृत्यु के बाद साम्यवादी देशों का नेतृत्व हासिल करने के लिए उसने रूस को संशोधनवादी घोषित करके उस पर हमला करना शुरू कर दिया था। इन परिस्थितियों में भारतीय नेताओं का चीन पर भरोसा करना नादानी के अतिरिक्त कुछ नहीं था।

चीन ने 20 अक्टूबर, 1962 को भारत पर आक्रमण किया। यह अघोषित युद्ध था और महीने भर चला था। 20 नवंबर, 1962 को इकतरफा युद्धविराम करते हुए उसने नियंत्रण रेखा से 20 किलोमीटर पीछे लौटने की घोषणा की। चीन सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़कें बनाने से लेकर चौकियाँ स्थापित करने में लगा था। भारत की कोई सैनिक तैयारी नहीं थी। चीन की गतिविधियाँ सार्वजनिक रूप से उजागर होने पर फारवर्ड पॉलिसी के नाम पर भारत ने सीमावर्ती क्षेत्रों में सेना भेजी। हमारी सेना न संख्या में चीनी सेना के बराबर थी, न साधनों और युद्ध सामग्री की दृष्टि से। इसलिए हम पूर्वी, मध्य और पश्चिमी सभी क्षेत्रों में पिटे। चीन के 722 के मुकाबले हमारे 1047 सैनिक शहीद हुए। हमारे 4000 सैनिक चीनी सेना द्वारा पकड़ लिये गए। अक्साई चिन का 38 हजार वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र चीन के नियंत्रण में चला गया। चीन के हाथों में यह हमारी ऐसी अपमानजनक पराजय थी, जिसकी ग्लानि लंबे समय तक बनी रहेगी।

इस पराजय का देश के लोगों के मनोबल पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। 1962 की फरवरी में जो लोकसभा चुनाव हुए थे, उसमें कांग्रेस को 361 सीटें मिली थीं। भारतीय साम्यवादी दल की 29 सीटों के अलावा किसी और दल को 20 सीटें भी नहीं मिली थीं। अगले आम चुनाव में कांग्रेस की सीटें घटकर 283 रह गईं। कई राज्यों में शासन उसके हाथ से निकल गया। भारतीय राजनीति बिखराव और टकराव की ओर बढ़ने लगी। अपने विशाल बहुमत के बावजूद कांग्रेस ने भारतीय समाज को विभाजित करके विभिन्न वर्गों के बीच अविश्वास और संघर्ष की जो परिपाटी आरंभ की थी, कालांतर में स्वयं कांग्रेस को उसके परिणाम झेलने पड़े। वैसे तो यह उस संसदीय प्रणाली का ही दोष था, जो दलीय संघर्ष और मत-विभाजन पर टिकी है और जिसे हमने आँख मूँदकर स्वीकार कर लिया है। इस प्रणाली से हमारा मोहभंग होना चाहिए था, नहीं हुआ। आज तक हम दिग्भ्रमित ही हैं और यूरोपीय सभ्यता का अनुकरण करते हुए उसकी बौद्धिक दासता में फँसे हैं।

—बनवारी

वाङ्मय संरचना

‘एकात्म मानवदर्शन’ के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय के आलेखों, भाषणों, बौद्धिक वर्गों, वक्तव्यों एवं विविध संवादों ने भारतीयता के अधिष्ठान पर तात्कालिक समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन सबसे भी कालजयी साहित्य का निर्माण हुआ। उनके जाने के पाँच दशकों बाद उनका संपूर्ण वाङ्मय प्रकाशित हुआ है। विलंब से ही सही, लेकिन उनके शताब्दी वर्ष पर उसका प्रकाशन एक ऐतिहासिक अवसर है। 15 खंडों में संपादित हुए उनके संपूर्ण साहित्य का यथासंभव संकलन हुआ है। आइए, हम उनका परिचय प्राप्त करें।

खंड एक : वर्ष 1940 से 1950 की सामग्री इस खंड में है। संघ प्रचारक के रूप में एक दशक में उनके द्वारा सृजित साहित्य का इसमें संकलन है। यह ‘राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ’ के द्वितीय सरसंघचालक श्री मा.स. गोलवलकर परमपूजनीय श्रीगुरुजी को समर्पित है। श्रीगुरुजी का परिचय संघ के वरिष्ठ प्रचारक श्री रंगाहरि ने लिखा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ही वर्तमान सरसंघचालक श्री मोहन भागवत इस खंड के भूमिका-लेखक हैं। सभी खंडों में उस काल के संदर्भ में एक अध्याय है ‘वह काल’। इस खंड में इसका लेखन वरिष्ठ पत्रकार पद्मश्री श्री रामबहादुर राय ने किया है।

खंड दो : यह दो वर्षों का है—1951 तथा 1952। यह ‘भारतीय जनसंघ’ की स्थापना, प्रथम आम चुनाव तथा पंचवर्षीय योजना का काल है। यह डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को समर्पित है। ‘डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी शोध अधिष्ठान’ के निदेशक श्री अनिर्बान गांगुली ने डॉ. मुखर्जी का परिचय लिखा है। इस खंड की भूमिका विख्यात इतिहासवेत्ता श्री देवेन्द्र स्वरूप ने लिखी है। ‘वह काल’ अध्याय का आलेखन पद्मश्री श्री जवाहरलाल कौल ने किया है।

खंड तीन : वर्ष 1954-1955 का है। यह 'गोवा मुक्ति-संग्राम' का काल है। यह गोवा मुक्ति के लिए सत्याग्रह का नेतृत्व करनेवाले श्री जगन्नाथ राव जोशी को समर्पित है; उनका परिचय भाजपा के पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री बलवीर पुंज ने लिखा है तथा इसकी भूमिका के लेखक जनसंघ के जन्मकाल से कार्यकर्ता रहे वरिष्ठ नेता डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा हैं। 'वह काल' के लेखक हैं—राजा राम मोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री ब्रजकिशोर शर्मा।

खंड चार : वर्ष 1956-1957 का है। यह संघात्मक संविधान के अनुसार राज्य पुनर्गठन का काल है। यह 'भारतीय जनसंघ' के अध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर में 'प्रजापरिषद्' के संस्थापक पं. प्रेमनाथ डोगरा को समर्पित है। उनका परिचय जम्मू-कश्मीर के उपमुख्यमंत्री श्री निर्मल सिंह ने लिखा है, भूमिका श्री रंगाहरि ने। 'वह काल' का आलेखन माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र ने किया है।

खंड पाँच : एक ही वर्ष सन् 1958 के दो खंड हैं पाँच व छह। दीनदयालजी के आर्थिक विचारों के परिपक्व होने का यह काल है। महान् गणितज्ञ एवं भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष रहे आचार्य देवा प्रसाद घोष को खंड पाँच समर्पित है। ऑर्गनाइजर के संपादक श्री प्रफुल्ल केतकर ने उनका परिचय लिखा है। हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार ने भूमिका-आलेखन किया है। प्रसिद्ध विचारक श्री के.एन. गोविंदाचार्य ने 'वह काल' लिखा है।

खंड छह : इसमें दीनदयालजी की पुस्तक 'टू प्लांस : प्रोमिसेज : परफोर्मेंस : परस्पेक्टिव' संयोजित है तथा डॉ. भाई महावीर के द्वारा लिखी पुस्तक की समीक्षा का समाहन किया गया है। रा.स्व. संघ के उत्तर क्षेत्र के संघचालक एवं अर्थवेत्ता डॉ. बजरंगलाल गुप्त ने भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' अध्याय नहीं है। यह खंड महान् अर्थचिंतक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी को समर्पित किया गया है। उनका परिचय अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के पूर्व अध्यक्ष श्री राजकुमार भाटिया ने लिखा है।

खंड सात : वर्ष 1959 का है। चीन द्वारा तिब्बत का अधिग्रहण कर भारत की सीमा का अतिक्रमण किया गया। यह दीनदयालजी को संघ प्रचारक बनानेवाले रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री भाऊराव देवरस को समर्पित है। उनका परिचय श्री अच्युतानंद मिश्र ने लिखा है। भूमिका-लेखन का कार्य 'विश्व हिंदू परिषद्' के राष्ट्रीय महामंत्री श्री चंपतराय ने किया है। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंद किशोर त्रिखा ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड आठ : वर्ष 1960 का है। 'हमार ध्येय दर्शन' लेखमाला एवं 'जनसंघ ही क्यों' आलेख इसमें शामिल हैं। उत्तर प्रदेश की पहली महिला उपाध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर सत्याग्रही श्रीमती हीराबाई अय्यर को यह खंड समर्पित है। श्री ब्रजकिशोर शर्मा ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री मदनदास इसके भूमिका-लेखक तथा 'दीनदयाल शोध संस्थान' के प्रधान सचिव श्री अतुल जैन 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड नौ : वर्ष 1961 का है। लोकमत परिष्कार का आलेखन, दलों की आचार संहिता के मुद्दे इसमें प्रमुख हैं। दीनदयालजी के साथी रहे तथा उनके बाद महामंत्री बने श्री सुंदर सिंह भंडारी को यह खंड समर्पित है। जयपुर के श्री इंदुशेखर 'तत्पुरुष' ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के वर्तमान सरकार्यवाह श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी ने इसकी भूमिका लिखी है तथा 'वह काल' का आलेखन श्री बलबीर पुंज ने किया है।

खंड दस : वर्ष 1962 का है। भारत चीन के आक्रमण से आक्रांत हुआ था। यह खंड लब्धप्रतिष्ठ राजनेता डॉ. संपूर्णानंद को समर्पित है, उन्होंने दीनदयालजी की 'पॉलिटिकल डायरी' की भूमिका लिखी थी। इनका परिचय 'पाञ्चजन्य' के संपादक श्री हितेश शंकर ने लिखा है। भूमिका आलेखन का कार्य सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल ने किया है। लब्धप्रतिष्ठ भारतविद् श्री बनवारी ने 'वह काल' लिखा है।

खंड ग्यारह : वर्ष 1963-64 का है। यह वही काल है, जब दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का व्याख्यान किया था। यह खंड महान् भाषा एवं भारतविद् आचार्य रघुवीर को समर्पित है। उनका परिचय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक डॉ. राजीव रंजन गिरि ने लिखा है। भारतमाता मंदिर के संस्थापक स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि के विद्वान् शिष्य गोविंद गिरि महाराज ने इसकी भूमिका लिखी है। भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा सांसद डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड बारह : वर्ष 1965 का है। कच्छ समझौता, पाकिस्तान से युद्ध, भारत की विजय एवं ताशकंद समझौते का यह काल है। संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री प्रभाकर बलवंत (भैयाजी) दाणी को यह खंड समर्पित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दिल्ली प्रांत सहसंघचालक अधिवक्ता श्री आलोक कुमार ने इनका परिचय लिखा है। बिहार राज्य के राज्यपाल श्री रामनाथ कोविंद ने इसकी भूमिका तथा प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. सीतेश आलोक ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड तेरह : वर्ष 1966 का है। स्वातंत्र्य वीर सावरकर का निधन, गोहत्या के

खिलाफ आंदोलन। दीनदयालजी के सहयोगी तथा ग्रामोदय प्रकल्पों के नियोजक दीनदयाल शोध संस्थान के संस्थापक श्री नानाजी देशमुख को यह खंड समर्पित है। उनका परिचय श्री देवेन्द्र स्वरूप ने लिखा है। इस खंड की भूमिका उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री राम नाईक ने लिखी है। वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड चौदह : वर्ष 1967-68 का है। भारतीय राजनीति में एकदलीय एकाधिकार टूटने का यह काल है। दीनदयालजी अध्यक्ष चुने गए तथा जघन्य हत्या के शिकार हुए। इस खंड की भूमिका गुजरात के राज्यपाल प्रो. ओमप्रकाश कोहली ने लिखी है। 'वह काल' का आलेखन श्री जगदीश उपासने ने किया है। यह खंड दक्षिण भारत में 'जनसंघ' के कार्य को प्रारंभ करनेवाले तथा 'भारतीय जनता पार्टी' के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे श्री जना कृष्णमूर्ति को समर्पित है। उनका परिचय श्री ला. गणेशन ने लिखा है।

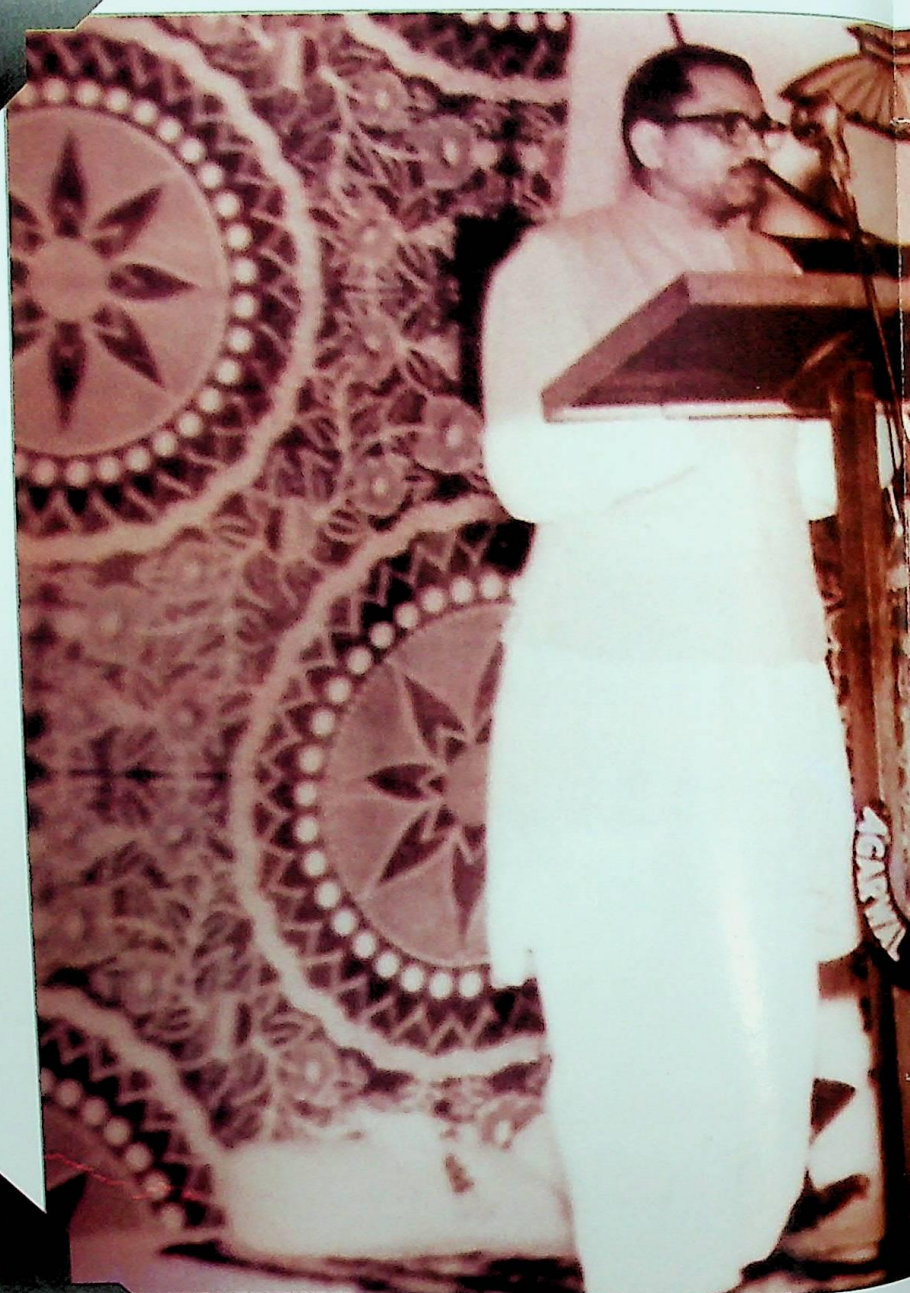
खंड पंद्रह : यह अंतिम खंड है। जिसकी तिथि ज्ञात नहीं, ऐसा साहित्य, इसमें संकलित है। महान् गांधीवादी एवं भारतविद् श्री धर्मपाल को यह खंड समर्पित है। डॉ. जितेंद्र कुमार बजाज ने उनका परिचय लिखा है। संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता तथा प्रख्यात पत्रकार श्री मा.गो. वैद्य ने इसकी भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' नहीं है। दीनदयालजी संदर्भित 'अवसान' अध्याय का इसमें संयोजन किया गया है, जिसका आलेखन श्री रामबहादुर राय ने किया है।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

WEDD
JANUARY 1956



WEDNESDAY 10th JANUARY



WEDNESDAY 11th JANUARY 1956



TUESDAY 10th



अनुक्रमणिका

परिचय	सात
संपादकीय	ग्यारह
भूमिका	तेरह
वह काल (1962) आशाओं का अंधकार में लोप	सैंतालीस
वाङ्मय संरचना	इक्यावन

- कांगो से हमारी सेना वापस बुलाई जाए
—द टाइम्स ऑफ इंडिया, जनवरी 9, 1962 1
- उपाध्याय कालीकट में —द टाइम्स ऑफ इंडिया, जनवरी 9, 1962 3
- राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् —द टाइम्स ऑफ इंडिया, जनवरी 9, 1962 4
- 14 वर्ष के कांग्रेसी शासन के बाद भी हमें कोई लाभ नहीं
—द टाइम्स ऑफ इंडिया, जनवरी 9, 1962 6
- आपका मत-5 —पाञ्चजन्य, जनवरी 15, 1962 8
—अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की संज्ञाएँ घातक हैं
- आपका मत-6 —ऑर्गनाइज़र, जनवरी 15, 1962 14
—उद्देश्य में समानता परंतु साधनों में विचलन
- आपका मत-4 —पाञ्चजन्य, जनवरी 22, 1962 18
—राष्ट्र की सुरक्षा के प्रश्न को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाए
- उपाध्याय के उत्तर —ऑर्गनाइज़र, गणतंत्र दिवस विशेषांक, 1962 26

9.	आपका मत-7	—ऑर्गनाइज़र, गणतंत्र दिवस विशेषांक, 1962	38
	—योजनाओं के प्रति भारतीय जनसंघ का दृष्टिकोण व्यावहारिक		
10.	आपका मत-8	—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 29, 1962	46
	—दल और किसान; सरकार की ओर से कृषि और किसानों की उपेक्षा जारी		
11.	आपका मत-1	—पाञ्चजन्य, जनवरी 29, 1962	57
	—मताधिकार कागज टुकड़ा नहीं, लोकाज्ञा है		
12.	आपका मत-2	—पाञ्चजन्य, फरवरी 5, 1962	63
	—मतदाता समय की चुनौती का उत्तर देंगे?		
13.	आपका मत-3	—पाञ्चजन्य, फरवरी 12, 1962	70
	—दक्षिणपंथ व वामपंथ के आधार पर दलों का विभाजन अनुचित		
14.	आपका मत-9	—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 12, 1962	73
	—हर मतदाता को निभानी है भूमिका		
15.	कांग्रेस द्वारा सुनियोजित ढंग से जनसंघ कार्यकर्ताओं पर हमले	—पाञ्चजन्य, फरवरी 19, 1962	79
16.	जनसंघ कार्यकर्ताओं के लिए परीक्षा की घड़ी	—पाञ्चजन्य, फरवरी 19, 1962	81
17.	डॉ. हेडगेवार ने लोगों को सिखाया कि कैसे जीएँ	—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 2, 1962	83
18.	पोलिटिकल डायरी	—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 30, 1962	88
	—डॉ. राममनोहर लोहिया का प्रस्ताव		
19.	स्वयं को हराने वाली है सरकार की आर्थिक नीति	—ऑर्गनाइज़र, मई 7, 1962	93
20.	पोलिटिकल डायरी	—ऑर्गनाइज़र, मई 14, 1962	95
	—कश्मीर पर संयुक्त राष्ट्र की चर्चा		
21.	संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : प्रयाग	—मई 20, 1962	100
22.	संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : प्रयाग	—मई 21, 1962	105
23.	भारतीय जनसंघ प्रतिनिधि सभा अधिवेशन, कोटा		
	महामंत्री प्रतिवेदन	—पाञ्चजन्य, जून 4 तथा जून 11, 1962	110

24. पोलिटिकल डायरी —ऑर्गनाइज़र, मई 28, 1962 127
—हमारा अंतः-दलीय और अंतर-दलीय व्यवहार
25. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : हरिगढ़ —जून 4, 1962 131
26. अमरीकी अनुदान कटौती प्रकरण के सबक
—ऑर्गनाइज़र, जून 4, 1962 146
27. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : हरिगढ़ —जून 5, 1962 148
28. एकता परिषद् को डी.एम.के. की धमकी की गंभीरता का अहसास नहीं
—ऑर्गनाइज़र, जून 11, 1962 161
29. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली —जून 17, 1962 164
30. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली —जून 22, 1962 172
31. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : अलीगढ़ —जून 22, 1962 178
32. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली —जून 22, 1962 181
33. परमाणु विरोधी सम्मेलन —ऑर्गनाइज़र, जून 25, 1962 188
34. दोनों गुटों से अलग रहने की नीति में परिवर्तन इष्ट नहीं
—जून 26, 1962 191
35. कमर तोड़ टैक्स तानाशाही का पथ प्रशस्त कर रहे हैं
—पाञ्चजन्य, जुलाई 9, 1962 196
36. मुखर्जी और टंडन —ऑर्गनाइज़र, जुलाई 16, 1962 199
37. भारत सरकार की भाषा नीति संविधान के प्रतिकूल
—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 23, 1962 203
38. शासन हिंदी के स्वरूप को विकृत करने की चेष्टा न करे
—पाञ्चजन्य, अगस्त 6, 1962 205
39. चलिए एक नई योजना बनाएँ
—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 15, 1962 207
40. नगरीय निकायों के लिए अधिक स्वायत्तता
—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 27, 1962 215
41. साम्यवाद रूसी राष्ट्रवाद का हथियार मात्र है
—पाञ्चजन्य, सितंबर 3, 1962 217

42. चीनी साम्राज्य के प्रतिकार के लिए संगठित हों
—पाञ्चजन्य, सितंबर 10, 1962 223
43. शिक्षक दिवस : कुछ विचार —ऑर्गनाइज़र, सितंबर 17, 1962 226
44. संसदीय परंपराओं के निर्माण का उत्तरदायित्व सरकार भी ले
—पाञ्चजन्य, सितंबर 20, 1962 230
45. निर्विरोध निर्वाचन का एक अन्य पहलू भी हैं
—पाञ्चजन्य, अक्टूबर 1, 1962 234
46. आंदोलन पर्याप्त नहीं है : कच्छ और डांग क्षेत्रों की उपेक्षा
—ऑर्गनाइज़र, अक्टूबर 1, 1962 238
47. घोर अर्थवादी दृष्टिकोण से ही विकृतियाँ पनप रही हैं
—पाञ्चजन्य, अक्टूबर 15, 1962 241
48. केंद्र में सुरक्षा परिषद्
—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, अक्टूबर 24, 1962 248
49. चौंकाने वाला है नवीनतम प्रस्ताव
—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, अक्टूबर 25, 1962 249
50. पश्चिमवाद, निरपेक्षतावाद और धन बल पर विचार
—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 1, 1962 250
51. कम्युनिस्ट चीन से संबंध विच्छेद किया जाए
—पाञ्चजन्य, नवंबर 12, 1962 255
52. पोलिटिकल डायरी —ऑर्गनाइज़र, नवंबर 19, 1962 258
—भारत में कम्युनिस्टों और पाकिस्तानियों का अपवित्र गठबंधन
53. पोलिटिकल डायरी —ऑर्गनाइज़र, नवंबर 26, 1962 261
—आसाम तक पहुँची युद्ध की सीमा
54. पोलिटिकल डायरी —ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 3, 1962 267
—चीनी प्रस्ताव का एक्स-रे
55. यदि पाक नेताओं के दिल में सच्चाई है तो भारत का युद्ध-
निषेध प्रस्ताव स्वीकार करें —पाञ्चजन्य, दिसंबर 10, 1962 272
56. कश्मीर पर बहस का समय नहीं
—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 10, 1962 275

57. भारतीय जनसंघ, दशम वार्षिक अधिवेशन; भोपाल महामंत्री प्रतिवेदन	—पाञ्चजन्य, दिसंबर 29-31, 1962	280
58. प्रश्न हमारे, उत्तर महामंत्री के	—पाञ्चजन्य, दिसंबर 31, 1962	289
59. धर्म धारण से है	—राष्ट्रचिंतन, दिसंबर 1962	296
60. स्वतंत्रता के साधन और सिद्धि	—राष्ट्रचिंतन, दिसंबर 1962	301
61. विकेंद्रित अर्थव्यवस्था	—राष्ट्रचिंतन, दिसंबर 1962	308
62. धर्मराज्य क्या और क्यों?	—राष्ट्रचिंतन, दिसंबर 1962	314

परिशिष्ट—

I. दीनदयाल उपाध्याय का मध्य प्रदेश दौरा	—पाञ्चजन्य, जनवरी 4, 1962	321
II. पंजाब प्रतिनिधि सभा	—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 8, 1962	322
III. राष्ट्रीय एकता व सैन्य तैयारी चाहता है जनसंघ	—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 15, 1962	327
IV. दिल्ली में बी.जे.एस. कार्यकारिणी की बैठक	—ऑर्गनाइज़र, मार्च 12, 1962	331
V. भारतीय जनसंघ प्रतिनिधि सभा : कोटा	—पाञ्चजन्य, जून 4, 1962	332
VI. जनसंघ का लक्ष्य नंबर 1 पार्टी बनना, नंबर 2 नहीं	—ऑर्गनाइज़र, जून 4, 1962	337
VII. जनसंघ नेता ने लगाया नेहरू पर आरोप	—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, दिसंबर 30, 1962	341

संदर्भिका

345

1

कांगो से हमारी सेना वापस बुलाई जाए

बंगलौर

जनसंघ के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने आज यहाँ कहा कि भारत को स्वयं को अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं से मुक्त कर लेना चाहिए और कांगो¹ से अपनी सेना वापस बुला लेनी चाहिए, ताकि उत्तरी सीमाओं पर पाकिस्तान द्वारा उत्पन्न खतरे से निबटा जा सके।

उन्होंने संवाददाताओं से कहा कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में कश्मीर मुद्दे को उठाने के पाकिस्तान के हाल के प्रयास और पाकिस्तानी नेताओं द्वारा भारत के विरुद्ध शुरू किया गया घृणा अभियान दर्शाता है कि पाकिस्तान कुछ अनिष्ट करने का इच्छुक है।

उन्होंने भारत में पाकिस्तानी जासूसों की घुसपैठ जारी रहने के प्रति आगाह किया। उन्होंने आरोप लगाया कि कश्मीर सरकार द्वारा ऐसे लोगों का पुनर्वास किया जा चुका है।

श्री उपाध्याय ने युद्ध विराम रेखा के आधार पर कश्मीर मुद्दे को सुलझाने का विरोध किया। उन्होंने कहा कि कश्मीर में भारत की संप्रभुता का किसी भी प्रकार का समर्पण असहनीय है।

उन्होंने विदेशी सहायता पर अत्यधिक निर्भर होने के साथ आम आदमी पर अतिरिक्त करों का बोझ बढ़ाने वाली तीसरी योजना के स्थान पर देश के एकीकृत विकास का आह्वान किया।

1. 1960 में कांगो में बेल्जियम की 78 साल की गुलामी को तोड़ते हुए लूमूबा के नेतृत्व में पहली राष्ट्रीय सरकार का गठन हुआ, लेकिन जल्द ही कांगो में आदिवासी हिंसा भड़क उठी। एक विनाशकारी गृहयुद्ध से कांगो को बचाने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने 21 फरवरी, 1961 को अपने संकल्प द्वारा देश में सैन्य हस्तक्षेप पर फैसला किया। शुरू में भारत ने संयुक्त राष्ट्र कमान को कुछ रसद की पूर्ति की, लेकिन बाद में संयुक्त राष्ट्र के अनुरोध पर मार्च 1961 में ब्रिगेडियर के.ए.एस. राजा के नेतृत्व में 99 इन्फैंट्री ब्रिगेड को कांगो भेजा गया था।

उन्होंने कहा कि जनसंघ चुनाव में किसी अन्य राजनीतिक दल के साथ चुनावी समझौता नहीं करेगा और इसके बजाय स्वयं की नीतियों और कार्यक्रमों के दम पर मतदाताओं के बीच जाएगा।

— द टाइम्स ऑफ इंडिया, जनवरी 9, 1962
(अंग्रेज़ी से अनूदित)



2

उपाध्याय कालीकट में

कालीकट, 8 जनवरी : जनसंघ के महासचिव श्री दीनदयाल उपाध्याय ने शुक्रवार को एक संवाददाता सम्मेलन में कहा कि वर्तमान युद्ध विराम रेखा के आधार पर कश्मीर समस्या को सुलझाने का प्रधानमंत्री का प्रस्ताव सरकार और कांग्रेस द्वारा की गई सभी घोषणाओं के विपरीत है।

उन्होंने कहा कि जनसंघ पाकिस्तान या चीन को भारतीय भू-भाग के किसी भी प्रकार के समर्पण के विरुद्ध है। उन्होंने गोवा कार्रवाई¹ को कांग्रेस पार्टी का राजनीतिक स्टंट बताया।

— *द टाइम्स ऑफ इंडिया, जनवरी 9, 1962*
(अंग्रेजी से अनूदित)



-
1. करीब 450 सालों तक पुर्तगाली शासन के अधीन रहे गोवा की मुक्ति के लिए आर.एस.एस., भारतीय जन संघ तथा अन्य राष्ट्रवादी लोगों के नेतृत्व में 1950 से ही गोवा मुक्ति आंदोलन प्रारंभ हो गया था, लेकिन दूसरी तरफ पंडित नेहरू ने गोवा मुक्ति के लिए किसी भी प्रकार की सैन्य कार्रवाई से साफ इनकार कर दिया था। पुर्तगाली शासन के ताबूत में आखिरी कील 24 नवंबर, 1961 की घटना है, जिसमें पुर्तगाली सेनाओं का भारतीय नौ सैनिक जहाज पर हमला हुआ और दो मौतें हुईं। जन आक्रोश को देखते हुए भारत सरकार ने सैनिक कार्रवाई करते हुए 'ऑपरेशन विजय' शुरू किया और भारतीय सेना के तीनों अंगों को युद्ध के लिए तैयार हो जाने के आदेश दिए गए, मेजर जनरल के. पी. कैडथ को 17 इन्फैंट्री डिवीजन और 50 पैरा ब्रिगेड का प्रभार मिला, हवाई कार्रवाई की ज़िम्मेदारी एयर वाइस मार्शल एरलिक पिंटो के पास थी। सेना ने अपनी तैयारियों को अंतिम रूप देते हुए आखिरकार 2 दिसंबर को गोवा मुक्ति का अभियान शुरू कर दिया। वायु सेना ने 8 और 9 दिसंबर को पुर्तगालियों के ठिकाने पर अचूक बमबारी की, सेना और वायु सेना के हमलों से पुर्तगाली तिलमिला गए, आखिरकार 19 दिसंबर, 1961 को तत्कालीन पुर्तगाली गवर्नर मैन्यू वासलो डे सिल्वा ने भारत के सामने समर्पण समझौते पर दस्तखत कर दिए।

3

राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद

जनसंघ ने किया गठन का आह्वान

पूना, 12 जनवरी : भारतीय जनसंघ के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने आज सुझाव दिया कि केंद्र सरकार को देश के सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधित्व के साथ राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् का गठन करना चाहिए।

उन्होंने कहा कि यह न केवल देशहित में अनिवार्य है बल्कि यह राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में भी सहायक होगा।

श्री उपाध्याय ने शनिवारवाड़ा में एक आम सभा को संबोधित करते हुए एक ऐतिहासिक घटना के रूप में गोवा, दमन और दीव की मुक्ति का स्वागत किया। उन्होंने कहा कि सैन्य कार्रवाई ने विश्व को भारत के पराक्रम का पहला संकेत दिया है। हालाँकि उन्हें लगता है कि पाकिस्तान और चीन के प्रति अपनी कमजोर नीति के कारण काफ़ी बदनामी झेल चुकी कांग्रेस ने 'इज्जत बचाने के उपाय' के रूप में आम चुनाव से कुछ समय पहले बहुत सावधानी के साथ मुक्ति की योजना बनाई। गोवा को कुछ वर्ष पूर्व तभी मुक्त करा लिया जाना चाहिए था, जब निःशस्त्र सत्याग्रहियों को पुर्तगालियों ने गोली मार दी थी।¹

1. गोवा में सशस्त्र हस्तक्षेप करने से नेहरू के इनकार करने के बाद जगन्नाथ राव जोशी 'कर्नाटक केसरी' (1920-1991) तथा 'गोवा विमोचन समिति' की अपील पर गोवा मुक्ति के लिए पूरे देश से जुटे हजारों सत्याग्रही 25 जून, 1955 को 'नेहरूजी अब क्या करें, पुलिस लेकर गोवा चलें, पुलिस लेकर गोवा चलें' नारे के साथ गोवा में प्रविष्ट हुए थे। गोवा में बिना परमिट प्रवेश करने के आरोप में पुर्तगाली पुलिस ने तत्कालीन गवर्नर जनरल पाउलो बर्नार्ड गुएडेस के आदेश से निहत्थे सत्याग्रहियों पर गोली चला दी, जिसमें लगभग 30 अहिंसक प्रदर्शनकारी मारे गए तथा सैकड़ों घायल हुए थे।

सरकार पर आरोप

जनसंघ नेता ने भारत सरकार पर 'विदेशी अतिक्रमण के विरुद्ध देश की रक्षा के राज्य के प्राथमिक दायित्व के निर्वहन' में विफल रहने का आरोप लगाया। उन्होंने कहा कि यह विफलता 'विशेष रूप से लद्दाख में जानबूझकर' हुई थी। उन्होंने कहा कि पिछले आठ वर्षों से चीनियों ने अक्सर चिन पर अवैध कब्जा कर रखा है। अतिक्रमण को हटाने के लिए कोई कदम उठाने की बजाय कांग्रेस सरकार ने लोगों को इसके बारे में अँधेरे में रखा और चीन के साथ मित्रता के बारे में संकल्प को जारी रखा।

उन्होंने कहा कि 'यहाँ तक कि अब तक सरकार ने हमें उन विशेष कदमों के बारे में नहीं बताया है, जो उन्होंने भारतीय भूभाग से दुश्मन को खदेड़ने के लिए उठाने का प्रस्ताव किया है।' जनसंघ नेता ने कहा कि भारतीय भूभाग से चीन को खदेड़ने के लिए भारत सरकार ने न केवल सैन्य उपाय अपनाने से इनकार किया है बल्कि यह चीन के साथ कूटनीतिक संबंध तोड़ने और तिब्बत पर चीन के आधिपत्य की मान्यता वापस लेने की इच्छुक भी नहीं है।

देश की आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए श्री उपाध्याय ने कहा कि न केवल वस्तुओं की कीमतें बढ़ी हैं, बल्कि बेरोजगारी भी बढ़ी है और आय विषमता व्यापक हुई है।

राज्य विधानसभा के वर्तमान सदस्य श्री आर.के. म्हालागी,² जो चुनाव में शिवाजी नगर विधानसभा क्षेत्र से श्री एस.जी. बर्वे के विरुद्ध लड़ेंगे, ने कहा कि समर्थन प्राप्त करने के लिए कांग्रेस कार्यकर्ताओं द्वारा अपनाई जा रही तरकीबें भी आरोपों से परे नहीं हैं।

विधान पार्षद श्री एम.वी. गोवंदी ने जनसभा की अध्यक्षता की।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, जनवरी 13, 1962

(अंग्रेजी से अनूदित)



2. रामचंद्र काशीनाथ म्हालागी 'रामभाऊ' (1921-1981), 1957 के विधानसभा चुनाव में मावल सीट (पुणे के समीप) से विधायक थे, विधान सभा में इन्होंने सभी संवैधानिक तरीकों का उपयोग किया। सत्तारूढ़ दल से हर मुद्दे पर स्वस्थ बहस करते हुए अच्छे परिणाम पर पहुँचते थे। सत्तारूढ़ दल इनकी आलोचनाओं को बरदाश्त नहीं कर सका और अगले चुनाव (1962) में इनके विरुद्ध पुणे के लोकप्रिय आयुक्त एस.जी. बर्वे को खड़ा किया। हालाँकि रामभाऊ इसमें हार गए, लेकिन अगले 5 साल उन्होंने लोगों के साथ एक मजबूत संबंध बनाने के लिए उपयोग किए। अगले चुनाव में उन्होंने 17,000 मतों के अंतर से जीत दर्ज की थी।

4

14 वर्ष के कांग्रेसी शासन के बाद भी हमें कोई लाभ नहीं

जन संघ नेता ने कहा, समस्याएँ कई गुना बढ़ीं

भारतीय जनसंघ के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने शनिवार को बंबई में कहा कि 14 वर्ष का कांग्रेसी शासन देश के लिए अलाभकारी साबित हुआ है।

चौपाटी में जनसभा को संबोधित करते हुए श्री उपाध्याय ने कहा कि इस अवधि में देश की समस्याएँ सुलझने की बजाय कई गुना बढ़ी हैं।

उन्होंने कहा कि भू-क्षेत्र की दृष्टि से भारत आज उस समय से छोटा हो गया है, जितना अंग्रेजों के छोड़ने के समय था। एक तिहाई कश्मीर पाकिस्तानी क़ब्जे में है, जबकि पूर्वी सीमाओं पर चीन ने अतिक्रमण कर रखा है। कांग्रेसी शासकों ने अतिक्रमण हटाने के लिए महज बातचीत की है, परंतु वे इस पर जोर देने को तैयार नहीं दिखते।

घोषणा-पत्र के बारे में समझाया

श्री उपाध्याय ने कहा कि आर्थिक रूप से भी स्वतंत्रता मिलने के समय की स्थिति की तुलना में भारतीयों की स्थिति आज अधिक बदतर है।

जनसंघ के नगर प्रमुख श्री वसंत कुमार आर. पंडित ने वक्ता का स्वागत किया।

श्री उपाध्याय ने समझाया कि भारतीय जनसंघ के घोषणा-पत्र में देश की एकता और रक्षा पर बल, क़्रीमतों के स्थिरीकरण और बेरोजगारी उन्मूलन, प्रशासन की शुचिता और कुशलता और कुछ समय के लिए कम-से-कम माध्यमिक स्तर तक की मुफ्त शिक्षा के प्रावधान के साथ शिक्षा क्षेत्र के पुनर्गठन पर बल दिया गया है।

जनसंघ नेता ने राजनीतिक दलों द्वारा आकाशवाणी का उपयोग करने की चुनाव

आयोग की योजना को 'कांग्रेस के पक्ष में नई खोज' बताते हुए आलोचना की और पूछा कि कश्मीर को इस योजना से बाहर क्यों रखा गया है।

श्री उपाध्याय ने कहा कि गोवा की मुक्ति कांग्रेस के पक्ष में जाने के बजाय इसके विरुद्ध जाएगी, क्योंकि इससे साबित हुआ है कि ये राजनेता ही थे, जिन्होंने हमारी रक्षा सेनाओं की उच्च दक्षता पर भरोसा नहीं करके गोवा की मुक्ति को 14 वर्ष तक लंबित रखा।

—द टाइम्स ऑफ इंडिया, जनवरी 14, 1962

(अंग्रेजी से अनूदित)



5

अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की संज्ञाएँ घातक हैं

एक राष्ट्र और एक संस्कृति की मान्यता ही ग्राह्य

देर से ही क्यों न हो, पर अब राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है और प्रत्येक दल के निर्वाचन घोषणा-पत्र में उसका उल्लेख इसी बात का परिचायक है। फिर भी राष्ट्रीय एकता की मूलभूत कल्पना में उनमें परस्पर मतभेद विद्यमान है। इतना ही नहीं, उनमें से कुछ ने तो शायद राजनीतिक क्षेत्र में सांप्रदायिक और क्षेत्रीय शक्तियों से समझौता करने के लिए ही एकता का उक्त नारा बुलंद किया है।

कांग्रेस का घोषणा-पत्र

कांग्रेस के चुनाव घोषणा-पत्र में इस संबंध में कहा गया है—

‘अतः राष्ट्रीय एकता के प्रश्न ने अत्यधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया है, क्योंकि इसके अभाव में संकुचित रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ देश के सामाजिक और आर्थिक विकास में बाधक हो जाती हैं।’

घोषणा-पत्र के अंत में कहा गया है—

‘भारतवर्ष के जनसमाज की उन्नति राष्ट्रीय एकता और परस्पर सौहार्द तथा ऐक्य पर ही निर्भर करती है। सांप्रदायिक और संकुचित दृष्टिकोण न केवल सिद्धांततः बुरा है अपितु उसके परिणामस्वरूप राष्ट्र कमजोर होता है। अतः इन संकुचित, विभेदकारी और पृथकतावादी शक्तियों को समाप्त कर देश में एकता उत्पन्न करना आज के समय का प्राथमिक कार्य है।’

कांग्रेस का सांप्रदायिक व्यवहार

उपर्युक्त सभी बातें श्रेष्ठ हैं। किंतु यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि स्वयं कांग्रेस संस्था अपनी नीतियों का निर्धारण करते समय सांप्रदायिक और क्षुद्र जातिगत भावनाओं से प्रभावित होती रही है। केरल में मुसलिम लीग के साथ किया गया गठबंधन इतना निंदनीय कृत्य है कि जिसकी निंदा अब प्रधानमंत्री श्री नेहरू को भी करनी पड़ रही है और भारतीय जनता के सम्मुख अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए उन्हें राष्ट्रीय एकता सम्मेलन के तमाशे का भी आयोजन करना पड़ा।

कांग्रेस देश में राष्ट्रीय एकता प्रस्थापित करने के लिए अल्पसंख्यक और बहु-संख्यक की भाषा में सोचती है और प्रत्येक के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण निर्धारित करती है। जम्मू और कश्मीर रियासत का भारत में विलयन महाराजा द्वारा कर दिए जाने के बाद उस समय तक अंतिम नहीं समझा गया, जब तक कि कश्मीर संविधान सभा ने उस पर अपनी मोहर न लगा दी।¹ इसका कारण केवल यही था कि कश्मीर रियासत में बहु-संख्या मुसलमानों की है। स्मरण रहे, इस प्रकार की औपचारिकता अन्य किसी रियासत का विलय करते समय आवश्यक नहीं समझी गई।

कांग्रेस की दृष्टि में हिंदुत्व अभिशाप है

निर्वाचन के लिए टिकटों के वितरण करने में भी कांग्रेस सांप्रदायिक दृष्टिकोण का ही परिचय देती रही है। मुख्यमंत्री सम्मेलन, अल्पसंख्यकों के प्रति लिया गया निर्णय और केंद्रीय गृहमंत्री द्वारा उर्दू के संबंध में निर्देश जारी करना प्रत्येक समस्या को कांग्रेस के सांप्रदायिक दृष्टिकोण से देखने की बात को सत्य सिद्ध करते हैं। हिंदुत्व को तो कांग्रेस के नेतागण एक अभिशाप अथवा ईश्वर का दिया हुआ शाप समझते हैं।

प्रजा समाजवादी दल का रोना

प्रजा समाजवादी दल ने राष्ट्रीय एकता का रोना निम्न शब्दों में रोया है—

‘राष्ट्रीय एकता नष्ट होने का मुख्य कारण यह है कि भाषायी अल्पसंख्यक अपने साथ न्याय किए जाने के प्रति आश्वस्त नहीं हैं और उनके साथ दुर्व्यवहार होता रहा है। उनकी उपेक्षा और उनके साथ भेदभाव उस समय तक जारी रखा जाता है, जब तक समस्या हिंसक स्वरूप धारण नहीं कर लेती और तब मलहम लगाने की नीति का अवलंबन किया जाता है, किंतु रोग को जड़मूल से उखाड़ा नहीं जाता। फलतः आशा और विश्वास के स्थान पर अल्पसंख्यकों में निराशा उत्पन्न हो जाती है।’

1. जम्मू-कश्मीर रियासत के तत्कालीन महाराजा हरिसिंह ने 26 अक्टूबर, 1947 को भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 के तहत विलय-पत्र पर हस्ताक्षर किया था। बाद में 1951 में गठित जम्मू-कश्मीर संविधान सभा ने 15 फरवरी, 1954 को मत प्रस्ताव द्वारा राज्य को भारत में विलय की मंजूरी प्रदान की थी।

इससे भी आगे बढ़कर धार्मिक अल्पसंख्यकों एवं मुसलमानों का दिल जीतने और उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए यह दल आगे कहता है—

‘कांग्रेस की अवसरवादी नीतियों ने सांप्रदायिक और जातिगत भावनाओं को बढ़ावा दिया है, जिसके फलस्वरूप धार्मिक अल्पसंख्यकों में उचित या अनुचित एक भ्रम उत्पन्न हो जाता रहा है। उनके मस्तिष्क में व्याप्त इस भ्रम से राजनीतिक पूँजी एकत्र करने के लिए कतिपय निहित स्वार्थ वाले तत्त्व फिर प्रयत्नशील हो जाते हैं।’

उपचार की विचित्र औषधि

परंतु इसके उपचार की जो औषधि प्रजा समाजवादी दल ने अपने घोषणा-पत्र के 47वें पैरे में बतलाई है, वही यह सिद्ध करती है कि निहित स्वार्थ वाले तत्त्वों की श्रेणी की लपेट में प्रजा समाजवादी दल स्वयं भी आ जाता है। उक्त पैरे में कहा गया है—

“भारत की राष्ट्रीय एकता अत्यधिक महत्त्व की वस्तु है और उसकी प्राप्ति विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी-अपनी समस्याएँ और मत प्रकट करने का अधिकार देकर ही की जा सकती है। हमें सभी अल्पसंख्यक समुदायों को जीवन के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में भाग लेने का समान अवसर देना चाहिए। इसके साथ ही उन्हें अपनी पद्धति के द्वारा उपासना करने, अपने शैक्षिक और सांस्कृतिक संस्थान संगठित करने एवं अपनी भाषा, लिपि और साहित्य विकास करने के पूर्ण अवसर देना चाहिए। इस प्रकार के संस्थानों को राजकीय अनुदान और सहायता भी प्राप्त होना आवश्यक है। इसी भाँति अल्पसंख्यकों को उनके भाषायी और सांस्कृतिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी देने, राष्ट्रीय जीवन में उन्हें अपना अस्तित्व बनाए रखने और अल्पसंख्यकों को प्राप्त अधिकारों का उचित उपभोग वे लोग कर सकें, इसके लिए एक अल्पसंख्यक आयोग गठित करना चाहिए, जिसे उच्चतम न्यायालय के समान स्तर के योग्य और आवश्यक अधिकार प्रदान किए जाएँ।”

राज्य और राष्ट्र में भेद

पर क्या उपर्युक्त कथन का अर्थ सरकार में अविश्वास व्यक्त करना नहीं होगा? पर फिर भी घोषणा-पत्र में आगे कहा गया है कि

‘यद्यपि अल्पसंख्यकों को अपने मत के अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए फिर भी उन्हें राज्य के प्रति निष्ठा और उसके उद्देश्यों एवं मानदंडों के प्रति अपनी निष्ठा बनाए रखनी चाहिए।’

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रजा समाजवादी दल ने राज्य और राष्ट्र में भेद किया है। वह राज्य के प्रति भक्ति और निष्ठा को तो आवश्यक समझता है, किंतु राष्ट्र के प्रति नहीं।

कम्युनिस्ट भी आयोग के हिमायती

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी भी इसी भाँति सांप्रदायिकता की घोर निंदा कर और उसे भारत की प्रगति में अभिशाप बताकर अल्पसंख्यकों के लिए एक अल्पसंख्यक आयोग नियुक्त करने का औचित्य प्रकट कर कहती है कि—

‘स्थायी अल्पसंख्यक आयोगों की केंद्रीय और राज्य स्तरों पर नियुक्ति की जानी चाहिए और उनका कार्य क्षेत्र अल्पसंख्यकों की समस्याओं का अध्ययन, उनकी कठिनाइयों की औचित्यता का विचार कर उनके अधिकारों और हितों की रक्षा के उपायों का प्रयत्न करना चाहिए।’

उर्दूभाषियों के हितों की रक्षा हो

कम्युनिस्ट पार्टी इसके आगे कहती है कि—

‘उर्दूभाषी अल्पसंख्यकों के सभी अधिकारों का कठोरतापूर्वक पालन करना चाहिए और उर्दूभाषियों की सभी कठिनाइयों का योग्य निदान अविलंब किया जाना आवश्यक है।’

राष्ट्रीयता प्रगति की दुश्मन है

इस संबंध में यहाँ यह स्मरण कराना आवश्यक होगा कि कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता में विश्वास नहीं करती। इतना ही नहीं अभी रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की कांफ्रेंस में राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता की निंदा करते हुए उन्होंने इसे ‘प्रगति का सबसे बड़ा दुश्मन’ कहा था और घोषित किया था कि अंततोगत्वा यह एक ‘बुर्जुआ भावना’ है।

स्वतंत्र पार्टी का दृष्टिकोण

स्वतंत्र पार्टी अल्पसंख्यकों के संरक्षण की बात साधारण भाषा में व्यक्त करते हुए कहती है कि—

‘स्वतंत्र पार्टी संविधान में वर्णित सभी अनुच्छेदों के अनुसार समस्त अल्पसंख्यक वर्ग के हितों और अधिकारों की रक्षा करेगी।’

इससे भी आगे बढ़कर स्वतंत्र पार्टी यह भी घोषित करती है कि वह देश के किसी भी संप्रदाय के हितों की रक्षा के लिए किसी भी जातीय समुदाय पर विश्वास करना उचित नहीं समझती और वह इस प्रकार के संगठनों को हतोत्साहित करते हुए उन्हें प्रतिबंधित करने का भी सुझाव देती है।

उपर्युक्त विश्लेषण ग़लत

पर कांग्रेस प्र.स. दल, स्वतंत्र पार्टी और कम्युनिस्टों द्वारा किया गया उक्त विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस देश में अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं किया जा रहा है। हम समझते हैं कि मुसलिम-कन्वेंशन से बढ़कर

अल्पसंख्यकों की असुविधाओं की चिल्ल-पों नहीं मचाई जा सकती। परंतु सत्य तो यह है कि इन तथाकथित अल्पसंख्यकों के साथ रत्ती भर भी भेदभाव नहीं किया जाता, पक्षपात उनके साथ भले हो जाता तो। अतः ये पार्टियाँ इस प्रकार का प्रचार कर चुनाव में लाभ उठाने के लिए एक फ़ौज तैयार करना चाहती हैं, जो कि अत्यंत निंदनीय है। इतना ही नहीं, यदि इन दलों द्वारा सुझाए गए उपायों का अवलंबन किया गया तो ये समुदाय राष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन से पूर्ण-रीति से पृथक् हो जाएँगे।

राष्ट्र एक जीवमान इकाई

भारतीय जनसंघ एक प्रकार से बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की संज्ञाओं को न तो उचित समझता है और न उक्त विभाजन को स्वीकार करता है। वह भारत को एक अखंड, अविभाज्य एक राष्ट्र समझता है और संपूर्ण राष्ट्र की संस्कृति एक है, इस बात पर दृढ़ विश्वास एवं आस्था रखता है। जनसंघ धर्म के आधार पर भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की कल्पना को स्वीकार नहीं करता। वह तो एक राष्ट्र एक संस्कृति और एक देश के सिद्धांत को मानता है, इस बात को जानते हुए भी कि ऐतिहासिक और कुछ अन्य कारणों से इस देश के जनसमाज का कुछ अंश राष्ट्र-जीवन की पुनीत मूल धारा से पृथक् हो गया है और कुछ अंशों में राष्ट्रविरोधी भी हो गया है। उनका उपचार करने में जनसंघ विश्वास रखता है और उनकी पृथक्तावादी मनोवृत्ति का समर्थन करने को वह कदापि तत्पर नहीं है। जनसंघ का यह भी मत है कि राष्ट्रीयता का माप उनकी श्रद्धाओं से किया जाना चाहिए, न कि राजनीतिक स्वार्थों के आधार पर। हमारे अनुसार तो राष्ट्र एक जीवमान इकाई है।

धर्म का राजनीति से संबंध नहीं

भारतीय जनसंघ का मत है कि यदि राष्ट्र में ऐक्य प्रस्थापित करना है तो उसके लिए रचनात्मक उपायों का सहारा लेना पड़ेगा। जहाँ एक ओर वह प्रत्येक को श्रद्धा, पूजा-पद्धति तथा उपासना की स्वतंत्रता की गारंटी देता है, वहाँ वह धर्म को राजनीति में घुसेड़ने का पूर्ण विरोधी है और उस आधार पर विशेष सुविधाएँ माँगने अथवा देने को राष्ट्रघातक समझता है। इसलिए भारतीय जनसंघ समस्त भारतीयों में भारतीय संस्कृति के प्रति दृढ़ आस्था एवं श्रद्धा उत्पन्न कर राष्ट्रीय एकता प्रस्थापित करने का प्रयास करेगा।

एकात्मक शासन चाहिए

जहाँ तक संविधान में वर्णित समानता के अधिकार² का प्रत्येक नागरिक द्वारा

2. भारत के संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों में एक है समानता का अधिकार, जो कि अनुच्छेद 14-16 में सन्निहित हैं। इसमें सामूहिक रूप से क़ानून के समक्ष समानता तथा गैर-भेदभाव के सामान्य सिद्धांत शामिल हैं।

उपभोग किए जाने का प्रश्न है, संविधान में संशोधन करने की कोई आवश्यकता नहीं है पर फिर भी जनसंघ की मान्यता है कि संविधान में संशोधन कर उसका संघात्मक स्वरूप समाप्त कर देना चाहिए। उसके स्थान पर एक एकात्मक शासन का गठन करना चाहिए, जिसमें सत्ता का विकेंद्रीकरण निम्नतम स्तर पर किया जा सके। देश में राष्ट्रीय एकता प्रस्थापित करने का यही एकमेव और आवश्यक मार्ग है, जिससे देश में एकता और सुरक्षा की भावना उत्पन्न की जा सकती है।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 15, 1962



6

उद्देश्य में समानता परंतु साधनों में विचलन

समाजवादी दल देश की आर्थिक गतिविधियों में राज्य की भागीदारी के कार्यक्रम लागू कर आम आदमी की बेहतरी चाहते हैं, जबकि जनसंघ शक्ति के संकेंद्रण को रोकने की सामाजिक आवश्यकता के अनुसार व्यक्ति के रचनात्मक आग्रह के पूर्ण उपयोग को अनुमित और सहायता के माध्यम से यह उद्देश्य प्राप्त करना चाहता है।

विभिन्न राजनीतिक दलों के आर्थिक कार्यक्रम उद्देश्य के मामले में बमुश्किल ही भिन्न होते हैं। सभी आम आदमी की जीवन स्तर को उठाना और आय एवं संपत्ति की असमानता को घटाना चाहते हैं। तथापि इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उनके माध्यमों में व्यापक अंतर होता है। समाजवादी दल देश की आर्थिक गतिविधियों में राज्य की भागीदारी के कार्यक्रम लागू कर के यह करना चाहते हैं, जबकि गैर-समाजवादी दल शक्ति के संकेंद्रण को रोकने की सामाजिक आवश्यकता के अनुसार व्यक्ति के रचनात्मक आग्रह के पूर्ण उपयोग को अनुमित और सहायता के माध्यम से यह उद्देश्य प्राप्त करना चाहता है।

कांग्रेस

कांग्रेस का घोषणा-पत्र समाजवादी राज्य के अपने रुख को दोहराते हुए लिखता है—

‘भारत की मूल समस्या मात्र लोगों के जीवन स्तर में वृहत्तर वृद्धि करना भर नहीं है बल्कि प्रगतिगामी रूप से सामाजिक और आर्थिक समानता लाना भी है। सामाजिक संरचना में वर्तमान असमानताएँ और विषमताएँ नैतिक रूप से गलत हैं और यह सभी मोर्चों पर प्रगति को बाधित करेंगी और भारी विकृतियाँ उत्पन्न करेंगी। यह उद्देश्य केवल समाजवादी और सहकारी दृष्टिकोण से ही प्राप्त किया जा सकता है।’

पी.एस.पी. और सी.पी.आई.

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र समानता की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखता है—

‘प्रजा सोशलिस्ट पार्टी मानती है कि भारत में स्वतंत्रता की चाहत स्वयं को समानता के लिए संघर्ष में अभिव्यक्त करती है। पार्टी द्वारा किया जा रहा यह संघर्ष सभी प्रकार के वर्ग अंतर, चाहे वह आर्थिक स्थिति, सामाजिक दर्जा या सांस्कृतिक लाभों से संबंधित हो, के विरुद्ध है।’

एक अन्य अनुच्छेद में यह घोषणा करता है—

‘प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का समाजवाद की अवधारणा में अखंड विश्वास है, जो वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देता है और इसके स्थान पर अवसर की समानता, आय विषमता में कमी, सामाजिक भार के नियंत्रण में लोगों की वास्तविक भागीदारी और सामाजिक गतिशीलता पर आधारित व्यवस्था स्वीकार करती है, जो देश के प्रत्येक नागरिक के विकास और उसके भीतर की समस्त सृजनात्मकता और उद्यमिता के पूर्ण उपयोग में सहायता करता है।’

कम्युनिस्ट पार्टी ने चुनावी घोषणा-पत्र में अपने उद्देश्यों को परिभाषित करने या समाजवाद में अपने विश्वास को दोहराने की परवाह नहीं की। संभवतः उनके सुपरिचित चरित्र को भी किसी दोहराव की आवश्यकता न होगी।

स्वतंत्र पार्टी

स्वतंत्र पार्टी ने आम आदमी के बारे में अपनी चिंताओं को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया—

अपनी मूलभूत नीतियों के अनुरूप स्वतंत्र पार्टी आम आदमी को, सरकार के प्राथमिक दायित्व के रूप में भोजन, कपड़ा और आवास उपलब्ध कराने को, पूर्ण रोजगार, और अधिक खाद्यान्न उत्पादन, और अधिक सिंचाई कार्य, और अधिक विद्यालय को और आम आदमी के उपभोग के लिए वस्तुओं का उत्पादन करनेवाले तथा अधिक लघु उद्योगों को प्रथम और सर्वाधिक प्राथमिकता देती है।

यद्यपि पार्टी असमानता में कमी के संदर्भ में कुछ नहीं कहती है, परंतु निश्चित रूप से एकाधिकार के प्रति अपने विरोध की घोषणा करती है। यह कहती है—

पार्टी राज्य या मुक्त क्षेत्र में शक्ति के एकाधिकार और संकेद्रण के विरुद्ध है। यह जब भी आवश्यकता होगी, एकाधिकार विरोधी कानून को प्रोत्साहन देगी और कुछ क्षेत्रों में राज्य व्यापार निगम और जीवन बीमा निगम जैसे सरकारी निगमों की वर्तमान एकाधिकारी स्थिति को समाप्त करेगी।

बी.जे.एस. का रुख

भारतीय जनसंघ न समाजवाद से जुड़ा है, न ही पूँजीवाद से। इसलिए यह लोगों की आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए दार्शनिक दृष्टिकोणों की परवाह नहीं करता। इसका स्पष्ट कहना है कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच सैद्धांतिक भेद समाप्त किया जाना चाहिए। हमें उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है, ताकि लोगों की आवश्यकताओं और देश की रक्षा आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। तथापि उत्पादन कार्यक्रमों को इस प्रकार नियोजित किया जाए कि इसका परिणाम आर्थिक शक्ति के संकेद्रण के रूप में न हो और वर्तमान असमानताएँ और न बढ़ें। वस्तुतः असमानताओं से प्रतिबंधित बाजार निर्मित हुआ और इससे उत्पादन और रोजगार में गिरावट आई। यदि सभी के लिए काम के प्रावधान और सेवाओं या उत्पादित वस्तु पर पर्याप्त प्रतिफल के जरिए आम आदमी की क्रयशक्ति बढ़ती है तो सामाजिक और आर्थिक असंतुलन को परिशोधित किया जा सकता है। सबसे निचले स्तर पर उत्पादकता और मजदूरी में वृद्धि का स्वतः अर्थ होगा, दूसरों के लिए रोजगार। यदि पूँजी निर्माण करना है तो यह राष्ट्रीय औसत से ऊपर के लोगों की बचत से होनी चाहिए। पर्याप्त मजदूरी से वंचित मजदूरों के जरिए पूँजी संचय उद्योग को एक संभावनाशील बाजार से वंचित करता है। इससे बेरोजगारी बढ़ती है। इसलिए भारतीय जनसंघ ने न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी, न्यायोचित वितरण और पूर्ण रोजगार को किसी नियोजन के उद्देश्य के रूप में अपने सामने रखा है।

योजना के प्रति मूल दृष्टिकोण

लगभग सभी राजनीतिक दलों ने देश की आर्थिक समस्याओं के लिए एक योजनाबद्ध दृष्टिकोण की आवश्यकता बताई है। पूर्व में स्वयं को सभी योजनाओं के विरुद्ध घोषित कर चुकी स्वतंत्र पार्टी ने भी अपने चुनावी घोषणा-पत्र में इतने स्पष्ट ढंग से नहीं कहा है। इसके विपरीत यह 'वैधानिक सीमा के भीतर लागू किए जानेवाले नियोजन के पक्ष में है।'

यद्यपि योजना के रीति, विधि और मशीनरी के बारे में मतभेद हैं। एक छोर पर कांग्रेस है, जो वर्तमान नियोजन और योजना आयोग से संतुष्ट है तो दूसरे छोर पर स्वतंत्र पार्टी है, जो योजना आयोग को खत्म करना और नियोजन को सरकार के नीतियों के निर्माण और वार्षिक कार्यक्रमों तक सीमित करना पसंद करेगी। स्वतंत्र पार्टी ने योजना आयोग के वैधानिक अधिकार को चुनौती दी है और इसे संसद की सर्वोच्चता के विरुद्ध मानती है।

घोषणा-पत्र कहता है कि 'पार्टी बहु प्रचारित योजना आयोग, जो संविधानोत्तर दिशा-निर्देश से केंद्र और राज्य सरकारों में एक गैर-जवाबदेह सुपर-सरकार लाने की ओर उन्मुख है, को खत्म करके संसद और जनता की वास्तविक और प्रभावी सर्वोच्चता को बहाल करेगी।'

जहाँ तक वैधानिक स्थिति की बात है, स्वतंत्र पार्टी सही हो सकती है। परंतु वह भूल जाती है कि संविधान के संघीय स्वरूप के देश में निश्चित रूप से किसी समन्वय प्रणाली की आवश्यकता है। इसके अलावा, आर्थिक नियोजन निचले स्तर पर प्रभावी रूप से नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म नियोजन की उपयोगिता और आवश्यकता को मानने के बावजूद हम वृहत् नियोजन को छोड़ नहीं सकते।

यदि वृहत् नियोजन के वित्तीय और मौद्रिक स्तरों को नियमित किया जाता है तो भी एक प्रणाली चाहिए, जो आवश्यक जानकारी उपलब्ध करा सके। इसके अलावा यदि राज्य सभी मामलों में केंद्र के निरंतर दिशा-निर्देशों और आदेशों पर निर्भर न भी हों तो भी परस्पर परामर्श और निर्णय प्रक्रिया के लिए कोई प्रणाली होनी चाहिए। राष्ट्रीय विकास परिषद् का गठन इसी के अनुरूप किया गया।

जनसंघ के चुनावी घोषणा-पत्र में कहा गया है कि इसलिए बी.जे.एस. नियोजन की आवश्यकता और हमारे संविधान के वर्तमान स्वरूप का ध्यान रखते हुए योजना आयोग और एन.डी.सी. के संविधान में परिवर्तन का सुझाव देता है।

भारतीय जनसंघ योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद् का पुनर्गठन करेगा। आयोग को राजनीतिक तत्त्वों से मुक्त कर के एक विशेषज्ञ संस्था बनाया जाएगा।

‘एन.डी.सी. में केंद्रीय कैबिनेट मंत्रियों और राज्यों के मुख्यमंत्रियों के अलावा आनुपातिक आधार पर संसद् और राज्य विधानमंडलों के निर्वाचित सदस्यों को शामिल किया जाएगा।’

इस आधार पर इन दोनों संस्थाओं का पुनर्गठन नियोजन को उसके भेदभावपूर्ण चरित्र से मुक्त करेगा और उसे सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय बनाएगा। इसकी आवश्यकता व्यापक रूप से महसूस की गई और प्रधानमंत्री ने एक सर्वदलीय परामर्श समिति की नियुक्ति की। परंतु यह समिति प्रभावी रूप से कार्य करने में विफल रही। लोकसभा की अनुमान समिति ने भी अपनी एक रिपोर्ट में योजना प्रणाली के ऐसे पुनर्गठन का सुझाव दिया था।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने योजना प्रणाली के संबंध में कुछ भी नहीं कहा है, परंतु पी.एस.पी. की राय है कि ‘लोकतांत्रिक रूप से व्यवस्थित जिला प्रशासन को आर्थिक नियोजन की प्रधान इकाई बनाना होगा।’

निःसंदेह यह रूढ़िवादिता से अधिक मायने रखता है, क्योंकि इन प्रणालियों के कारण पी.एस.पी. ने भू-सुधार कार्यक्रमों का क्रियान्वयन सौंपने का प्रस्ताव किया था। परंतु वह भूल जाती है कि आर्थिक नियोजन का अर्थ महज भू-सुधार नहीं है।

— ऑर्गनाइज़र, जनवरी 15, 1962
(अंग्रेज़ी से अनूदित)



7

राष्ट्र की सुरक्षा के प्रश्न को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाए

यह आलेख ऑर्गेनाइजर में 25 दिसंबर, 1961 को प्रकाशित हुआ।

बाह्य आक्रमण अथवा अन्य कोई आंतरिक संकट किसी भी राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए संकट का कारण बन सकता है। इसी प्रकार यदि कोई देश आंतरिक दृष्टि से जर्जर हुआ तो वह शीघ्र ही बाह्य आक्रमणों का शिकार बन बैठता है। लेकिन बाह्य आक्रमण के फलस्वरूप कई बार राष्ट्र में राष्ट्रीय एकता की उग्र भावना भी उत्पन्न हुई है और इसलिए उसे संकट के समय का वरदान भी कहा जाता है। अंग्रेजी की एक कहावत के अनुसार ऐसे राष्ट्र के विषय में यह कहा गया है कि वह युद्धकाल में तो जीवित रहता है, पर शांति का समय उसके लिए मृत्यु का द्वार है। फिर भी, इस तर्क के आधार पर कोई युद्ध की कल्पना अथवा योजना नहीं कर सकता। लेकिन प्रत्येक राष्ट्र को आत्मरक्षार्थ सैनिक एवं मानसिक दृष्टि से सदैव सिद्ध रहना आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना कोई भी राष्ट्र संसार में अपनी स्वतंत्रता को अधिक दिन तक टिकाकर नहीं रख सकता। इतना ही नहीं, एक राष्ट्र को बाह्य आक्रमणों से आत्मरक्षा करने की तैयारी के अतिरिक्त देश में विद्यमान विघटन एवं पृथक्तावादी तत्त्वों का सामना करने के लिए भी तत्पर रहना चाहिए। पर यदि देश में कोई ऐसा राजनीतिक दल है, जो राष्ट्र की एकता और अखंडता की ओर से उदासीन है तो उसके द्वारा न तो विघटनवादी तत्त्वों का सामना करना ही संभव है और न ही वह शत्रु का प्रतिकार कर

सकता है। वास्तव में ऐसा दल, जो राष्ट्रीय सुरक्षा की ओर से इस प्रकार उदासीन हो तो वह राष्ट्र के अस्तित्व को बनाए रखने में भी सफल नहीं हो सकता।

जनसंघ का कथन अनसुना किया गया

जब कम्युनिस्ट चीन द्वारा भारत के विस्तृत भू-भाग पर अनुचित क़ब्ज़ा किए जाने की बात प्रकाश में नहीं आई थी, जनसंघ को छोड़कर देश का प्रत्येक राजनीतिक दल राष्ट्र की सुरक्षा की ओर से उदासीन था और पाकिस्तान द्वारा दी जानेवाली धमकियों को ये दल सांप्रदायिक मस्तिष्क का प्रलाप कहकर शांत हो जाते थे अथवा पाकिस्तान को अपनी सरकार द्वारा विरोध-पत्र भेजने को पर्याप्त समझ उसके प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाए जाने के समर्थक थे। इन राजनीतिक दलों ने चीन की ओर से भी कभी संकट उपस्थित हो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की थी और पंचशील के भावोन्मेष में वे इस ओर से पूरी तरह से उदासीन थे।

चीन की यह वकालत

यही कारण है कि सन् 1957 के चुनावों के समय प्र.स. और समाजवादी दलों ने जहाँ अपने घोषणा-पत्रों में तिब्बत पर चीन के क़ब्ज़े और दक्षिण-पूर्वी एशिया में उसके बढ़ते प्रभाव पर चुप्पी साध रखी थी, वहाँ कांग्रेस ने भारत-चीन की मित्रता का राग अलाप कर देश का बहुत बड़ा अहित किया था। सन् 1957 के कांग्रेस चुनाव घोषणा-पत्र में कहा गया था कि 'पिछले कई वर्षों में चीन ने एक जनवादी गणतंत्र प्रस्थापित कर अपने को एक सबल राष्ट्र के रूप में खड़ा कर लिया है, जो निरंतर प्रगति करता जा रहा है। भारत और चीन के राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे में पर्याप्त भिन्नता होने के बाद भी चीन भारत का एक महान् पड़ोसी मित्र राष्ट्र है। चीन को राष्ट्र संघ में स्थान दिलाने के लिए भारत सदैव प्रयत्न भी करता रहा है, परंतु हमें दुःख है कि संसार के अनेक राष्ट्रों ने इसका विरोध किया है। लेकिन विश्व के एक चौथाई जनसंख्या वाले इस देश को जब तक राष्ट्र संघ में स्थान नहीं दिया जाता, वह वास्तविक अर्थों में न तो पूर्ण प्रतिनिधित्व वाला एक विश्व-संगठन बन सकता है और न ही सुदूर पूर्व अथवा दक्षिण-पूर्वी एशिया की समस्याएँ ही चीन के सहयोग के बिना हल की जा सकती हैं।'

क्या यह देशद्रोह नहीं?

पर जब यह घोषणा-पत्र तैयार किया गया था, उस समय तक चीन ने लद्दाख के क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाकर भारतीय क्षेत्र के अंदर अपनी एक सड़क भी बना ली थी। भारत सरकार पेकिंग को इस संबंध में विरोध-पत्र भी प्रेषित कर चुकी थी, लेकिन भारतीय जनता को इसकी सूचना नहीं दी गई, यहाँ के कांग्रेसी नेता यह सब जानते थे।

कम-से-कम पंडित नेहरू, जिन्होंने कांग्रेस का उक्त घोषणा-पत्र तैयार किया था, इससे भलीभाँति परिचित ही थे। ऐसी स्थिति में शत्रु को चेतावनी न देकर और भारतीय जनता का आह्वान न करते हुए कांग्रेस का घोषणा-पत्र चीन की महानता और उसकी आर्थिक प्रगति का चिट्ठा देश के सम्मुख रख रहा था, जिसके लिए देशद्रोही की संज्ञा ही प्रयोग की जा सकती है।

हमने चेतावनी दी थी

इन सब दलों से भिन्न भारतीय जनसंघ ही उस समय एकमात्र ऐसा दल था, जो चीन की ओर से संशंकित था और जिसने पाकिस्तान की शत्रुतापूर्ण कार्रवाइयों का उल्लेख करने के पश्चात् सन् 1951 के अपने चुनाव घोषणा-पत्र में लिखा था कि भारत का उत्तरी सीमांत भी सुरक्षित नहीं है। भारत के शांतिपूर्ण दृष्टिकोण की उपेक्षा करते हुए चीन ने तिब्बत की स्वाधीनता नष्ट कर उसे गुलाम बना लिया है, जो सह-अस्तित्व की नीति के विरुद्ध है। नेपाल से संधि¹ करते समय भी चीन ने वहाँ पर भारत की विशेष स्थिति को ध्यान में नहीं रखा है। इसी भाँति चीन नक्शों पर भारतीय क्षेत्र को दिखाना, जिसे गलती से दिखाया गया बताया गया था, वहाँ चीनी सेनाओं के प्रवेश (जिसका कारण गलतफहमी बताया गया था) और दक्षिण पूर्वी एशिया के छोटे-छोटे देशों में चीनियों की जो गतिविधियाँ चल रही हैं, उनकी ओर से भारत को सतर्क रहना चाहिए। 'इससे स्पष्ट है कि जनसंघ ने चीनियों को समझने में उस समय भी कोई गलती नहीं की थी।'

काश! सरकार पहले चेतती तो...

सन् 1957 में जनसंघ को छोड़कर अन्यान्य राजनीतिक दल देश की सुरक्षा की ओर से उदासीन थे और राजनीतिक और आर्थिक कार्यक्रमों को ही वे महत्त्व दे रहे थे। लेकिन जनसंघ ने उस समय सुरक्षा के प्रश्न को सर्वोपरि महत्त्व का प्रश्न बताया था और उसके लिए अपने सुझाव देते हुए उसने कहा था कि देश की सेनाओं को बढ़ाने, विकसित करने, उनमें राष्ट्रीय भावनाएँ उत्पन्न करने के साथ ही उन्हें आधुनिकतम शस्त्रों से सुसज्जित करना चाहिए। युवकों के लिए अनिवार्य सैनिक शिक्षा दिए जाने का भी हमने सुझाव दिया था। यह जानते हुए कि अपने अल्प साधनों के द्वारा राज्य-सरकारें सीमांत क्षेत्र की उचित सुरक्षा व्यवस्था नहीं कर सकतीं, केंद्र के अधीन एक सीमांत पुलिस एस्टैब्लिशमेंट

1. नेपाल और पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना के मध्य राजनयिक संबंधों की स्थापना 1955 में हुई और 1960 में राजदूतों का आदान-प्रदान हुआ। 1960 में नेपाल और चीन ने सीमा समझौते और शांति और दोस्ती के लिए एक अलग संधि पर हस्ताक्षर किए। नेपाल ने संयुक्त राष्ट्र में चीन की सदस्यता का भी समर्थन किया। 1961 में काठमांडू और चीन के मध्य तिब्बत होते हुए सड़क निर्माण पर सहमत हुए, जिसका प्रयोग 1962 के युद्ध में चीनी सेना द्वारा किया गया।

स्थापित करने का सुझाव भी जनसंघ ने दिया था। यदि सीमांत-निरीक्षण एवं सुरक्षा का यह कार्य केंद्र ने पहले से ही अपने हाथ में लिया होता तो अक्साइ चिन में चीनियों के घुसने के समाचार का ज्ञान सरकार को काफी दिनों पूर्व ही हो जाता।

आज जब कि हमारी सीमाएँ असुरक्षित हैं और आक्रमण जारी है, तब राष्ट्र की सुरक्षा के प्रश्न पर कोई भी मौन नहीं रह सकता। पर यह दुःख की बात है कि विभिन्न राजनीतिक दलों ने इस प्रश्न को अपने चुनाव घोषणा-पत्रों में अधिक महत्त्व नहीं दिया है।

चीन के आक्रमण के प्रश्न पर कम्युनिस्ट

चुप्पी क्यों साधे हुए हैं?

तीन प्रमुख बातें

राष्ट्र की सुरक्षा की दृष्टि से हमें तीन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है— अपनी सीमाओं की सुरक्षा करने के साथ हम यह भी देखें कि यहाँ पंचमांगी तत्त्व न रहने पाएँ और न कोई अनधिकृत व्यक्ति उक्त क्षेत्र में प्रवेश कर सके। दूसरे हमें अपने भूभाग को मुक्त कराना चाहिए और तीसरे देश की रक्षा-व्यवस्था में वृद्धि कर सेना की सभी असुविधाओं का हल शीघ्रातिशीघ्र ढूँढ़ निकालना चाहिए।

जनसंघ के सुझाव

सीमांत सुरक्षा और घुसपैठ को रोकने के लिए भी जनसंघ को छोड़कर किसी भी दल ने अपने सुझाव नहीं दिए हैं। जनसंघ का कहना है—

केंद्र को सीमांत क्षेत्र की रक्षा के लिए एक विशेष पुलिस दल प्रस्थापित करने के साथ ही तस्कर व्यापार रोकने और अनुचित घुसपैठ को रोकने का भी प्रबंध करना चाहिए। भारत के गुप्तचर विभाग का आधुनिकीकरण करते हुए विदेशी गुप्तचरों और पंचमांगियों की कार्रवाइयों को उनकी हरकतों बढ़ने से पहले ही रोकने का उपाय करना चाहिए। इसी भाँति जनसंघ का मत है कि असम और कश्मीर में अनधिकृत रूप से आए पाकिस्तानियों को तुरंत देश के बाहर निकाल देना चाहिए।

सीमांत-क्षेत्र के विकास के लिए विशेष प्रयत्न

सीमांत क्षेत्र विकास पर बल देते हुए जनसंघ ने अपने घोषणा-पत्र में कहा है कि 'सीमांत क्षेत्र के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए जाएँगे। इस दृष्टि से योजना बनाकर उन्हें आवश्यक धन प्रदान किया जाएगा और जहाँ आवश्यक होगा उनका कार्यान्वयन सुरक्षा-विभाग द्वारा किया जाएगा। यातायात के साधनों का विकास करने के साथ इन क्षेत्रों के आर्थिक विकास की भी आवश्यक व्यवस्था की जाएगी।' प्रजा समाजवादी दल ने भी इसी भाँति सीमांत क्षेत्र में विशेष प्रयत्न करने की बात को दुहराया है।

जहाँ तक विदेशी चंगुल में पड़े भारतीय भूभाग को मुक्त कराने का प्रश्न है, सभी दल उसको आवश्यक बताते हैं। किंतु आक्रमण समाप्त करने के लिए बताए गए उनके उपायों में परस्पर बहुत अधिक भिन्नता है और इसका कारण प्रत्येक दल की अपनी विदेश-नीति और संसार के शक्तिगुटों की ओर देखने का उनका दृष्टिकोण है।

चीन व पाक के कारनामे

पाकिस्तान और चीन इस समय भारत के भूभाग को दबाए हुए बैठे हैं। युद्धविराम-रेखा समझौते के कारण कश्मीर का एक-तिहाई भूभाग पाकिस्तान के कब्जे में है। चीन ने भारतीय भूभाग के विशाल क्षेत्र पर अपना दावा उपस्थित कर उसके कुछ अंश को हस्तगत कर लिया है और सभी समझौतों को तोड़ते हुए वह अपनी ज़िद पर अड़ा है। भारत सरकार ने भी उक्त क्षेत्र को मुक्त करने की दृष्टि से कोई भी पग नहीं उठाया है। जहाँ तक पाकिस्तान का संबंध है, उसने युद्ध विराम रेखा का बड़े पैमाने पर उल्लंघन नहीं किया है। यद्यपि समय-समय पर पाकिस्तानी उक्त रेखा को पारकर भारतीय ग्रामों में लूटमार करते रहते हैं और पाकिस्तान 'जेहाद' की धमकियाँ देता रहता है। पूर्वी सीमा पर भी तुकेरग्राम और पथरिया जंगल के क्षेत्र में फायरिंग आदि की घटनाएँ हुई हैं और पाकिस्तान ने अपना अनुचित अधिकार वहाँ पर बना रखा है। किंतु चीन भारत को बराबर धमकियाँ देने के साथ आगे भी बढ़ता जाता है और भारतीय विरोध-पत्रों को उसने कभी भी मान्य नहीं किया है।

कम्युनिस्टों द्वारा वाक्खल का सहारा

स्वतंत्र पार्टी पाक-अधिकृत कश्मीर के भूभाग को मुक्त कराने के प्रश्न पर मौन है। प्र.स. दल ने अपनी विदेश नीति का विवेचन करते हुए कहा है कि जब पाक और चीन ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया है तो प्रतिरक्षा मंत्रालय और विदेश-विभाग का इन क्षेत्रों को मुक्त करना प्राथमिक कर्तव्य है। पश्चिमी क्षेत्र में भारत की सीमाओं की चर्चा करते हुए कम्युनिस्ट पार्टी ने कहा है कि 'संपूर्ण जम्मू और कश्मीर राज्य, जिसमें पाक अधिकृत भूभाग भी सम्मिलित है, भारत का भाग है।' इसके अतिरिक्त चीनी आक्रमण की ओर से लोगों का ध्यान हटाने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी पाकिस्तान के काले कारनामों का उल्लेख कर रही है। परंतु अपने घोषणा-पत्र में वे अपेक्षाकृत शांत और नम्र हैं। इसका कारण यह है कि यदि पाकिस्तान के विरुद्ध उस कार्रवाई की माँग उन्होंने की तो उन्हें भय है कि कहीं चीन का प्रतिकार करने की भी भावना समाज में उत्पन्न न हो जाए और इसलिए वे शब्दांडबंद करते हुए वाक्खल कर रहे हैं। कांग्रेस ने अपने घोषणा-पत्र में पाक और चीन अधिकृत भूभाग के लिए पैराग्राफ दिया है और आशा प्रकट की है कि इन क्षेत्रों को मुक्त करा लिया जाएगा। उन्होंने अपनी बात को पुनः दुहराया है कि 'अब और आगे आक्रमण' हम बरदाश्त नहीं करेंगे। पर आक्रमण को समाप्त करने के लिए

शक्ति प्रयोग करने के विषयों में चुप हैं। अतः कांग्रेस के विषय में यह कहा जा सकता है कि इन प्रश्नों पर उसकी वही नीति रहेगी जो अब तक है।

स्वतंत्र पार्टी की यह माँग

स्वतंत्र पार्टी चीन के खतरे को अनुभव करती है और उसे पाकिस्तान के संकट से भयानक भी मानती है। इसलिए उन्होंने पाकिस्तान से संयुक्त सुरक्षा संधि की बात भी कही थी। उनका शायद यह भी मत है, कम्युनिस्ट चीन की चुनौती के कारण हमें अपनी तटस्थ नीति का परित्याग कर पश्चिमी गुट में सम्मिलित हो जाना चाहिए। फिर भी चीन के विरुद्ध सैनिक शक्ति का प्रयोग करने के वे विरुद्ध हैं और उनके आगरा-अधिवेशन में इस आशय के एक संशोधन का उत्तरदायी अधिकारियों ने विरोध किया था और वह अस्वीकृत हो गया था।

कम्युनिस्ट चीन को आक्रामक नहीं मानते

चीनी आक्रमण के प्रश्न पर कम्युनिस्ट विचित्र संकट में पड़ जाते हैं। यद्यपि कम्युनिस्ट पार्टी को मैकमोहन रेखा और परंपरागत सीमाओं को मानने के लिए तो बाध्य होना पड़ा है और उनके महामंत्री श्री अजय घोष² ने यह भी कहा है कि यदि चीनी मैकमोहन रेखा को पार करते हैं और उस अवस्था में भारत सरकार जो भी क्रदम उठाएगी, उसका वे समर्थन करेंगे। परंतु वे जानते हैं कि चीनी ऐसा करनेवाले नहीं हैं और वे यह भी समझते हैं कि वर्तमान भारत सरकार चीन के विरुद्ध शस्त्र उठाने वाली नहीं है। अतः वैसे भी और विशेषकर अब इस निर्वाचन-काल में वह उक्त कथन कहकर भारत सरकार को आश्वस्त कर सकते हैं। किंतु कम्युनिस्ट पार्टी चीन को आक्रामक कहने को तत्पर नहीं है। दिनांक 18 दिसंबर, 1961 के 'स्टेट्समैन' के अनुसार जलपाईगुड़ी की एक सभा में भाषण करते हुए संसद् सदस्या श्रीमती रेणु चक्रवर्ती³ ने यही बात दुहराई है और कहा है कि यह गलतफहमी वार्ता द्वारा दूर की जा सकती है। इतना ही नहीं वार्ता की विफलता के लिए भी उन्होंने भारत को दोषी ठहराया है, पर यह उनका निजी मत न होकर पार्टी का मत है। उनके घोषणपत्र में कहा गया है कि 'हम सदा से कहते आए हैं कि भारत और चीन के इस 'विवाद' (आक्रमण नहीं) का समाधान शांतिपूर्ण वार्ता के जरिए होना चाहिए और यह बात राष्ट्रों के बीच विवाद के संबंध में भारत के दृष्टिकोण से पूरी तरह मेल रखती है। इसमें संदेह नहीं कि भारत और चीन के बीच आज खड़ी हो गई समस्याओं के समाधान के लिए भारत का एकमात्र

2. अजय कुमार घोष (1909-1962), भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के 1951 में महासचिव निर्वाचित हुए और अंत समय तक इस पद पर रहे।

3. रेणु चक्रवर्ती (1917-1994) कम्युनिस्ट नेता, जो बसीरहाट (पश्चिम बंगाल) से प्रथम व द्वितीय लोकसभा में सदस्य थी, हालाँकि 1962 आम चुनाव में वह बैरकपुर लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र से चुनी गईं।

सही नीति पर आरुढ़ रहना हमारे राष्ट्र की महानता का प्रतीक है। हमारी पार्टी को विश्वास है कि चीन के साथ शांतिपूर्ण वार्ता, जिसे अब राजनीतिक आधार पर आगे बढ़ने की जरूरत है, और जिसमें देश की सार्वभौमिक अखंडता और दोनों देशों के बीच मैत्री को स्वभावतः सर्वोच्च महत्त्व दिया जाएगा, सफल होगी और वर्तमान दुःखद अध्याय समाप्त होगा।

चीन और पाक दोनों आक्रामक

भारतीय जनसंघ का मत इस विषय में पूर्णरूपेण स्पष्ट है। उसका कहना है कि चीन और पाकिस्तान दोनों के आक्रमण समाप्त होने चाहिए। उसने सीमा-सुरक्षा को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। वह भारत के प्रत्येक इंच भूभाग की अक्षरशः मुक्ति का समर्थन है। उसके घोषणा-पत्र में कहा गया है कि 'भारत की सीमाओं का अतिक्रमण हुआ है। एक ओर पाकिस्तान ने तो दूसरी ओर चीन ने हमारे देश में काफी बड़े क्षेत्र को अपने कब्जे में कर लिया है। राष्ट्र द्वारा आक्रमण का सफल प्रतिकार करने की क्षमता के बावजूद अपनी तुष्टीकरण और दुलमुल नीति के फलस्वरूप कांग्रेस सरकार ने देश का मनोबल क्षीण किया है और शत्रु को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का मौक़ा प्रदान किया है। भारतीय जनसंघ देश की स्वतंत्रता और सार्वभौमिकता को दी गई, इस चुनौती का मुक़ाबला प्रत्येक उपाय से करेगा और भारत के प्रत्येक इंच भूभाग को मुक्त कराएगा।'

कश्मीर के संबंध में अपनी प्रतिज्ञा को उसने निम्न शब्दों में दुहराया है—

‘भारतीय जनसंघ कश्मीर पर किए गए किसी भी आक्रमण को भारत पर आक्रमण समझता है और इस कारण पाकिस्तान और चीन के कब्जे में पड़े भूभाग को मुक्त कराने के लिए वह प्रत्येक उपाय का सहारा लेगा।’

राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् गठित की जाए

जहाँ तक सैन्य सेवाओं के संगठन का प्रश्न है, कम्युनिस्ट और कांग्रेस पूर्णतः चुप हैं। जनसंघ और प्र.स. दल 'राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद्' (National Defence Council) की स्थापना के समर्थक हैं और स्वतंत्र पार्टी का मत है कि सेनाओं में घुसे राजनीतिक प्रभाव को, जिससे सेना में कमजोरी आती है, समाप्त करना चाहिए। (संभवतः यह निर्देश कृष्ण मेनन की ओर है) और सेनाओं को योग्य रीति से सुसज्जित कर सेना के पुराने कर्मचारियों की कठिनाइयों को हल किया जाना चाहिए।

सुरक्षा योजना पंचवर्षीय योजना का अंग बने

जनसंघ और प्र.स. दल प्रादेशिक सेना और एन.सी.सी. के विस्तार के समर्थक हैं। पर जनसंघ पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत एक सुरक्षा-योजना की भी आवश्यकता अनुभव

करता है, क्योंकि किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति उस देश की रक्षा-क्षमता से जुड़ी रहती है। हम उनको पृथक् रीति से नहीं देख सकते। सैनिक विषयों में हम चीन और पाकिस्तान के मुकाबले संतुलन प्रस्थापित करना चाहते हैं। घोषणा-पत्र में कहा गया है कि 'चीन और पाकिस्तान दोनों के ही आक्रामक एवं गर्हित मंतव्यों को देखते हुए देश की सुरक्षा व्यवस्था में पर्याप्त सुधार करना आवश्यक है। सेनाओं को आधुनिकतम शस्त्रों से सज्ज करना चाहिए। प्रक्षेपास्त्र, पनडुब्बियाँ, युद्धक-विमान आदि का निर्माण अथवा उन्हें किसी भी शक्ति गुट में सम्मिलित हुए बिना उपलब्ध कराना हमारा अभीष्ट है।'

तैयारी चाहिए

आज की स्थिति सर्वाधिक तैयारी चाहती है। अतः हमारा नारा 'राष्ट्र का सैनिकीकरण' और सेना का आधुनिकीकरण करो' होना चाहिए। इसी भाँति सीमाओं के विषय में हमारी नीति उनकी रक्षा की होनी चाहिए, न कि वार्ता और विवाद की और यदि आक्रमण किया जाता है तो आक्रामकों को खदेड़ देना चाहिए, न कि उनके प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई जाए। हमें आज योद्धा चाहिए, केवल विरोध करनेवाले नहीं। देश की अखंडता उन लोगों के द्वारा सुरक्षित नहीं रह सकती, जो केवल बैठकर हिसाब जोड़ते हैं और जिनमें साहस एवं शक्ति के साथ परिस्थिति का सामना करने की क्षमता नहीं है। उसकी रक्षा तो वही कर सकते हैं, जिनमें देश के प्रति श्रद्धा और आत्मगौरव का भाव है और जो पवित्र मातृभूमि के लिए सर्वस्व की बलि चढ़ा देने का संकल्प रखते हैं।

— पाञ्चजन्य, जनवरी 22, 1962



8

उपाध्याय के उत्तर

नागनाथम, परमकुड़ी

भा.क.पा. और मुसलिम लीग में कौन सी पार्टी अधिक खराब है और किसे पहले परास्त करने की आवश्यकता है?

अब इसका चयन करना कठिन है कि मृत्यु प्लेग से हो या कालरा से। यद्यपि जाना-पहचाना शत्रु किसी अज्ञात शत्रु से कम खतरनाक है।

ओ. राजगोपाल, पालघाट

पटना कांग्रेस में श्री नेहरू की इस आलोचना कि सांप्रदायिक पार्टियाँ (संभवतया उनका अभिप्राय भारतीय जनसंघ से था) भारत को 200 साल पीछे ले जाना चाहती हैं और सिर्फ इसे कमजोर करना चाहती हैं, जिससे कि यह विदेशी आक्रांताओं के लिए एक आसान शिकार बन जाए, का आप किस तरह उत्तर देंगे। यहाँ तक कि जब हमारी संस्कृति अपने उत्कर्ष पर थी, तब भी हम ऐसा मजबूत, सुगठित और एकीकृत राष्ट्र नहीं बन पाए जो विदेशी हमलों का सामना करने में समर्थ हो। क्या आप इस पर प्रकाश डालेंगे कि क्यों हमारी संस्कृति इस तरह की स्थितियों का सामना नहीं कर पाई?

विश्व का कोई भी देश ऐसा नहीं है, जिसने पराजय का सामना नहीं किया हो। पर किसी देश का पौरुष उसकी इस क्षमता में निहित है कि वह किस तरह उठ खड़ा होता है और स्वयं को किस तरह से पुनः संगठित कर किस तरह फिर से प्रभावशाली देश के रूप में उभरता है। और हम तर्कसंगत गर्व की अनुभूति के साथ यह कह सकते हैं कि विश्व में कोई ऐसा देश नहीं है, जो हमारी तरह इतने हमले झेलने के बाद भी अपनी सभ्यता या संस्कृति को बचा पाया हो। यह कहना उचित नहीं होगा कि हम कभी

आक्रांताओं को परास्त कर उन्हें पीछे नहीं धकेल पाए। वस्तुतः अगर पिछले सिर्फ एक हजार साल को छोड़ दिया जाए तो हमने पूरे इतिहास में अपनी स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखी। और इन एक हजार साल में भी भारत ने कभी भी पराधीनता के आगे समर्पण नहीं किया और विदेशी शासकों के विरुद्ध निरंतर और अनथक संघर्ष जारी रखा। जब तक मदनलाल ढोंगरा¹ की परंपरा जीवित रहेगी, जलियाँवाला बाग कभी भी हमारी कमजोरी का प्रतीक नहीं बन सकता।

पंडित नेहरू गलत हैं, जब वे कहते हैं कि हम देश को 200 साल पीछे ले जाना चाहते हैं। वस्तुतः हम तो इसे एक हजार वर्ष और पीछे ले जाना चाहते हैं। पंडित नेहरू की तरह हमारे लिए हमारा इतिहास कोई बोझ नहीं है। हम यह बोझ उठा सकते हैं, अपितु यह कहें कि हमारे लिए तो यह एक मधुर, मनोहर राष्ट्रीय गान को जन-जन तक पहुँचाने का 'दायित्व' है।

निश्चित रूप से वे पुराने दिन श्रेष्ठतर थे, जब हम किसी आक्रमणकारी को आक्रमणकारी कह सकते थे और शत्रु को खदेड़ने के लिए अप्रतिम बलिदान की तैयारी कर सकते थे। पंडित नेहरू चाहते हैं कि हम यह परंपरा भूल जाएँ। यदि हम भारत को जोरावर सिंह² के दिनों में ले जा सकें तो पंडित नेहरू के लिए एक ऐसे रक्षा मंत्री को ढोते रहना कठिन हो जाएगा, जिसे हिमालय की ठंड से डर लगता हो। अगर हम भारत को हरि सिंह नलवा³ के दिनों में ले जाएँ तो पंडित नेहरू विभाजन के बावजूद भारत के यश की शेखी कैसे बघारेंगे। इतिहास उनके लिए पीड़ादायक है, हमारे लिए नहीं।

यह अधिक मायने नहीं रखता, परंतु कृपया क्या आप बताएँगे कि आगामी चुनावों

1. मदनलाल ढोंगरा (1883-1909) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अप्रतिम क्रांतिकारी थे। लंदन में उच्च शिक्षा प्राप्त के दौरान ये प्रख्यात राष्ट्रवादी वीर सावरकर के संपर्क में आए और अभिनव भारत संस्था के सदस्य बने। वहाँ पर ये इंडिया हाउस में रहते थे, जो उन दिनों भारतीय विद्यार्थियों के राजनीतिक क्रियाकलापों का केंद्र हुआ करता था। ये उस समय खुदीराम बोस, कन्हैयालाल दत्त, सतिंदर पाल और काशी राम जैसे क्रांतिकारियों को मृत्युदंड दिए जाने से बहुत क्रोधित थे। कई इतिहासकार मानते हैं कि इन्ही घटनाओं ने ढोंगरा को सीधे बदला लेने के लिए विवश किया, 1 जुलाई 1909 की शाम को इंडियन नेशनल एसोसिएशन के वार्षिकोत्सव में भाग लेने के लिए पहुँचे भारत सचिव के राजनीतिक सलाहकार सर विलियम हट कर्जन वायली की ढोंगरा ने गोली मार हत्या कर दी। 17 अगस्त, 1909 को लंदन की पेंटविले जेल में फाँसी पर लटकाकर उनकी जीवन लीला समाप्त कर दी गई, यह घटना बीसवीं शताब्दी में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की प्रमुख घटनाओं में से एक है।
2. जोरावर सिंह कहलुरिया (1786-1841) भारत के महान् सेनानायक थे, इनका जन्म हिमाचल प्रदेश के कहलुर रियासत के बिलासपुर में हुआ था। इन्होंने लद्दाख, तिब्बत, बाल्टिस्तान, इस्फार्दु आदि क्षेत्रों को जीता था, इतिहासकार इन्हें 'हिमालय का विजेता' तथा 'भारत का नेपोलियन' की उपाधि देते हैं।
3. सरदार हरि सिंह नलवा (1791-1837) महाराजा रणजीत सिंह के सेनाध्यक्ष थे, जिन्होंने पठानों के विरुद्ध हुए कई लड़ाइयों का नेतृत्व किया। सिख प्रौढ़ के सबसे बड़े जनरल हरि सिंह नलवा ने कश्मीर पर विजय प्राप्त कर काबुल पर चढ़ाई कर जीत दर्ज की। खैबर दर्रे से होने वाले अफगान आक्रमणों से देश को मुक्त किया, रणनीति और रणकौशल की दृष्टि से हरि सिंह नलवा की तुलना भारत के श्रेष्ठ सेनानायकों से की जा सकती है।

में आप भारतीय जनसंघ के टिकट पर कोई मुसलिम या ईसाई प्रत्याशी खड़ा करेंगे?

हमने कोई मुसलिम या ईसाई उम्मीदवार खड़ा नहीं किया है। हमारे सारे प्रत्याशी जनसंघ के प्रत्याशी हैं। संभव है कि उनमें से कुछ का धर्म यह हो। हमने उनकी धार्मिक पहचान का पता करने की चिंता नहीं की।

एम.एन वेंकटेश्वरन, ओलावक्कोर

जब भारतीय जनसंघ के शासन में हिंदू संस्कृति की पुनर्स्थापना होगी तो क्या इस्लाम व ईसाइयत जैसे अन्य धर्मों को भी हिंदुओं के समकक्ष समानता का अधिकार मिलेगा?

हिंदुत्व कोई संप्रदाय नहीं है। यह सभी संप्रदायों का राष्ट्रमंडल है। हिंदुत्व की शाखाओं के साथ ईसाइयत और इस्लाम भी चलते रहें तो इसमें कोई हानि नहीं है। वस्तुतः वे उसी स्थिति में अपना अस्तित्व बचा सकते हैं, जब इस देश में हिंदू धर्म का प्राधान्य हो, अन्यथा इस देश में क्रूसेड्स और स्पेन, दोनों का ही इतिहास दोहराया जा सकता है। यद्यपि उनके अनुयायियों को विभाजनकारी या किसी अन्य देश के प्रति निष्ठाभाव का परित्याग कर देना चाहिए। उन्हें राष्ट्रीय संस्कृति के प्रवाह के साथ बहना चाहिए।

चंटेर आर. रायसिंघानी, उल्हास नगर

कांग्रेस के घोषणा-पत्र में ग्रामीण समस्याओं पर विशेष ध्यान देने की बात कही गई है। आपको क्या कहना है?

हमारे लिए ग्रामीण भारत ही असली भारत है। हमें शहरीकरण का पश्चिमी देशों का रुझान पसंद नहीं है। हम गाँवों के वैभव को लौटाएँगे, उन्हें पहले जैसा समृद्ध बनाएँगे।

आपकी समझ से वह कौन सी चीज़ है, जो पंडित नेहरू को भारतीय जनसंघ के मूलभूत सिद्धांत 'अखंड भारत' से सहमत होने से रोकती है?

वे कैसे अखंड भारत के सिद्धांत से सहमत हो सकते हैं, जब स्वयं उन्होंने ही 3 जून, 1947 को विभाजन पर सहमति जताई थी। आप एक ही साथ किसी सिद्धांत से सहमत और असहमत दोनों नहीं हो सकते। इस तरह की इतनी बड़ी चूक को स्वीकार करने के लिए बहुत बड़ा मन चाहिए।

बी.एन. गुप्ता, कानपुर

राम और कृष्ण की इस धरती पर आज इतना भ्रष्टाचार क्यों है?

क्योंकि लोग राम और कृष्ण को विस्मृत करते जा रहे हैं। और जिनके मानस में वे हैं, वे भी सिर्फ उन्हें एक ऐसे भगवान् के रूप में पूजते हैं, जो उनकी गलतियों को क्षमा करते हुए उन्हें मोक्ष के पथ पर ले जाएँगे।

भारत सरकार ने वीर सावरकर को उनका सम्मान क्यों नहीं दिया?

अपने बलिदानों की पहले ही कीमत वसूल लेनेवाले लोगों की लंबी सूची से अपवाद के रूप में सावरकर का नाम हटाकर सरकार ने एक तरीके से उनका मान ही बढ़ाया है। स्वतंत्रता संघर्ष में सावरकर एक क्रांतिकारी थे, कोई भाड़े के टट्टू नहीं।

शिव भगवान् तोषनीवाल, कलकत्ता

इस बात की क्या गारंटी है कि सत्ता में आने के बाद जनसंघ का विधानमंडल एक सादा व आदर्श जीवन जीएगा और उनका बरताव उनसे श्रेष्ठतर होगा, जो आज शासन कर रहे हैं?

हिंदी में एक कहावत है—

‘शक की दवा हकीम लुकमान के पास भी नहीं है।’ जिसका मतलब है कि शक्की का घाव भर नहीं सकता, विश्वास रखिए और शक्की मत बनिए।

क्या आप सोचते हैं कि संसद् का चुनाव लड़ने वाला जनसंघ का जो प्रत्याशी 50 हजार रुपए खर्च करने को तैयार है, संसद् में पहुँचने के बाद जनता की निस्वार्थ सेवा ही उसका एकमात्र ध्येय होगा?

पहली बात, किसने आपको बताया कि जनसंघ का प्रत्याशी चुनाव में 50,000 रुपए खर्च करने को तैयार है या इतने की उसकी सामर्थ्य भी है? फिर आप यह क्यों भूल जाते हैं कि कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनमें आदर्शवाद कूट-कूटकर भरा है। मातृभूमि की सेवा में अपनी सारी संपदा लुटाकर भामाशाह को बदले में क्या मिला? बहुत सी ऐसी चीजें हैं, जो पैसे से परे हैं।

क्या आप मानते हैं कि एक ऐसे देश में घोषणा-पत्र जारी करने का कोई अर्थ है, जहाँ 99 प्रतिशत लोग इसे पढ़ने का कष्ट नहीं उठाते और सामान्य तौर पर अपने व्यक्तिगत संपर्कों और पूर्वनिर्धारित धारणाओं के आधार पर मतदान करते हैं?

यह आज की स्थिति हो सकती है। परंतु यदि हम घोषणा-पत्र जारी करना बंद कर दें तो वे आने वाले समय में भी सदैव इसी तरह मतदान करते रहेंगे। हम मतदान के प्रति लोगों का यह रवैया बदलना चाहते हैं।

क्या आप पंडित नेहरू की इस बात से सहमत हैं कि पटना कांग्रेस में हुई गड़बड़ियाँ विरोधी दलों के षड्यंत्र का परिणाम थीं?

यहाँ सवाल सहमति का नहीं बल्कि तथ्यों का है। कृपया ऑर्गनाइजर में 15 जनवरी, 1962 की प्रकाशित रिपोर्ट देखें।

मधुकर मोदक, बंबई

मैंने आचार्य कृपलानी की कुछ चुनावी जनसभाओं में हिस्सा लिया है। चुनाव लड़ने का कारण बताते हुए आचार्यजी ने एक बिंदु पर काफ़ी जोर दिया। उन्होंने कहा, 'यह चुनाव गांधीवाद और मार्क्सवाद के बीच सैद्धांतिक संघर्ष है। जनता यदि वामपंथ चाहती है तो उसे कृष्ण मेनन को वोट देना चाहिए। यदि वे गांधीवाद चाहते हैं तो उन्हें मुझे वोट देना चाहिए।

अब जब यह स्पष्ट है कि भारतीय जनसंघ आचार्यजी के पक्ष में सक्रियता से प्रचार कर रहा है तो क्या इस समर्थन का आशय यह निकाला जाए कि हमें गांधी में विश्वास है। इस तरह, क्या हम लघुतर शत्रु का साथ लेने की अवधारणा पर नहीं चल रहे? यदि ऐसा है तो हम उन चुनाव क्षेत्रों में इसी सिद्धांत का पालन क्यों नहीं करते, जहाँ कुछ निर्दलीय प्रत्याशी किसी केंद्रीय मंत्री के खिलाफ़ चुनाव लड़ रहे हों और जहाँ भारतीय जनसंघ का अपना प्रत्याशी नहीं है?

यहाँ सिर्फ़ एक कृष्ण मेनन और एक कृपलानी हैं!

आदित्य ज्योति रॉय, कलकत्ता

केंद्र सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना करते हुए कुछ दिन पूर्व ही आपने कोलकाता में एक जनसभा में कहा था कि भारी और आधारभूत उद्योगों पर विशेष जोर देना कोई दूरदर्शिता नहीं है, क्योंकि इस संबंध में ऋण व वित्तीय सहायता के लिए हम अन्य देशों पर निर्भर हैं। और आपका विचार है कि इस तरह की औद्योगिक नीतियाँ बनाने में अधिक बुद्धिमानी होगी, जिसमें उपभोक्ताओं से जुड़े उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता मिले। और जैसा कि आप देख रहे हैं कि विश्व में आए दिन नए परिवर्तन हो रहे हैं, तो आपका मानना है कि हमें अपनी आर्थिक योजनाएँ इस तरह से बनानी चाहिए, जिससे कि अन्य देशों पर निर्भरता को कम-से-कम किया जा सके।

जैसा कि आपने कहा है, मैं स्वीकार करता हूँ कि भारी व आधारभूत उद्योगों पर विशेष जोर देने से भारत पर ऋण का बोझ बढ़ेगा। परंतु मुझे अभी भी यह अबोध या समझ में आने वाली बात नहीं लगती कि भारी व आधारभूत उद्योगों पर विशेष ध्यान दिए बिना हम आत्मनिर्भरता का लक्ष्य कैसे प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं, जिनका उत्पादन बड़े कारखानों में ही किया जा सकता है। यदि हम भारी उद्योगों पर ध्यान दिए बिना उपभोक्ता उद्योगों की संख्या बढ़ाते रहे और उन्हीं की उन्नति में लगे रहे तो मशीनों या अन्य भारी उपकरणों के लिए हम अंतहीन समय तक दूसरे देशों का मुँह ताकते रहेंगे। यह निर्भरता मेरे विचार में वित्तीय ऋणों के लिए निर्भरता से कहीं

अधिक खतरनाक होगी। कृपया आप इस बिंदु पर स्पष्टता से प्रकाश डालेंगे?

प्राथमिकताओं में परिवर्तन का यह प्रश्न वर्तमान योजना से जुड़ा है। वस्तुतः किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्था में भारी उद्योगों, आधारभूत उद्योगों और उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के प्रति एक समेकित व संतुलित नीति होनी चाहिए। इनका अनुपात उपभोग की वर्तमान आवश्यकताओं और देसी व विदेशी पूँजी की उपलब्धता से तय होगा। अब उपभोग के वर्तमान स्तर को घटाने या इसे विलंबित करने की भी अपनी एक सीमा है। विदेशों से ऋण लेने में भी अर्थव्यवस्था की अपनी सीमाएँ हैं। यदि यह उपलब्ध हो तो भी घरेलू पूँजी के साथ इसकी साम्यता होनी चाहिए। ऐसे में भुगतान संतुलन कम करने के लिए निर्यात पर जोर देने की अनिवार्यता भी हो जाती है। यह जबरिया या बलात् बचत की ओर ले जाता है। इन सारी चीजों का परिणाम मूल्य वृद्धि के रूप में सामने आता है और फिर वेतन-वृद्धि की माँग उठती है। जैसे ही परियोजनाओं की अनुमानित लागत बढ़ती है, चीजों के दाम आसमान छूने लगते हैं। यदि इस पर काबू पाना है तो फिर उपभोक्ता वस्तुओं का भी बाहर से आयात करना पड़ेगा, जैसी कि स्थिति हमारे साथ है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान हमें 790 करोड़ का खाद्यान्न आयात करना पड़ा। इसलिए यह अनिवार्यता है कि उपभोक्ता उद्योगों को प्राथमिकता दी जाए और एक स्थिर मूल्य ढाँचा बनाए रखने के लक्ष्य को सामने रखकर अन्य सभी उद्योगों को इसके साथ समायोजित किया जाए।

सी.जी. जोशी, कल्याण

सामान्य सम्मति है कि 'राष्ट्र' के प्रति जनसंघ और हिंदू महासभा के लक्ष्यों में समानता है। फिर भी दोनों साथ क्यों नहीं हैं?

सामान्य रूप से सभी पार्टियों का लक्ष्य राष्ट्र का कल्याण होता है। परंतु साध्य, साधन, दृष्टिकोण और व्योरे में अंतर होते हैं। यदि आप दोनों के घोषणा-पत्र की तुलना करें तो आप अंतर पाएँगे। और इसके अतिरिक्त एक का पतन हो रहा है और दूसरे का उत्थान। एक सुस्त व आलसी को साथ लेकर अपनी गति को कम करना कहीं से भी राष्ट्रहित में नहीं है।

देशराज कायस्थ, पठानकोट

चारों तरफ फैले भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और जातिवाद तथा अन्य बुराइयों के उन्मूलन के लिए जनसंघ क्या कदम उठाएगा?

यह प्रचलित शिक्षा व्यवस्था को किस तरह बदलेगा?

यह खाद्यान्न संकट की वर्तमान समस्या का कैसे समाधान करेगा?

राष्ट्र को संगठित करिए और इसे आदर्श बनाइए, सभी बुराइयों का उन्मूलन हो जाएगा।

पाकिस्तान भारतमाता के शरीर में एक घाव है। अब यह अलग संप्रभु सत्ता है। पाकिस्तान भारत को अपना सबसे बड़ा शत्रु समझता है। अखंड भारत के अपने सपने को जनसंघ कैसे साकार करेगा?

भारत के लोगों को इस बात का अहसास करा के (या यह समझाकर) कि यह आवश्यक नहीं है कि धर्म के नाम पर देश और राष्ट्र का बँटवारा हो।

परिवार नियोजन और संतति नियंत्रण के बारे में जनसंघ का क्या दृष्टिकोण है? बढ़ती जनसंख्या की समस्या और जिस तरह इसके दबाव से आर्थिक ढाँचा चरमरा रहा है, उसके समाधान के बारे में क्या प्रस्ताव है?

यह प्रश्न निर्णय के लिए परिवारों पर छोड़ दिया गया है। परंतु जनसंघ यह विश्वास नहीं करता कि हमारी आर्थिक समस्याओं का मूल कारण बढ़ती जनसंख्या है। यदि हमारे वर्तमान शासकों का यही रुख रहा तो अगर कांग्रेसियों के अलावा बाकी सभी समाप्त हो जाएँ तो भी सबके लिए पर्याप्त नहीं होगा।

पुत्ती लाल यादव, कानपा

जनसंघ भूमि और संपत्तियों का वंचितों के बीच पुनर्वितरण चाहता है। परंतु क्या यह लक्ष्य व्यक्ति के निजी संपत्ति के अधिकार के अनुरूप है?

निजी संपत्ति के असीम अधिकार जैसी कोई चीज नहीं है। यह हमेशा से सामाजिक नियमन का विषय रहा है।

‘आगामी आम चुनावों में जीत के उद्देश्य से पंडित नेहरू ने गोवा के रूप में 20 करोड़ भारतीय मतदाताओं को रिश्वत दी है।’ डॉ. लोहिया की इस बात से क्या आप सहमत हैं?

उन्होंने ऐसा किया होगा, परंतु भारत के लोग कांग्रेसी नहीं हैं, जो इसमें फँस जाएँ।

कम्युनिस्टों के साथ सीधे मुकाबले में जनसंघ क्या किसी कांग्रेसी प्रत्याशी का समर्थन करेगा?

यह काल्पनिक प्रश्न है; कम्युनिस्टों के प्रति जनसंघ का विरोध सर्वविदित है और इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है।

यू. बेबन्ना भट, मंगलोर

यदि जनसंघ की सरकार बनी तो अंग्रेजी की स्थिति क्या होगी? क्या स्कूलों और

विश्वविद्यालयों में इसके अध्ययन पर पूर्ण प्रतिबंध लगेगा?

जो इसे पढ़ने का विकल्प चाहते हैं, उनके लिए इसकी पढ़ाई जारी रहेगी।

प्रोफेसर बलराज मधोक के अनुसार, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय से 'हिंदू' और 'मुसलिम' शब्द हटा देने चाहिए। यह श्री मधोक का व्यक्तिगत विचार है या जनसंघ का?

आपने एक ग़लत समाचार पर आधारित प्रश्न पूछा है। ऐसा लगता है कि आपने इससे संबंधित स्पष्टीकरण नहीं देखा है।

ए.के. खलाडकर, पूना

भारतीय जनसंघ एकात्मक राज्य की अवधारणा को स्वीकार करता है और इस अवधारणा में शक्तियों का केंद्रीकरण अंतर्निहित है। फिर घोषणा-पत्र में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के सिद्धांत को क्यों स्वीकार किया गया?

एक एकात्मक राज्य का अर्थ केंद्रीकृत राज्य नहीं है। केंद्रीकरण या विकेंद्रीकरण की तुलना एक एकात्मक या संघीय राज्य से करने की आवश्यकता नहीं है। अब शक्तियाँ ज़िला इकाइयों तक विकेंद्रीकृत हैं। तो क्या इसका अर्थ हम यह निकालें कि भारतीय राज्य ज़िला इकाइयों के संघ में परिवर्तित हो गया है।

ए.एस. देसाई, कोल्हापुर

सामान्य रूप से भारत के प्रायः सभी राजनीतिक दल समाजवादी ढाँचे के समाज को मान्यता देते हैं। यद्यपि भारतीय जनसंघ इसे मान्यता नहीं देता। क्या आप स्पष्ट करेंगे कि भारतीय जनसंघ की आर्थिक नीतियाँ उल्लिखित लक्ष्य के कितने अनुरूप या इससे कितनी भिन्न हैं?

भारतीय जनसंघ समाजवाद में विश्वास नहीं करता, क्योंकि अंततः यह राज्य पूँजीवाद और लोकतंत्र की समाप्ति की ओर ले जाता है। यद्यपि हम इस बात को रेखांकित और चिह्नित करते हैं कि कुछ आधारभूत उद्योगों में जहाँ बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता है, राज्य को स्वयं उद्यमी की भूमिका निभानी चाहिए।

समाजवादी पार्टियाँ भी वर्तमान में निजी उपक्रमों की संभावना को स्वीकार करती हैं। इस प्रकार ऐसा लगता है कि व्यवहार में दोनों के बीच अधिक अंतर नहीं है, क्योंकि दोनों ही इस बात पर सहमत हैं कि सार्वजनिक व निजी उद्योग सहअस्तित्व बनाए रख सकते हैं। परंतु यहाँ अंतर दृष्टिकोण का है।

हम राज्य की भूमिका इस आधार पर स्वीकार करते हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि यह संभव नहीं है कि राज्य का दायित्व कोई अन्य निभाए, समाजवादी इस नाते निजी

उपक्रमों को जीवनदान दे रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में यह संभव नहीं है कि राज्य पूरा उत्तरदायित्व अकेले उठा पाए।

परंतु व्यावहारिकता के बारे में सोच-विचार की चिंता से मुक्त विपक्ष में बैठे समाजवादी दल निजी क्षेत्र के बहुत से उद्यमों के राष्ट्रीयकरण की माँग पर निरंतर आंदोलित हैं। अब यह स्थापित तथ्य है कि उनकी इस समाजवादी सनक को तुष्ट करने के फेर में कांग्रेस आगे बढ़कर निजी क्षेत्र के उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर रही है।

उत्पादन की चिंता किए बिना समाजवादी पार्टियों का मुख्य जोर वर्ग संघर्ष और राष्ट्रीय आय तथा संपत्ति के समान वितरण पर रहता है। भारतीय जनसंघ भी न्यूनतम में बढ़ोतरी और उपभोज्य आय पर अधिकतम हिस्सा चाहता है। परंतु हम इसे उत्पादन में बढ़ोतरी के हित में चाहते हैं। यह कोई अव्यावहारिक दृष्टिकोण नहीं बल्कि ठोस आर्थिक नीति है।

समाजवादी भूमिहीनों की ज़मीन की भूख को शांत करने के लिए भूमि के मालिकाना हक की सीमा बाँधना चाहते हैं। हम इसे सिर्फ इस नाते टालना चाहते हैं कि इस सारी उठापटक से प्रति एकड़ ज़मीन की पैदावार पर असर नहीं पड़े। हम इसे सघन खेती के उद्देश्य से चाहते हैं। भारतीय जनसंघ ज़मीनों के पुनर्वितरण में इस बात को वरीयता देगा कि आर्थिक रूप से अनुपयोगी या अनुपजाऊ संपत्तियों को उत्पादक बनाया जाए, जबकि समाजवादी पार्टियाँ संभवतया अपने राजनीतिक कारणों से यह नहीं चाहतीं।

मैंने इस बिंदु पर अपनी शृंखला 'आपका वोट' में थोड़े विस्तार से चर्चा करने का प्रयास किया है।

'एक देश, एक राष्ट्र और एक संस्कृति' से आपका क्या अभिप्राय है? क्या आप कृपया स्पष्ट करेंगे कि जिस 'भारतीय संस्कृति' पर जनसंघ इतना जोर देता है, उसके पीछे क्या विचार है?

'एक देश, एक राष्ट्र और एक संस्कृति' सिर्फ एक नारा नहीं है। यह उस मिथक का विध्वंस करता है, जो यह सोचता है कि भारत में विभिन्न संस्कृतियाँ हैं और इसलिए यह विभिन्न राष्ट्रीयताओं वाला उपमहाद्वीप है। हमारे राष्ट्रीय जीवन की विविधताएँ दिखावटी व सतही हैं और इसमें अंतर्निहित एकता एक वास्तविकता सच्चाई है।

भारतीय संस्कृति को परिभाषित करना कठिन है, परंतु इसे महसूस किया जा सकता है। यद्यपि यह जीवन और सृजन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में अभिव्यक्त होती है। यह सत्य की खोज और पहले से खोजे जा चुके सत्यों के साथ उसको सुसंगत स्वरूप देने की हमारी अविरल, अनवरत प्रेरणा है। विविधता के बजाय इसका जोर

एकता पर है। यह किसी की वैयक्तिकता का विध्वंस किए बिना सामाजिक चेतना का निर्माण करती है। निस्संदेह यह व्यक्ति की क्रमिक विकास की यात्रा है, जब तक कि वह संन्यास की अवस्था को प्राप्त न हो जाए। सिर्फ भारतीय संस्कृति ही पूरे भारत के लोगों को एक सूत्र में पिरो सकती है, यही हमारे मन में मातृभूमि के प्रति प्रेम और श्रद्धा व गौरव की भावना का संचार कर सकती है। अपने गौरवशाली अतीत के प्रति गर्व के भाव का संचार कर सकता है। सिर्फ यही हमें यह सिखा सकती है कि हमें क्या स्वीकार करना है और क्या अस्वीकार।

डॉ. राधाकृष्णन और श्री रामास्वामी मुदलियार जैसी प्रख्यात हस्तियों की अध्यक्षता में बनी कई समितियों ने अपनी सिफारिशों में युवाओं में धार्मिक प्रशिक्षण की अनिवार्यता पर जोर दिया है। क्या जनसंघ इससे सहमत है? यदि है, तो क्या आप को नहीं लगता कि इन सिफारिशों पर अमल देश के पंथनिरपेक्ष स्वरूप के विपरीत होगा? यदि हम इस तथ्य पर विचार करें कि ये युवा उन परिवारों के भी हो सकते हैं, जिनके धर्म अलग-अलग हों तो किस तरह से इन सिफारिशों को अमल में लाया जा सकता है?

स्कूलों में किसी संप्रदाय विशेष के बारे में शिक्षा देना कदाचित् संभव नहीं हो, परंतु निश्चित रूप से धर्म के सिद्धांत तो पढ़ाए ही जा सकते हैं और पंथनिरपेक्षता से किसी तरह का समझौता किए बिना सभी धार्मिक नेताओं के जीवन-दर्शन के बारे में भी बताया जा सकता है।

देश के लाखों लोगों को आजीविका प्रदान करने के लिए भारतीय जनसंघ कुटीर उद्योगों पर जोर देता रहा है। इस संदर्भ में क्या आपका गांधीजी और विनोबाजी के सिद्धांतों के साथ कोई मूलभूत अंतर है? राम मनोहर लोहिया ने जो 'छोटे आकार की मशीनों' की अवधारणा पेश की है, क्या आप उससे सहमत हैं?

हम उस तरह की नई प्रौद्योगिकी के समर्थक हैं, जो परिवार को एक उत्पादक इकाई के साथ-साथ उपभोक्ता इकाई में रूपांतरित कर सके। लघु आकार के यांत्रिक उद्योग हमारे औद्योगीकरण का आधार होने चाहिए।

लगभग सभी पार्टियाँ विदेशी आक्रमण के विरुद्ध संयुक्त मोरचे की बात करती हैं। क्या शांति काल में भी घोर गरीबी, चारों तरफ फैली बेरोजगारी, अस्पृश्यता और अन्य सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष के लिए इस तरह के संयुक्त मोरचे की आवश्यकता नहीं है?

विदेशी आक्रमणों के समय संयुक्त मोरचे की अनिवार्यता है और यह इस कारण संभव है कि यह तथ्य सबको पता है कि सैन्य प्रतिरोध से ही हमले का अंत किया जा सकता है। इससे भी अधिक यह सदैव एक अस्थायी घटना होती है और आप हमला समाप्त होने के समय की पहचान कर सकते हैं। परंतु घरेलू समस्याओं के संदर्भ में इस

तरह का साझा मोर्चा संभव नहीं है। समस्याओं के समाधान को लेकर सभी का अपना मत है और आप दावे से नहीं कह सकते कि उक्त समय गरीबी का उन्मूलन हो गया। इस प्रकृति के मोरचे का अर्थ अंततः सिर्फ एक पार्टी का शासन और एकांगी मस्तिष्क का उत्पादन होगा। इसी आधार पर कम्युनिस्ट सर्वहारा की तानाशाही की वकालत करते हैं। रूस में पिछले 42 साल से यह अस्तित्व में है और अभी भी इसकी समाप्ति के कोई संकेत नहीं हैं।

रूपलाल डाड, भीलवाड़ा

भारतीय जनसंघ की गति यदि यही रही तो क्या हम चीन और पाकिस्तान के खतरे से अपनी राष्ट्रीय अखंडता और स्वतंत्रता की रक्षा कर पाएँगे?

मैं आपकी चिंता की सराहना करता हूँ। परंतु घबराने के बजाय अपनी गति बढ़ाएँ।

हमें आवश्यकता है प्रेरणा की और इसे हम अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करनेवाले महान् सेनानियों के जीवन और कार्यों से प्राप्त कर सकते हैं। किस तरह से एक लोकतांत्रिक संस्थान दिशानिर्देश के लिए किसी व्यक्ति से संबद्ध हो सकता है? फिर क्या इस वृद्धावस्था में उन्हें कष्ट देना हमारे लिए उचित होगा?

चीनी आक्रमण, पाकिस्तान की शत्रुतापूर्ण कार्रवाइयाँ, कांग्रेस का अपकर्ष, सरकार का भ्रष्टाचार और भा.क.पा. की गतिविधियाँ, इन सभी ने मिलकर देश में एक ऐसे राजनीतिक वातावरण का निर्माण किया है, जो किसी भी अन्य विपक्षी पार्टी से ज्यादा जनसंघ के लिए लाभप्रद है। तथापि हमें जनमानस को यह समझाने में सफलता नहीं मिली है कि हम केंद्र और राज्यों में एक प्रभावशाली और कार्यकुशल सरकार का विकल्प प्रदान कर सकते हैं। कारण?

अधिक-से-अधिक लोग सहमत होते जा रहे हैं। कुछ लोग दुराग्रही और कुछ अति अपरिवर्तनवादी हो सकते हैं। उन्हें सत्य को देखने और स्वीकार करने में कुछ समय लगेगा।

विवेकानंद ने कहा था कि दुर्बलता मृत्यु है। तिब्बत के साथ बलात्कार हुआ, उत्तर में 12,000 हजार किलोमीटर भूमि पर कब्जा हो गया और बेरूबारी⁴ हाथ से निकल गया, जनसंघ का अस्तित्व तब भी था। यह उन घटनाओं को क्यों नहीं रोक पाया? यदि

4. पश्चिम बंगाल में जलपाईगुड़ी के बेरूबारी का हस्तांतरण 10 सितंबर, 1958 को हुए नेहरू-नून समझौते के तहत हुआ था। भारत और पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) के मध्य सीमा विवाद, एन्क्लेव्स के आदान-प्रदान की समस्या को लेकर पं. नेहरू और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री फ़िरोज़ ख़ान नून के मध्य नई दिल्ली में समझौता हुआ, जिसमें भारतीय क्षेत्र के बेरूबारी संघ और कूच-बिहार एन्क्लेव के क्षेत्र का हस्तांतरण पाकिस्तान को करने का करार हुआ था।

यह दुर्बल था तो इसे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। कृपया प्रकाश डालें।

आपको लोकतांत्रिक प्रणाली की सरकार और इसके तहत किसी भी राजनीतिक पार्टी पर लागू सीमाओं का पता होना चाहिए। लोकतंत्र में कार्य करने का एक तरीका होता है और एक बार लोकतंत्र को स्वीकार करने के बाद हमें इसकी पद्धति को भी अपनाना होगा।

—ऑर्गनाइज़र, गणतंत्र दिवस विशेषांक, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



9

योजनाओं के प्रति भारतीय जनसंघ का दृष्टिकोण व्यावहारिक

योजना की आवश्यकता को चिह्नित कर लेने के बाद इसकी तकनीक और रणनीति से जुड़े प्रश्न महत्वपूर्ण हो उठते हैं। इसी के आधार पर किसी योजना का स्वरूप और क्रियान्वयन निर्भर करता है। कम्युनिस्ट पार्टी के एक अपवाद को छोड़ दिया जाए तो शेष सभी दल स्वीकार करते हैं कि योजनाओं का स्वरूप आर्थिक कारकों के अतिरिक्त सामान्य तौर पर स्वीकृत सामाजिक व राजनीतिक मूल्यों से भी तय होता है। सभी पार्टियाँ चाहती हैं कि योजनाओं का निर्माण संसदीय लोकतंत्र के ढाँचे में ही हो। भारत में योजनाओं के निर्माण के इतिहास की खोज करते हुए कांग्रेस का घोषणा-पत्र कहता है—

‘भारत में संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली और इसके आधार पर लोकतांत्रिक राजनीतिक ढाँचे की स्थापना तथा इसके साथ प्रौद्योगिकी पर आधारित और तीव्र विकास करनेवाली अर्थव्यवस्था, जिसमें न्याय आधारित सामाजिक व्यवस्था हो और जहाँ सभी के लिए समान अवसर सुलभ हों, स्वतंत्रता के बाद हमारे दो मुख्य निर्देशक ध्येय थे। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए पहली पंचवर्षीय योजना शुरू की गई।’

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी भी लोकतांत्रिक समाजवाद की बात करती है। यद्यपि अभी तक इसने स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा है कि किसी भी योजना को लोकतांत्रिक सिद्धांतों के विपरीत जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। स्वतंत्र पार्टी चाहती है कि योजनाएँ संविधान में दी गई स्वतंत्रता की गारंटियों का अतिक्रमण न करें और इसके दायरे में ही संचालित हों।

पी.एस.पी. और कांग्रेस इस तरह की कोई सीमा नहीं चाहते। योजना यदि संविधान के अनुरूप नहीं हुई तो वे योजना में संशोधन करने के बजाय संविधान ही संशोधित कर देंगे।

यह 'नई व्यवस्था' क्या होगी?

इसके अलावा वे सामाजिक व्यवस्था को बदलकर इसकी जगह नई व्यवस्था लाना चाहते हैं। परंतु यह व्यवस्था कैसी होगी, इसे परिभाषित करने में वे विफल रहे हैं। 1957 में कांग्रेस के चुनावी घोषणा-पत्र में समाजवाद की चर्चा करते हुए लिखा गया है :

‘समाजवाद का मतलब सिर्फ सामाजिक ढाँचे में बदलाव ही नहीं है, यह हमारे सोचने के तौर-तरीकों और और रहन-सहन के तौर-तरीकों में भी परिवर्तन लाता है।’

तथापि पी.एस.पी. महसूस करती है कि कांग्रेस कोई सामाजिक परिवर्तन लाने में विफल रही है और उसका आरोप है :

‘कांग्रेस पार्टी की इस घोषणा के बावजूद कि वह समाजवादी प्रकृति के सामाजिक ढाँचे की स्थापना के लक्ष्य को स्वीकार करती है, कांग्रेस पार्टी की कार्यप्रणाली को देखकर लगता है कि समाजवादी सिद्धांतों को अपनाने के बाद भी समाजवाद की उसकी अवधारणा सिर्फ उत्पादन में आधुनिक तकनीकों के प्रयोग तक सिमटी हुई है और बस इसमें कहीं-कहीं जनकल्याणकारी कार्यक्रमों की मिलावट है। जब भी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में कोई खलल डाले बिना सुविधाजनक लगता है, कांग्रेस सार्वजनिक क्षेत्र का थोड़ा विस्तार कर लेती है।’

समाजवादी समाज में बदलाव चाहते हैं, ताकि यह आधुनिकता के अनुरूप या अन्य तरीके से परिभाषित करें तो पश्चिमी तकनीक के अनुकूल समाज बन सके, जबकि स्वतंत्र पार्टी सिर्फ तकनीक की पक्षधर है, वह कोई सामाजिक परिवर्तन नहीं चाहती। जनसंघ का विचार इन दोनों से अलग है। हम इस तरह का तकनीकी विकास चाहते हैं, जो हमारी सामाजिक स्थितियों के अनुकूल हो और यह देश के सनातन-सांस्कृतिक मूल्यों से तादात्म्यता के साथ हमारी सामाजिक संस्थाओं के सुधार में भी सहायक हो।

‘दुर्लभ संसाधनों से कम-से-कम समय में अधिकतम लाभ उठाने की गर्ज से योजनाओं की आवश्यकता’ को रेखांकित करने के बाद भारतीय जनसंघ का चुनावी घोषणा-पत्र सतर्क करते हुए कहता है, ‘परंतु योजना साधन है, अपने आप में साध्य नहीं। वस्तुपरक मूल्यांकन और देश की क्षमताओं के आधार पर ही योजनाओं का स्वरूप तय होना चाहिए।’

जनसंघ का घोषणा-पत्र उद्योगों में प्रौद्योगिकी के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहता है,

‘भारतीय जनसंघ का विचार यह है कि समुचित और त्वरित औद्योगीकरण के लिए पश्चिमी ढाँचे की नकल करने की बजाय हमें स्वयं अपनी प्रौद्योगिकी विकसित करनी चाहिए। अधिकतम उत्पादन के लिए अनुकूलतम कारकों का मिश्रण हर देश में अलग-अलग होता है। और वैसे भी हमारी सांस्कृतिक परंपराएँ, सामाजिक मूल्य और भौतिक आवश्यकताएँ इतनी अलग हैं कि विदेशी तकनीक के सहारे या इसे स्वयं पर थोपकर हम न तो अपनी आर्थिक समस्याएँ सुलझा पाएँगे और न ही एक आत्मनिर्भर और स्व-उत्पादक अर्थव्यवस्था का निर्माण कर पाएँगे।’

‘भारतीय जनसंघ इस तरह की नई तकनीकों का विकास चाहता है, जहाँ कि एक विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था में प्रत्येक परिवार एक उत्पादक इकाई बन सके। आय और संपत्तियों का सहज और अधिक न्यायसंगत वितरण अधिकतम उत्पादकता में भी सहायक होगा।’

अतिवादी प्रवाह

योजना के लिए आवश्यक है कि वह प्राथमिकताएँ निर्धारित करे और उसके अनुसार निर्दिष्ट क्षेत्रों को जिम्मेदारी सौंपे। सोवियत मॉडल पर आधारित पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी गई है और इसमें भी जोर पूँजी प्रधान आधारभूत और भारी उद्योगों पर है। इसका परिणाम सिर्फ उपभोक्ता वस्तुओं की अत्यधिक कमी के रूप में ही नहीं बल्कि बेरोजगारी में वृद्धि और क्रीमों व करो में बढ़ोतरी के रूप में भी सामने आया है। सामान्य तौर से कांग्रेस के घोषणा-पत्र में और विशेष रूप से तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी इन प्राथमिकताओं में परिवर्तन का कोई प्रस्ताव नहीं है। इसके विपरीत भारी उद्योगों और कृषि क्षेत्र में पूँजी प्रधान तौर-तरीकों पर जोर निरंतर जारी है।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी ने भी इस संबंध में किसी महत्वपूर्ण परिवर्तन का प्रस्ताव नहीं किया है। इसका कारण संभवतया यह है कि वे योजना के मूलभूत उद्देश्यों के अनुपालक हैं और इससे चिपके हुए हैं। निस्संदेह, पी.एस.पी. के घोषणा-पत्र में काफ़ी नरम शब्दों में विकेंद्रीकृत लघु उद्योगों के उल्लेख में पछतावा व्यक्त करते हुए कहा गया है कि ‘आधुनिकतावादी विकास और दस्तकारों के अवशेष साथ-साथ दिख रहे हैं।’ पर वे लघु उद्योगों के इसलिए पक्षधर नहीं हैं कि वे उत्पादन की प्राथमिकताओं में कोई परिवर्तन चाहते हैं, वे सिर्फ इसलिए यह चाहते हैं, ताकि वे ‘संपत्ति और शक्तियों के संचयन पर सख्ती से निगरानी रख सकें।’

कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में इसे स्पष्ट अभिव्यक्ति देते हुए कहा गया है कि ‘वे औद्योगीकरण का एक समग्र कार्यक्रम चाहते हैं, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की नेतृत्वकारी

भूमिका हो और जहाँ पूँजीगत उद्योगों को प्राथमिकता मिले।'

भारतीय जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी ने निश्चित रूप से प्राथमिकताओं में परिवर्तन की मांग की है।

स्वतंत्र पार्टी के घोषणा-पत्र में कहा गया है कि 'कृषि को प्रमुखता मिलेगी।' आगे कहा गया है कि इसको (कृषि) एक ठोस आधार देने से देश में स्वतः ही विकास में सक्षम औद्योगिक क्षेत्र के उदय का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

उद्योगों के संदर्भ में यह कहता है कि स्वतंत्र पार्टी पूँजीगत उद्योगों व उपभोक्ता उद्योगों का संतुलित विकास चाहती है और पूरक रोजगार देने व कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण में ग्रामीण उद्योगों की भूमिका को भी रेखांकित करती है। पार्टी भारी उद्योगों के विरुद्ध नहीं है, यदि वे संसाधनों की उपलब्धता के अनुपात में हों। पार्टी यद्यपि कृषि, कुटीर उद्योगों और निम्न आय वर्ग के लोगों के जीवन में खुशहाली लाने में सहायक संगठित हल्के उद्योगों की उपेक्षा कर इनकी क्रीमत पर भारी उद्योगों को एकांगी प्राथमिकता देने को अस्वीकार करती है।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में परिवर्तनों का प्रस्ताव करते हुए जनसंघ के घोषणा-पत्र ने भी कहा था, 'पहली प्राथमिकता कृषि क्षेत्र को मिलनी चाहिए, ताकि देश खाद्यान्न और खेती से जुड़े कच्चे माल के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो सके। दूसरे, बड़े पैमाने पर लघु उद्योगों व उपभोक्ता उद्योगों की स्थापना की जाए।'

दो अतियाँ

देश की आर्थिक समस्याओं को चिह्नांकित करने और इसके निर्दिष्टीकरण को लेकर व्यावहारिक दृष्टिकोण के बजाय पांडित्यपूर्ण रुख अपनाने से बहुत अधिक भ्रम की स्थिति है।

स्वतंत्र पार्टी एक अतिवादी छोर पर है, जहाँ वह चाहती है कि व्यापार व उद्योग में सरकार की कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए और न उसे किसी तरह का हस्तक्षेप करना चाहिए तो दूसरे अतिवादी छोर पर चरमपंथी व उन्मादी समाजवादियों का प्रतिनिधित्व करनेवाले कम्युनिस्ट हैं जो निजी क्षेत्र का सर्वनाश चाहते हैं।

सरकार की भूमिका को परिभाषित करते हुए स्वतंत्र पार्टी का घोषणा-पत्र कहता है—

उद्योग व व्यापार में सरकार की भूमिका सहायक व नियामक की होनी चाहिए, सहभागी की नहीं। व्यवसाय करना सरकार का व्यवसाय नहीं है।

दूसरी तरफ कम्युनिस्टों की माँग है कि योजनाओं के लिए संसाधन जुटाने के वास्ते अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सरकार तेजी से अपना विस्तार करे। इसके लिए

सरकार सिर्फ नए उपक्रम ही नहीं शुरू करे बल्कि जैसा कि पहले ही सुझाव दिया जा चुका है, स्थापित निजी उद्योगों व निजी प्रतिष्ठानों के राष्ट्रीयकरण की भी अनिवार्यता है। घरेलू बाजार में सरकार का व्यापार बढ़ना चाहिए, ताकि यह राजस्व के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में विकसित हो सके।

पी.एस.पी. के रास्ते का मतलब स्वतंत्र व्यापार व शिल्पकारों का संपूर्ण विनाश है।

घोषणा-पत्र में एक नामावली भी है, जिसमें बताया गया है कि तत्काल राष्ट्रीयकरण के उसके कार्यक्रम के प्रमुख निशाने पर कौन से क्षेत्र हैं। ये हैं—

‘बैंकिंग, सामान्य बीमा, लोहा और इस्पात, कोयला व अन्य खदानें, तेल, चीनी, जूट, विदेशी मालिकाना हक वाले चाय बागान और निर्यात व्यापार।’

‘घोषणा-पत्र आगे कहता है, हम दोहराते हैं कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण में हम एक मिनट का विलंब भी सहन नहीं करेंगे।’

कांग्रेस और पी.एस.पी. दोनों ही अंततः राष्ट्रीयकरण के कार्यक्रम के समर्थक और प्रतिनिधि पैरोकार हैं। परंतु इसके रास्ते में आने वाली बाधाओं से अच्छी तरह अवगत कांग्रेस के पास निजी क्षेत्र के लिए भी मीठे बोल हैं। कांग्रेस का घोषणा-पत्र कहता है, ‘हमारा विचार है कि समाजवादीकरण की हमारी नीतियों के तहत निरंतर विस्तार के साथ औद्योगीकरण को गति देने और अतिरिक्त संसाधन जुटाने जैसे दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका दिनोदिन प्रभावशाली और प्रमुख होती जाएगी।’ परंतु वे निजी क्षेत्र को सहन करने के लिए भी तैयार हैं और कहते हैं— ‘...उत्पादन में बढ़ोतरी की अनिवार्यता है और इसे देखते हुए कुछ क्षेत्रों में निजी उपक्रमों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है, पिछले दस साल में निजी निगमित क्षेत्र के विकास से नई समस्याएँ खड़ी हुई हैं...सामान्य रूप से बड़े उपक्रम सार्वजनिक क्षेत्र में ही होने चाहिए।’

(औद्योगिक नीतियों से विचलन पर 1956 के प्रस्ताव का भी उल्लेख किया जा सकता है।)

पी.एस.पी. का नगरपालिका समाजवाद

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का यह सुझाव है और जिस पर वह अत्यंत जोर दे रही है कि स्थानीय निकायों का उपयोग समाज की नकेल के नियंत्रक के रूप में किया जाए। वे कुछ हद तक नगरपालिका समाजवाद के पक्ष में खड़े दिखते हैं।

ऐसे समय में जबकि विकेंद्रीकरण चलन में है, यह विचार थोड़ा आकर्षक लग सकता है। पर असलियत में यह ज्यादा खतरनाक हो सकता है। यह अर्थव्यवस्था को केंद्रीकरण के लाभों से भी वंचित करता है और व्यक्तिगत पहल के लाभों से भी।

इससे भी अधिक इस मौके पर इस प्रकृति का कोई भी कार्यक्रम स्वतंत्र व्यापारियों और शिल्पकारों को मटियामेट कर सकता है। जिला इकाइयों के प्रशासन को आर्थिक नीतियाँ बनाने का दायित्व सौंपने के पार्टी के कार्यक्रम का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इस छितराव के बारे में पार्टी का घोषणा-पत्र कहता है :

‘पी.एस.पी. सिर्फ उद्योगों के छितराव के पक्ष में ही नहीं है, बल्कि उसका विश्वास है कि औद्योगीकरण की प्रक्रिया में ग्रामीण जनता को सम्मिलित करने के लिए यह अनिवार्य है। प्रसंस्करण उद्योग और बहुत से हल्के उपभोक्ता उद्योगों के साथ हल्के इंजीनियरिंग उद्योग जो खेती के विकास और सिंचाई सहित ग्रामीण जनता की कई आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं, को जिला परिषदों के हवाले कर देना चाहिए। साथ ही इनके स्वामित्व और संचालन के लिए हमें उनकी वित्तीय और तकनीकी सहायता भी करनी चाहिए। जिला परिषदें अपने स्तर पर कुछ दायित्वों को प्रखंड पंचायतों या पंचायतों के समूह को सौंप सकती हैं।’

स्वाभाविक है कि इस योजना पर अगर अमल किया गया तो चावल मिलों, आटा मिलों, दाल मिलों और बिस्कुट व ब्रेड बनाने वाली छोटी इकाइयों का भी संचालन व स्वामित्व इन निकायों के हाथ में चला जाएगा।

पी.एस.पी. 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में वर्णित ढाँचे के तहत घरेलू व्यापार का भी राष्ट्रीयकरण चाहता है। घोषणा-पत्र कहता है :

कुछ पूर्वनिश्चित रणनीतिक क्षेत्रों को पूरी तरह से राज्य व्यापार निगम के लिए छोड़ दिया जाएगा। हर क्षेत्र को परिभाषित किया जाएगा और सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं के बाजार के साथ ही औद्योगिक कच्चे माल के बाजार में कोई भी असंतुलन या संकट की स्थिति पैदा होने पर स्थिति को ठीक करने के लिए सरकार हस्तक्षेप करेगी। ऋण ढाँचे, लाइसेंस देने और राजकोषीय नीतियों का उपयोग व्यापार के बाकी क्षेत्रों के नियमन में किया जाएगा।

ये सारी सामान्यीकृत स्थापनाएँ अशोक मेहता¹ की इस योजना के समर्थन के लिए हैं कि सरकार खाद्यान्न व्यापार में उतरे। खदानों के सीधे-सीधे राष्ट्रीयकरण के प्रस्ताव के बजाय पार्टी का सुझाव है कि देश में खनिज संपदा के दोहन में जुटी इकाइयों के कुशल संचालन के लिए सरकार कड़े मानदंड लागू करे और इन कड़े मानदंडों पर खरा नहीं उतरने वाली इकाइयों का तत्काल राष्ट्रीयकरण किया जाए।

1. अशोक मेहता (1911-1984) प्रमुख समाजवादी नेता थे, प्रथम व द्वितीय लोकसभा के सदस्य रहे, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के 1959 से 63 तक अध्यक्ष, 1956 में स्थापित नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च के संस्थापक सदस्य, 1957 में गठित राज्य खाद्यान्न समिति के अध्यक्ष रहे, जिन्होंने खाद्यान्न में राज्य व्यापार की सिफारिश की थी।

एक कदम पीछे

इस संदर्भ में पार्टी स्पष्ट रूप से 1957 के अपने रुख से एक कदम पीछे हटी है। दूसरे आम चुनाव के समय जारी घोषणा-पत्र में राष्ट्रीयकरण पर अपनी नीतियों के बारे में पार्टी ने लिखा था :

‘पार्टी का विश्वास है कि योजनाबद्ध आर्थिक विकास के हित में बैंकों, खदानों और खनिज तेल के राष्ट्रीयकरण की अनिवार्यता है। पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार बड़े बागानों और व्यापार, कुछ चुनिंदा वस्तुओं के घरेलू व विदेशी व्यापार का नियंत्रण अपने हाथ में ले।

भारतीय जनसंघ का व्यावहारिक रुख

भारतीय जनसंघ यह नहीं चाहता कि उत्पादकता से जुड़े उसके कार्यक्रम महज वैचारिक और सैद्धांतिक विमर्शों पर टिके हों। परंतु राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण के लिए कुछ आधारभूत सीमाएँ निर्धारित करने के अतिरिक्त कोई भी कार्यक्रम व्यावहारिक होना चाहिए। अतएव यह जनता के रचनात्मक प्रयासों को बाधित नहीं करना चाहता। परंतु इसके साथ ही हम इस दृष्टिकोण से भी सहमत नहीं हैं कि अर्थव्यवस्था से जुड़े मामलों में सरकार की कोई भूमिका या उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं होना चाहिए।

वस्तुतः किसी भी अल्प विकसित या अविकसित अर्थव्यवस्था में जहाँ सच्चे उद्यमियों का अकाल हो, वहाँ विकास की प्रक्रिया के सूत्रपात का उत्तरदायित्व राज्य का होता है। पूर्व की मैसूर रियासत में सर एम. विश्वेश्वरैया² के प्रधानमंत्रित्व काल में कई नए उद्योगों की शुरुआत हुई। परंतु न तो इसने लोगों को डराने वाले समाजवाद का नारा लगाया और न ही असली निवेशकों को किसी अवसर से वंचित किया।

तथापि राज्य की सक्रियता का क्षेत्र जन आवश्यकताओं और प्रशासकीय क्षमताओं के सटीक व वस्तुगत विश्लेषण के पश्चात् ही निर्धारित होना चाहिए। यद्यपि जनसंघ का

2. सर मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया (1860-1962) भारत के महान् अभियंता जो मैसूर राज्य के 1912 से 1918 तक दीवान रहे। राज्य को विकसित एवं समृद्धशाली बनाने में इनका अभूतपूर्व योगदान है। कृष्णराज सागर बाँध, भद्रावती आयरन एंड स्टील वर्क्स, मैसूर संदल ऑयल एंड सोप फ़ैक्टरी, मैसूर विश्वविद्यालय समेत अन्य कई महान् उपलब्धियाँ इनके अथक प्रयासों से ही संभव हो पाईं, ये उद्योग को देश की जान मानते थे, इसीलिए इन्होंने पहले से मौजूद उद्योगों, जैसे सिल्क, चंदन, मेटल, स्टील आदि को जापान व इटली के विशेषज्ञों की मदद से और अधिक विकसित किया। धन की ज़रूरत को पूरा करने के लिए इन्होंने बैंक ऑफ़ मैसूर खुलवाया तथा इस धन का उपयोग उद्योग-धंधों को विकसित करने में किया जाने लगा। बंगलूर स्थित हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स तथा मुंबई की प्रीमियर ऑटोमोबाइल फ़ैक्टरी इन्हीं के प्रयासों का परिणाम है। भारत में हर वर्ष 15 सितंबर (उनके जन्मदिवस) ‘अभियंता दिवस’ के रूप में मनाया जाता है।

विश्वास है कि रक्षा का प्रबंधन सरकार के हाथ में होना चाहिए, हमारा यह भी मानना है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना में सरकार को विस्तार के बजाय सुदृढीकरण पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। अतएव घोषणा-पत्र कहता है :

‘अव्यावहारिक पांडित्य के आधार पर विस्तार के बजाय हमारा जोर सार्वजनिक क्षेत्र के सुदृढीकरण पर होगा। पिछली पंचवर्षीय योजना के दौरान हाथ में ली गई योजनाओं को शीघ्रता से पूरा किया जाएगा और भविष्य में सरकार सिर्फ वही उद्योग शुरू करेगी, जो आधारभूत प्रकृति के होंगे और जो खेती व अन्य उद्योगों के विकास के लिए अनिवार्य होंगे।’

आधारभूत उद्योगों से जुड़े प्रश्न पर जनसंघ ने अपनी नीतियों को इस तरह निरूपित किया—

‘जनसंघ रक्षा और आधारभूत उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का पक्षधर है। तथापि हमें लगता है कि निकट भविष्य में राज्य को रक्षाक्षेत्र के विकास और इससे जुड़े उद्योगों की स्थापना पर ही मुख्य रूप से ध्यान केंद्रित करना चाहिए। जहाँ तक आधारभूत उद्योगों का सवाल है, राज्य अपने संसाधनों का उपयोग रेलवे, खनिज तेल, पनबिजली और परमाणु ऊर्जा क्षेत्र के उचित विकास के लिए करेगा। निजी उद्यमी अन्य क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना और इसके विकास में सहयोगी होंगे।

—ऑर्गनाइज़र, गणतंत्र दिवस विशेषांक, 1962
(अंग्रेज़ी से अनूदित)



10

दल और किसान; सरकार की ओर से कृषि और किसानों की उपेक्षा जारी

खेती सभी आर्थिक विकास का मूल आधार है। भारत में यह आजीविका का मुख्य साधन है और देश की 72 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि कार्यों से जुड़ी हुई है। राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा आधे से भी अधिक है। इस प्रकार, यह स्वाभाविक है कि कृषि पर हमारा पहला और मुख्य ध्यान होना चाहिए।

तथापि राजनीतिक विचारकों और अर्थव्यवस्था के योजनाकारों ने अर्थव्यवस्था के सुव्यवस्थित विकास में कृषि की अनिवार्यता को समुचित महत्त्व नहीं दिया है। वे भारत में औद्योगीकरण की समस्या को लेकर ज्यादा चिंतित हैं। उनका मानना है कि भारत की गरीबी का मूल कारण औद्योगीकरण का अभाव है और कुछ हद तक वे सही भी हैं।

परंतु वे भूल जाते हैं कि कृषि के विकास के बिना उद्योग फल-फूल नहीं सकते। खेती सिर्फ बढ़ती आबादी को खाद्यान्न ही नहीं प्रदान करती बल्कि यह उद्योगों के लिए कच्चा माल भी मुहैया करती है। एक संपन्न कृषक वर्ग अकेले ही उद्योगों के लिए सबसे बड़ा बाजार उपलब्ध करा सकता है। यदि इस पहलू की उपेक्षा की गई तो उद्योग कच्चे माल के अभाव में शिथिलता के शिकार हो सकते हैं या माँग के अभाव में बंदी की नौबत आ सकती है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना इस संबंध में बुरी तरह विफल हो गई। इसका पूरा जोर औद्योगिक विकास और वह भी भारी उद्योगों पर रहा। तीसरी पंचवर्षीय योजना में इस असंतुलन को दुरुस्त करने का वादा था, परंतु योजना परिव्यय को देखकर इस बारे में किसी भी तरह की समझ का घोर अभाव दिखता है। इसका परिणाम यह हो सकता है कि खेती के विकास पर ध्यान दिए बिना हम औद्योगीकरण जारी रखेंगे।

कृषि की दो समस्याएँ

कृषि की समस्याएँ दो श्रेणियों में बाँटी जा सकती हैं। पहला तो कृषकों और भूमि

के जोत के अधिकार से संबंधित है, जबकि दूसरे का संबंध कृषि कार्य में किसानों की आवश्यकताओं से है। ये दोनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। तथापि पिछले 15 साल से राजनीतिक पार्टियाँ भूमि प्रबंधन के बजाय भूमि सुधार से जुड़े प्रश्नों को लेकर अधिक व्यस्त हैं। अधिकतम पैदावार के लिए खेतों व किसानों को आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित किए बिना भूमि सुधार लागू करना इस प्रयोजन को विफल कर देगा। खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाना ही हमारा परम ध्येय है और सभी सुधारों की योजना इसी को ध्यान में रखकर बनानी चाहिए। अन्य सामाजिक व राजनीतिक उद्देश्य, चाहे कितने भी वांछनीय हों, यदि मुख्य ध्येय की सिद्धि में आड़े आ रहे हों, तो उन्हें बीच में नहीं लाना चाहिए।

यह बात लगभग सभी लोग मान चुके हैं कि भारत में अधिकतम पैदावार का लक्ष्य सघन खेती के जरिए ही प्राप्त किया जा सकता है। सघन खेती भूमि के विकास में निवेश और किसान के व्यक्तिगत ध्यान की माँग करती है। यह काश्तकारी अधिकार की सुरक्षा के बिना संभव नहीं है। इस प्रकार अब तक सभी भूमि कानूनों का लक्ष्य यही रहा है कि खेत जोतने वाले को स्वामित्व का अधिकार मिले।

जमींदारी और जागीरदारी वाले क्षेत्रों में बिचौलियों की भूमिका समाप्त की जा चुकी है और भूमि का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका है। काश्तकारी कानून के जरिए राज्य ने भूमि का अधिकार स्थायी तौर पर जोतदारों को सौंप दिया है और यह अगली पीढ़ियों को भी दाय होगा।

भूमि सुधारों से जिन्हें लगा आघात

यद्यपि जिन राज्यों में रैयतवारी प्रथा¹ अभी भी चलन में है, वहाँ यह समस्या अभी

1. अंग्रेजों ने भारत आगमन के बाद यहाँ की खेतिहर व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन का सिलसिला शुरू करते हुए नई लगान व्यवस्था लागू की, जिसमें जमीन पर लोगों की जमाने से चली आ रही मिलिकियत खत्म कर उसकी जगह भूस्वामित्व के तीन रूपों को जन्म दिया—जमींदारी व्यवस्था, रैयतवारी व्यवस्था तथा माहलवाड़ी व्यवस्था। सबसे पहले 1793 में कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमीन के स्थायी बंदोबस्त के जरिए भारत में जमींदारी प्रथा का सृजन किया। अंग्रेज शासकों के राजनीतिक पूर्वाधिकारियों ने इन प्रांतों में जिन तहसीलदारों को कमीशन के आधार पर भूमि कर की वसूली का अधिकार दिया था, उन्हीं में से जमींदारों के इस नए वर्ग की सृष्टि हुई।

भू-स्वामित्व की दूसरी प्रमुख व्यवस्था थी रैयतवारी, जिसे 1792 में मद्रास में और 1817-18 में बॉम्बे में लागू किया गया। इसमें रैयत या किसान को उसकी जमीन का मालिक माना गया। जब तक वह अंग्रेज कलेक्टर को समय पर तय मालगुजारी देता रहता था, उसकी जमीन को कोई आँच नहीं आ सकती थी। रैयतवारी व्यवस्था आज के महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, आंध्र प्रदेश, अधिकांश मध्य प्रदेश, आसाम समेत देश के 51 फीसदी कृषि क्षेत्रफल में लागू थी।

उत्तरी भारत तथा पंजाब के कुछ क्षेत्रों में एक अन्य व्यवस्था महालवाड़ी लागू की गई। इसमें लगान देने के लिए संयुक्त जिम्मेदारी की व्यवस्था की गई। कृषि भूमि को गाँव की सामुदायिक संपत्ति के रूप में मान्यता दी गई। इसमें काश्तकार व्यक्तिगत स्तर पर नहीं बल्कि पूरे गाँव की ओर से सरकार के साथ समझौता करता था।

भी जारी है। क़ानूनी रूप से रैय्यत भूमि का स्वामी होता है। परंतु ज्यादातर मामलों में जोतदार भूमि का स्वामी नहीं है। मालिक दूरवासी ज़मींदार हो गए हैं। इससे किराया या कहें कि उपज में हिस्सा वसूलने वालों का एक नया वर्ग पैदा हो गया है। और कुछ जगहों पर बँटाई की दर उपज के आधे हिस्से जितनी है। कुछ क्षेत्रों में बँटाई की दर निर्धारित करने के प्रयास हुए हैं और इसके अच्छे परिणाम भी मिले हैं। परंतु कुछ राज्य ऐसे भी हैं, जिन्होंने अभी तक इस दिशा में कुछ नहीं किया है।

इस क्षेत्र में सुधारों से उस वर्ग पर असर पड़ा है, जो आय के नए साधनों की तलाश में शहरों में जा बसे हैं। यह वर्ग इन सुधारों से खिन्न है। इन आर्थिक नीतियों की सबसे ज्यादा मार इसी वर्ग पर पड़ी है और इनकी दुर्दशा यह हो गई है कि इनके लिए दो जून की रोटी जुटाना कठिन हो गया है। बढ़ती महँगाई और घटती आय से यह वर्ग इस स्थिति में पहुँच गया है, जहाँ सफेद कपड़ों और शिक्षा के आवरण में वह अपनी दयनीय निर्धनता को किसी तरह छिपा रहा है।

कुछ लोगों को लगता है कि जोतदार को भूमि का स्वामित्व दिलाने से जुड़े सुधारों को खारिज करने या इसे स्थगित करने के लिए ये पर्याप्त कारण हैं। यद्यपि वे भूल रहे हैं कि इस तरह के क्रदमों से वे अपना ही नुकसान कर रहे हैं, वे स्वयं को उस आर्थिक व्यवस्था से वंचित कर रहे हैं, जो अंततः समाज में उन्हें बेहतर स्थिति की ओर ले जाएगी। स्वतंत्र पार्टी इस वर्ग की भावनाओं का लाभ उठाने का प्रयास कर रही है और किसानों के भूमि के प्रति प्रेम को भुनाने की उम्मीद करती है। वह इस बात को भूल रही है कि वह जिन किसानों का प्रतिनिधित्व करती है, वे पहले ही ज़मीन छोड़ चुके हैं और उनका ज़मीन के प्रति कोई प्रेम नहीं है, सिवा इससे किराया वसूली के।

स्वतंत्र पार्टी का दृष्टिकोण

स्वतंत्र पार्टी भूमि सुधारों को सरकार द्वारा उसे जब्त करने के रूप में देखती है। उसका मानना है कि कुछ राज्यों में भूमि को निजी संपत्ति माना जाता है और इसे हस्तांतरित किया जा सकता है। निजी संपत्ति के बारे में किसी दार्शनिक विचार-विमर्श में गए बग़ैर यह स्वीकार करना होगा कि समुचित मुआवजा देने के बाद समाज अथवा राज्य को यह अधिकार है कि वह संपत्ति में किसी व्यक्ति के अधिकारों में परिवर्तन कर दे। देश के आर्थिक विकास के हित में यह संशोधन अनिवार्य हो गया है। संभवतः स्वतंत्र पार्टी इसे खुले रूप में चुनौती नहीं देगी, लेकिन निश्चित रूप से वह इसी के पक्ष में है, जब पार्टी घोषणा-पत्र यह वादा करता है कि पार्टी भू-स्वामित्व में किसानों के संपत्ति के अधिकारों का सम्मान करेगी, चाहे वे छोटे हों या बड़े और इस प्रकार वह अनिश्चितताओं को समाप्त कर प्रोत्साहन प्रदान करेगी।

इस प्रकार स्वतंत्र पार्टी चाहती है कि भू-स्वामित्व में कोई सीलिंग नहीं होनी चाहिए और जोतने वाले को उस भूमि पर स्वामित्व नहीं देना चाहिए, जिसे वह जोतता हो।

कांग्रेस

इस संबंध में स्वतंत्र पार्टी के दृष्टिकोण से सभी पार्टियाँ असहमत हैं। सभी पार्टियाँ ज़मीनों की हदबंदी (भूमि के मालिकाना हक की निश्चित सीमा तय करना) और जोतदार को भूमि का स्वामी बनाने पर सहमत हैं। कांग्रेस सरकार पहले ही क़ानून बनाकर भूमि के स्वामित्व की अधिकतम सीमा तय कर चुकी है। परंतु इन क़ानूनों में कई खामियाँ हैं। कांग्रेस को यह क़ानून लाने में पूरे दस साल लगे। अब इस पर अमल में दस साल लग सकते हैं। कांग्रेस का घोषणा-पत्र सिर्फ़ यह वादा करता है कि 'जितना जल्दी संभव हो, इसे सभी राज्यों में लागू कर दिया जाए।' परंतु उन्होंने इसकी कोई निश्चित तिथि तय करने का प्रस्ताव नहीं किया है। स्वाभाविक है कि इससे कृषि क्षेत्र में अस्थिरता की स्थिति जारी रहेगी और इस तरह इसका विकास विलंबित होता जाएगा।

पी.एस.पी. स्वतंत्र पार्टी के भूमि सुधारों को स्वामित्व हरण समझती है। इसका यह रुख इस पर आधारित है कि कुछ राज्यों में भूमि को निजी संपत्ति समझा जाता है और इसका हस्तांतरण किया जा सकता है। निजी संपत्ति पर दार्शनिक बहस में जाए बिना भी यह मानना पड़ेगा कि किसी भी व्यक्ति को उचित क्षतिपूर्ति देने के पश्चात् राज्य या समाज को संपत्ति के उसके अधिकार में परिवर्तन का अधिकार है। देश के आर्थिक विकास के हित में यह संशोधन अनिवार्य है। स्वतंत्र पार्टी संभवतया इस अधिकार को खुलेआम चुनौती नहीं दे पाए, पर निश्चित रूप से वह इसके पक्ष में दिखती है जब पार्टी का घोषणा-पत्र यह वादा करता है कि 'पार्टी किसानों के संपत्ति के अधिकार का सम्मान करेगी, चाहे उनकी जोत बड़ी हो या छोटी और इस तरह वह अनिश्चितताओं को समाप्त करेगी और उन्हें प्रोत्साहन देगी।' अभिप्राय यह है कि स्वतंत्र पार्टी चाहती है कि भूमि के स्वामित्व की कोई सीमा नहीं तय की जाए और जोतदार जिस ज़मीन को जोतता है, उसका मालिकाना हक उसे नहीं दिया जाए।

पी.एस.पी.

पी.एस.पी. का घोषणा-पत्र इस समूचे प्रकरण की इस तरह व्याख्या करता है :
 "खामियों से भरे भूमि सुधारों से शायद ही गाँवों और ग्रामीणों को कोई न्याय मिला है। ये अधिनियम अस्पष्ट हैं, इनमें ढेरों छेद हैं और इसके क्रियान्वयन में टालमटोल की अपार संभावनाएँ हैं।"

अतएव पी.एस.पी. का प्रस्ताव है कि भूमि सुधार का कार्य ज़िला परिषदों को दे

दिया जाए, जो समयबद्ध तरीके से इस पर अमल करें।

भा.क.पा.

इस संबंध में कम्युनिस्ट पार्टी भी काफ़ी दृढ़ है। वह कहती है :

“हालिया वर्षों में भूमि के स्वामित्व के जितने भी हस्तांतरण हुए हैं, उन सभी की फिर से जाँच हो और कोई हस्तांतरण फर्जी पाए जाने पर उसे रद्द किया जाए। किसानों के हित में भूमि संबंधी प्रचलित क़ानूनों और विशेष रूप से जोत की हदबंदी से जुड़े क़ानूनों में जो भी खामियाँ हैं, उन्हें तत्काल प्रभाव से दूर किया जाए, ताकि भूमि का चंद हाथों में केंद्रीकरण रोका जा सके। भूमिहीन मजदूरों और गरीब खेतिहरों में ज़मीन का पुनर्वितरण हो।”

भारतीय जनसंघ

जनसंघ ने भूमि सुधारों के लिए एक व्यापक और व्यावहारिक कार्यक्रम का प्रस्ताव किया है। यह कार्यक्रम गोयबल्स की तरह के लोगों के उस दुष्प्रचार को ध्वस्त करता है, जो हम पर मध्ययुगीन सामंतवाद को पुनर्जीवित करने का आरोप मढ़ रहे थे। किसी तरह की नारेबाजी में लिप्त हुए बिना जनसंघ का घोषणा-पत्र पार्टी की भूमि नीति को इस तरह परिभाषित करता है :

“जनसंघ किसानों को उनकी भूमि का स्वामी बनाएगा। प्रचलित क़ानूनों की सभी खामियाँ दूर कर इनका प्रभावी तरीके से क्रियान्वयन किया जाएगा। भारतीय जनसंघ बेदखली को रोकेगा और उन सभी काशतकारों को उनकी भूमि वापस दिलाएगा, जो उनसे अवैध या अनुचित तरीके से छीनी गई है।”

यद्यपि जनसंघ कुछ श्रेणियों और विशेष रूप से उन लोगों को, जिनके पास हदबंदी की सीमा से कम ज़मीन है, उन्हें अपनी भूमि किसी अन्य को पट्टे पर देने का अधिकार देगा। घोषणा-पत्र कहता है :

“पाँच एकड़ तक की ज़मीन वाले काशतकारों को अपनी भूमि विशेष रूप से विधवाओं, अनाथों, विकलांग व्यक्तियों, सशस्त्र बलों और धर्मार्थ संस्थाओं व संस्थानों को पट्टे पर देने का अधिकार होगा।”

ज़मीनी सच्चाइयों और स्थिति को देखते हुए यह एक महत्वपूर्ण अपवाद है, जिसे घोषणा-पत्र में सम्मिलित किया गया है। एक छोटा जोतदार, जिसने अपनी ज़मीन बैटाई पर दे रखी है, वह तब तक उसे वापस नहीं लेना चाहेगा, जब तक कि वह खुद ठीक से खेती या भूमि की देखभाल में सक्षम न हो जाए। यदि उसे ज़मीन को बैटाई पर देने से रोका गया तो स्वाभाविक है कि वह खुद इस पर खेती करेगा, पर बेमन से। परंतु इससे भूस्वामी के हितों की अनदेखी होती है, क्योंकि उसकी ज़मीन आर्थिक रूप से अनुत्पादक ही साबित होगी। नए क़ानून से इस तरह के अनुत्पादक स्वामित्वों में बढ़ोतरी हुई है।

इस प्रकार यह लाभप्रद होगा कि ऊपर उल्लिखित श्रेणियों और छोटे किसानों को भूमि उप ठेके पर देने संबंधी क़ानून के निषेधात्मक उपबंधों के दायरे से बाहर रखा जाए। अन्य अपवादों का स्पष्टीकरण देने की कोई आवश्यकता नहीं।

परंतु कुछ दक्षिणी राज्यों में धर्मार्थ संस्थाएँ और मंदिर भी इस भूमि सुधार क़ानूनों से प्रभावित हुए हैं। स्वाभाविक है कि देवताओं से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे आकर खेती करना शुरू कर दें। परंतु उनकी भूमि पर उनकी ओर से किसी अन्य को खेती करनी चाहिए। अधिक उचित यह होगा कि मंदिर के पुजारी या धर्मार्थ संस्था के प्रबंधक के बजाय उप ठेकेदार खेती करें।

यंत्रीकरण से बचने के लिए हदबंदी की अनिवार्यता

जनसंघ हदबंदी के पक्ष में खड़ा है। उपपट्टेदारी या उप ठेकेदारी पर यदि प्रतिबंध है तो फिर हदबंदी की अनिवार्यता है, बशर्ते हम खेती में यंत्रीकरण के इच्छुक न हों। स्वतंत्र पार्टी खेती का अमरीकीकरण चाहती है। परंतु वे भूल जाते हैं कि भारत में प्रति इकाई भूमि पर अधिकतम पैदावार की आवश्यकता है, न कि इसकी कि प्रत्येक मजदूर खेती में निवेश के हिसाब से अधिकतम उत्पादन करे। इस प्रकार यंत्रीकरण हमारी कृषि अर्थव्यवस्था के अनुकूल नहीं है। इसलिए खेत का आकार उतना ही हो, जितने का ठीक से प्रबंधन किया जा सके और इसलिए हदबंदी लागू करना आवश्यकता है।

तथापि हदबंदी थोपने की प्रक्रिया में हमें सामाजिक व राजनीतिक उद्देश्यों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए और लोगों के बीच यह भावना नहीं पैदा करनी चाहिए कि उनके साथ भेदभाव हो रहा है। जो लोग असमानता को कम करने के क्रदम के रूप में हदबंदी को उचित ठहरा रहे हैं, वे गाँवों और शहरों के बीच आय के अंतर पर अपनी चुप्पी को कैसे न्यायोचित ठहराएँगे? कृषि पर भारी भरकम आयकर थोपकर सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। इससे सिर्फ कृषि उपज में गिरावट आएगी।

यह दोहराने की आवश्यकता नहीं कि प्रचलित क़ानूनों में बहुत सी खामियाँ हैं और इनके क्रियान्वयन में भी अभी बहुत समय लगेगा। इसलिए जनसंघ का घोषणा-पत्र कहता है :

“लगभग सभी राज्यों में हदबंदी क़ानून के जरिए भूमि के स्वामित्व की सीमा तय कर दी गई है। तथापि इन तमाम क़ानूनों में कई खामियाँ हैं और कई मंत्रालय सोद्देश्यपूर्ण ढंग से इसके क्रियान्वयन में विलंब कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप किसानों के मन मस्तिष्क में अनिश्चितता है और इस प्रकार इससे कृषि उत्पादन पर असर पड़ रहा है। इन खामियों को दूर कर जनसंघ साल भर के अंदर इनका क्रियान्वयन करेगा।”

यद्यपि बाकी सभी पार्टियाँ भू-स्वामित्व की उच्चतम सीमा निर्धारित करने का आग्रह

कर रही हैं, परंतु किसी भी पार्टी के पास अलाभकारी संपत्तियों को लाभकारी बनाने का कोई कार्यक्रम नहीं है। इसके बजाय उनका प्रस्ताव सहकारिता का है, जिसके नतीजे में किसानों का अपनी ज़मीन पर स्वामित्व भी छिन जाएगा। इतना ही नहीं, सहकारी खेती कृषि पैदावार में गिरावट की ओर ले जाएगी। वर्तमान समय में हमारे पास इस योजना के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए आवश्यक प्रबंधकीय क्षमता भी नहीं है।

जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी दोनों ही सहकारी खेती के विरोध में हैं। अंततः यह भूमि के सामूहिकीकरण की ओर ले जाएगी। नागपुर सत्र में कांग्रेस ने सहकारी खेती का प्रस्ताव पारित किया था। पर इस प्रस्ताव की बहुत सी बातें बस गोल-मोल और बहलाने-फुसलाने वाली हैं। अब वे स्वैच्छिक सहकारी खेती की बात कर रहे हैं। परंतु सरकार जब कोई काम अपने हाथ में लेती है तो वह लक्ष्य तय करती है और इसे पूरा करने के लिए भेदभाव भी करती है। इस प्रकार इसमें दबाव का तत्व भी होता है। तथापि कांग्रेस का घोषणा-पत्र कहता है :

“यह प्रस्ताव किया जाता है कि ग्रामीण इलाकों में सर्वत्र और जहाँ कहीं भी संभव हो और सहमति हो, सहकारी खेती का विस्तार किया जाए।”

स्वाभाविक है कि वे सहकारी खेती का यंत्रीकरण चाहते हैं और इसलिए उनका घोषणा-पत्र आगे कहता है :

“सहकार और इसके साथ आधुनिक खेती की तकनीकों व पशुपालन में किसानों और मजदूरों को प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इस तरह का प्रशिक्षण व्यापक पैमाने पर मुहैया कराया जाना चाहिए।”

संकेत स्पष्ट है। बड़े पैमाने पर प्रशिक्षण की सुविधा तभी दी जाएगी, जब बड़े पैमाने पर सहकारी खेती के कार्यक्रम पर अमल होने जा रहा हो और यह स्वैच्छिक नहीं होगा।

अलाभकारी संपत्तियों की बीमारी के इलाज के लिए पी.एस.पी. भी एक मीठी गोली पेश कर रही है। वह कहती है :

“आवश्यकतानुसार प्रोत्साहन व प्रलोभन देने के बाद छोटे भूस्वामियों को सहकारिता में सम्मिलित होने का न्योता दिया जा सकता है। संसाधनों व सामग्रियों का संग्रहीकरण हमें भूमि के संग्रहीकरण की ओर ले जाएगा।”

कम्युनिस्टों ने अपने चुनावी घोषणा-पत्र में सहकारी खेती का कोई उल्लेख नहीं किया है। परंतु इस कार्यक्रम को उनका समर्थन इतना स्वाभाविक है कि इस पर उनकी गहन चुप्पी भी किसी को मूर्ख नहीं बना सकती।

जनसंघ के घोषणा-पत्र में सहकारी खेती के प्रति विरोध को दोहराया गया है। यह कहता है :

“भारतीय जनसंघ संयुक्त सहकारी खेती को लोकतंत्र के लिए हानिकारक समझता है और मानता है कि यह प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाने की प्राथमिक आवश्यकता के अनुकूल नहीं है। भूमि का स्वामित्व छोड़ने के लिए मजबूर करनेवाले सभी प्रावधानों को खत्म कर दिया जाएगा। सरकार की ओर से मुहैया कराई जानेवाली सुविधाएँ सभी किसानों को बिना भेदभाव के मिलेंगी।”

स्वतंत्र पार्टी भी सहकारी खेती की विरोधी है और उसका कहना है :

“स्वतंत्र पार्टी भूमि सुधारों के पक्ष में है, परंतु यह ‘संयुक्त सहकारी खेती’ की ओट में सरकार के नियंत्रण में सामूहिक खेती के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में स्वामित्व हरण की विरोधी है।” तथापि बड़ी जागीरों का समर्थन और हदबंदी का विरोध कर पार्टी ने बड़े किसानों के प्रति अपने समर्थन का स्पष्ट संकेत दे दिया है।

सघन खेती की आवश्यकता सभी प्रकार की जागीरदारी को खारिज करती है, चाहे वह सामूहिक या सहकारी खेती या निगमित घरानों या किसी व्यक्ति विशेष की हो।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, इनमें से किसी भी पार्टी के पास अलाभप्रद संपत्तियों को लाभप्रद बनाने के लिए कोई कार्यक्रम नहीं है। किसी संपत्ति की लाभप्रदता आकार और खेती के तौर-तरीकों से भी तय होता है।

भारतीय जनसंघ महसूस करता है कि वर्तमान स्तर को देखते हुए अच्छी तरह से सिंचित पाँच एकड़ भूमि प्रामाणिक रूप से लाभप्रद संपत्ति है। इसको देखते हुए हमारा प्रयास ऐसी स्थिति लाने का होगा, जहाँ प्रत्येक किसान के पास कम-से-कम पाँच एकड़ भूमि हो।

इस प्रकार से जोत के खंडीकरण और इसके छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटते जाने पर रोक लगाने की अपनी मंशा की घोषणा करते हैं। इसके लिए भूमि पर लागू होने वाले हिंदू उत्तराधिकार क़ानून² के प्रावधानों और किराएदारी क़ानून में भी परिवर्तन किया जाएगा।

अतिरिक्त भूमि का वितरण करते हुए इस बात का ध्यान रखा जाएगा कि बड़ी संख्या में अलाभप्रद संपत्तियों का सृजन करने की बजाय यह वांछनीय होगा कि अधिक-से-अधिक अलाभप्रद संपत्तियों को लाभप्रद बनाया जाए। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए पाँच एकड़ से कम भूमि वाले किसानों को छूट दी जाएगी। कृषि को ठोस रूप देने के लिए ये सभी चीज़ें अनिवार्य हैं। कृषि सिर्फ़ जीवन निर्वाह के लिए नहीं हो बल्कि इसे एक आर्थिक गतिविधि के रूप में लिया जाए।

2. हिंदू उत्तराधिकार विधेयक 1956 के प्रावधानों में हिंदू परिवारों में संपत्ति का क़ानूनी हस्तांतरण व बँटवारे का वर्णन है। 1956 एक्ट के तहत ही महिलाओं को पिता की संपत्ति में स्वामित्व व बेटी को घर की संपत्ति में रहने का अधिकार प्राप्त हुआ।

किसानों को सहायता उपलब्ध कराने की बात पर सभी पार्टियाँ खासी उदार हैं। यद्यपि कांग्रेस चाहती है कि किसानों पर खुशहाली टैक्स लगाया जाए और सिंचाई दरों में बढ़ोतरी की जाए। जनसंघ का मानना है कि सिंचाई किसानों की मूलभूत आवश्यकता है और इसे व्यावसायिक गतिविधि के तौर पर देखना उचित नहीं है। अतएव जनसंघ सिंचाई की दरों में कटौती करना चाहता है और कृषि कार्यों के दक्षता से संचालन के लिए पूरे विभाग को पुनर्गठित करने का इच्छुक है।

यद्यपि अन्य सभी पार्टियाँ बड़ी सिंचाई परियोजनाओं की पक्षधर हैं, पर जनसंघ का हमेशा से छोटी परियोजनाओं पर जोर रहा है। इस तथ्य के बावजूद कि बहुत सारी बड़ी परियोजनाएँ पूरी होने के निकट हैं, परंतु अभी भी बड़े पैमाने पर छोटे-छोटे क्रदम उठाने की आवश्यकता बनी हुई है। श्रेष्ठतर योजनाओं के निर्माण और बाढ़ नियंत्रण के उद्देश्य से जनसंघ जल संसाधनों का राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण चाहता है। किसी भी पार्टी की तरफ से सेवा सहकारिता का कोई विरोध नहीं है। तथापि जनसंघ इस बात का पक्षधर है कि यह किसी भी तरह के सरकारी नियंत्रण से मुक्त हो और पूरी तरह से स्वैच्छिक आधार पर विकसित होने दिया जाए।

स्वतंत्र का नारावाद

स्वतंत्र पार्टी ने नारा दिया है—‘भूमि कर को समाप्त किया जाए और इसे बस इतना रखा जाए जितना कि भू-स्वामित्व अभिलेखों के रखरखाव के लिए अनिवार्य हो। यह अपवाद स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि यह नारे से अधिक कुछ नहीं है। इस कार्यक्रम का उस वादे से कैसे तालमेल बैठ सकता है, जिसमें पार्टी कहती है कि वह उन संवैधानिक संशोधनों को रद्द कर देगी, जिसने कांग्रेस को ये अधिकार दिए हैं कि वह नाममात्र का और पूरी तरह अपर्याप्त मुआवजा देकर कृषक भूस्वामियों से उनकी ज़मीनें छीन ले। स्वतंत्र पार्टी यह तो चाहती है कि भूस्वामी अपनी ज़मीनें पट्टे या बँटाई पर देकर किराया या अधिया वसूलें, पर यह नहीं चाहती कि वे सरकार को कुछ भी दें।

परंतु भूमि कर को लेकर अपवाद के तौर पर यह नारा देकर कि “सिर्फ उतना ही कर दें, जितना कि भू-अभिलेखों के रखरखाव के लिए अनिवार्य हो,” स्वतंत्र पार्टी ने अपने मूल प्रवर्तक, जनता पार्टी नेता के उस आर्थिक प्रस्ताव को हड़प लिया है, जिसे उन्होंने बहुत गुणा-भाग से तैयार किया था।

यद्यपि यहाँ भूमि किराए में कटौती का मामला बनता है। रैयतवारी के चलन वाले क्षेत्रों में जहाँ उप ठेकेदारी की अनुमति है, किराए में अवश्य कटौती होनी चाहिए। ज़मींदारी प्रथा वाले राज्यों में इसकी समाप्ति के बाद अब राज्य खुद ज़मींदार की भूमिका में है और उसी तरह कर वसूला जा रहा है, जैसे ज़मींदार वसूलते थे। निर्धन

किसान को किसी भी तरह का कोई लाभ नहीं पहुँचा है। कई मामलों में किराया पहले से बढ़ गया है। इसका परिणाम यह है कि पिछले दशक में कई राज्यों की राजस्व आय दोगुने से भी अधिक हो गई है। जनसंघ चाहता है कि इन इलाकों में भूमि कर को आधा कर दिया जाए और इसका एक हिस्सा पंचायतों को आवंटित किया जाए। परंतु इसके विपरीत योजना आयोग और इसके सलाहकार भूमि कर या किराए में और बढ़ोतरी चाहते हैं। वे इस ग़लतफहमी के शिकार हैं कि ग्रामीण आबादी पर अभी तक पर्याप्त कर नहीं हैं और वे अभी भी थोड़ा अतिरिक्त बोझ वहन कर सकते हैं। यह धारणा निराधार ही नहीं बल्कि हानिकारक भी है। हमें सिर्फ औद्योगिक विकास के लिए ही नहीं बल्कि कृषिक्षेत्र के विकास के लिए भी पूँजी चाहिए। कोई भी अतिरिक्त कर हमारी अर्थव्यवस्था के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में पूँजी निर्माण में ही अवरोधक नहीं होगा बल्कि बहुत से मामलों में यह पहले से ही निर्धनता में गुजर-बसर कर रही जनसंख्या के कष्टों को और बढ़ाएगा।

खेती के साथ विपणन का प्रश्न भी काफ़ी गहरे तक जुड़ा हुआ है। कृषि उपज में बढ़ोतरी का अर्थ यह नहीं है कि उसी अनुपात में किसान की समृद्धि भी अपने आप बढ़ जाएगी। यहाँ पर किसान की स्थिति कमज़ोर है। फसल के समय बाज़ार पर खरीदार का क़ब्ज़ा रहता है और इसके बाद विक्रेता का। इस तरह से उत्पादक व उपभोक्ता दोनों नुकसान में रहते हैं। इस समस्या का निदान बड़े पैमाने पर गोदामों, शीतगृहों के निर्माण और सहकारी संस्थाओं की स्थापना में है। इसी को ध्यान में रखते हुए जनसंघ के घोषणा-पत्र में वादा किया गया है :

‘भारतीय जनसंघ यह सुनिश्चित करेगा कि कृषक को उसके उत्पादों का उचित दाम मिले। बड़े पैमाने पर गोदामों का निर्माण किया जाएगा। फसली सत्र के प्रारंभ में ही पूर्वघोषित न्यूनतम मूल्य पर कृषि उत्पादों की खरीद की व्यवस्था की जाएगी। इस न्यूनतम मूल्य को निर्धारित करने के दौरान लागत के अतिरिक्त लाभ के रूप में कुछ और रकम भी जोड़ी जाएगी।’

पी.एस.पी. ने भी सामान्य तौर पर इस दिशा में सरकारी सहायता का आश्वासन दिया है। कांग्रेस और कम्युनिस्ट चुप हैं परंतु स्वतंत्र पार्टी ने ‘समता क्रीमों’ की बात की है।

भारत में किसान गाय व बैलों पर निर्भर हैं। अन्य चीज़ें अलग हैं, पर यह तथ्य है कि भारत में गाय के प्रति सम्मान सार्वभौमिक है। यह एक राष्ट्रीय भावना है। स्वतंत्र भारत में सदैव ही गाय और इसकी संततियों का वध निषिद्ध रहा है। दुर्भाग्य से वर्तमान शासन इस नियम का अपवाद है।

भारतीय जनसंघ के अपवाद को छोड़ दें तो प्रायः सभी पार्टियाँ गो-वध को जारी

रखने के पक्ष में हैं। तथापि जनसंघ का प्रण है कि वह गाय और इसकी संततियों के वध पर प्रतिबंध के लिए संविधान में संशोधन लाएगा।

इस प्रकार भारतीय जनसंघ भूमि पर किसानों के स्वामित्व के आधार पर और छोटी परियोजनाओं पर जोर देते हुए कृषि क्षेत्र का विकास चाहता है। हम यंत्रीकरण के विरोधी हैं, पर अपवाद के रूप में बंजर भूमि के उद्धार या पुनः प्राप्ति के लिए इसकी छूट दे सकते हैं।

जनसंघ को वोट समृद्ध और स्वतंत्र किसानों के लिए वोट है। जनसंघ के लिए वोट सहकारी खेती के नाम पर सामूहिक खेती की तरफ ले जानेवालों के विरुद्ध मतदान है।

स्वतंत्र पार्टी को दिया गया वोट सहकारी खेती के विरोध में तो है, पर यह निजी या मिश्रित पूँजी कंपनियों के अधीन बड़े पैमाने पर यंत्रीकरण वाली खेती के पक्ष में दिया गया वोट है। कांग्रेस, पी.एस.पी., सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्टों और यहाँ तक कि हिंदू महासभा को दिया गया वोट भी सहकारी खेती के लिए दिया गया वोट है।

यदि किसानों की स्वतंत्रता को निरापद व सुरक्षित रखना है तो हर हाल में जनसंघ का समर्थन करना होगा और इसे वोट देना होगा।

—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 29, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



11

मताधिकार कागज़ का टुकड़ा नहीं, लोकाज्ञा है

यह आलेख ऑर्गनाइज़र में 4 दिसंबर, 1961 को प्रकाशित हुआ।

आगामी निर्वाचन¹ की दृष्टि से निर्वाचन आयोग द्वारा घोषित कार्यक्रम की योजना को सरकार अपनी स्वीकृति प्रदान कर चुकी है। कतिपय ज्योतिषियों की इस आशंका के बावजूद कि संभवतः चुनाव इस समय स्थगित हो जाएँगे, राजनीतिक दल और जनता उसके लिए सन्नद्ध होकर इस समय अपनी पूरी तैयारी के साथ उसमें जुट गए हैं। अब तो विभिन्न दलों द्वारा इस जनतांत्रिक संग्राम के लिए रणभेरियाँ भी बजा दी गई हैं। इस समय संपूर्ण राष्ट्र उग्र चुनाव-प्रसार के पाश में आबद्ध हो चुका है। विभिन्न राजनीतिक दल काफ़ी समय पूर्व ही अपने-अपने प्रत्याशियों का चयन कर उनके नाम घोषित कर चुके हैं। अब तो नामांकन-पत्र भी प्रस्तुत कर दिए गए हैं। इस कारण यहाँ कहा जा सकता है कि चुनाव संग्राम प्रारंभ हो चुका है। अपने-अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय कांग्रेस दल जहाँ कोई उचित सिद्धांत निर्धारित नहीं कर सका है और उसने संप्रदाय, जाति, पंथ आदि का विचार कर अपने प्रत्याशी खड़े किए हैं, वहाँ विरोधी दलों को भी अपने-अपने टिकट पर समुचित उम्मीदवार की खोज में काफ़ी प्रयत्नशील रहना पड़ा है। इस 'समुचित उम्मीदवार' के अर्थ को कुछ शब्दों की परिधि में बाँधना कठिन होते हुए भी उसके अंतस्थ भावों को समझना आसान है। फिर भी देश में प्रजातंत्र के स्वस्थ विकास और राजनीतिक दलों में स्वस्थ परंपराओं के निर्माण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि इस प्रकार के उम्मीदवार के कुछ उल्लेखनीय गुणों का विचार कर लिया जाए।

1. तीसरी लोकसभा के लिए आम चुनाव 19 से 25 फरवरी 1962 तक हुए थे।

समुचित उम्मीदवार कौन?

साधारण बुद्धि के मनुष्य की दृष्टि में भी एक समुचित उम्मीदवार वह है, जो विधानमंडल में अपने दल के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने के साथ ही अपने क्षेत्र के मतदाताओं की नब्ज को पहचानता हो। उनकी भावनाओं का उचित रीति से प्रकटीकरण करने में समर्थ हो। एक व्यक्ति के नाते उसे अपने मतदाताओं के प्रति वफ़ादार होना चाहिए। एक दल के सदस्य होने के नाते से, जिसके दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व वह करता है, उसे दल के अनुशासन का पालन करने के साथ उसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मन में समर्पण का भाव भी रखना चाहिए। इनके अतिरिक्त यदि उसमें अन्य और भी कुछ गुण हों, जो उसके व्यक्तित्व को निखारने में अधिक सहायक हो सकें, तो उत्तम ही होगा, परंतु वे गुण इन मूलभूत योग्यताओं के पर्याय नहीं हो सकते।

जीतने वाले घोड़े की चिंता

दुर्भाग्यवश यह कहना पड़ता है कि भारत में शायद ही कोई राजनीतिक दल इन सब बातों की चिंता करता हो और इस कारण उनके मस्तिष्क में केवल यही बात चक्कर काटा करती है कि किसी भी रीति से उनका प्रत्याशी विजयी होना चाहिए। इसीलिए घुड़दौड़ में दौड़ने वाले घोड़ों की भाँति उन्हें किसी विशेष घोड़े से स्नेह नहीं होता। वह किसी भी ऐसे उम्मीदवार को अपने टिकट से खड़ा करने का प्रयास करते हैं, जिसकी जीत के लक्षण अधिक प्रतीत होते हैं। परंतु उस समय वह यह भूल जाते हैं कि राजनीतिक क्षेत्र में प्रत्याशी के विजयी हो जाने के बाद उनके पारस्परिक संबंध समाप्त नहीं हो जाते। इसके विपरीत निर्वाचन तक विधानमंडल और उक्त विशेष निर्वाचन क्षेत्र में, जहाँ से उक्त प्रत्याशी विजयी होकर आया है, राजनीतिक दलों को उसी व्यक्ति द्वारा अपने-अपने दलों की नीतियों का प्रतिनिधित्व और कार्यान्वयन कराना पड़ता है।

राजनीतिक दलों की जड़ें गहरी नहीं

भारत में राजनीतिक दल अभी अपनी गहरी जड़ें जनता में जमा नहीं सके हैं, यहाँ तक कि कांग्रेस का भी, जो कि किसी समय एक विशाल जन-संस्था थी, आज जनता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं है। विरोधी दलों को, जो कांग्रेस की अपेक्षाकृत नवीन है, जन-जीवन के साथ समरस होने के लिए अभी घोर परिश्रम करने की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक दलों द्वारा विभिन्न राजनीतिक कार्यक्रमों को एक ओर रखकर चुनाव के लिए सिद्ध होना पड़ता है। यही कारण है कि आज भी पुराने राजा-महाराजाओं, नवाबों और जागीरदारों को अपने-अपने दल में घसीटने का प्रयत्न किया जाता है और जब इस प्रकार का कोई व्यक्ति चुनाव-संघर्ष के मैदान में कूद पड़ता है तो उसका

विरोध करने का साहस मंत्रीगण भी नहीं कर पाते। इसके विपरीत यदि ये राजा-महाराजा कांग्रेस के टिकट पर खड़े होते हैं तो विरोधी दलों के प्रत्याशियों को अपनी विजय की आशा धूमिल होती हुई दिखाई देने लगती है।

वर्तमान स्थिति सुखद नहीं

इस बात को स्वीकार करते हुए भी कि पुराने राजा-महाराजाओं को अन्य नागरिकों की भाँति निर्वाचन में खड़े होने का अधिकार प्राप्त है, हमें इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि वर्तमान स्थिति सुखद नहीं है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि आज देश की जो परिस्थिति है, और उसके सम्मुख जो समस्याएँ हैं, उनका निराकरण राजा-महाराजाओं द्वारा न होकर जनता और राजनीतिक दलों द्वारा ही होना संभव है। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस पुराने वर्ग को भी देश के राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय बनाना चाहिए, परंतु उनको टिकट देने का आधार तो राजवंश में उनका जन्म न होकर उनकी योग्यता ही होनी चाहिए। मतदाताओं को भी यह ध्यान रखना चाहिए कि उनके मत (वोट) का मूल्य केवल इतना ही नहीं है कि वे उससे किसी को केवल खुश कर दें अपितु वह जनता की वह पवित्र लोकाज्ञा है, जिससे जनभावनाओं के आधार पर देश का शासन चलता है।

जातिवाद का रोग

जाति और संप्रदाय का विचार भी प्रत्याशियों के चयन को बुरी तरह प्रभावित करता है। कांग्रेस तो इस दलदल में पूरी तरह फँसी हुई है, पर विरोधी दलों का भी दामन पूरी तरह साफ़ नहीं है। दलों का व्यापक न होना और सुदृढ़ संगठनात्मक ढाँचे का अभाव भी इसका कारण है; परंतु जातिवाद की केवल निंदा करने से ही काम नहीं चलेगा, जो केवल ऐसा करते हैं, वे तो वस्तुतः उसे बढ़ाने में ही अधिक सहायक हुए हैं।

डॉ. लोहिया द्वारा ग़लत प्रचार

भारत में प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी जाति का अंग है। अतः दूसरे दलों पर जातीयता एवं संकीर्णता का आरोप लगाने से अनजाने ही देश में इस भावना को अप्रत्यक्ष रीति से और अधिक बल मिलता है। गत निर्वाचन का अनुभव भी यह बताता है कि जिन प्रत्याशियों ने जातिवाद का सहारा लेकर मतों की भिक्षा माँगी, वे बुरी तरह पराजित हुए; क्योंकि इतर जाति के मतदाताओं में उनके विरुद्ध व्यापक प्रतिक्रिया हुई और वे उनके विरुद्ध हो गए। परंतु फिर भी प्रत्याशी निर्धारित करते समय जातीयता का यह भूत राजनीतिक दलों को बहुत प्रभावित करता है। लेकिन यदि प्रत्याशी में अन्य सभी

योग्यताएँ विद्यमान हैं तो मैं इस बात की चिंता करना आवश्यक नहीं समझता कि उम्मीदवार किस जाति विशेष का है, यद्यपि भारत में वह बिना जाति का व्यक्ति नहीं हो सकता। पर यदि परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ती है कि डॉ. राम मनोहर लोहिया जैसे व्यक्ति को चुनाव के मैदान से इसलिए हटना पड़े कि वह उक्त निर्वाचन-क्षेत्र में निवास करनेवाले मतदाताओं की बहुसंख्या की जाति के नहीं हैं, तो यह एक गंभीर बात होगी परंतु इसके निराकरण का उपाय तो यह है कि दल के संगठन को दृढ़ बनाया जाए, न कि जाति के आधार पर मतदाताओं से अपील की जाए, जैसा कि सोशलिस्ट नेता डॉ. लोहिया पिछड़े वर्ग एवं जातियों के लोगों के लिए 60 प्रतिशत सीटें सुरक्षित करने की माँग करते हुए कर रहे हैं।

उद्योगपतियों का प्रयास

प्रत्याशियों का चयन करने में प्रत्याशी की आर्थिक स्थिति और निर्वाचन में धन-व्यय करने की क्षमता दूसरा प्रमुख आधार रहा करता है, जो उसे प्रभावित करता है। बहुत से व्यक्तियों को तो टिकट प्रदान करने का कारण उनकी धन-व्यय करने की क्षमता ही रहा करती है। ऐसे व्यक्ति केवल चुनाव के समय ही जनता के बीच में आते हैं और शेष पाँच वर्ष तक कलकत्ता और बंबई की घनी बस्तियों के बीच अपने बैंगलों में रहा करते हैं। वास्तव में वे जनता और राजनीतिक दलों से उनके मत और टिकट प्राप्त करने नहीं आते, वरन् उसे खरीदने आते हैं। इसलिए इसके लिए कोई भी क्रीमत चुकाना उनके लिए अधिक नहीं होती। संसद् की सदस्यता तो उनके लिए अपनी चरबी बढ़ाने एवं और अधिक मोटा होने का साधन होने के कारण एक व्यापार है। कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक दल धनाभाव से इतने परेशान हैं कि वे अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए इतना सहयोग प्राप्त करने को आतुर रहा करते हैं। यह भी पता चला है कि कलकत्ता के कुछ उद्योगपतियों को कांग्रेस ने इस आधार पर लोकसभा के लिए अपने टिकट देने की पेशकश की थी कि वे विधानसभा की कुछ सीटों का निर्वाचन-व्यय भी वहन करें। स्वतंत्र पार्टी को साधारण रीति से 'दलाल-स्ट्रीट' वाली पार्टी कहा जाता है। राजनीतिक दलों के लिए धन का यह तथ्य इतना प्रमुख है कि गणतंत्र-परिषद् ने इसी आधार पर अपने को स्वतंत्र दल में मिलाने का निश्चय किया था।

जनता बुद्धिमत्ता का परिचय दे

यह सब ऐसे तथ्य हैं, जो देश की राजनीति को एक गलत दिशा में ले जा रहे हैं। यदि समय रहते इस ओर ध्यान न दिया गया तो देश के विधानमंडलों में यह धनिक वर्ग अपना प्रभाव बढ़ा लेगा और उस अवस्था में अब किसी भी समस्या पर निर्णय राष्ट्रीय

हितों अथवा लोक-कल्याण के आधार पर शायद ही कभी किया जा सके।

अतः उन राजनीतिक दलों को जो देश की राजनीति में प्रमुख दल के रूप में विकसित होना चाहते हैं, इस खतरे से सचेत रहकर अपने सिद्धांतों की हत्या नहीं करनी चाहिए। इसी भाँति जनता का भी यह कर्तव्य है कि वह जागरूक रहकर बुद्धिमत्ता के साथ हंस के समान अपने नीर-क्षीर विवेक का परिचय दे, जिससे देश के राजनीतिक दलों के ग़लत दृष्टिकोण को सुधारा जा सके।

समाज यह चाहता है कि उसे कोई भी झुका न सके तो उसे अपनी शक्ति का परिचय देना होगा।

स्मरण रखें

इसलिए आगामी चुनाव में मतदान करते समय जनता को निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए :

1. मतदाता को शिकायत न करते हुए अपने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहिए। उसे इच्छा नहीं माँग करनी चाहिए। उसे केवल असंतोष प्रकट कर उदासीन नहीं रहना चाहिए, वरन् दृढ़ता के साथ अपनी बात रखनी चाहिए। मतदाता को ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने मताधिकार का प्रयोग पार्टी के लिए न कर सिद्धांत के लिए, व्यक्ति के लिए न कर पार्टी के लिए और धन के लिए न कर व्यक्ति के लिए कर रहा है।
2. मतदाता को जाति का विचार न कर सिद्धांत और समस्या का विचार करना चाहिए। विजयी होने वाले प्रत्याशी को न चुनकर योग्य को चुनना चाहिए। योग्य व्यक्ति का चुनाव करना चाहिए और फिर इस बात की भी चिंता करनी चाहिए कि वह जीत भी सके, क्योंकि वह विजय उस प्रत्याशी की विजय न होकर आपकी और नेता की विजय होगी। किंतु यदि इसके स्थान पर आप प्रचार के शिकार होकर किसी भी व्यक्ति को केवल इस आधार पर ही अपना मत दे आते हैं कि वह विजयी होने वाला है, तो चुनाव परिणाम कुछ भी हो, परंतु वह आपकी हार ही कही जाएगी।
3. मतदान का अधिकार आपके सद्विचार और आपके सद्विवेक की कसौटी है, अतः उस ओर से उदासीन न हों, उसे बेचें नहीं और न उसे नष्ट हो जाने दें।
4. मतदान का अधिकार प्रत्येक नागरिक का ऐसा अधिकार है, जो संपूर्ण समाज से संबंध रखता है। वह उसकी स्वाधीनता का प्रतीक है और इस कारण एक लोकतंत्रवादी होने से आपको उसका उपयोग किसी के निर्देश पर न आकर

स्वयं के सद्विवेक और आत्मा की पुकार पर करना चाहिए।

5. राजनीतिक दल, जो जनता के हित के लिए होते हैं, जनशक्ति के सहारे ही खड़े होते हैं। अतः यदि समाज यह चाहता है कि उसे कोई भी झुका न सके तो उसे अपनी शक्ति का परिचय देना होगा। जनता को एक बार पुनः यह ध्यान रखना चाहिए कि वही राजनीतिक दलों के निर्माता हैं और उनके माध्यम से अपनी राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इसलिए उसे इस महान् परीक्षा में अपनी सफलता और योग्यता का समुचित परिचय देना चाहिए।

— पाञ्चजन्य, जनवरी 29, 1962



12

मतदाता समय की चुनौती का उत्तर देंगे?

अब क्योंकि द्विसदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र तोड़ दिए गए हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को लोकसभा और विधानसभा के लिए एक-एक मत देने का ही अधिकार रहेगा और उसे अनेकों प्रत्याशियों के मध्य एक ही का चयन करना होगा। अतः अब एक वोट के द्वारा आप विभिन्न प्रतिद्वंद्वियों को प्रसन्न नहीं कर सकते और इसलिए मतदान करते समय आपको प्रत्याशी, उससे संबंधित दल और उसके आदर्शों का विचार करना होगा। हमें स्मरण रखना होगा कि एक अयोग्य उम्मीदवार इस आधार पर हमारा मत प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है कि उसका संबंध एक अच्छे दल से है। बुरा सदैव बुरा ही होता है और इसलिए यह संभव है कि ऐसे अयोग्य व्यक्ति को अपना टिकट दान करते समय उस दल ने संस्था के लाभ से प्रभावित होकर ऐसा निर्णय लिया हो या ऐसी मंशा न होने के बाद भी उससे निर्णय की भूल हुई हो। अतः उत्तरदायी मतदाता का अब यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपनी जागरूकता का परिचय देकर उक्त गलती को दुरुस्त कर दे।

बिजली के खंभे का युग बीत गया

एक समय था, जब लोग कांग्रेस का चिह्न प्राप्त किए बिजली के खंभे को भी वोट देने को तत्पर दिखाई देते थे और यही कारण था कि प्रथम आम निर्वाचन में आचार्य नरेंद्र देव और आचार्य कृपलानी¹ सरीखे महान् व्यक्तित्व भी कांग्रेसी छुटभड़ियों के सम्मुख पराजित हो गए। यद्यपि अब बिजली के खंभे का युग तो बीत चुका है, पर घड़ी का पेंडुलम दूसरे छोर पर पहुँच गया है और इसीलिए एक सज्जन ने अभी पिछले दिनों कहा कि वह एक मील के पत्थर को अपना मत दे सकते हैं, लेकिन कांग्रेस को नहीं। पर चाहे आप कांग्रेस के बिजली के खंभे को अपना मत दें अथवा कांग्रेस से अत्यधिक

1. आचार्य कृपलानी 1952 के लोकसभा चुनाव में फैजाबाद सीट से खड़े हुए थे, जबकि आचार्य नरेंद्रदेव ने उत्तर प्रदेश विधान सभा का चुनाव लड़ा था।

असंतुष्ट होने के कारण मील के पत्थर को, यह दोनों स्थितियाँ ही ग़लत हैं और यह व्यक्ति की सूझबूझ और तर्कशक्ति से मेल नहीं खाती।

कांग्रेसीसाध्यक्ष की दर्पोक्ति

समाचार-पत्रों के अनुसार अभी कुछ दिन पूर्व कांग्रेसीसाध्यक्ष² ने एक स्थान पर कहा है कि कांग्रेस का बुरे से बुरा और अयोग्य व्यक्ति भी विरोधी दल के श्रेष्ठतम व्यक्ति से अच्छा है। इसे पढ़कर मुझे मौलाना शौकत अली का वह वाक्य स्मरण हो आया कि 'मेरी दृष्टि में निकृष्टतम मुसलमान भी महात्मा गांधी जैसे व्यक्तियों से श्रेष्ठ है।' पर क्या इस भावोन्माद को उचित कहा जा सकता है? मेरा मत है कि जो मतदाता इस प्रकार प्रतिक्रियावाद से प्रभावित होकर ऐसा सोचता है, वह उक्त श्रेणी में ही गिना जाएगा और यह माना जाएगा कि वह घोर प्रतिक्रियावाद से अभिभूत है।

अतः आप बिजली के खंभों और मील के पत्थरों को मत चुनें, क्योंकि वे आपके प्रतिनिधि नहीं हैं। यदि फिर भी वे जीतते हैं तो यही कहा जाएगा कि आप में औचित्य-अनौचित्य का विचार करते हुए निर्णय लेने का विवेक नहीं है। अतः ऐसे व्यक्ति को आप विजयी बनाएँ, जो वास्तविक अर्थों में आपका प्रतिनिधि हो।

ध्यान रखें...

परंतु श्रेष्ठ प्रतिनिधि की खोज करते समय आप यह भी ध्यान रखें कि उस व्यक्ति का संबंध अवांछित और बुरे दल से न हो; क्योंकि एक महापराक्रमी और शूरवीर व्यक्ति भी लड़ाई के मैदान में टूटी तलवार लेकर अथवा निहत्थे ही विजयश्री का वरण नहीं कर सकता। इस संबंध में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन³ का नामोल्लेख पर्याप्त होगा।

श्रेष्ठ दल के लक्षण

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि अच्छा दल किसे कहा जाए? मेरी समझ में एक अच्छा दल वह है, जो सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों का एक झुंड न होकर एक ऐसा जीवमान संगठन हो, जिसका सत्ता प्राप्त करने के अतिरिक्त अपना

- नीलम संजीव रेड्डी (1913-1996) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1960 से 62 तक अध्यक्ष रहे।
- पुरुषोत्तम दास टंडन 'राजर्षि' (1882-1962), स्वतंत्रता सेनानी, जिन्होंने हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिलाने में अहम भूमिका निभाई। वे हिंदी को देश की आज़ादी के पहले आज़ादी प्राप्त करने का साधन मानते रहे और आज़ादी मिलने के बाद आज़ादी को बनाए रखने का। इनका राजनीति में प्रवेश हिंदी प्रेम के कारण ही हुआ। सरदार पटेल के समर्थन से 1950 में आचार्य कृपलानी को पराजित कर कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित हुए पंडित नेहरू का कथन था कि धर्मनिरपेक्ष राज्य में एक कट्टर हिंदूवादी को कांग्रेस अध्यक्ष नहीं बनाया जा सकता, इसलिए वे आचार्य कृपलानी के पक्ष में थे। बाद में पंडित नेहरू ने पहले कार्यसमिति और फिर संसदीय बोर्ड के पुनर्गठन की माँग रखी। टंडनजी का कहना था कि यह काम अध्यक्ष का है, वे पुनर्गठन करने के बजाए इस्तीफा देना पसंद करेंगे। इसके बाद 1951 में टंडनजी ने इस्तीफा दे दिया था।

अलग वैशिष्ट्य हो। ऐसे दल की दृष्टि में सत्ता पर अधिकार करना उसका उद्दिष्ट न होकर अपने सिद्धांतों और कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का एक साधन होगा और इसलिए उस दल के सर्वोच्च पदाधिकारियों से लेकर साधारण से साधारण सदस्य तक में अपने उस आदर्शवाद के प्रति एक निष्ठा होगी। हमें स्मरण रखना चाहिए कि यह निष्ठा ही अनुशासन और आत्मसमर्पण की भावना उत्पन्न करती है। केवल विधि निषेधों के समुच्चय अथवा 'यह करना और यह नहीं करना' को अनुशासन की संज्ञा नहीं दी जा सकती और यदि अनुशासन ऊपर से थोपा जाता है तो वह किसी भी दल की आंतरिक शक्तिहीनता को प्रकट करता है। स्मरण रखिए, समाज के लिए आवश्यक तत्त्व धर्म के समान अनुशासन किसी भी दल के लिए आवश्यक होता है।

(आज कांग्रेस को सिवाय एक सत्ता के और कोई शक्ति नहीं है, जो बाँधकर रख सके।)

अनुशासन का महत्त्व

यदि दल के घटकों में निष्ठा और अनुशासन रहा तो फिर वहाँ गुटबाजी और दलबंदी नहीं हो सकती। दलबंदी और गुटबाजी को तो प्रोत्साहन तभी मिलता है, जब व्यक्तिगत स्वार्थ के सम्मुख दल के हितों की बलि चढ़ा दी जाती है। यह तो व्यक्तिगत स्वार्थ और उसकी प्राप्ति के लिए सचेष्ट वृत्ति का सामाजिक प्रकटीकरण ही कहा जाएगा। इस प्रकार पक्षों-पक्षों में विभाजित पार्टी अप्रभावी हो जाती है और उसे एक श्रेष्ठ अथवा उत्तम दल होने की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

दलों का गठन सिद्धांतों पर हो

किसी भी अच्छे दल का तीसरा आवश्यक गुण यह है कि उसके कुछ निश्चित आदर्श होने चाहिए और उसकी सभी नीतियाँ उक्त आदर्शों की पूर्ति करने में सहायक होने वाली होनी चाहिए। यह सत्य है कि प्रशासन के श्रेष्ठ यथार्थवादी स्वरूप का निरूपण वर्तमान परिस्थितियों का केवल सैद्धांतिक आधार पर विश्लेषण करने मात्र से ही नहीं हो सकता। पर यथार्थवाद के नाम पर अवसरवादिता को प्रश्रय देना भी तो उचित नहीं है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि समय-समय पर अपना मत-परिवर्तन करनेवाला स्वार्थी और अवसरवादी व्यक्ति यथार्थवादी नहीं होता। यथार्थवादी तो एक मिशनरी, सिद्धांतवादी और आदर्शवादी व्यक्ति ही हो सकता है। राजनीतिक दल और उनके नेता अपने व्यवहार द्वारा राजनीतिक जीवन की मर्यादाओं का निर्धारण करते और श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अतः उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि अपने व्यवहार द्वारा वे मर्यादाओं और मानदंडों का उल्लंघन न करें। हम एक बार पुनः यह बात ध्यान में रखें कि लोकतंत्र का अर्थ केवल चुनाव नहीं होता, उसके लिए एक संगठित समाज,

सुव्यवस्थित राजनीतिक दल और राजनीतिक जीवन में व्यवहृत की जानेवाली कुछ सर्वमान्य परंपराओं की आवश्यकता होती है।

कार्यक्रम व्यावहारिक हो

एक अच्छे दल के पास श्रेष्ठ प्रत्याशी होने के साथ उसके लिए यह भी आवश्यक है कि उसका कार्यक्रम व्यावहारिक हो; क्योंकि किसी भी राजनीतिक दल को सत्तारूढ़ होने पर अपने उस कार्यक्रम को ही कार्यान्वित करना रहता है और कोई भी दल गलत या अव्यावहारिक कार्यक्रम के सहारे जनता की कठिनाइयाँ एवं समाज की समस्याओं को हल नहीं कर सकता, भले उसे दल के व्यक्ति कितने भी श्रेष्ठ क्यों न हों। देखा तो यह भी गया है कि उक्त कार्यक्रम के अभाव में तो समस्याओं की और वृद्धि ही होती है।

कसौटी

अतः इन तीनों गुणों को एक सूत्र में गूँथकर ही हमें अपना निर्णय करना चाहिए। यद्यपि यह संभव है कि यह तीनों गुण किसी एक स्थान पर न मिलें, किंतु उसका बहुतांश तो ढूँढ़ा जा सकता है। हमारा मत है कि उच्चादर्शों से प्रभावित, अनुशासित और निस्स्वार्थी कार्यकर्ताओं के समुच्चय से गठित राजनीतिक दल आपके मनोभिलषित कार्यक्रम की कमी को उस सीमा तक पूरा कर सकता है, यदि उसका कार्यक्रम उन सिद्धांतों पर आधारित नहीं है जो कि आपको पूर्णतः अमान्य हों। किंतु यदि मूलाधार ही भिन्न है और गलत दिशा में जा रहा है तो श्रेष्ठतम व्यक्तियों का समूह भी उसे ठीक मार्ग पर लाने में सहायक नहीं हो सकता। परंतु यदि कार्यक्रम के मूलाधार की दिशा मान्य और निर्धारित कर ली गई तो उसे प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ व्यक्तियों के सहारे उसकी गति बढ़ाई जा सकती है।

कांग्रेस का बाह्याडंबर

जहाँ तक प्रत्याशियों का संबंध है, प्रत्येक प्रत्याशी के गुण-दोषों का विवेचन यहाँ संभव नहीं है और इसके अतिरिक्त मतदाता उन्हें अच्छी तरह जानते भी हैं। पर राजनीतिक दलों के विषय में विचार करते समय यह सरलता से कहा जा सकता है कि राजनीतिक दल की परिभाषा के अनुसार भारत में राजनीतिक दल बहुत कम हैं। आज कांग्रेस देश की सबसे बड़ी संस्था है परंतु उसको सिवाय सत्ता के और कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो बाँधकर रख सके। यह करो और यह न करो, कि सबसे लंबी सूची का बाह्याडंबर इसी दल में है, यद्यपि इसके सदस्यों में न तो अनुशासन का कोई भाव है और न समर्पण का ही। फिर भी किसी तरह ऊपर से थोपे गए अनुशासन को उसने अभी तक बनाए रखा था। पर अब ऐसा दिखाई देता है कि यह कृत्रिम अनुशासन भी चल न सकेगा।

दो बैल या दो गुट

कांग्रेस की आपसी गुटबंदी के विषय में कुछ कहना व्यर्थ ही है, क्योंकि उसके चुनाव-चिह्न के दो बैल शायद इसी बात के प्रतीक हैं कि कांग्रेस में प्रत्येक स्तर पर दो गुट विद्यमान हैं और केंद्रीय संसदीय दल के उपनेता का चुनाव न हो पाना इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि यह रोग केंद्र तक व्याप्त हो चुका है।

कांग्रेस से निकले ये लोग

कुछ ऐसे राजनीतिक दल भी हैं, जो पुराने कांग्रेसियों द्वारा बनाए गए हैं और जो कांग्रेस से निकलकर आने वाले व्यक्तियों की भरती करते रहते हैं। अतः उनको तो निराश और असंतुष्ट व्यक्तियों का आश्रय-स्थल कहना ही उपयुक्त होगा, इसलिए किसी भी प्रकार के अनुशासन का प्रश्न उनके लिए खड़ा ही नहीं होता।

कम्युनिस्ट पार्टी विदेशी है

कम्युनिस्ट पार्टी को निःसंदेह एक दल की संज्ञा दी जा सकती है और उसका अपना एक कार्यक्रम भी है। परंतु भारत के प्रति वफादार न होकर विदेशों से प्रेरणा ग्रहण करनेवाली उक्त संगठित पार्टी तो देश के लिए एक बड़ा खतरा ही है। अतः उसका समर्थन न करते हुए आवश्यक तो यही है कि उसकी राष्ट्रघातक-नीतियों का पर्दाफाश किया जाए, जिससे कि उसका प्रभाव बिल्कुल समाप्त हो जाए।

अनुशासित और सिद्धांतवादी जनसंघ

जनसंघ के विषय में मैं यह कह सकता हूँ कि हम अपने को एक अनुशासित, निष्ठावान और संगठित पार्टी के रूप में विकसित करने का प्रयत्न करते रहे हैं तथा इस कालावधि में हमारी उन तत्त्वों और व्यक्तियों द्वारा इसीलिए आलोचना भी की गई है, जो जनसंघ को प्र.स. दल की भाँति अनुशासन, निष्ठा और संगठन की एकरूपता का विचार किए बिना विकसित करना चाहते थे। परंतु परीक्षाओं की ऐसी घड़ियों में जनसंघ ने दृढ़ता का परिचय दिया है और क्षणिक हानि उठाकर भी उसने संगठन को बलशाली, अनुशासित और दृढ़ बनाने का प्रयास करते हुए जनहितार्थ कार्य करने का ही प्रयत्न किया है। हमारा निश्चित मत है कि सब प्रकार के अवसरवादी तत्त्वों को किसी भी प्रकार बाँध रखने के स्थान पर कठोरता और अनुशासन का पालन करते हुए संस्था की पवित्रता को बनाए रखना अधिक आवश्यक है और उससे लाभ भी अधिक होता है।

संयुक्त मोर्चे की चर्चा

दलों की बहुलता के कारण चुनाव के अवसरों पर विभिन्न दलों में समझौते और

संयुक्त मोरचे भी अपने देश में बनाए जाते रहे हैं। इस प्रकार के समझौतों और संयुक्त मोरचों का बनाने का आधार यही रहा करता है कि विभिन्न राजनीतिक दल पृथक्-पृथक् रूप से लड़कर सत्तारूढ दल को पराजित न कर सकेंगे और इसलिए सभी को मिलकर कांग्रेस के विरुद्ध एक प्रत्याशी खड़ा करना चाहिए।

इनकी निस्सारता

आज विधानमंडलों में सत्तारूढ दल का राक्षसी बहुमत विद्यमान होने के कारण कांग्रेस जब विरोध पक्ष की आवाज़ को अनसुना करते हुए कई बार तानाशाही वृत्ति का परिचय देती है तो कतिपय व्यक्ति यह सोचने लगते हैं कि कांग्रेस के विरुद्ध इस प्रकार का संयुक्त मोरचा बनाना आवश्यक ही नहीं, उचित भी है। परंतु वे यह भूल जाते हैं कि कांग्रेसतर दलों के आदर्श और कार्यक्रमों में परस्पर इतनी भिन्नता है कि केवल 'विरोध पक्ष संगठित हो' के नाम पर उनका संयुक्त मोरचा बनाना संभव नहीं है। यदि हम इन दलों के सिद्धांतों और कार्यक्रमों का अवलोकन करें तो हमें पता चलेगा कि इनमें कई विषयों में कांग्रेस की तुलना से भी अधिक पारस्परिक भिन्नता है। इसीलिए जनसंघ किसी भी परिस्थिति में कम्युनिस्टों की जीत सहन करने को तत्पर नहीं है। कम्युनिस्टों ने भी जनसंघ के प्रति इन्हीं भावनाओं को प्रकट किया है। फिर जहाँ अकाली दल और मुसलिम लीग जैसे दल भी सम्मिलित किए जाने लगे वहाँ संयुक्त मोरचा कैसे प्रस्थापित हो सकता है? इसलिए ये संयुक्त मोरचे इतने निरर्थक होंगे कि उसका लेशमात्र औचित्य भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। कांग्रेस ने केरल में मुसलिम लीग से गठजोड़ कर एक ऐसी भयंकर ग़लती की थी, जिसके फलस्वरूप देश में मुसलिम सांप्रदायिकता के उन्माद को फिर से प्रोत्साहन मिला है।

प्रजातांत्रिक-व्यवस्था के विधि-निषेध

फिर यह समझौते और संयुक्त मोरचे जनता में निषेधात्मक वृत्ति उत्पन्न करते हैं, जो कभी भी उचित नहीं है। ऐसे समझौते करनेवाले तत्त्व संयुक्त मोरचा बनाते समय सिद्धांतों में भी सौदेबाजी करते हैं, जिससे देश में अवसरवादी तत्त्वों को प्रश्रय मिलता है। अतः इनसे बचना चाहिए। हमें स्मरण रखना चाहिए कि सत्ता प्राप्ति की होड़ में लोकतंत्र कुछ बंधन भी हमारे ऊपर लागू करता है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था जहाँ हिंसा और गोली (Bullet) का निषेध करती है, वहीं हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मतदान की इस लड़ाई (Battle of the Ballot) में उचित-अनुचित का विचार न करते हुए किसी भी बात को सदैव उचित नहीं ठहराया जा सकता।

पिछला अनुभव

यह भी सोचना गलत होगा कि विभिन्न राजनीतिक दलों का संयुक्त मोरचा कांग्रेस को निर्वाचन में पराजित कर देगा। पिछले चुनावों का विश्लेषण हमारे इस कथन की संपुष्टि करता है। केवल उन चुनाव-क्षेत्रों में जहाँ कांग्रेस के विरुद्ध जन-ज्वार को अत्यधिक मात्रा में उभारा जा सका, कांग्रेस से सीधे निर्वाचन संघर्ष में भी विरोधी उम्मीदवारों को बहुतांश में पराजय ही मिल सकी। अतः आज हमें कांग्रेस को अपदस्थ करने के लिए संयुक्त मोरचे की नहीं अपितु अकेले एक ऐसे दल की आवश्यकता है, जिसका कार्य ठोस हो। यदि चुनाव में अल्पमत प्राप्त कर कांग्रेस जीत जाती है तो यही स्थिति बाक़ी दलों के साथ भी होनी चाहिए। विगत सन् 1957 के चुनाव में बिना संयुक्त मोरचा बनाए कम्युनिस्टों ने केरल में कांग्रेस को अपदस्थ किया था।⁴

मतदाता कर्तव्य पहचानें

यद्यपि दलों की संख्या में कमी होने और समान विचारधारा वाले दलों को एक साथ आने की आवश्यकता आवश्यक प्रतीत होती है। पर इसके लिए भी बहुत आधारभूत बातों (Nucleus) की आवश्यकता है, जिसके विषय में कोई भी दल दावा नहीं कर सकता। फिर भी उस दृष्टि से सैद्धांतिक आधार पर जनसंघ और कम्युनिस्ट एक आधारभूत भूमिका अवश्य प्रदान करते हैं, जिनके चारों ओर क्रमशः राष्ट्रवादी और विदेशों से प्रेरणा ग्रहण करनेवाले तत्त्व एकत्र हो सकते हैं। दलों के संगठनों के प्रभाव की दृष्टि से भी उक्त दो दलों के अतिरिक्त अन्य कोई दल इसका अधिकारी नहीं है। अतः अब यह मतदाताओं का कर्तव्य है कि अपने मतों और शक्ति को नष्ट न करते हुए इसी आधार पर उक्त दलों को अपना समर्थन प्रदान कर समान विचारधारा वाले दलों को एक साथ आने और दलों की संख्या कम करने को बाध्य कर दें।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 5, 1962



4. केरल विधानसभा के लिए हुए चुनाव (1957) में कम्युनिस्ट पार्टी को कुल 60 सीटों पर सफलता प्राप्त हुई थी, वहीं दूसरी तरफ़ कांग्रेस को 43 सीटें मिली थीं।

13

दक्षिणपंथ व वामपंथ के आधार पर दलों का विभाजन अनुचित

यह आलेख ऑर्गनाइजर में 18 दिसंबर, 1961 को प्रकाशित
हुआ।

विभिन्न राजनीतिक दलों के घोषणा-पत्रों का विवेचन करने से पूर्व उचित होगा कि उनके आधारभूत आदर्शों एवं मान्यताओं पर विचार कर लिया जाए। इससे हमें उनके घोषणा-पत्रों में दिए गए विषय को समझने में भी आसानी होगी और हम उनके कार्यक्रम और वायदों का मूल्यांकन भी उचित ढंग से कर सकेंगे। परंतु जैसे एक गणितज्ञ की दृष्टि में शून्य का अर्थ साधारण अर्थ से भिन्न हुआ करता है, उसी तरह विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा प्रयुक्त एक समान शब्द के भी अलग-अलग अर्थ होते हैं। इसी भाँति आनुसंगिक बातों की जानकारी भी हमें विभिन्न राजनीतिक दलों के पुराने कार्यकलापों आदि के द्वारा प्राप्त हो सकती है, क्योंकि दलों के घोषणा-पत्रों में विस्तार से कुछ भी नहीं दिया रहता।

भ्रामक वर्गीकरण

पश्चिमी देशों में राजनीतिक दलों का वर्गीकरण दक्षिणपंथी और वामपंथी कहकर किया जाता है। भारतवर्ष में भी भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों के लिए इसी शब्दावली का प्रयोग कर उनकी विशेषताएँ और उद्देश्य बताए जाते हैं।

किंतु इस देश की राजनीति का सही चित्रण इस शब्दावली द्वारा असंभव है। हमारे यह कहने का कारण यही है कि इस देश में उग्र दक्षिणपंथी या उग्र वामपंथी दलों के अतिरिक्त ऐसे दल भी हैं, जिनके न केवल मिले-जुले सिद्धांत हैं बल्कि उनके द्वारा स्वीकार किए गए कार्यक्रम भी इस प्रकार के हैं, जो इस रूढ़िवादी विभाजन को गलत

सिद्ध कर देते हैं।

कांग्रेस को एक वामपंथी संस्था कहा जाता है, क्योंकि यह देश में समाजवादी ढाँचे के आधार पर देश की रचना करना चाहती है। परंतु यह जिनका समर्थन करती है और जहाँ से जीवन पाती है, वह निहित स्वार्थ वाला वर्ग तो इसे एक अनुदार दल बना देता है। इसी भाँति जनसंघ को दक्षिणपंथी कहा जा सकता है, क्योंकि वह काल्पनिक समाजवाद में विश्वास नहीं करता। फिर भी उसका कार्यक्रम और ढाँचा इतना सुधारवादी है, जो उसे इस देश की अन्यान्य सुधारवादी संस्थाओं से मौलिक रूप से पृथक् कर देता है।

विदेशों का अंधानुकरण

यदि हम इस पाश्चात्य वर्गीकरण को अस्वीकृत कर दें तो भारतवर्ष के राजनीतिक दलों का विश्लेषण उनके प्रेरणास्रोत के आधार पर किया जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि देश के अधिकांश राजनीतिक दल भारत की राजनीति को विदेशी ढाँचे के आधार अथवा कल्पनाओं एवं मान्यताओं के सहारे ही चलाना चाहते हैं। अपने देश के कांग्रेस, स्वतंत्र, प्र.स., समाजवादी और कम्युनिस्ट दल इसी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं।

कम्युनिस्ट रूस के पिछलग्गू

इन राजनीतिक दलों में पारस्परिक कितनी भी भिन्नता क्यों न हो, पर वे सभी देश की राजनीति राज्यशास्त्र के विदेशी सिद्धांतों के आधार पर ही चलाना चाहते हैं। इसीलिए इस देश के मौलिक राजदर्शन को अपनाना तो दूर उसके विषय में सोचने तक को वे तत्पर नहीं हैं। यदि कुछ दल सोचते भी हैं तो वे पश्चिमी दर्शन और आदर्शों को भारतीय संस्कृति में मिलाकर एक खिचड़ी तैयार कर देना चाहते हैं। इसीलिए भारत की राजनीतिक परिस्थिति का विश्लेषण करते समय वे निःसंकोच पाश्चात्य मापदंडों का सहारा ले बैठते हैं। जहाँ तक कम्युनिस्टों का प्रश्न है, वह विशुद्ध मार्क्सवादी दर्शन को, जैसा कि रूस में उसका विकास हो पाया है, अक्षरशः स्वीकार कर डालना चाहते हैं।

त्रिशंकु की अवस्था

कांग्रेस, प्र.स. और समाजवादी ऐसे दल हैं, जो राष्ट्रीय वफ़ादारी और समाजवादी आदर्शों के बीच त्रिशंकु के समान लटके रहते हैं। वे प्रजातांत्रिक व्यवस्था को भी छोड़ना नहीं चाहते और किसी प्रकार लोकतंत्र और समाजवाद को मिला देना चाहते हैं। इसके विपरीत स्वतंत्र पार्टी समाजवाद की विरोधी है। किंतु उसकी दृष्टि में हेय पूँजीवाद के अतिरिक्त समाजवाद का स्थान दूसरा कोई राजदर्शन नहीं ले सकता।

जनसंघ और रामराज्य परिषद्

दूसरी ओर ऐसे राजनीतिक दल भी हैं, जो पाश्चात्य आदर्शों और जीवन-प्रणाली का अंधानुकरण करने को तत्पर नहीं हैं तथा भारतीय संस्कृति एवं भारतीय जीवन के शाश्वत सिद्धांतों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। इन दोनों में रामराज्य परिषद् अधिक रूढ़िवादी है और वह किसी भी प्रकार के सामाजिक और आर्थिक सुधारों के विरुद्ध है। इसके विपरीत जनसंघ स्वामी दयानंद और लोकमान्य तिलक के मार्ग पर चलते हुए न केवल सामाजिक सुधार करना चाहता है वरन् उन्हें आर्थिक क्षेत्र में भी लागू करने का इच्छुक है।

सुधारवादी और रूढ़िवादी

इस प्रकार दूसरे ढंग से किए गए वर्गीकरण की दृष्टि से इनमें एक को अपरिवर्तनवादी या रूढ़िवादी और दूसरे को परिवर्तनवादी या सुधारवादी कहा जा सकता है। रामराज्य परिषद् और स्वतंत्र रूढ़िवादी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं और वे गत चौदह वर्षों में हुए परिवर्तन को उलटकर पूर्ववर्ती ढाँचा कायम करने की इच्छा रखते हैं। उनके अनुसार आज जो ढाँचा बना हुआ है अथवा अंग्रेजों के काल में था, वह श्रेष्ठ है और इसलिए उसे बनाए रखना चाहिए। वे उसे पवित्र समझते हैं, यद्यपि दोनों के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं। रामराज्य परिषद् उसे हिंदुत्व का प्रतिरूप समझती है तो स्वतंत्र पार्टी उदारवादी दृष्टिकोण के नाम पर उसे बनाए रखते हुए अपनी रूढ़िवादिता का परिचय देती है।

अन्य दलों की वर्तमान स्थिति

अन्य दल वर्तमान स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं। वे समाज की आर्थिक व्यवस्था और अन्य संस्थानों में परिवर्तन इसलिए आवश्यक समझते हैं, क्योंकि न तो वे आदर्श रूप हैं और न ही वे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम हैं। परंतु समाजवादी अथवा साम्यवादी समाजवाद के उपासक पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित आदर्शों की नक़ल करने को इच्छुक हैं, जबकि जनसंघ उसकी दिशा अपने पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित संपूर्ण मानव जाति के लिए सब कालों के लिए उपयुक्त सिद्धांतों और आदर्शों की ओर मोड़ देना चाहता है।

निश्चय करें

इसलिए यदि आप 'यथास्थिति' के समर्थक हैं तो स्वतंत्र पार्टी को अपना मत दें और यदि आप पाश्चात्य ढाँचे पर राष्ट्र को ढालना चाहते हों तो किसी भी एक समाजवादी को चुन लें; किंतु यदि आप देश की प्राचीन संस्कृति के आधार पर राष्ट्रजीवन का सुधार और परिष्कार करना चाहते हों तो जनसंघ में सम्मिलित हो जाएँ।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 12, 1962



14

हर मतदाता को निभानी है भूमिका

यह आलेख पाञ्चजन्य में उपलब्ध नहीं हो सका।

इस शृंखला में हमने विभिन्न चुनावी घोषणा-पत्रों की मुख्य विशेषताओं पर बात की है। परंतु सविस्तार वर्णन का प्रश्न अपनी जगह खड़ा है। अधिकतर मुद्दों पर किसी भी पार्टी ने घोषणा-पत्र में कोई विस्तृत ब्योरा नहीं दिया है। पार्टी की नीतियों, दृष्टिकोण और समय-समय पर पार्टी प्रवक्ताओं के वक्तव्यों के आधार पर इस बारे में अनुमान से नतीजे निकाले जा सकते हैं। 'ऑर्गनाइजर' के गणतंत्र दिवस विशेषांक में विभिन्न पार्टियों के चुनावी कार्यक्रमों को सार संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। हमारा विश्वास है कि जो जानने के इच्छुक हैं और चुनावी घोषणा-पत्रों के आधार पर मतदान करते हैं, उनके लिए यह पर्याप्त है।

तथापि कई और चीजें हैं, जिन्हें ज़बरदस्ती चुनावी अखाड़े में घसीट लिया जाता है और विशेष रूप से कांग्रेस नेता इस काम में माहिर हैं। इनकी दलीलों पर विचार के लिए कुछ समय देना हमारे लिए वांछनीय होगा।

असंगत मुद्दे

सामान्य रूप से कांग्रेस के नेता मतदाताओं के बीच जाकर अपनी पार्टी के कार्यक्रमों की चर्चा नहीं करते। इसके बजाय वे असंगत मुद्दे उठाते हैं। बड़ी चालाकी से जातिवादी और सांप्रदायिक भावनाओं को शह देने के अतिरिक्त वे आम मानस में उनके और विशेष रूप से कुछ खास समुदायों के मन में आशंकाओं के बीज बोते हैं।

कांग्रेस को लगता है कि डर की भावना और इस माहौल में वह अधिक अच्छे से

फल-फूल सकती है और इसी नाते वह घोर घृणा अभियान को अपना हथियार बनाती रही है।

मुसलमानों और ईसाइयों से कांग्रेस नेता कहते हैं कि अगर उनकी सत्ता गई और जनसंघ की आई तो वे कहीं के नहीं रहेंगे। पंजाब में अकालियों को सत्ता से बाहर रखने के नाम पर वे गैर-सिखों से वोट माँगते हैं। और सहकारी खेती के भरमाने वाले नारे की आड़ में जिन किसानों की ज़मीन कांग्रेस जब्त करना चाहती है, उन्हें भी वह यह काल्पनिक भय दिखाती है कि सिर्फ वे ही उनके असली संरक्षक हैं, अगर वे नहीं रहे तो फिर ज़मींदारों और तालुकदारों का राज हो जाएगा।

जब वे गरीबों के बीच जाते हैं तो अमीरों को गालियाँ देते हैं और समाजवाद का युग लाने की प्रतिज्ञा करते हैं। अमीरों के बीच जाकर वे कहते हैं कि अगर कांग्रेस नहीं होती तो उनकी सारी संपत्ति लूट ली जाती या जब्त कर ली जाती।

वे निर्लज्जता से स्वीकार करते हैं कि वे ख़राब हैं, पर वे इस आधार पर कुरसी माँगते हैं कि अगर वे सत्ता में नहीं रहे तो परिस्थितियाँ और बदतर हो जाएँगी। वे भविष्य की अनिश्चितताओं का भरपूर दोहन करते हैं।

परंतु वर्तमान परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि लोगों ने कांग्रेस को चलता करने की तैयारी शुरू कर दी है। लोगों को यह महसूस करने दें कि कांग्रेस उनकी संरक्षक नहीं है। यही दलीलें कभी अंग्रेज़ भी दिया करते थे। परंतु वे भी चाटुकारों व निहित स्वार्थी तत्त्वों का छोटा सा समूह ही खड़ा कर पाए। कांग्रेस भी इन्हीं गंदी चालों का सहारा लेने के प्रयास में है। परंतु वह यह भूल जाती है कि अंततः निहित स्वार्थी तत्त्व कभी अंतिम विजय प्राप्त नहीं कर सकते। आखिर में राष्ट्रहित की ही विजय होगी।

क्या कांग्रेस सरकार स्थिर है?

यह मत सोचिए कि कांग्रेस के बाद अराजकता फैल जाएगी। सत्य तो यह है कि अराजकता है ही कांग्रेस की वजह से। कांग्रेस का दावा देश को स्थिर सरकार देने का है। हम भी स्थिर सरकार चाहते हैं। परंतु जिस पार्टी की जड़ें सत्ता में इतनी गहरी हों और जो इतने वर्षों से असीम शक्तियों का उपभोग कर रही हो, वह कभी भी देश की लोकतांत्रिक प्रणाली में सहायक की भूमिका नहीं निभा सकती। वैसे तो राजतंत्र स्थिर सरकार का सबसे बढ़िया नमूना है। क्या इसी आधार पर हम राजतंत्र को प्राथमिकता दें?

इससे भी अधिक, स्थिरता का कांग्रेसी दावा सतही है। क्या उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार और आंध्र में स्थिर सरकारें रही हैं? मंत्रालय बनते-बिगड़ते रहे हैं। इतनी बड़ी संख्या के बावजूद या संभवतया इस संख्या के कारण हर साल अविश्वास प्रस्ताव आते रहे हैं।

कांग्रेस में गुटिय संघर्ष कहीं से भी स्थिरता की निशानी नहीं है। पार्टी का नेतृत्व

सरकार को बदले या पार्टी की एकता एवं अनुशासन को धत्ता-बताकर कोई गुट सत्ता पर कब्जा कर ले, इससे श्रेष्ठ तो यही होगा कि जनता सरकार को बदल दे। आंतरिक संघर्षों में लिप्त कांग्रेस स्थिर सरकार नहीं दे सकती। इसके लिए एक विकल्प का निर्माण जरूरी है।

लोकतंत्र को सिर्फ जनता की ही नहीं बल्कि जनता के द्वारा और जनता के लिए सरकार के रूप में भी परिभाषित किया गया है। जैसा कि हम जानते हैं, प्रशासनिक संचालन के लिए स्थायी सेवाएँ हैं, जो जनप्रतिनिधियों के नियंत्रण व निर्देशन में हैं।

जो इन स्थायी प्रशासनिक सेवाओं में हैं, उनकी एक खास मनोदशा होती है, जिसे सामान्य रूप से हम नौकरशाही रवैये के रूप में जानते हैं। ये नौकरशाह जनाकांक्षाओं पर विचार नहीं करते। वे सिर्फ सरकार के बारे में सोचते हैं। यहाँ तक कि वे चाह कर भी जनता की कठिनाइयों को समझ पाने में असमर्थ है। उसका प्रशिक्षण और रहन-सहन दोनों ही उसे जन प्रतिनिधियों से दूर करता है।

परंतु जन प्रतिनिधियों के साथ यह मामला नहीं है। वे सीधे-सीधे जनता के संपर्क में हैं। परंतु ये जनप्रतिनिधि भी अगर लंबे समय तक सत्ता में रहे तो उनका भी रवैया नौकरशाहों की तरह हो जाता है। और यदि उस जनप्रतिनिधि का निर्वाचन अपने क्षेत्र और वहाँ के लोगों की सेवा की बजाय इस आधार पर होता है कि वह उक्त पार्टी का प्रत्याशी है तो वह निर्णय लेते समय शायद ही कभी जनता के बारे में सोच-विचार करता है।

कांग्रेस आज नौकरशाहों के समूह में परिवर्तित हो गई है। उसमें नौकरशाही के सभी अवगुण तो हैं, पर उसका एक भी गुण नहीं है। कांग्रेस के अध्यक्ष के लिए दस वर्ष के कार्यकाल की सीमा तय करना कांग्रेस के लिए भी लाभप्रद होता और देश के लिए भी। कांग्रेस का कार्याकल्प हो गया होता। परंतु कांग्रेस के निहित स्वार्थी तत्वों ने इसका विरोध किया और आखिर में उन्हीं की चली। कांग्रेस का आला कमान दृढ़ नहीं रह पाया।

लोगों को मुखर होने दें। निश्चित रूप से एक नए तरह का विधान मंडल और एक नई पार्टी आएगी, जिसे जनता की कठिनाइयों का प्रत्यक्ष अनुभव होगा और जो सरकार को जनहित में कार्य करने में सक्षम बनाएगी।

गोवा का दोहन

कांग्रेस के नेता चुनावी बहस में कुछ राष्ट्रीय मुद्दों को लाने का भी प्रयास कर रहे हैं। गोवा की मुक्ति एक तार्किक मुद्दा है। इस संदर्भ में कार्वाई कर निश्चित रूप से सरकार ने असें से लंबित एक राष्ट्रीय माँग को पूरा किया है। कांग्रेस के क्रियाकलापों का आकलन करते समय और कांग्रेसी शासन का बही-खाता तैयार करते समय हम

इसका श्रेय उसके खाते में डालने को तैयार हैं। यदि हम कश्मीर के एक हिस्से के अभी भी चीन व पाकिस्तान के कब्जे में होने को कांग्रेस के उधार खाते में डालें तो भी हमें गोवा को उसके संपत्ति खाते में रखना होगा।

परंतु जब भारत के प्रधानमंत्री यह कहते हैं कि उनकी सरकार को इसलिए सत्ता में लाना चाहिए, ताकि विश्व को दिखाया जा सके कि जनता सरकार की कार्रवाइयों का समर्थन करती है, तो वे ग़लत हैं। ब्लिट्ज ने बहुत से कार्टून प्रकाशित किए हैं, जिसमें गोवा में हमारी कार्रवाई को लेकर पश्चिमी देशों की प्रतिकूल प्रतिक्रिया को दर्शाया गया है। इसी के साथ उसने पश्चिमी देशों के इन प्रतिक्रियावादियों को मुँहतोड़ जवाब देने के नाम पर मतदाताओं से कृष्ण मेनन को वोट देने की अपील की है। इसका अर्थ हमारी आंतरिक राजनीति में विदेशी मुद्दे घुसेड़ना है। आखिरकार यह चुनावी संघर्ष भारत और अमरीका की जनता के बीच मुकाबला नहीं है। इस तरह की अपीलें मुद्दों को लेकर भ्रम की स्थिति ही पैदा नहीं करतीं अपितु राष्ट्रीय एकता को भी अवमूल्यित करती हैं। एक राष्ट्रीय मुद्दा पार्टी का मुद्दा बन जाता है। और यदि कुछ अविवेकी, अविचारी और असावधान लोग इसमें कूद पड़े और इन मुद्दों पर सरकार की आलोचना शुरू कर दी तो इससे शत्रुओं के हाथ हमारे खिलाफ़ दुष्प्रचार का एक और हथियार हाथ लग जाएगा। इन सब चीजों को हर हाल में टालना या रोकना चाहिए।

इसलिए यह नितांत आवश्यक है कि प्रधानमंत्री व कांग्रेसी नेता या अन्य पार्टियों के नेता भी चुनावी भाषणों में इन मुद्दों पर चीन, पाकिस्तान, अमरीका, इंग्लैंड या अन्य देशों से उलझने से बचें। इसलिए हम उन प्रश्नों पर चर्चा करें, जिन पर घरेलू राजनीति में मतभिन्नता है और जो एक पार्टी को दूसरे से अलग करते हैं।

आचार संहिता के मुख्य उल्लंघक

आचार संहिता के बावजूद ऐसा प्रतीत होता है कि पंडित नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेसी हिंसा और दूसरों के अपमान में विशेष रस ले रहे हैं। स्वतंत्र पार्टी की आर्थिक नीतियों को खराब अर्थनीति करार देकर पंडित नेहरू ने किसी तरह से मतदाताओं को जागरूक करने का कार्य नहीं किया।

एक अन्य दिन उन्होंने जनसंघ को जिन्ना का सच्चा अनुयायी बता डाला। इतने उच्च पद पर बैठे व्यक्ति को क्या इस तरह की बातें शोभा देती हैं? हर कोई जानता है कि पाकिस्तान बनाने वाले जिन्ना थे और भारतीय जनसंघ विभाजन का विरोधी है और देश का एकीकरण चाहता है। अब यह समझ में आने वाली बात नहीं है कि चेला अपने 'गुरु' के किए-धरे पर पानी फेरने का काम क्यों करेगा।

और पंडितजी स्वयं को जिन्ना का विरोधी बताते हैं। छोड़िए इतिहास में क्यों जाएँ,

पर जिस भाषण में उन्होंने जनसंघ की इन शब्दों में भर्त्सना की, उसी में आगे यह भी कहा कि यदि पाकिस्तान की जनता एकीकरण की इच्छुक हो तो भी वे पाकिस्तान को वापस नहीं लेंगे। तो हमारे पास एक ऐसा 'विरोधी' है, जिसने जिन्ना की उपलब्धियों को चिरायु बनाए रखने की शपथ ले रखी है।

इस तरह के वक्तव्यों के बहकावे में आने के बजाय जनता के लिए यह अधिक वांछनीय होगा कि वह चुनाव प्रचार के दौरान पार्टी के क्रियाकलापों को आदर्श आचार संहिता की कसौटी पर कसने का प्रयास करे। बहस करनेवाला अगर गाली-गलौज पर उतर आए तो यह इस बात का पुख्ता सबूत है कि उसके पास तर्क चुक गए हैं। किसी के चरित्र या मंशा पर भ्रामक या मिथ्या हमलों को तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता, इससे यही पता चलता है कि आपके पास तर्क नहीं हैं।

नामांकन पत्र भरने और परचे वापस लेने की प्रक्रिया पूरी हो चुकी है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में मुकाबले की प्रकृति का भी पता चल गया है। चूँकि सभी क्षेत्रों में पार्टी के प्रत्याशी नहीं हैं, इसलिए निर्णय क्षेत्र दर क्षेत्र आधार पर लेने पड़ेंगे। यदि आपके निर्वाचन क्षेत्र में कोई राष्ट्रवादी उम्मीदवार है तो उसे वोट दें और कांग्रेस को हराएँ। यदि लड़ाई सिर्फ कम्युनिस्टों और कांग्रेस के बीच है तो कम्युनिस्टों की पराजय सुनिश्चित करें। इन दलीलों के बहकावे में न आएँ कि इस तरह के निर्वाचन क्षेत्र में विपक्ष या इस मामले में कम्युनिस्टों को वोट देने से लोकतंत्र मजबूत होगा। वस्तुतः कांग्रेस यदि कम्युनिस्टों से पराजित हो गई तो वह स्वयं ही कम्युनिस्ट बन जाएगी।

कम्युनिस्टों की विजय से लोकतंत्र को बल नहीं मिलेगा अपितु कमजोर ही होगा, क्योंकि लोकतंत्र में उनकी आस्था नहीं है। इस प्रकार कम्युनिस्टों को वोट देने की भयंकर भूल कभी न करें।

जहाँ बहुकोणीय मुकाबले हैं, वहाँ राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक प्रत्याशी के पक्ष में मतदान करें। प्रयत्न करें कि आपका प्रत्याशी जीते, तथापि पराजित होने पर यह न सोचें कि आपका वोट व्यर्थ गया। यह व्यर्थ नहीं हुआ। यह जो भी आगामी सरकार हो, उसकी नीतियों और दृष्टिकोण को प्रभावित करेगा।

इस प्रकार समाजवादी पार्टियों को दिया गया वोट सरकार को और समाजवादी बनाएगा। एक राष्ट्रवादी और मानववादी सरकार को दिया गया वोट राष्ट्रीयकरण की दिशा में कोई दुस्साहसिक कदम उठाने से पहले सरकार को दो बार सोचने को विवश करेगा।

भारतीय जनसंघ विरोध की अवधारणा में विश्वास नहीं करता। यह स्वयं एक विकल्प के रूप में उभरने के लिए प्रयत्नशील है। परंतु विकल्प का निर्माण सिर्फ जादू की छड़ी घुमाने से नहीं हो जाएगा। एक-एक वोट और एक-एक सीट से इसका निर्माण

होगा। आपके वोट का रचनात्मक उपयोग हो। यह एक कमजोर, भ्रष्ट और पतनशील सरकार के विकल्प का निर्माण करे, इसमें प्रत्येक मतदाता को अपनी भूमिका निभानी है। संभव है कि आप सुयोग्य रीति से यह भूमिका निभाएँ, जो एक ऐसे लोकतांत्रिक देश के अनुरूप हो, जो अपनी राष्ट्रीय एवं जनता के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा के लिए दृढप्रतिज्ञ है और जो एक ऐसे गौरवशाली भविष्य का निर्माण करे, जो हमारे सबसे यशस्वी अतीत से भी अधिक यशस्वी हो।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 12, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



15

कांग्रेस द्वारा सुनियोजित ढंग से जनसंघ कार्यकर्ताओं पर हमले

दीनदयालजी द्वारा दि. 11 फरवरी, 1962 को लखनऊ प्रेसवार्ता में दिया गया वक्तव्य ।

लूमामऊ कांड की जाँच अकस्मात् स्थगित करने का निश्चय क्यों?

ऐसा प्रतीत होता है कि सत्तारूढ़ कांग्रेस दल इस समय पूर्ण रीति से हिंसक उपायों पर उतर आया है और इस रीति से कांग्रेसी कम्युनिस्टों के हाथों में खेल रहे हैं। लूमामऊ (हरदोई) कांड¹ और प्रदेश के अन्य स्थानों पर जनसंघ कार्यकर्ताओं पर कांग्रेसी हमले कर रहे हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार के कार्यों को मुख्यमंत्री स्वयं उत्तेजना दे रहे हैं।

जाँच स्थगित क्यों हुई?

लूमामऊ कांड की जाँच अचानक स्थगित किए जाने की निंदा करते हुए श्री उपाध्याय ने कहा कि मुझे संदेह है कि एक बार जाँच का आदेश देकर उसे स्थगित कराने के पीछे एक षड्यंत्र छिपा हुआ है और कांग्रेस दल अपनी सत्ता का दुरुपयोग कर इस अवधि के बीच झूठी गवाहियाँ एकत्र कर जनसंघ को बदनाम कर डालना चाहता है। अन्यथा क्या कारण है कि जाँच पूरी होने के पूर्व ही उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा उक्त क्षेत्र के जनसंघ

1. उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव के दौरान 7 मार्च, 1962 को लूमामऊ बाजार (हरदोई) में कांग्रेसी प्रत्याशी मोहनलाल वर्मा के नेतृत्व में उपद्रवियों ने भारतीय जनसंघ के प्रत्याशी राजेंद्र सिंह व अन्य कार्यकर्ताओं पर हमला कर दिया था। इस हिंसक झड़प में 3 कार्यकर्ताओं की मृत्यु हो गई थी और लगभग 25 लोग घायल हुए थे।

प्रत्याशी द्वारा गोली चलाने की मनगढ़ंत बात लखनऊ की सार्वजनिक सभा में कही गई? क्या इसका आशय यह नहीं है कि मुख्यमंत्री मजिस्ट्रेट द्वारा की जानेवाली जाँच को प्रभावित करना चाहते हैं। आपने कहा कि जनसंघ ने दिसंबर 9 फरवरी को उक्त दुर्भाग्यपूर्ण कांड घटित होते ही न्यायिक और खुली जाँच की माँग की थी किंतु जिस प्रकार जाँच स्थगित की गई और मुख्यमंत्री द्वारा लोकतंत्र विरोधी प्रचार प्रारंभ किया गया, उससे मुझे इस बात में संदेह है कि जाँच समिति निष्पक्ष रूप से अपने कर्तव्य का पालन कर सकेगी।

कांग्रेस उच्च सत्ता चेतने

कांग्रेसियों की गुंडागर्दी का उल्लेख करते हुए श्री उपाध्याय ने कहा कि बलरामपुर, रायबरेली, प्रतापगढ़, जौनपुर आदि स्थानों पर भी जनसंघ कार्यकर्ताओं पर हमले किए गए हैं और हमारी जीपें आदि तोड़ी जाने के साथ ही हमारे कार्यकर्ताओं पर छुरे आदि से आक्रमण भी किया गया है। क्या कांग्रेस इस रीति से देश में लोकतंत्र चलाना चाहती है? हमारी कांग्रेस उच्च सत्ता से माँग है कि वह अपने कार्यकर्ताओं को इस प्रकार के हिंसक कार्यों से परावृत्त करे।

प्रधानमंत्री भी संलग्न

कांग्रेस के उत्तेजनात्मक प्रचार का उदाहरण देते हुए आपने कहा कि प्रधानमंत्री तक जनसंघ को मिस्टर जिन्ना का उत्तराधिकारी बताते हैं। क्या यह ग़लत प्रचार नहीं है? क्या इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्रधानमंत्री के पास जनसंघ के विरुद्ध बोलने के लिए कोई तर्कसम्मत बात नहीं रह गई। इसका परिणाम है कि छुटभैये कांग्रेसी जनसंघ पर महात्मा गांधी की हत्या करने का झूठा आरोप लगाते हैं। सरकारी साधनों के दुरुपयोग के उदाहरण देते हुए श्री उपाध्याय ने कहा कि अब तो सूचना विभाग का साहित्य भी 'कांग्रेस को वोट दो' की मोहर लगाकर वितरित किया जा रहा है।

जनसंघ की चुनौती

दावे के साथ कहा जा सकता है कि भारतीय जनसंघ का कोई भी ज़िम्मेदार नेता इस प्रचार की अनर्गल और उत्तेजनात्मक बातें अपने भाषण में नहीं कहता और हम विभिन्न दलों की उनकी नीतियों और कार्यक्रम के आधार पर आलोचना करते हैं। अतः जनता से अनुरोध है कि वह सत्यासत्य का विचार करके अपने मतदान के अधिकार का प्रयोग करे और कांग्रेसियों के बहकावे में न आए।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 19, 1962



16

जनसंघ कार्यकर्ताओं के लिए परीक्षा की घड़ी

आम चुनावों के लिए प्रत्याशियों का चयन, नामांकन आदि का कार्य पूरा हो चुका है। इस कार्य में स्थान-स्थान के कार्यकर्ताओं ने संगठन की नीति के अनुसार अत्यंत परिश्रम व कुशलता से काम लिया है। आपके इस प्रयत्न के लिए मैं आपका अभिनंदन करता हूँ। स्मरण रखिए जनसंघ के जिन प्रत्याशियों को आपने खड़ा किया है, उनको विजयी बनाने की ज़िम्मेदारी भी आप पर है। उनकी विजय जनसंघ की विजय है और जनसंघ की विजय आपकी विजय, आपके सिद्धांतों की विजय है।

आज देश पर शत्रुओं का आक्रमण हो चुका है। शासन अपने कर्तव्य का निर्वाह कर नहीं रहा है। उसे हटाना राष्ट्रीय कर्तव्य है। देश की एकता को छिन्न-विच्छिन्न करनेवालों तथा पंचमांगियों को देश के सभी दल सहारा दे रहे हैं। हमें अपनी राष्ट्रीय एकात्मकता में निष्ठा लेकर उन सबका साहस के साथ सामना करना होगा।

योजनाओं के नाम पर देश को परावलंबी, परानुकरणशील बनाया जा रहा है। बेकारी, महंगाई, भुखमरी और कर-भार बढ़ रहा है। समाजवाद का नारा लगाकर लोगों की स्वतंत्रता को सीमित किया जा रहा है। उद्योग और व्यापार ही नहीं, अब सहकारी खेती के नाम पर¹ किसान की धरती और स्वतंत्रता भी छीनी जाएगी।

देश की राजनीति आज मोड़ ले रही है। तीसरे आम चुनाव निश्चित करेंगे कि भारत प्रजातंत्र और राष्ट्रवाद के आधार पर आगे बढ़ेगा या कम्युनिज्म और अधिनायकवाद का शिकार हो जाएगा। कांग्रेस में आज साम्यवादी तत्वों की भरमार हो गई है।

जनता को संगठित करने का स्वर्ण अवसर है। गाँवों और वनों में दूर-दूर रहनेवाले

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा नागपुर अधिवेशन (1959) में सहकारी संयुक्त खेती का प्रस्ताव पारित होने के बाद नेहरू कैबिनेट ने भी नीति-निर्माण में सहकारी खेती को प्राथमिकता देने की बात कही थी।

भारतमाता के लाड़ले हमारी बाट जोह रहे हैं। ऐसा कौन सा दल है, जिसके कार्यकर्ता उनके पास जाकर उन्हें भारत माता का साक्षात्कार करा सकेंगे? उनमें सुप्त भारतीयता और पौरुष को जगा सकेंगे तथा अपनी राष्ट्रीय एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सर्वस्व की बाज़ी लगाने का संकल्प पैदा कर सकेंगे। आपके ऊपर ही यह भार आ पड़ा है। उसे निबाहना ही होगा।

हमारे साधन सीमित हैं किंतु संकल्प की शक्ति बड़ी है। साधनों की कमी परिश्रम से पूरी करें। मन में विवशता और दुर्बलता का भाव न आने दें। भारत की यह परंपरा नहीं। जनसंघ के कार्यकर्ता की यह ख्याति नहीं। जनसंघ अपने कार्यकर्ताओं की लगन, त्याग भावना, अध्यवसाय और सूझ-बूझ के लिए प्रसिद्ध हैं। आज हमें अपने गुणों को साकार करने का अवसर मिला है।

परिस्थिति अनुकूल है। मंत्र (जनसंघ का सिद्धांत) अपने पास, तंत्र की व्यवस्था करें। रात और दिन अक्षरशः एक करने की आवश्यकता है। एक बार देश को फिर से पता लग जाने दीजिए कि चने चबाकर लड़ने वालों का मुकाबला करना लोहे के चने चबाना है। अपने ध्येय का साक्षात्कार कर भारतमाता के सत्य स्वरूप का ध्यान रखकर अपने कार्य में जुट जाएँ। भगवान् ने हमें अमिट सामर्थ्य दिया है, उसका आविष्कार करें और उसकी योजना को पूरा करने के लिए आगे बढ़ें।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 19, 1962



डॉ. हेडगेवार ने लोगों को सिखाया कि कैसे जीएँ

डॉ. केशव बलिरामजी हेडगेवार वास्तविक अर्थों में जन्मजात देशभक्त थे। यह कोई प्रतिक्रिया या खीझ नहीं थी, जिसने उन्हें राष्ट्र के कार्य के लिए प्रेरित किया। निःसंदेह वे ब्रितानी राज के विरुद्ध थे और जिस भी माध्यम से संभव हो, उसे समाप्त करना चाहते थे।

बताया जाता है कि एक बार उन्होंने कहा था कि मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए वे ब्रितानियों के जूते सीने को तैयार हैं और यदि आवश्यक हुआ तो उन्हें भगाने के लिए उसी जूते का उपयोग करेंगे।

उन्होंने स्वतंत्रता, जिसे वे लोकमान्य तिलक के शब्दों में 'जन्मसिद्ध अधिकार' मानते थे, की प्राप्ति के लिए माध्यमों पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं किया। इसलिए उन्होंने न केवल अपने समय के सभी स्वतंत्रता आंदोलनों में भागीदारी की बल्कि हर उस व्यक्ति को प्रोत्साहित किया और सहायता की, जो इस उद्देश्य के लिए कार्य कर रहा था। किंतु देश के प्रति उनका प्रेम इसलिए नहीं था कि देश दासता की बेड़ियों में जकड़ा था। समय के अनुरूप देश से प्रेम मानव मस्तिष्क की स्वाभाविक अवस्था है। राष्ट्रवादिता या देशभक्ति किसी व्यक्ति विशेष का अद्भुत गुण नहीं है वरन् यह एक सामाजिक और सांस्कृतिक व्यक्ति की सामान्य विशेषता है। वास्तव में सामाजिक पशु के रूप में परिभाषित किया जानेवाला मनुष्य मनुष्य कहलाने योग्य नहीं रहता, यदि उसमें सामाजिक भाव समाप्त हो जाता है और वह आत्मकेंद्रित हो जाता है। इसलिए डॉ. हेडगेवार ने कभी भी किसी व्यक्ति की सराहना करने के लिए किसी व्यक्ति के नाम के साथ देशभक्त शब्द का उपयोग नहीं किया। किसी व्यक्ति विशेष के साथ इस विशेषण

का उपयोग करना मात्र यह इंगित करता है कि लोगों में इस सामान्य गुण का अभाव था और यदि मनुष्य सामान्य रूप से देशभक्त नहीं थे तो मनुष्य नहीं थे। वे यह भी मानते थे कि व्यक्ति विशेष के इस मूलभूत गुण की अभिव्यक्ति के लिए दूसरों के द्वारा आक्रामक रुख या विदेशी शासन का होना आवश्यक नहीं था।

देशभक्ति एक सकारात्मक गुण है और यह किसी विदेशी समाज के बुरे कार्यों की नकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं है।

वार्तालाप के लिए उनके पास एकत्र होने वाले स्वयंसेवकों से उनके प्रश्नों में एक प्रश्न यह होता था कि 'यदि औरंगजेब नहीं होता तो क्या शिवाजी हुए होते?'

'नहीं' हममें से कुछ की राय होती थी। यह औरंगजेब का अत्याचारी शासन और धर्मांधता थी, जिससे शिवाजी ने लड़ाई लड़ी। यदि दिल्ली में एक प्रजापालक सत्ता होती तो उन्होंने इतनी कठिनाइयाँ क्यों झेली होतीं?

लेकिन डॉक्टरजी का उत्तर हाँ में था। यह मात्र एक ऐतिहासिक संयोग था कि शिवाजी को औरंगजेब के विरुद्ध और राणा प्रताप को अकबर के विरुद्ध लड़ना पड़ा। यदि दिल्ली में कोई मुगल सत्ता नहीं भी होती तो भी भारत माँ की यह सुयोग्य संतानें लोगों की सेवा करतीं और मातृभूमि के गौरव को बढ़ातीं। निःसंदेह, उनकी सेवाओं को, जिनसे अभिव्यक्ति मिलती, वे राहें अलग हो सकती थीं। मात्र सैनिक और नागरिक ही नहीं, मेहतर और संत भी राष्ट्र की सेवा करते हैं।

इस विचार के अनुरूप उन्होंने एक बार एक तसवीर के नीचे चित्रपरिचय 'मुझे सिखाएँ कि मरें कैसे' को परिवर्तित कर 'मुझे सिखाएँ कि जीएँ कैसे' कर दिया था। और सचमुच, उन्होंने लोगों को सिखाया कि कैसे जीएँ।

नकारात्मक राष्ट्रवाद के परिणाम

राष्ट्रवाद की यही सकारात्मक अवधारणा थी, जिसके कारण उन्होंने हिंदुत्व पर बल दिया। ब्रितानियों के विरुद्ध आंदोलन के आधार के रूप में अंगीकार किए सामयिक उपायों असहयोग और खिलाफत ने संपूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन को आघात पहुँचाया था और राष्ट्र के प्रति हमारे दृष्टिकोण को विकृत कर दिया था।

असहयोग स्पष्ट रूप से नकारात्मक था। इसने सभी ब्रितानी वस्तुओं के बहिष्कार की पैरवी की, परंतु हमारे राष्ट्रीय व्यवहार के लिए कोई सकारात्मक मानक निर्धारित नहीं किए। खिलाफत हर दृष्टि से एक सांप्रदायिक आंदोलन था, जो परदेशीय स्वामिभक्ति को बढ़ावा देता था। इसने भारत के मुसलमानों को इस भूमि से नहीं जोड़ा बल्कि यह एक सीमा तक परंपराओं और रिहाइश के कारण विकसित स्वामिभक्ति को समाप्त करने की ओर अग्रसर था। आंदोलन के कारण यह इस सीमा तक हुआ कि कुछ प्रमुख

मुसलमानों ने अफगानिस्तान, जो उनके अनुसार एक इस्लामी देश था, में रहने के लिए भारत को छोड़ दिया।

यदि खिलाफत और कांग्रेस के नेताओं के बीच कोई सहमति थी, तो वह मात्र अस्थायी और सामयिक थी। संभवतः हर कोई अपने हित के लिए दूसरे का शोषण करना चाहता था। कांग्रेस नेता ब्रितानियों को खदेड़ना चाहते थे और इस उद्देश्य के लिए उन्होंने मुसलमानों के साथ एकजुट होने को उपयोगी पाया, जो खिलाफत के मुद्दे पर विश्वास तोड़े जाने के कारण ब्रितानियों के विरुद्ध 1857 के बाद पहली बार क्रुद्ध हुए थे। परंतु जब कमाल अतातुर्क ने स्वयं खिलाफत समाप्त कर दी¹ तो मुसलमानों के लिए ब्रितानियों के विरुद्ध होने का कोई कारण नहीं था। तथापि कांग्रेस नेताओं को परिवर्तित परिस्थिति का भान नहीं हुआ और सामान्य राष्ट्रीय परंपरा को पुनर्जाग्रत और दृढ़ करने के स्थान पर सामयिक एकता को जारी रखने का प्रयत्न किया तथा कुछ चीजें खोईं। इसका परिणाम सदियों से चले आ रहे हमारे राष्ट्रवाद का आधार रहे सबकुछ को छोड़ने के रूप में आया और इसके स्थान पर एक नए स्वरूप को लाया गया, जिसने किसी को प्रेरित नहीं किया। यही परिस्थितियाँ थीं, जब डॉ. हेडगेवार ने स्पष्ट और असंदिग्ध रूप में हिंदू राष्ट्र के विचार को सामने रखा।

साझा राष्ट्रवाद की अवधारणा का दारिद्र्य

यह कहा जा सकता है कि वास्तविक राष्ट्रवाद और छद्म राष्ट्रवाद के मध्य यह संघर्ष पिछले 40 वर्षों से चलता आ रहा था। संयुक्त राष्ट्रवाद के समर्थक ऐसा कुछ भी सृजित करने में समर्थ नहीं रहे थे जो टिकाऊ हो सके और लोगों को प्रेरित कर सके। परंतु निश्चित रूप से वे लोगों को भ्रमित करने और उलझाने में सफल रहे। उन्होंने मातृ की छवि की सभी प्रमुख विशेषताओं को खंडित और नष्ट कर दिया। वे हमारी राष्ट्रीयता की सही तसवीर को बदनाम करने और निंदनीय बनाने में भी सफल रहे। देश के संपूर्ण विभाजन की चेतावनी देने वाली वर्तमान परिस्थितियाँ और इसकी राष्ट्रीय संस्कृति और सभ्यता का संपूर्ण लोप इसी का परिणाम हैं। तथापि आर.एस.एस. अब भी आशा की एकमात्र किरण है, एक आधार है कि यदि डॉ. हेडगेवार ने अपनी दूरदर्शिता से हमारी

1. अंग्रेजों द्वारा पदच्युत खलीफा पद को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से हो रहे खिलाफत आंदोलन का भारत में कांग्रेस और महात्मा गांधी ने समर्थन किया था। लेकिन 1924 में टर्की में व्याप्त साम्राज्यवादी शासक सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय का पासा पलटते हुए मुस्तफ़ा कमाल पाशा 'कमाल अतातुर्क' (1881-1938) ने खलीफा प्रथा को ही समाप्त कर दिया और देश को गणराज्य घोषित कर इसके प्रथम राष्ट्रपति (1924-38) बने, इसके साथ ही खिलाफत आंदोलन स्वतः ही समाप्त हो गया था। अपने शासनकाल के दौरान कमालपाशा ने देश की शिक्षा प्रणाली, क़ानून व सैन्य को आधुनिक शैली में परिवर्तित करते हुए एक आदर्श सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था विकसित की थी।

राष्ट्रीयता की सही प्रकृति के संरक्षण और संवर्धन के लिए कदम नहीं उठाए होते तो हमारा भाग्य क्या हुआ होता।

डॉ. हेडगेवार न केवल आदर्शवादी थे वरन् यथार्थवादी भी थे। वे स्वप्नद्रष्टा थे, परन्तु अपने सपनों को यथार्थ में परिवर्तित करने के लिए जीते थे। और इस प्रयत्न में उन्होंने हमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसा महान् संगठन प्रदान किया। आर.एस.एस. की सक्रियता के माध्यम से वे एक सार्थक जीवन जीने में समर्थ एक संगठित समाज की तसवीर देखना चाहते थे।

सांप्रदायिक और संकीर्ण दृष्टिकोण के लोग आर.एस.एस. को उन्हें उखाड़ फेंकने की चेतावनी देनेवाले प्रतिद्वंद्वी संगठन के रूप में देखते हैं। परन्तु वे गलत हैं। आर.एस.एस. ऐकांतिक नहीं है। यह व्यापक है और यह संपूर्ण समाज को समाविष्ट करना और उत्साहित करना चाहता है। आर.एस.एस. के कुछ हमदर्दों को भी संगठन के बारे में कुछ मिथ्याबोध है। वे किसी एक या दूसरे उद्देश्य से सेवा करना चाहते हैं। वे एक खंड को संपूर्ण समझने की भूल करते हैं।

सुधार आंदोलन नहीं

यह अवश्य समझा जाना चाहिए कि डॉ. हेडगेवार ने सुधार आंदोलन नहीं चलाया था। सुधारक संस्थागत परिवर्तनों पर बल देते हैं और मानते हैं कि इन परिवर्तनों से वे व्यक्ति और समाज को बदल देंगे। कुछ निश्चित स्थितियों में वे न्यायोचित हो सकते हैं और सफलता भी मिल सकती है। परन्तु डॉ. हेडगेवार का मानना था कि हमें सुधारों की नहीं, वरन् संगठन की आवश्यकता थी। जब तक कि हम व्यक्ति विशेष और समाज के बीच आधारभूत संबंध स्थापित नहीं कर सकते, कितना भी सुधारवादी जोश या संस्थागत व्यवस्थाएँ हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेंगी। यह धर्म की तरह है, जो सभी स्मृतियों और शास्त्रों में है और उनके जरिए समाज को बनाए रखता है।

आज जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो उनके व्यक्तित्व की महानता, उनके कद की ऊँचाई और सोच की गहराई को देखकर विस्मित हैं। परन्तु जो लोग उनके साथ रहे थे, वे कभी सोच भी नहीं सके थे कि वे जिसकी संगत में हैं, वह उनसे बहुत ही श्रेष्ठतर है। 'उनके अधीन छात्र जीवन से काम कर चुके श्री बाला साहेब देवरस' याद करते हैं कि वे केवल एक कदम आगे लगते थे। प्रत्येक स्वयंसेवक की भावना और आकांक्षा यही थी कि एक कदम और, और आप उनके साथ होंगे। परन्तु जैसे ही आप एक कदम बढ़े, अपनी छाया की तरह आप उन्हें फिर आगे पाएँगे, परन्तु बस एक कदम और आगे।

2. मधुकर दत्तात्रेय देवरस 'बाला साहेब देवरस' (1915-1996) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तृतीय सरसंघचालक (1973-1994) थे।

उन्होंने इसी तरह निरंतर लोगों का नेतृत्व किया और सामान्य लोगों में से महान् संठनकर्ता विकसित किए, जिन्होंने उनका संदेश देश के कोने-कोने तक फैलाया। और आज भी हमें उनकी प्रतिमा नहीं स्थापित करनी है या पूजा नहीं करनी है, क्योंकि इससे वे प्रसन्न नहीं होंगे बल्कि हमें उनके आदर्शों के लिए जीना है, जिसके लिए एक अगले क़दम के अलावा किसी और चीज़ की आवश्यकता नहीं है।'

—ऑर्गनाइज़र, 2 अप्रैल, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



18

डॉ. राममनोहर लोहिया का प्रस्ताव

समाचारों की कतरनों से गुजरते हुए मुझे 27 मार्च, 1962 के नेशनल हेराल्ड में प्रकाशित एक समाचार दिखा, जिसमें डॉ. राममनोहर लोहिया द्वारा इलाहाबाद में दिए गए एक भाषण की रपट थी। डॉ. लोहिया ने इस भाषण में सांप्रदायिक सौहार्द पर बल दिया था और इसमें आगे लोहिया को यह कहते हुए बताया गया था कि वे इस विवाद में नहीं पड़ना चाहेंगे कि जनसंघ एक सांप्रदायिक संगठन है या नहीं, लेकिन वे इस बात से आश्वस्त थे कि अपनी नीतियों और गतिविधियों के माध्यम से जनसंघ हिंदू और मुसलमानों की बीच खाई को चौड़ी कर रहा है। प्रकाशित रिपोर्ट में विवरण नहीं दिया गया था और मैं नहीं जानता कि डॉ. लोहिया ने जनसंघ के विरुद्ध अपने आरोप का आधार श्रोताओं को वास्तव में क्या बताया था। विशिष्ट दृष्टांतों के अभाव में आलोचना अवांछित है और यह डॉ. लोहिया जैसे नेता को शोभा नहीं देता, जिनके बारे में मुझे लगता है कि वे पंडित नेहरू और कॉमरेडों द्वारा प्रयोग किए जानेवाले तकिया कलामों को तोते की तरह नहीं दोहराएँगे। अब तक वे जनसंघ पर उनकी तरह जुनूनी ढंग से हिंदी का मुद्दा न उठाने और भारत और तिब्बत के बीच सीमा के रूप में ब्रह्मपुत्र नदी पर बल न देने का आरोप लगाते रहे थे। परंतु इस बार उन्होंने घिसी-पिटी बीन और प्रपंचात्मक धुन बजाई है।

हो सकता है कि उनका यह पूरा भाषण पर उनके कुछ अपेक्षाकृत कम उदारवादी समर्थकों को संबोधित हो, जिन्होंने उस प्रकाशित पत्र को अपवाद मान लिया, जिसमें श्री नानाजी देशमुख के विचारपूर्ण संयमी और ऊर्जस्वी नेतृत्व की सराहना की गई थी। नानाजी उनसे पहले मिले थे और लगता है कि उन्हें प्रभावित किया था।

लोहिया का सुझाव

इस तथ्य के बावजूद कि डॉ. लोहिया भारत के सभी लोगों के साझा पुरखे और

साझा इतिहास के तथ्य की स्वीकार्यता पर बल देते रहे हैं, ऐसा लगता है कि वह मुसलिम समस्या पर पिछले चार दशक के दौरान कांग्रेस द्वारा अपनाए गए मिथ्या दृष्टिकोण से मुक्त होने में समर्थ नहीं रहे हैं।

अखंड भारत की स्थापना का उल्लेख करते हुए डॉ. लोहिया ने अपने भाषण के दौरान प्रस्ताव किया था कि यदि भारत के लोग पाकिस्तान में अपने मुसलिम भाइयों को आकर्षित करना चाहते हैं तो भारत के राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री का मुसलिम होना अनिवार्य बनाने के लिए संविधान में संशोधन होना चाहिए। यह प्रस्ताव भारत और इसके लोगों की अंतर्भूत एकता की सराहना के अभाव का प्रकटीकरण है। अखंड भारत एक क्षेत्रीय से अधिक सांस्कृतिक अवधारणा है। यह सत्य है कि इस आदर्श की उपलब्धि भारत के लोगों की दिलों की एकता के माध्यम से ही मात्र संभव है। परंतु एकता कभी भी राजनीतिक पैबंद के माध्यम से सृजित या संवर्धित नहीं की जा सकती। एकता समानता में प्रकट होती है। समाज का कोई वर्ग एकता के लिए मूल्य की माँग नहीं कर सकता और यदि यह इस प्रकार के दृष्टिकोण में विकृत हो जाए तो कोई भी मूल्य उस वर्ग में एक होने की भावना को नहीं ला सकता। जिस क्षण आप राजनीतिक सत्ता के रूप में उन्हें मूल्य के भुगतान के आधार पर समुदाय का दिल जीतने की सोचते हैं, आप अलगाव का बीज बोते हैं। पिछले 40 वर्ष के इतिहास में इस तथ्य के पर्याप्त प्रमाण हैं। मुसलमानों को राष्ट्र और इसकी स्वतंत्रता के लक्ष्य के साथ स्वयं को जोड़ने के लिए प्रेरित करने के क्रम में सभी प्रकार के 'मोल' चुकाए गए, परंतु हम सफल नहीं हुए। कांग्रेस नेताओं की नीयत बुरी नहीं थी। परंतु वे ब्रितानियों के जाल में फँस गए। हिंदुओं से वे शुद्ध रूप से राष्ट्रीय स्वतंत्रता के नाम पर आह्वान करते थे, परंतु मुसलिमों का आह्वान करते समय वे उसमें कई प्रकार की गारंटी और प्रलोभन देते थे, जो भेदभावपूर्ण तो था, लेकिन उनके विरोध में नहीं बल्कि उनके पक्ष में था।

परंतु इन सबमें भेदभाव ही था। यह मुसलमानों को उत्साहित करने में विफल रहा। एक राष्ट्रभक्त और एक व्यवसायी में अंतर्गत एक भिन्नता होती है। कांग्रेस ने मुसलमानों को कभी देशभक्त के रूप में नहीं देखा बल्कि राजनीतिक सत्ता के लिए व्यावसायिक मोलभाव किया। दूसरी तरफ, जिन्ना ने राष्ट्रीयता का एक नया सिद्धांत गढ़ा। यह इतना विलक्षण था कि इसने आम मुसलमानों में पाकिस्तान के लीग के आदर्श के लिए जोश और उत्तेजना भर दिया।

जिन्ना ने मुसलमानों के बीच कट्टरपंथी भिन्नताओं पर कान नहीं दिया। यदि उनके स्थान पर डॉ. लोहिया होते तो पाकिस्तान में संभवतः राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में से एक शिया और दूसरा सुन्नी को बनाना अनिवार्य हो गया होता। परंतु नहीं, जिन्ना ने

इस ऐसे कोई प्रयोग करने की ज़रूरत नहीं समझी। यहाँ तक कि उन्होंने लोगों से यह भी नहीं कहा कि एक राज्य के रूप में पाकिस्तान किस तरह का होगा और पाकिस्तान की विभिन्न इकाइयों के बीच संबंध क्या होंगे। उन्होंने उनसे एक मुसलमान के रूप में बात की और कांग्रेस ने भी उनसे मुसलमान के रूप में बात की। जहाँ जिन्ना मुसलमानों को एक 'राष्ट्र' के रूप में 'उन्नत' करने का प्रयास कर रहे थे, कांग्रेस का दृष्टिकोण उन्हें महज अल्पसंख्यक के रूप में देखने का था। इस दृष्टिकोण में एक कृपा का भाव, संरक्षण देने की भावना थी। व्यवहार में इसे तुष्टीकरण की नीति कहा जाता है। यह निश्चित रूप से समानता नहीं थी।

क्या यह राष्ट्रीयता है?

यहाँ तक कि आज भी राष्ट्रीयता को सामान्य ढंग से इन्ही रूपों में देखा जाता है। राष्ट्रीय एकता पहलीनुमा समस्याओं के समाधान का माध्यम बन गई है, जिसने पिछले 40 वर्षों में भारत के लोगों को कट्टरपंथी और सांप्रदायिक राजनीतिक तक सीमित कर के रख दिया है।

डॉ. लोहिया राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री पद मुसलमानों के लिए आरक्षित रखने का संवैधानिक प्रावधान चाहते हैं। परंतु अन्य धार्मिक समुदायों के बारे में क्या चाहते हैं? यहाँ ईसाई, पारसी और यहूदी भी हैं। और यहाँ तक कि हिंदू शब्द के संकीर्ण और सीमित संकेतार्थों के भीतर कई संप्रदाय हैं। क्या वे सभी आरक्षण नहीं माँगेगे? और इसका अर्थ सदियों के दौरान बड़ी नज़ाकत से बुने गए राष्ट्रीयता के ताने-बाने को तार-तार करके तोड़ना होगा।

हम इसके बारे में नहीं सोचते, परंतु कुछ लोग निश्चित रूप से यह व्याख्या करते रहे होंगे और ये सब बातें यह प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं कि विभिन्न शीर्ष पदों पर कांग्रेस प्रत्याशियों का चयन सांप्रदायिक आधार पर निर्धारित होता रहा होगा। हिंदू राष्ट्रपति को मुसलिम उपराष्ट्रपति¹, राज्यसभा में ईसाई उपसभापति² और लोकसभा में सिख अध्यक्ष³ के माध्यम से संतुलित होना है। इस चक्र को पूरा करने के लिए विपक्षी दलों ने उपसभापति का चुनाव लड़ने के लिए एक आदिवासी नेता श्री जयपाल सिंह को नामित किया। परंतु क्या इससे चक्र पूरा हो सकता है?

जनसंघ इस विचार के विरुद्ध है। पद योग्यता के आधार पर मिलने चाहिए, न कि धर्म के आधार पर। धर्म को ध्यान में रखना पाकिस्तान का अनुसरण करना होगा।

1. डॉ. ज़ाकिर हुसैन (1897-1969) भारत के 1962 से 1967 तक उपराष्ट्रपति रहे थे।

2. वायलेट अल्वा हरि (1908-1969) राज्यसभा के 1962 से 1969 तक उपसभापति थे।

3. सरदार हुकम सिंह (1895-1983) लोकसभा के 1962 से 1967 तक स्पीकर थे।

पाकिस्तान का एक संविधान है, जिसके तहत मात्र मुसलमान ही देश का प्रमुख हो सकता है।⁴ गैर-मुसलमान वहाँ दोयम दर्जे के नागरिक हैं। भारत में हमारा अपना संविधान है, जिसमें किसी भी पद के लिए किसी धर्म का होना बाधक नहीं है। यदि हम राष्ट्रीय एकता को आगे भी दृढ़ रखना चाहते हैं तो हमें इसके शब्दों और भावना का अनुसरण करना होगा। जनसंघ ने उपराष्ट्रपति पद के लिए श्री जाकिर हुसैन का या लोकसभा अध्यक्ष पद के लिए श्री हुकुम सिंह के समर्थन का निर्णय उनके धार्मिक जुड़ाव के कारण नहीं वरन् उनकी योग्यता के आधार पर किया। हालाँकि यदि कांग्रेस सांप्रदायिक आधार पर विभिन्न पदों पर नियुक्ति करके सांप्रदायिकता को संस्थागत बनाने की इच्छुक है तो यह भारी भूल होगी। जनसंघ निश्चित रूप से ऐसे किसी क्रदम का विरोध करेगा।

वातावरण दूषित करते हैं निहित स्वार्थ

हो सकता है कि जनसंघ के इस शुद्ध और साधारण राष्ट्रीयता के स्पष्ट स्थापन और इस पर बल देने के कारण कुछ लोग, जिनका मुसलिम अलगाव में निहित स्वार्थ है, क्रुद्ध महसूस करें और इसलिए रोना-पीटना करें। ये वे लोग हैं, जो जनसंघ को मुसलिम विरोधी के रूप में इसलिए निरूपित नहीं करते कि वास्तव में ऐसा है बल्कि इसलिए करते हैं, क्योंकि यह भय बनाए रखना इन राजनीतिकों के अनुकूल है। परन्तु हम झूठे आरोपों से डरते नहीं हैं। जनसंघ खाई चौड़ी नहीं कर रहा है बल्कि यह खाई बनी न रहे, इसके लिए क्रदम उठा रहा है।

हिंदी के प्रति डॉ. लोहिया के प्रेम को वे लोग पसंद नहीं करते, जिनका अंग्रेजी में निहित स्वार्थ है। और वे पूरे मुद्दे को उत्तर बनाम दक्षिण के रूप में बदलने का प्रयास करते हैं। तो क्या इस कारण से हमें यह कहना चाहिए कि डॉ. लोहिया उत्तर और दक्षिण के बीच खाई चौड़ी कर रहे हैं?

राजनीति में कई बार व्यावहारिक आधार पर निर्णय किए जाते हैं, परन्तु इनकी सराहना करने या निंदा करने के लिए इन निर्णयों का सैद्धांतिकीकरण या सामान्यीकरण करने की प्रवृत्ति है। हालाँकि इस संदर्भ में खेल के कुछ निश्चित नियमों पर दृष्टि बनाए रखने की आवश्यकता है। यदि हम सांप्रदायिकता समाप्त करना चाहते हैं तो सांप्रदायिक सामान्यीकरण को तब तक नज़रअंदाज़ करना होगा, जब तक कि अकाट्य तथ्य ऐसे

4. सन् 1956 में पाकिस्तान का संविधान बना। 'इस देश की संप्रभुता अल्लाह में निहित है' के साथ ही इस्लाम को सबसे ऊपर दर्जा दिया गया तथा देश का सर्वोच्च पद सिर्फ मुसलिम के लिए आरक्षित कर दिया गया। पाकिस्तान ने प्रगतिशील और उदारवादी विचारधारा को त्यागकर अपना शासन व नियम-क़ानून कुरान और शरिया के अनुसार तय किया।

निष्कर्ष पर जोर न दें।

मैं सोशलिस्ट पार्टी से जुड़ा एक उदाहरण लूँगा। श्री तातारी सोशलिस्ट पार्टी से उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य थे। इस बार उन्हें टिकट नहीं दिया गया। क्या हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि उन्हें टिकट इसलिए नहीं दिया गया, क्योंकि वे एक मुसलमान हैं और इस सीट से छह वर्ष पहले एक मुसलिम को वरीयता देने वाली सोशलिस्ट पार्टी की नीतियों में बदलाव हो गया है? मैं नहीं समझता कि इस तरह का कोई निष्कर्ष निकालना सही होगा।

इसलिए यदि हम सांप्रदायिकता को समाप्त करना चाहते हैं तो राजनीतिज्ञों को मुसलिम, ईसाई, पारसी, जैन, सिख, आर्य समाजी या लिंगायत की बात करने से बचना होगा। यह काम विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के प्रमुखों के लिए आरक्षित करना होगा। यदि हम पादरी, ग्रंथी और मौलवी का राजनीति में हस्तक्षेप करना पसंद नहीं करते तो इन पवित्र परिसरों में अतिक्रमण के प्रलोभन से बचना होगा।

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 30, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



19

स्वयं को हराने वाली है सरकार की आर्थिक नीति

दीनदयालजी कोलकाता के हिंदुस्तान क्लब में उनके सम्मान में आयोजित एक चाय पार्टी में विशिष्ट जनों को संबोधित कर रहे थे। यह स्वागत पार्टी एक प्रमुख व्यवसायी श्री एस.एस. कोठारी द्वारा दी गई थी। उस समय डॉ. आर.सी. मजूमदार¹, आचार्य डी.पी. घोष,² श्री एच.एल. सरकार और श्री एच.आर. शुक्ल भी उपस्थित थे। इस यात्रा के दौरान उन्होंने कई सांगठनिक बैठकों को भी संबोधित किया, जिसमें मंडल सचिव और पिछले चुनाव में जनसंघ के प्रत्याशी तथा जनसंघ के अन्य प्रमुख कार्यकर्ता उपस्थित रहे। दीनदयालजी का वक्तव्य।

नए बजट में सम्मिलित कराधान प्रस्ताव देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल असर डालेंगे।

सरकार की आर्थिक नीति 'स्वयं को हराने वाली' है। केंद्र सरकार के कर्मचारियों के वेतन मान में वृद्धि नए कर लगाकर प्रति-संतुलित किया गया है, जिससे जीवनयापन की लागत ऊँची हो जाएगी और इससे और अधिक वेतन की माँग होगी।

कांग्रेस से असंतुष्ट राष्ट्रीय जनमानस विकल्प ढूँढ़ रहा है और जनसंघ में एक

1. डॉ. रमेशचंद्र मजूमदार (1888-1980) भारत के प्रसिद्ध इतिहासकार, जिन्होंने प्राचीन भारत और स्वाधीनता संग्राम के इतिहास पर अनेक कार्य किए थे।

2. आचार्य देवप्रसाद घोष (1894-1985) भारतीय जनसंघ के 1956 से 1965 (1960 से 62 को छोड़कर) तक अध्यक्ष रहे।

ऐसी पार्टी बनने की क्षमता है, जो इन विकल्पों में एक हो सके। अपनी बाहरी जड़ों और जनता की परंपरा तथा भावनाओं से कटी हुई कम्युनिस्ट पार्टी जनता को स्वीकार्य नहीं है।

—ऑर्गनाइजर, मई 7, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



20

कश्मीर पर संयुक्त राष्ट्र की चर्चा

कश्मीर मुद्दे पर सुरक्षा परिषद् में श्री मुहम्मद जफरुल्लाह¹ के भाषणों में ऐसी बातें बहुत मामूली थीं, जो विश्व शक्तियों को नया दृष्टिकोण दे सकें और उनके तथ्यात्मक ज्ञान को बढ़ा सकें। वह लंबा भाषण आक्षेपों और धमकियों से भरा था और विश्व न्यायालय का न्यायाधीश होने का विशेषाधिकार तथा सम्मान पाए व्यक्तित्वों को प्रभावित करने के लिए नगण्य था। भावनाओं का प्रदर्शन जानबूझकर किया गया हो सकता है, क्योंकि कश्मीर पर पाकिस्तान का पक्ष कारणों और तर्कों के आधार पर नहीं रखा जा सकता। एकमात्र तर्क, जिसे पाकिस्तान पहले आगे बढ़ा चुका है, यह है कि कश्मीर में अधिसंख्य जनता के मुसलमान होने के कारण यह प्रदेश पाकिस्तान में होना चाहिए। यह तर्क उन लोगों को ठगता है, जो यह सोचते हैं कि भारत का विभाजन मुसलमान और गैर-मुसलमान के आधार पर हुआ है और भारतीय गणराज्य में कोई मुसलमान नहीं है। यदि ऐसा होता तो भारत में एक भी मुसलमान और पाकिस्तान में एक भी हिंदू नहीं रहा होता। यह सत्य है कि जिन्ना इसी आधार पर विभाजन चाहते थे। वे पाकिस्तान लेने में भले सफल हो गए, लेकिन उस आधार पर नहीं, जिस पर उन्होंने सोचा था। पाकिस्तान का जोर अब धर्म के आधार पर कश्मीर पर दावे से हटकर कश्मीर के लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने पर हो गया है। ऐसे अधिकार की तार्किकता और आवश्यकता के प्रश्न में गए बिना भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस मामले में पाकिस्तान का कोई अधिकार नहीं बनता। भारत के लोगों के बीच कैसा संबंध होना चाहिए और यह कैसे निर्धारित किया जाना चाहिए, यह वह निर्णय है, जिसे

1. चौधरी सर मुहम्मद जफरुल्लाह खान (1893-1985) पाकिस्तानी विधिवेत्ता और राजनयिक, जो पाकिस्तान के पहले विदेश मंत्री (1947-54) तथा संयुक्त राष्ट्र महासभा में 1961 से 64 तक स्थायी प्रतिनिधि रहे।

भारत अकेले ही अपने संप्रभु अधिकारों के तहत ले सकता है और उसे लेना है। किसी अन्य शक्ति का हस्तक्षेप सहन नहीं किया जा सकता। इस आधार पर पाकिस्तान भी कश्मीर में अपने आक्रमण को न्यायसंगत नहीं ठहरा सकता।

पाकिस्तान कोई प्रभाव छोड़ने में विफल रहा हो सकता है, लेकिन कश्मीर पर चर्चा के पूर्व और पश्चात् के घटनाक्रमों पर वैश्विक शक्तियों और भारत के लोगों की ओर से पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है। पाकिस्तान के पक्ष में सबसे मजबूत बिंदु वह समर्थन और सहानुभूति रही है, जो उसने पश्चिमी देशों से प्राप्त की है। परंतु पाकिस्तान की इस शक्ति ने उसकी सहायता नहीं की बल्कि प्रतिक्रिया ने सोवियत रूस को भारत के पक्ष में ला खड़ा किया। पिछली बार रूस का वीटो ही था, जिसने कश्मीर में संयुक्त राष्ट्र बलों की तैनाती के पाकिस्तान के षड्यंत्र को विफल किया। इस बार भी सोवियत रूस के प्रतिनिधियों ने स्पष्ट रूप से भारत के रुख का समर्थन किया। पाकिस्तान के पश्चिम का सैन्य सहयोगी होने के कारण उनकी स्वाभाविक सहानुभूति उस देश के साथ है और भारत को इन शक्तियों, जो लोकतंत्र और न्याय से समावेशित स्वतंत्र विश्व की अलंबरदार होने का दावा करती हैं, से मामले के गुणों के बावजूद समर्थन नहीं मिलता, जो उसे मिलना चाहिए। पाकिस्तान ने भारत के न्यायसंगत हित को परास्त करने के लिए संयुक्त राष्ट्र में सदैव हमारा प्रतिनिधित्व करते रहे श्री वी.के. कृष्ण मेनन के विरुद्ध उनके व्यक्तिगत पूर्वग्रह का भी लाभ उठाया। इससे कश्मीर अब तक दो शक्ति स्तंभों के बीच शीतयुद्ध में अनावश्यक रूप से खींचा जाता रहा है।

यद्यपि लगता है कि पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों को यह भान हुआ कि कश्मीर मुद्दे पर इस तरह के व्यवहार से वे भारत के लोगों की सहानुभूति से मात्र कटेंगे। सोवियत रूस द्वारा भारत के समर्थन, चाहे उसका उद्देश्य कुछ भी हो, का लाभ उस देश में कम्युनिस्ट उठा सकते हैं और भारत के लोगों को यह महसूस करा सकते हैं कि संपूर्ण विश्व में उनका एकमात्र मित्र सोवियत रूस है और पश्चिमी देश भारत के हितों के विरुद्ध काम करते हैं। संभवतः इसी कारण से पश्चिमी शक्तियों ने सुरक्षा परिषद् में इस मुद्दे को पुनः उठाने पर संयम बरतने की पाकिस्तान को सलाह दी। परंतु पाकिस्तान ने उनके परामर्श पर ध्यान नहीं दिया। स्पष्टतः इससे पाकिस्तान में उनका विश्वास खो गया।

पाकिस्तान ने न केवल अपने सहयोगी देशों के समझदारीपूर्ण परामर्श को अनसुना किया बल्कि भयादोहन की इच्छा के साथ अपने कब्जे के कश्मीरी हिस्से और सिंक्रियांग के बीच सीमा के संदर्भ में समझौते पर बातचीत के लिए कम्युनिस्ट चीन के साथ एक षड्यंत्र में शामिल हो गया। यह बातचीत शुरू करने का प्रस्ताव कम्युनिस्ट चीन ने कई महीने पहले दिया था। हालाँकि पाकिस्तान ने तब प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया था। परंतु सुरक्षा परिषद् में जैसे ही कश्मीर पर चर्चा शुरू हुई, पाकिस्तान ने इस प्रस्ताव को

स्वीकार करने की आधिकारिक घोषणा कर दी। यह स्पष्ट रूप से पश्चिमी दुनिया को चेतावनी थी कि यदि कश्मीर हड़पने के मुद्दे पर वे उसका साथ देने में विफल रहे तो पाकिस्तान कम्युनिस्ट चीन के साथ हाथ मिला लेगा। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि पहले भी जब सुहरावर्दी पाकिस्तान के प्रधानमंत्री थे, उन्होंने कश्मीर मुद्दे पर चीन से समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया था। परंतु उस समय भारत और चीन के बीच संबंध अलग तरह के थे। हालाँकि अब स्थितियाँ बदली हैं। इस बात की पूरी संभावना है कि कश्मीर पर आक्रमण करने और हमारी भूमि का विभाजन करने के लिए चीन और पाकिस्तान हाथ मिला लें। इसके लिए एकमात्र आधिकारिक घोषणा ही सूचक नहीं है। अपने ताजे विरोध-पत्र में लद्दाख में कुछ चौकियाँ खाली न करने पर सशस्त्र कार्रवाई की भारत को धमकी देकर चीन अपनी ओर से पाकिस्तान को उपकृत करता लग रहा है। इस संपूर्ण परिदृश्य को महज संयोग कहकर खारिज नहीं किया जा सकता। यह तथ्य है कि चीन और पाकिस्तान, दोनों मिलकर काम काम कर रहे हैं और भारत को धमकाने का इरादा रखते हैं।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए पाकिस्तान ने भी दोनों बंगाल में दंगे आयोजित कराकर संपूर्ण क्षेत्र में शांति बिगाड़ने की श्री मोहम्मद जफरुल्लाह की चेतावनी का व्यावहारिक संकेत देने का प्रयास किया है। यह साफ़ है कि राजाशाही और ढाका में दंगे किन्हीं उत्तेजित लोगों की किसी प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं थे बल्कि ये उच्च स्तर पर किए गए षड्यंत्र का हिस्सा थे। पाकिस्तान के राष्ट्रपति और पूर्वी बंगाल के गवर्नर ने उत्तेजक भाषण दिए और हिंदुओं के विरुद्ध लोगों को उकसाया। मालदा की घटना की अतिरंजित और झूठी रपटें प्रकाशित की गईं।²

और अब यह ज्ञात हो गया है कि मालदा में भी कुछ त्रासदीपूर्ण घटनाओं के पीछे पाकिस्तान का हाथ था। पाकिस्तान के उप उच्चायुक्त ने जिस तरह व्यवहार किया, वह न केवल आपत्तिजनक, बल्कि संदेहास्पद था। ऐसा लगता है कि पाकिस्तानी अधिकारी

2. पाकिस्तान में अयूब खान के नेतृत्व में सेना द्वारा सत्ता हथियाने के बाद से ही पूर्वी पाकिस्तान में बंगाली हिंदू व अन्य अल्पसंख्यकों को साफ़ करने की नीति बनने लगी, इसी कड़ी में 22 मार्च, 1962 को मालदा में संथालों और मुसलिमों के बीच हुई जातीय हिंसा को पाकिस्तानी मीडिया ने मुसलिमों के विरुद्ध दंगा बताया और मुर्शिदाबाद जिले में 1000 मुसलिमों की मृत्यु की गलत खबर दी साथ ही पाकिस्तान रेडियो ने भी भारत में अल्पसंख्यकों पर अत्याचार की झूठी कहानियों का प्रसारण किया। 22 अप्रैल को राष्ट्रपति अयूब खान तथा पूर्वी पाकिस्तान के गवर्नर लेफ्टिनेंट जनरल मोहम्मद आजम खान ने भारत में अल्पसंख्यकों पर अत्याचार की काल्पनिक कहानियों के साथ एक भड़काऊ भाषण दिया। जिसके बाद 22 अप्रैल को ही राजशाही डिवीजन में बंगाली हिंदुओं और अन्य जातीय अल्पसंख्यकों पर हमले शुरू हो गए और दो-तीन दिन में दंगे ने पूरे पूर्वी पाकिस्तान को अपनी चपेट में ले लिया। सरकारी मशीनरी ने हमलों को रोकने के लिए कोई क्रदम नहीं उठाया। हत्या, बलात्कार, लूट और आगजनी को कई दिनों के लिए जारी रखा गया, एक अनुमान के अनुसार पाब पुलिस थाने के तहत दरसा गाँव में 1200 हिंदू मारे गए थे तथा राजशाही जिले में ही 5,000 गैर-मुसलमानों का नरसंहार हुआ था।

पूर्वी बंगाल में हिंदुओं के विरुद्ध सुनियोजित दंगे शुरू होने का बहाना उपलब्ध कराने के लिए भारत में कुछ गड़बड़ी फैलाने के लिए पूरी तरह तैयार थे। मनोहर कहानियाँ के विरुद्ध अनावश्यक विरोध प्रदर्शन कोलकाता में आयोजित किया गया। इसके परिणामस्वरूप कुछ प्रदर्शनकारियों ने उत्तेजनापूर्ण कार्रवाई की। परंतु कोलकाता में अधिकारी सतर्क थे और इसे नियंत्रित कर लिया। परंतु मालदा में लगता है कि कुछ सीधे-साधे आदिवासी लोगों को उनकी महिलाओं के सम्मान की रक्षा में प्रतिकार करने के लिए उकसाकर पाकिस्तानी तत्त्व गड़बड़ी फैलाने में सक्षम थे। सत्य यह है कि हिंदुओं ने अधिक नहीं तो बराबर क्षति झेली। परंतु पाकिस्तानी प्रेस ने केवल उनके नापाक इरादों को पूरा करने के लिए पूरी घटना का विकृत रूप प्रस्तुत किया।

और अब सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि जैसा कि बताया जाता है, पाकिस्तान सरकार ने ढाका में हमारे उप उच्चायुक्त के विरुद्ध राजाशाही में उनकी कथित सांप्रदायिक गतिविधियों के लिए एक जाँच समिति का गठन किया है। यह सब इसलिए है, क्योंकि भारत में प्रेस ने कोलकाता में पाक उप उच्चायुक्त की ग़ैर-राजनयिक गतिविधियों को उद्घाटित किया है।

हमारे पास यह समाचार भी है कि फिजो³ से मिलने के लिए पाकिस्तान में घुसने वाले नगा विद्रोहियों के ढाका पहुँचने की उम्मीद है। एक तरफ़ जहाँ पाकिस्तान ने उनके प्रवेश की चाल चली, वहीं दूसरी ओर उसने उनके घुसने का विरोध किया।

यह सभी प्रदर्शित करते हैं कि पाकिस्तान और कम्युनिस्ट चीन किस सीमा तक जा सकते हैं। अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य में भिन्न शक्ति स्तंभों से गठबंधन के बावजूद, दोनों भारत के विरुद्ध साथ हो सकते हैं और हो गए हैं। जैसी स्थिति है, यह स्पष्ट है कि अमरीका पाकिस्तान पर कोई रोक लगाने में सक्षम नहीं होगा। इसी तरह सोवियत रूस भी विफल हो सकता है। भारत की यह आशंका कि पाकिस्तान को दी गई सैन्य सहायता कम्युनिस्ट देश के विरुद्ध उपयोग करने के स्थान पर लोकतांत्रिक देश भारत के विरुद्ध आक्रमणकारी षड्यंत्रों में की जा सकती है, सही साबित हुई है। यह वह समय है, जब पाकिस्तान के सशस्त्रीकरण की अपनी नीति पर पश्चिमी शक्तियों को दोबारा विचार करना चाहिए।

यह गठबंधन भारत में उन्हें आश्चर्यचकित नहीं करेगा, जिन्होंने 1947 से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को सभी कट्टरपंथी मुसलिम लीगियों को शरण के लिए मंच उपलब्ध कराते देखा है। कम्युनिस्टों और सांप्रदायिकों के बीच षड्यंत्र अब कोई दबा-छिपा नहीं

3. अंगामी जापू फिजो (1903-1990) नागा नेता, जो आतंक के प्रभाव और सशस्त्र क्रांति द्वारा भारत से अलग राष्ट्र का सपना देख रहा था। अलगाववादी समूह इन्हें 'नागाओं के पिता' के रूप में मानते हैं। फिजो नागालैंड में अशांति और कई भारतीय सरकारी अधिकारियों की हत्या के लिए जिम्मेदार था।

रह गया है। मुसलिम सांप्रदायिक शक्तियों पर दिए जानेवाले अतिरिक्त ध्यान के स्पष्टीकरण की अब आवश्यकता नहीं है। जबलपुर हो या भोपाल, कम्युनिस्ट हमेशा सांप्रदायिक गड़बड़ियों के अग्रदूत रहे हैं। यह व्यापक रूप से विदित तथ्य है कि मालदा का दौरा करनेवाले कम्युनिस्ट विधायक क्षेत्र में मुसलिम उपद्रवियों के साथ मिले हुए थे। दीवार पर लिखी इबारत स्पष्ट है। यदि ये घटनाएँ और पाक अधिकारियों तथा पाकिस्तानी तत्त्वों के कुकर्मों के साथ कम्युनिस्ट चीन और भारत में उसके समर्थकों की आक्रामक गतिविधियाँ लोकतांत्रिक शक्तियों में यथार्थ और आपातस्थिति के भाव को जगा सकें तो कश्मीर पर चर्चा निश्चित रूप से हमें होशियार बनाएगी। यही अकेले भारत की संप्रभुता की रक्षा करने और लोकतांत्रिक स्वरूप तथा स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए लोगों के संकल्प का समर्थन करने के लिए आवश्यक इच्छाशक्ति और मजबूती उपलब्ध कराएगा।

—ऑर्गनाइज़र, मई 14, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : प्रयाग

माननीय सर्वाधिकारीजी,

हम लोग संगठन के काम में लगे हुए हैं। संगठन की महत्ता और आवश्यकता समझते हैं। उसके विषय में बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। यह अलग बात है, जैसा संगठन चाहिए, वैसा दिखता नहीं है। पर कोई ऐसा नहीं मिलेगा, जो कहे, संगठन की आवश्यकता नहीं है। हर एक कहेगा कि हमारा संगठन होना ही चाहिए। उसका मूल कारण यह है कि कोई भी व्यक्ति अकेला सबकुछ नहीं कर सकता। ऐसा बहुत सा कार्य है, जो वह अकेला कर लेता है, जैसे खाना-पीना। पर इन सब कार्यों को करने के लिए भी दूसरे लोगों की आवश्यकता अनुभव होती है। भोजन के पीछे कितने लोगों के प्रयत्न छिपे हुए हैं। यदि वे सब लोग वह कार्य न करें तो संभवतया यह काम संभव न हो। किसान बोता है, व्यापारी स्थान-स्थान पर पहुँचाता है, कोई साफ़ करता, पीसता और रोटी बनाता-परोसता है, तब कहीं हम खा पाते हैं। फिर हल की आवश्यकता किसान को पड़ती है। वह हल लुहार न बनाए तो काम नहीं चलेगा। व्यापारी फ़सल को खरीदता है, पर स्थान-स्थान पर पहुँचाने के लिए रेलगाड़ी, ट्रक, बैलगाड़ी आदि न हों तो सामान दूसरी जगह पहुँच नहीं पाएगा। ऐसा हुआ है कि अन्न एक जगह पड़ा है और दूसरी जगह अकाल पड़ा है। सामान पहुँचाया नहीं जा सका। फिर गोदाम में रखवाने के लिए बोरी आदि चाहिए। अतः एक छोटी सी चीज़ के लिए भी एक व्यक्ति को कितने ही लोगों की मदद लेनी पड़ती है। तब कहीं भोजन मिल पाता है।

संगठन का मतलब ही यह है कि सब लोग इस एक बात को ध्यान में रखकर चलें कि हमको और सब लोगों की सहायता के लिए सबके साथ चलना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त भी ऐसे कार्य हैं, जिनको एक व्यक्ति पूर्ण नहीं कर सकता। लाख लोगों का

सामान तैयार करने के लिए हजारों लोगों को इकट्ठा करना पड़ेगा।

फिर एक व्यक्ति को अकेले आनंद भी नहीं आ सकता। यदि किसी को जेल की काल कोठरी में बाक्री सब कैदियों से अकेले बंद करके रख दिया जाए, किंतु उसे खाना ठीक समय पर दिया जाए तो भी अकेले बंद रहते-रहते वह इतना ऊब जाता है कि उसे लोगों से मिलने को जी चाहता है। अकेलापन लोगों को खाने को दौड़ता है। अकेले लोगों को डर-सा लगता है, हालाँकि बड़े मकान में डर की क्या बात? अच्छा मकान है, ताला बंद है परंतु फिर भी एक साथी मिल जाता है तो उसे समाधान हो जाता है। यह भी भूल जाता है कि यह दूसरा उसका मित्र है या शत्रु। अकेले किसी को गौरव मिल भी जाए। उसका क्या लाभ? जंगल में मोर नाचा किसने देखा। नाचने वाले को भी लगता है, चार लोग देखें। विवाह-शादी में व्यक्ति चाहता है, अधिक-से-अधिक लोग आएँ। कारण—जितने लोग आते हैं, उनको उतना ही आनंद होता है। ऐसे ही दुःख के अवसरों पर भी। किसी के यहाँ मृत्यु हो जाती है तो मिलने वाले आते हैं। उनके खिलाने-पिलाने की व्यवस्था करनी पड़ती है। मरने वाला मर गया, व्यवस्था करने में हम भी मर जाएँगे। पर इतना दुःख होते हुए भी व्यक्ति करता है। कारण—उसका सुख बढ़ता है और दुःख घटता है। विद्या के बारे में कहते हैं, जितनी दी जाएगी, उतनी बढ़ती जाएगी। सुख के बारे में भी यही बात। जितने लोग बढ़ते जाएँगे, उतना ही सुख बढ़ता जाता है। जितने सहभागी होंगे, दुःख उतना ही बँट जाता है। अतः आदमी अकेले रह ही नहीं सकता। मिलकर ही रहना चाहता है। इसी मिलकर रहने का नाम संगठन है। संगठन में शक्ति है। दो आदमी जब संगठित होते हैं तो एक और एक अर्थात् ग्यारह हो जाते हैं। कोई ऊपर नहीं, नीचे नहीं, सबका समान स्तर होता है और एक लिख दे तो एक सौ ग्यारह हो जाएगा। जहाँ ऊपर नीचे का भाव रहता है, वहाँ सुख बहुत कम बढ़ता है। ताक़त के लिए, आनंद के लिए, भौतिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए, यहाँ तक कि जीवन की रक्षा के लिए संगठन आवश्यक है।

पर कैसी संगठन शक्ति होनी चाहिए, उसके लिए प्रश्न उठता है, किसका संगठन हो? किनके बीच में मेल-मिलाप होना चाहिए? संगठन किनके और उसके लिए किन चीजों की आवश्यकता है? उसके आधार पर संगठन करो—ऐसा नारा देते हैं। अमीरों के खिलाफ़ ग़रीबों का संगठन होना चाहिए, क्योंकि अमीर हमें सताते हैं। अमीर एक तरफ़, ग़रीब एक तरफ़। कोई कहता है हम एक जाति के हैं। कई समस्याएँ आती हैं, इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, चमार, लोधा आदि आपस में संगठन कर लें। कोई कहता है, जातियों का कोई उपयोग अब बचा नहीं, केवल विवाह के समय ही उसका उपयोग है। अतः आधुनिक समय के अनुसार एक ही व्यवसाय करनेवाले लोगों का संगठन होना चाहिए। डॉक्टर, वकील, व्यापारी, विद्यार्थी, आसुरमाला विक्रेता, बंगाली, क्योंकि इसके

कारण समानता हो जाती है। कुछ लोगों की समान रुचियाँ (Hobbies) होती हैं। गीत गाने वाले, नाचनेवाले, लेखक, नाटक करनेवालों के भी संगठन होते हैं। बहुत से ऐसे भी हैं, जो कहते हैं, नहीं, ईश्वर को मानने वालों के आधार पर संगठन होना चाहिए। मसजिद, शिव, यज्ञ हवन करनेवाले, भगवान् महावीर को माननेवाले और कोई ईसा को मानकर संगठन करने की बात करते हैं।

और लोग हैं, जो भाषाओं को महत्त्व देते हैं। भाषा न हो तो अपनी बात प्रकट करना कठिन हो जाए। गूँगा भी भाव प्रकट करता है। पर भाषा के अनुसार संगठन होना चाहिए।

समान राजनीतिक आकांक्षा के आधार पर संगठन बनाने के उद्देश्य से भी लोग चलते हैं।

इन सबसे ऊपर संपूर्ण मानवमात्र का संगठन करनेवाले भी मिलते हैं। इससे भी ऊपर कहने वाले अभी नहीं मिले, जो कहते हों, संपूर्ण प्राणीमात्र का संगठन होना चाहिए। जानवर भी जीवधारी हैं। अतः बकरी के साथ भी संगठन हो सकने का सोचा जा सकता है।

जब इतनी बहुत सी चीजें आती हैं, तब समस्या खड़ी हो जाती है कि संगठन का आधार क्या हो? संगठन के लिए उसके स्वरूप को सोचना पड़ेगा। आधार प्रथम, कि वह उच्च एवं स्थायी हो तथा दूसरा, वह व्यावहारिक हो।

खेल के मैदान में कबड्डी खेलते हैं। ग्यारह एक पाले में और ग्यारह दूसरे में, उन ग्यारह में संगठन हो जाता है। जो आता है, उसे लौटकर जाने नहीं देना, यह एक विचार होता है। पर यह संगठन कब तक के लिए जब तक खेल है तब तक के लिए। कहीं-कहीं कबड्डी के क्लब होते हैं—वह कुछ अधिक दिन चलते हैं, परंतु वह भी जब कभी मैच होता है। फिर उसमें भी हर बार एक से लोग नहीं होते।

वैसा ही व्यवसाय की दृष्टि से तथा अन्य दृष्टि से संगठन बनते हैं। वे भी अधिक दिन चलते नहीं, फिर उनमें भी समस्याएँ बन जाती हैं। अध्यापकों का संगठन बना, उसमें से कोई प्रिंसिपल बन गया तो वह फिर उस संगठन में रहेगा कि नहीं, यह प्रश्न खड़ा हो जाता है। प्रिंसिपल गड़बड़ न करे, इसलिए वह संगठन में था। किंतु अब वह स्वयं ही प्रिंसिपल हो गया, तो वह संगठन उसी के खिलाफ हो जाएगा।

अमीर और गरीब के बारे में भी वही बात। आज जो गरीब है, कल वह अमीर हो सकता है। जो अमीर है, वह गरीब हो सकता है। फिर उसका संगठन के साथ संबंध नहीं। फिर इस अमीर और गरीब की रेखा कैसे खींची जाए? एक घरे में आप खड़े हो जाएँ तो आप किसी के दाएँ होंगे तो किसी के बाएँ होंगे। पूरब भी होंगे तो पश्चिम भी होंगे (उदाहरण एक व्यक्ति चाहता था चमरासी से जिलाधीश हो जाएँ किंतु जिलाधीश

को भी डाँट सहनी पड़ती है) अर्थात् इस परिधि का अंत नहीं, कोई रेखा नहीं। एक अंग्रेजी कविता का भाव कि एक व्यक्ति के पास जाड़े में जूते नहीं थे, किंतु जूते पहनने को इच्छा हुई तो देखा किसी व्यक्ति के पैर भी नहीं हैं तो सोचा हम ही अच्छे हैं। यह सारी बातें ऐसी हैं, जो स्थायी नहीं हैं। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि आज जो गरीब है, स्थायी रूप से गरीब रहेगा। क्षितिज को छूने वालों का संगठन, जो सोचते हैं, उन्हें विज्ञान ने बता दिया कि धरती और आकाश कहीं नहीं मिलते। ऐसे लोगों का यदि संगठन बना दिया तो कैसे होगा? यह संगठन एक ग़लत आधार पर होगा।

वैसे ही इन सभी संगठनों में स्थायित्व नहीं है। एक चीज़, स्थायित्व चाहिए और दूसरी वह व्यावहारिक होनी चाहिए। केवल चालीस या पचास लोगों को मिला लेना ही संगठन नहीं, उसका भी एक व्यावहारिक यूनिट होता है। भोजन की व्यवस्था करनेवालों का संगठन, जिसमें केवल रोटी पकाने वालों का या दाल, पानी इत्यादि की व्यवस्था करनेवालों का ही संगठन नहीं, एक पूरी इकाई चाहिए। ठीक उसी प्रकार, जैसे कॉलेज की इमारत बना देने और शिक्षकों को नियुक्त कर देने से ही कॉलेज नहीं चल जाता, उसमें कक्षाओं, प्रयोगशालाओं आदि की व्यवस्था, कॉलेज की सफ़ाई, पुस्तकालय, विद्यार्थियों का कॉलेज में प्रवेश, उनकी शिक्षा, शुल्क, उनका प्राध्यापकों के साथ संबंध और कॉलेज से पढ़ाई पूरी करके निकलने तक की हर व्यवस्था और कार्य में संगठन की आवश्यकता है। कॉलेज एक इकाई है, किंतु उसमें भी अनेक संगठन बन जाते हैं, जैसे शिक्षकों के, विद्यार्थियों और कर्मचारियों के।

जीविकोपार्जन के संगठन आखिर किसी बड़े संगठन के अंग हैं। घड़ी के पुर्जों के समान सब मिलकर काम करते हैं। परंतु सुई, बाल, कमानी इन सब का मेल न हो तो काम न चले।

यह तो व्यावहारिकता और स्थायित्व के दृष्टिकोण से यदि हम देखते हैं तो लगता है, यह जो संपूर्ण मानव समाज है, हम उसके आधार पर क्यों न खड़े हो जाएँ। यह हो तो सकता है, पर आज के समय में यह व्यावहारिक नहीं है। हर एक व्यवहार आपस में एक से नहीं। आज यदि युद्ध छिड़ गया तो मानव का कुछ भाग तो संगठित हो जाएगा किंतु सारा भाग नहीं। किंतु कुछ संगठन हैं, जो मानव के हैं, जैसे यू.एन.ओ.। पर वहाँ जब बैठते हैं तो किस नाते बैठते हैं? सारा व्यवहार राष्ट्र के नाते होता है। राष्ट्र के नीचे कोई विचार नहीं। ऐसे संगठन तो चल सकते हैं। International Labour Association, World Health Organisation ये सब मानव जाति का विचार करते हैं, पर आधार सबका राष्ट्र है।

राष्ट्र में ही वह स्थायित्व है। राष्ट्र एक व्यावहारिक इकाई है, जैसे एक कोई कारखाना होता है। वह उत्पादन की बात करता है, इसके अलग-अलग भागों से बातें

करता हैं। ठीक वैसे ही जैसे हमारा शरीर, वह भी एक कारखाना है। हमारे बहुत से अंग हैं, सब मिलकर यह शरीर एक व्यावहारिक इकाई है। कभी-कभी हजारों हाथ मिलाने की आवश्यकता हो जाती है। गाँव में विराट छप्पर उठाने के लिए कोई यदि सोचे लोगों को लाने की क्या जरूरत? चालीस हाथ के लिए बीस लोग न लाकर केवल हाथ काटकर ले आए। मतदान के लिए मतदाता को न लाकर केवल उसकी एक अंगुली काटकर ले आएँ तो चलेगा? यह सही है केवल अंगुली की ही आवश्यकता है, पर उस अंगुली के पीछे उन लोगों की ताकत है। उसी प्रकार भिन्न-भिन्न व्यवहार की दृष्टि से नहीं, व्यावसायिक-मजदूर के संगठन नहीं, संपूर्ण राष्ट्र के आधार पर संगठन चाहिए।

राष्ट्र के अतिरिक्त जो कोई इकाई होगी, वह छोटी होगी और टूट भी सकती है। यदि उसने किसी को हेय समझा तो चल नहीं पाएगा।

राष्ट्र के नाते विचार छोड़कर केवल मानवमात्र का विचार लेकर चले तो वह अव्यावहारिक होगा। सब दृष्टि के विचार करने पर लगेगा कि राष्ट्र के आधार पर ही केवल संगठन हो सकता है।

—मई 20, 1962



संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : प्रयाग

कल हम लोगों ने विचार किया था कि व्यक्ति अकेला अपना भौतिक अथवा आत्मिक जीवन सुख के साथ व्यतीत नहीं कर सकता। इसलिए संगठन की आवश्यकता प्रतीत होती है। यह संगठन अनेक आधारों पर किया जा सकता है। वह आधार किस उद्देश्य या आवश्यकता की पूर्ति के लिए संगठन किया गया है, इस पर निर्भर करता है। उद्देश्य और आवश्यकता के अनुसार संगठन का व्यय और उसके जीवन की काल मर्यादा निश्चित होती है। आवश्यकता जितनी स्थायी स्वरूप की होगी, संगठन भी उतने दिन टिक सकेगा। यह सबकुछ करते हुए व्यावहारिक इकाई का विचार करना पड़ता है। एक संगठन की आवश्यकता जहाँ प्रतिपादित की जा सके तथा जिसके सभी घटक उसके अन्योन्याश्रित अंग के रूप में काम कर सकें, वही संगठन व्यावहारिक रूप से सक्षम होगा। जो संगठन अपने में पूर्ण नहीं अथवा जो आश्रित रहता हो, वह अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। जिस संगठन के अनेक अवयव के रूप में व्यक्ति अथवा छोटे-छोटे समूह उसके पूरक के नाते रह सकें, उसे आत्मनिर्भर होना आवश्यक है। जो संगठन आत्मनिर्भर नहीं, वह चल नहीं पाएगा।

इस प्रकार राष्ट्र ही एक ऐसी इकाई है, जो इस प्रकार खड़ी हो सकती है। संपूर्ण मानव का संगठन एक अव्यावहारिक कल्पना है। बाकी के छोटे-छोटे आर्थिक या क्षेत्रीय संगठन एकांगी और स्वतः पूर्ण न होने के कारण उपयोगी नहीं हो सकते। अतः राष्ट्र के आधार पर ही हमें संगठन का विचार करना होगा। यह विवेचन तर्क की दृष्टि से ठीक होते हुए भी एक दोष है। कोई भी संगठन वास्तव में तब तक टिकाऊ नहीं हो सकता, जब तक उसके मूल में निस्स्वार्थ भाव न हो। स्वार्थ एवं उपयोगिता का विचार लेकर जो संगठन होता है, वह चलता नहीं। ऊपर से देखने के लिए तो ठीक लगेगा।

साधारणतया इस प्रकार चार लोग मिलकर व्यापार की दृष्टि से Partnership करते हैं, कोई कंपनी बना लेते हैं। बहुत से लोग मोटे-मोटे स्वार्थ को रखकर संगठन बना लेते हैं। स्वार्थ छोटे हों या बड़े, आशु पूर्ण होने वाले हों या दूर भविष्य में। पर यह स्थायी रहता नहीं। संगठन के लिए जो तादात्म्य तथा एक रूप बना देने की वृत्ति होती है, वह प्रारंभ में ही समाप्त हो जाती है। प्रश्न है, यदि इस प्रकार संगठन संभव नहीं तो चलेगा कैसे? संगठन की आवश्यकता ही इसलिए है कि जब अकेले कुछ नहीं कर सकते, अकेले अपनी आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकते तो स्वाभाविक उसमें स्वार्थ का प्रमुख भाव पैदा हो जाता है और इस प्रकार संगठन समाप्त हो जाता है। तो संगठन का विचार ही हटा दिया जाए या तो इसका हल ही ढूँढ़ा जाए।

संयुक्त कुटुंब ठीक चलता है, पर उसमें ज्यों ही स्वार्थ का भाव आ जाता है, वह टूट जाता है। चार लोगों ने यदि कुछ कमा भी लिया हो, उसके बँटवारे में झगड़ा पैदा हो जाता है।

अपने ही देश में कांग्रेस का संगठन चल रहा था। कितना व्यापक संगठन, पर स्वार्थ आया, हर एक के मन में यह भाव पैदा हुआ कि हमें सीट मिल जाए, तो झगड़े शुरू हो गए। अनुशासनहीनता आ गई। स्वार्थ की बात आई कि उसके मूल पर ही आघात हो गया। संगठन तो एक स्वाभाविक रूप में होता है, उसकी इकाइयाँ भी कृत्रिम रूप से नहीं बनतीं। पचास चीजों को इकट्ठा किया, उसे स्वार्थमूलक संगठन बनाया जा सकता है। पर यदि वह स्वार्थ नहीं तो वह प्राकृतिक इकाइयों का संगठन होगा। इकाइयाँ पैदा होती हैं, निर्माण नहीं की जा सकतीं।

राष्ट्र व्यावहारिक एवं ऐसी इकाई है, जो कृत्रिम रूप से नहीं बनती, स्वयं पैदा होती है। जैसे मनुष्य पैदा होता है, बनाया नहीं जा सकता। हाथ, पैर, नाक, आँख आदि अंग इकट्ठा किए गए, ये अंग मनुष्य के पूरक होते हैं, पर उससे मनुष्य नहीं बनाया जा सकता। मोटर के पुर्जे इकट्ठा कर मोटर को बनाया जा सकता है, लेकिन घोंड़ों में पुर्जे इकट्ठा कर घोड़ा नहीं बनाया जा सकता। जीवनमान को बनाया नहीं जा सकता। ऐसे बनाए जानेवाले को Association कहते हैं, पर संगठन नहीं। जहाँ जीवनमान शक्ति होगी-चैतन्य होगा, वहाँ संगठन होगा। उसे ज़्यादा घना ज़्यादा समर्थ बनाया जा सकता है। पर मनुष्य बनाया नहीं जा सकता। इसमें जीवन डालने का कार्य तो प्रकृति से ही होता है। उसी प्रकार संगठन को पुष्ट किया जा सकता है। पर बनाया नहीं जा सकता। चीजें पैदा होती हैं, बढ़ते-बढ़ते अंत में क्षय हो जाती हैं। उसी प्रकार राष्ट्र का है। यूनान का राष्ट्र, मिस्र का, सीरिया का, बेबिलोनिया, ऐसे कितने ही राष्ट्रों का नाम निशान आज दिखाई नहीं देता। यूनान, मिस्र की भूमि अभी भी वर्तमान है, पर यूनानी राष्ट्र नहीं है। आज जो है, वह नया राष्ट्र है, पुराना समाप्त हो गया। इस प्रकार राष्ट्र समाप्त हो गए।

राष्ट्र का जीवन मनुष्य के समान उसकी शक्ति पर निर्भर है।

हाथ कोई स्वार्थ लेकर काम नहीं करता कि मुँह में भोजन जाएगा तो हमें मिलेगा। यह सत्य है कि उस हाथ को शरीर के कारण ही शक्ति मिलती है। पर वह इस स्वार्थ से कार्य नहीं करता। यदि ऐसा हाथ सोचे और वह पैर में रोटी न भेजा करे, अपने हाथ में ही उसे बाँधकर रख ले तो पूरे शरीर को शक्ति कैसे मिलेगी?

जिस प्रकार शरीर के अंग होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र में भी कहीं भाषा के नाम पर, कहीं जाति के नाम पर झगड़े दिखाई देते हैं। इन झगड़ों को दूर करने के लिए योजना बना दी जाती है। जिससे आगे झगड़ा न हो। पर वह झगड़े दूर नहीं होते। जिस प्रकार शरीर के झगड़े कृत्रिम रूप से ठीक नहीं किए जा सकते। दुर्बलता के कारण पैर टकराते हों तो उसमें बाँस की खपच्ची बाँध देने से तो काम होगा नहीं। अगर शरीर ही शक्तिशाली हो गया तो सब ठीक हो जाएगा। कोई आदमी यदि पागल हो गया और हाथ से सिर फोड़ने लगा तो केवल हाथ बाँध देने से तो काम होगा नहीं। उसका पागलपन दूर करना होगा।

संगठन के बाहरी अर्थ का मतलब है, लोगों को आपस में मिलाना। पर केवल मिलाने का मतलब संगठन नहीं। जिस प्रकार एक पिता ने अपने अंतिम समय में अपने बेटों से कहा कि सब एक-एक लकड़ी लेकर आओ और उनसे उस लकड़ी को तोड़ने को कहा, वे सब हैरान अवश्य हुए, पर पिता की आज्ञा का पालन किया और सबने अपनी-अपनी लकड़ी तोड़ दी, अब पिता ने सबसे इन सब लकड़ी के टुकड़ों को इकट्ठा कर एक गट्ठर में बाँध दिया। अब फिर हर एक से उस गट्ठर को तोड़ने को कहा, परंतु उनमें से प्रत्येक विफल रहा, तब पिता से उन सबने इसका कारण पूछा तो पिता ने उत्तर दिया, जब लकड़ियाँ अलग-अलग थीं तो टूट गईं, परंतु जब उन्हें एकत्र करके तोड़ने की कोशिश की गई तो वे नहीं टूटीं। संगठन का यह एक मोटा सा उदाहरण है परंतु राष्ट्र के अंदर संगठन किया जाए तो क्या सबकी टाँग या कान बाँधा जाए? यह तो बंधन हो जाएगा, संगठन नहीं।

यदि उनकी असलियत का ध्यान हो जाए तो वह स्वयं ही बाँध जाएँगे। जब तक उनको लगता है, असलियत दूसरी है तो झगड़े होते हैं और जब उन्हें वास्तविकता ज्ञात हो जाती है तो उन्हें स्वाभाविक शक्ति का अनुभव होने लगता है। जब हाथ को लगेगा कि हम शरीर के अंग हैं तो वह शरीर के लिए बलिदान भी दे सकता है। क्योंकि उसे शक्ति भी मिलती है अर्थात् हर संगठन का मूल आत्मज्ञान है (Self realisation)।

कभी-कभी लोग सोचते हैं, संघ के संगठन में Dictatorship के कारण एक आदमी कहता है और सभी लोग काम करते हैं। पर संगठन तो जीवन की एक अवस्था है, वह सर्वत्र प्रयोग होती है। हाथ चाहे खाने का, लिखने का, यंत्र चलाने का, लड़ने का हो, वह पूर्ण शरीर का विचार या जिसका हाथ है, उसका विचार किए बिना कार्य नहीं

करता। सबके सब काम, उसके चौबीस घंटे के जीवन की प्रत्येक क्रिया शरीर के हित में होती है। यह अवस्था कृत्रिम रूप में नहीं हो सकती। उसमें से दिखावा आ सकता है। विधि निषेध हो सकता है। जैसा कि कुछ लोगों ने कहा, देशभक्ति के लिए चौदह बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है—जैसे खादी पहनना, झाड़ू लेकर सड़क पर मौके-बेमौके सफ़ाई कर देना। पर देशभक्ति तो संपूर्ण जीवन का स्वाभाविक गुण है। उसी प्रकार संगठन की दो-चार चीजों से या नियमों से संगठन नहीं आता। वे संस्थाएँ भी संगठित जीवन के कारण चलती हैं। राष्ट्रीय एकता के लिए जिस प्रकार कुछ स्कूलों में नियम बना दिए गए, राष्ट्रीय झंडा बना दिया, चार गीत बना दिए, उससे हमारे हृदय को आनंद हो सकता है, पर कृत्रिम शपथ लेना या जवान लोगों को इकट्ठा कर कुछ नाच-गाना कर देने से संगठन नहीं हो जाएगा? भाषा की एकता के लिए कुछ गुजराती-मराठी हिंदी को मिलाकर बना देने से भाषागत एकता नहीं हो जाएगी।

एकता का मार्ग एक ही है आत्मज्ञान। असलियत का पता नहीं लगा तो उल्टी चीजें होती जाती हैं; जैसे—शेर के उस बच्चे के साथ हुआ था, जो भेड़ों के बीच रह गया था।) जब आत्मज्ञान हो गया तो उसमें सब प्रकार का स्वाभाविक बल आ गया।

संघ कार्यकर्ता का संपूर्ण जीवन संघ समर्पित जीवन है। पर अपने चौबीस घंटों के जीवन में हम ऐसे कितने कार्य करते हैं, जो अधिकारियों से पूछकर ही करते हैं। हम स्कूल में पढ़ते हैं और अधिकारियों ने पाँच अच्छे लोगों को स्वयंसेवक बनाने को कहा, किंतु यदि छठा आ जाता है तो हम मुँह मोड़कर तो नहीं खड़े हो जाते हैं। ठीक जिस प्रकार स्वयं सोचकर हम करते हैं, वैसा ही राष्ट्र के बारे में नियम बनाकर काम करनेवालों का जीवन नरक जैसा बन जाता है। हर स्तर के ऊपर खुफियागिरी होती है। इससे काम नहीं होता। केवल मैं कौन हूँ, यह एक बार पता लगा तो ही सबकुछ होगा।

हम यदि विचार करें तो मैं कौन हूँ, इसका उत्तर संघ ने ही दिया। मैं हिंदू हूँ। बाक़ी उत्तर सत्य नहीं। उसमें छोटी-मोटी सच्चाई हो सकती है। एक तो परिस्थिति सापेक्ष सत्य है। दीवार से चालीस फीट की दूरी पर खड़ा हूँ, यह स्टेटमेंट भाषण खत्म होने के बाद समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार जब कोई कहता है, मैं रामस्वरूप हूँ, पर हो सकता है—कल वह नाम बदल ले। मैं ब्राह्मण हूँ, उत्तर भारतीय, दक्षिण भारतीय आदि यह सही होते हुए भी सापेक्ष है। मैं विद्यार्थी हूँ, यह उत्तर भी सही हो सकता है, पर वह सदैव विद्यार्थी नहीं रहेगा। मैं हिंदू हूँ वह एक चिरंतन वस्तु है। यह वह धागा है, जिससे सब बँधते हैं। लोगों को बाँधने के लिए रस्से की नहीं, इस धागे की जरूरत है।

कश्मीर से कन्याकुमारी तक रहनेवाले सभी केवल इस धागे से ही बँधे हैं—हम भारत माता की संतान हैं। यह भाव जितना प्रबल होगा। बाक़ी के भाव कम होते जाएँगे, अस्तित्वहीन हो जाएँगे। कहते हैं कि हिंदू, मुसलमान, ईसाई मिलाकर राष्ट्र बना दिया

जाए, पर यह भूल जाते हैं कि मकान बनाना और राष्ट्र बनाना एक बात नहीं। इस प्रयत्न का एक परिणाम जरूर हो गया है, यह हिंदुत्व की भावना, जो हमें सबको मिलाती है, वह कमजोर हो गई। क्योंकि वह कहते हैं, अपने को हिंदू मत समझो। बाकी लोगों ने तो अपने को भुलाया नहीं, यह हम हिंदुत्व भूल गए और अब लोगों को लगता है हिंदू तो नहीं, पर गुजराती तो हैं, मराठी, बंगाली तो हैं। यह भावना आगे बढ़ गई और असली चीज कि हम हिंदू हैं, पीछे रह गई। यह दुष्परिणाम हुआ।

हिंदू कहते हैं तो कैलाश हमारे लिए पवित्र है। यदि हम हिंदू नहीं तो फिर कैलाश पर लद्दाख पर आक्रमण हो तो हमारे मन पर कोई परिणाम नहीं होगा। रामेश्वरम् में रहनेवाला यदि अपने को हिंदू समझता है तो वह द्रविड़स्थान बनाने का नहीं सोचेगा। वह राम की अयोध्या को कैसे भूल सकता है। हिंदुत्व का भाव ही हमारी असलियत को प्रकट करता है। यह चिरंतन राष्ट्र किसने बनाया? कब बनाया? यह चर्चा का विषय नहीं।

आर्य-सिंध से हिंद हुआ आदि यह सब तर्क हैं, पर हम हिंदू हैं यह अनादि काल से चला आया हुआ सत्य है। हमने एक बार कहा कि हम हिंदू नहीं तो राम और कृष्ण के साथ हमारा क्या संबंध होगा? छत्रपति, गुरु गोविंद आदि के गौरव का स्वाभिमान उसी को होगा, जो सोचेगा मैं हिंदू हूँ। इसी प्रकार संपूर्ण राष्ट्र को संगठित कर मनु के पुत्र मानव की सेवा करने का भी एक Mission हमारे सामने उत्पन्न होगा। हम अपने स्वार्थ भोग के लिए नहीं हैं, संपूर्ण मानव भी इस आधार पर शांति से रहकर प्रगति के लिए प्रयत्न कर सकता है। वह हिंदू ही होगा। कारण उसी के पास वह तत्त्वज्ञान है। उसी आधार पर नर का नारायण बन सकता है। नर के विकास के लिए जहाँ मार्ग है भगवान् के द्वारा प्रदत्त एक मार्ग लेकर मानो राष्ट्रीय अस्मिता को लेकर हम पैदा हुए हैं। जिसके आधार पर मनुष्य तो दूर, गाय को भी हम माँ कहते हैं। जिसके आधार पर यह कलकल बहने वाली नदियाँ हमारे लिए पवित्र हैं, वह आधार हिंदू ही है। उसे हम पहचानकर चलें वह व्यावहारिक है, वही हमारे विकास का ठीक आधार है। अपना सामर्थ्य उसी में पैदा होगा एवं सर्व प्रकार सर्वांगीण सुख का विकास होगा।

—मई 21, 1962



23

भारतीय जनसंघ प्रतिनिधि सभा अधिवेशन, कोटा महामंत्री प्रतिवेदन*

*भारतीय प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन, कोटा में, 26, 27 मई,
1962 को हुआ।*

भारतीय प्रतिनिधि सभा ने दिनांक 12, 14 नवंबर, 1961 को वाराणसी में अपने पिछले अधिवेशन में तीसरे आम चुनावों के लिए जनसंघ की नीति निर्धारित की तथा चुनाव घोषणा-पत्र स्वीकृत किया। उस समय हमने तय किया था कि हम अधिक-से-अधिक स्थानों पर चुनाव लड़ें तथा अन्य दलों के साथ किसी भी प्रकार का चुनाव गठबंधन अथवा संयुक्त मोरचा न बनाते हुए अपने ही कार्यक्रम और नीतियों के आधार पर जनमत का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाए। किंतु सभा ने यह छूट अवश्य दी थी कि स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार निर्दलीय व्यक्तियों अथवा कम्युनिस्ट, मुसलिम लीग, द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम और अकाली दल को छोड़कर अन्य दलों के साथ सामंजस्य किया जा सकता है। इसके अंतर्गत अपना उम्मीदवार उस स्थान पर न खड़ा करने के अतिरिक्त अन्य कोई बंधन हम पर नहीं था।

हमारी आम चुनाव की तैयारी

उपर्युक्त नीति के अनुसार जनसंघ ने विधानसभाओं के लिए 1,662 तथा लोकसभा के लिए 198 प्रत्याशी खड़े किए। कांग्रेसेतर दलों में जनसंघ ने ही सबसे अधिक स्थानों पर चुनाव लड़ने का प्रयत्न किया। दूसरे चुनावों की तुलना में यह एक बड़ा प्रयास था,

* देखें परिशिष्ट III, पृष्ठ 327 तथा परिशिष्ट VII, पृष्ठ 341।

क्योंकि उस समय विधानसभाओं और लोकसभा के प्रत्याशियों की संख्या क्रमशः 578 और 130 थी। पिछली बार हमने असम, उड़ीसा, मद्रास और केरल में कोई चुनाव नहीं लड़ा था तथा आंध्र में केवल दो स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किए थे। किंतु इस बार उड़ीसा को छोड़कर सभी प्रदेशों में चुनाव में भाग लिया गया, किंतु यह उल्लेख करना आवश्यक है कि कुछ थोड़े से उम्मीदवारों को छोड़कर शेष का चयन बहुत देर से किया गया तथा ऐसे भी क्षेत्र कम नहीं हैं, जहाँ आखिरी समय में प्रत्याशी बदले गए। यह मानते हुए भी कि इसके लिए सबल कारण थे, निश्चित ही इसका प्रभाव चुनाव परिणामों पर पड़ा। लोकशिक्षा, जनसंघ के सिद्धांत और कार्यक्रम का प्रचार तथा संगठन के विस्तार की दृष्टि से यह प्रयत्न निश्चित ही फलदायी सिद्ध होगा।

अन्य दलों के साथ युति का प्रश्न तो जनसंघ की नीति के अनुसार उत्पन्न ही नहीं होता था किंतु सामंजस्य का भी संयोग इक्के-दुक्के स्थानों पर ही आया और वह भी निर्दलीय व्यक्तियों के साथ। राजस्थान में स्वतंत्र पार्टी के नेताओं के साथ प्रांतव्यापी सामंजस्य की बातचीत की गई थी किंतु वह सफल नहीं हो सकी। सामंजस्य के परिणामस्वरूप जहाँ हमने व्यक्तियों का समर्थन किया, उनमें फूलपुर में डॉ. राममनोहर लोहिया, उत्तर बंबई में आचार्य कृपलानी, फतेहपुर में श्री गौरीशंकर कक्कड़ तथा राजगढ़ में श्री भानुप्रताप सिंह उल्लेखनीय हैं। इनमें श्री कक्कड़ तथा श्री भानुप्रताप सिंह विजयी हुए हैं। इसी प्रकार हमने श्री स्वामी रामेश्वरानंदजी¹ (करनाल) तथा लाला हरदेव सहायजी² (अमरोहा) का भी समर्थन किया था तथा वे हमारा चिह्न लेकर ही लड़े थे। स्वामी रामेश्वरानंदजी विजय के उपरांत जनसंघ के साथ ही काम कर रहे हैं।

इस वर्ष संपूर्ण देश में चुनाव एक साथ हुए। चुनावों की घोषणा से मतदान तक केवल एक मास की अवधि चुनाव आंदोलन एवं व्यवस्था की दृष्टि से प्राप्त थी। फलतः चुनावों का संपूर्ण संचालन और नियंत्रण मुख्यतः प्रादेशिक आधार पर ही हुआ। केंद्र की ओर से कुछ दौरे तथा थोड़े से प्रचार-साहित्य की व्यवस्था मात्र की गई थी। केंद्रस्थ अधिकारियों के दौरों की माँग पूरा करना संभव नहीं हो पाया। प्रायः सभी पदाधिकारियों के या तो चुनाव में अथवा अपने प्रांत या क्षेत्र में विशेष जिम्मेदारी के साथ व्यवस्था होने के कारण यह संभव नहीं था कि वे व्यापक रूप से देश भर का दौरा कर सकें। श्री गुरुदत्तजी वैद्य ने अवश्य ही इस वृद्धावस्था में सब प्रकार के कष्ट सहते हुए भी चारों ओर काफ़ी

1. स्वामी रामेश्वरानंदजी, भारतीय जनसंघ के चिह्न पर करनाल से 1962 का लोकसभा चुनाव लड़े थे, इसमें उन्होंने कांग्रेस प्रत्यासी विरेंद्र को 13 हजार मतों से परास्त किया था।

2. लाला हरदेव सहाय (1892-1962) स्वदेशी तथा गो रक्षा के लिए समर्पित स्वाधीनता सेनानी, गो हत्या पर प्रतिबंध न लगाए जाने से असंतुष्ट लालाजी ने गो रक्षा आंदोलन का सूत्रपात करते हुए 1953 में प्रयाग के कुंभ में 'भारत गो सेवक समाज' की स्थापना की व 'गोधन' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया था। हालाँकि 1962 का लोकसभा चुनाव वे हार गए थे।

तूफानी दौरा किया। जहाँ-जहाँ वे गए, उनके भाषण प्रभावी रहे तथा जनसंघ की नीतियों की अधिकृत जानकारी लोगों को प्राप्त हो सकी। श्री पीतांबर दासजी के ऊपर उत्तर प्रदेश में अध्यक्ष के नाते विशेष जिम्मेदारी होते हुए भी उन्होंने अन्य प्रदेशों के लिए भी समय निकाला तथा चुनाव के नाजुक समय में वहाँ के कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन किया। श्री जगन्नाथ राव जोशी ने स्वयं चुनाव लड़ते हुए भी प्रदेशों में दौरा करने के लिए समय निकाला तथा चारों ओर से आने वाली माँग को कुछ अंशों में पूरा किया। श्री अटलबिहारी वाजपेयीजी भी समय निकाल पाए, उसका अधिकतम उपयोग हुआ। प्रदेश मंत्रियों के भी दो-तीन दिन के कार्यक्रम आस-पास के प्रदेशों में केंद्र द्वारा आयोजित किए गए थे। इसी प्रकार श्री गिरिराज किशोरजी कपूर ने मध्य प्रदेश में बहुत ही व्यापक आधार पर दौरा करने के उपरांत भी कुछ समय उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के लिए दिया।

भारतीय जनसंघ राजनीति को विधायक स्वरूप देना चाहता है। अतः उसके प्रचार और आंदोलन सदैव ही विधायक दृष्टिकोण लेकर चले हैं। इन चुनावों में भी हमने अपने इस स्तर को कायम रखा। हमारे वक्ताओं ने प्रमुख रूप से अपनी बात सामने रखी तथा अन्य दलों की जो भी आलोचना की, वह अपने कार्यक्रम की पृष्ठभूमि में तथा साधारण और सतर्क की। यह सत्य है कि हमारा कांग्रेस तथा उसमें से निकले हुए अन्य दलों के साथ मौलिक और सैद्धांतिक मतभेद होने के कारण तथा हमारे पास एक पर्याय नीति और कार्यक्रम, जिसकी जड़ें देश की भूमि और संस्कृति में हैं, होने के कारण, हमारी आलोचनाएँ आधारभूत तथा अन्य दलों का मूलोच्छेदन करनेवाली होती थीं। निर्भीकता तथा निस्स्वार्थ वृत्ति के कारण उनकी धार कहीं पैनी हो गई होगी। किंतु जनसंघ ने अपने संपूर्ण प्रचार में कहीं भी व्यक्तिगत आक्षेप, सांप्रदायिक या जातिवादी भावनाओं तथा क्षेत्रीय अथवा वर्गवादी निष्ठाओं का सहारा नहीं लिया। विभिन्न प्रदेशों में जो आचार संहिताएँ स्वीकार की गई थीं, हमारी ओर से उनका पूर्णतः पालन हुआ। चुनाव के उपरांत कुछ कम्युनिस्ट एवं उनके समर्थक पत्रों ने जनसंघ पर ग़लत ढंग से चुनाव प्रचार करने अथवा पोस्टर निकालने के आरोप लगाए हैं। उन्होंने प्रधानमंत्रीजी को भी उसमें घसीटने की कोशिश की है। प्रधानमंत्री ने तो श्री बलराज मधोक³ को लिखे गए पत्र के अनुसार अपना हाथ इससे खींच लिया है, किंतु कम्युनिस्टों के अन्य साथी-संगी उनकी इस शरारत में बराबर साथ दे रहे हैं। स्पष्ट है कि यह सब भावी राजनीति को प्रभावित करने, भारतीय जनसंघ का हौआ खड़ा कर लोगों का ध्यान बँटाने—जिससे कि उनकी भारतविरोधी कार्रवाइयाँ चलती रहें—तथा चुनाव के दिनों में किए गए पाप को छुपाने के लिए एक चाल के रूप में किया जा रहा है। शासन से मेरी

3. नई दिल्ली सीट पर 1961 में लोक सभा के लिए हुए उप चुनाव में भारतीय जनसंघ के बलराज मधोक ने जीत दर्ज की थी।

यह माँग है कि वह विभिन्न दलों द्वारा किए गए चुनाव प्रचार की निष्पक्ष जाँच करवाए। यह आज की शरारत को समाप्त करने के लिए ही नहीं, भविष्य में चुनाव प्रचार का स्तर उठाने के लिए भी आवश्यक है।

कम्युनिस्टों के हिंसक कृत्य

चुनाव में घटिया प्रचार के साथ-साथ कम्युनिस्टों ने कई स्थानों पर हिंसा और बलप्रयोग का भी सहारा लिया। किंतु उन्होंने ये कांड वहीं किए जहाँ जनसंघ के विरुद्ध कांग्रेस का समर्थन कर रहे थे। स्पष्ट है कि यह नीति कांग्रेस की आड़ में अपने घृणित मनसूबों को पूरा करने के लिए ही अपनाई गई थी। लूमामऊ और बलरामपुर की घटनाएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। न्यायालय में मुकदमा होने के कारण मैं इस विषय में कुछ अधिक नहीं कहता, किंतु जो लोग प्रजातंत्र की सफलता चाहते हैं, उन्हें यह देखना होगा कि वे सतर्क रहें तथा क्षणिक दलगत लाभ के लिए इस प्रकार हिंसालोलुप शक्तियों के हाथ में न खेलें।

मुसलिम सांप्रदायिकता को प्रोत्साहन

कांग्रेस, कम्युनिस्ट तथा प्रजा सोशलिस्ट दल, तीनों ने ही मुसलमानों में उनका संगठित समर्थन प्राप्त करने की होड़ में पृथक्ता और सांप्रदायिकता की प्रवृत्ति को काफ़ी उभारा। न केवल टिकट देते समय उनका सांप्रदायिक आधार पर विचार किया गया, बल्कि चुनाव प्रचार में भी उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए उन्हें मजहबी आधार पर संबोधित किया गया। उनके मन में एक आतंक पैदा करने के लिए जनसंघ का हौआ भी खड़ा किया गया तथा इस बात का प्रयत्न किया गया कि जनसंघ के तथा कथित संकट के कारण वे राजनीतिक और आर्थिक कार्यक्रमों के आधार पर स्वतंत्र निर्णय लेकर मतदान न कर सके।

जनसंघ के विरुद्ध झूठे आरोप

इसी प्रकार का अपप्रचार सिक्खों और हरिजनों में किया गया। क्षेत्रीय आधार पर भी लोगों में जनसंघ के संबंध में भ्रम पैदा किए गए। फलतः कहीं जनसंघ को मुसलमानों का शत्रु घोषित किया गया, तो कहीं बताया गया कि जनसंघ यदि सत्तारूढ़ हो गया तो सवर्णों का राज्य होकर हरिजनों के कानों में सीसा डाल दिया जाएगा। श्री केशवदेव मालवीय⁴ ने स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी, जनसंघ पर ब्राह्मण और ठाकुरों के समर्थक होने

4. केशवदेव मालवीय (1904-1981) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता, जो प्रथम व द्वितीय लोकसभा में डुमरियागंज से तथा तृतीय लोकसभा में बस्ती से सांसद थे। उन्हें केंद्रीय मंत्रिमंडल में खनन व ईंधन मंत्री बनाया गया था लेकिन भ्रष्टाचार के आरोपों के कारण 1963 में इन्हें नेहरू कैबिनेट से इस्तीफा देना पड़ा था।

का आरोप लगाया, श्री लालबहादुर शास्त्री ने जनसंघ को महाराष्ट्र की पार्टी बताकर रायपुर में क्षेत्रीय विद्वेष पैदा करने की कोशिश की। दूसरी ओर महाराष्ट्र में कांग्रेस के नेताओं ने जनसंघ को मराठा-विरोधी दल बताकर जातिगत भावनाओं का सहारा लिया। केरल में तो स्वयं प्रधानमंत्री ने जनसंघ को उत्तर की पार्टी कहकर उत्तर और दक्षिण की कृत्रिम खाई पैदा कर जनता को बाँटने का निंद्य प्रयास किया। गांधीजी की हत्या से संबंध जोड़कर जनसंघ को बदनाम करने की नीति योजनाबद्ध रूप से अपनाई गई। गांधीजी के इन तथाकथित चेलों ने यह भी नहीं सोचा कि इस प्रकार वे महात्माजी का तथा देश का सम्मान ही घटा रहे हैं। मैं समझता हूँ कि गांधीजी का राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए काफ़ी उपयोग हो चुका है। अब लोगों को इस पाप से बाज आना चाहिए। इस प्रकार के सरासर झूठे तथा विद्वेषकारी प्रचार का परिणाम जनता के मन में कितना हुआ, इसको मापना तो कठिन है किंतु यह सत्य है कि जहाँ-जहाँ हमारे कार्यकर्ताओं ने डटकर काम किया, जनता के सभी वर्गों ने खुलकर हमारा साथ दिया।

ये अपवित्र गठबंधन

चुनावों में विभिन्न दलों ने जो गठबंधन किए, वे आश्चर्यजनक ही नहीं दुःखद भी हैं। उनसे इस बात का अनुमान लगता है कि राज के मोह में वे कहाँ तक जा सकते हैं। कम्युनिस्ट पार्टी ने तो यह तय किया था कि वह जनसंघ को हराने के लिए कांग्रेस का समर्थन करेगी तथा उन्होंने यह प्रस्ताव केरल तक में किया। पश्चिम बंगाल में उन्होंने वामपक्षी संयुक्त मोरचे की अपनी पुरानी नीति अपनाकर पर्याय सरकार का नारा लगाया। इस बार प्रजा समाजवादी दल उसमें सम्मिलित नहीं हुआ। किंतु अन्य सभी वामपक्षी दल उसमें सम्मिलित थे। पंजाब में अकाली दल के साथ तथा आंध्र में स्वतंत्र पार्टी के साथ उन्होंने अप्रत्यक्ष समझौता किया। हो सकता है कि दोनों ने वहाँ की जातिगत स्थिति के कारण यह किया हो। महाराष्ट्र में उन्होंने संयुक्त महाराष्ट्र समिति के नाम पर ही हिंदू महासभा, रिपब्लिकन पार्टी तथा शेतकरी कामगार पक्ष के साथ समझौता करके चुनाव लड़ा। स्वतंत्र पार्टी ने तो कांग्रेस के अतिरिक्त प्रायः सभी दलों, जिनमें अकाली दल, द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम और कम्युनिस्ट भी सम्मिलित हैं, के साथ किसी-न-किसी प्रकार का गठबंधन किया। हिंदू महासभा तथा रामराज्य परिषद् ने आपस में चुनाव समझौता करके निर्वाचनों में भाग लिया। रिपब्लिकन पार्टी के दोनों गुटों ने क्रमशः प्रजा समाजवादी एवं विदर्भवादी तथा कम्युनिस्टों के साथ मिलकर चुनाव लड़ा। उत्तर प्रदेश में पुराने मुसलिम लीगी तत्वों तथा रिपब्लिकन पार्टी के बीच समझौता हुआ तथा सभी घोर सांप्रदायिक मुसलिम लीगी व्यक्ति रिपब्लिकन पार्टी के नाम पर चुनाव के मैदान में आए। कांग्रेस ने झारखंड पार्टी के साथ चुनाव समझौता करने की कोशिश की, किंतु

सफल नहीं हुई। केवल भारतीय जनसंघ और सोशलिस्ट पार्टी ही ऐसे दल हैं, जिन्होंने अपनी नीतियों के आधार पर किसी से गठबंधन न करते हुए चुनाव लड़ा।

कांग्रेस के पतन में तेज़ी

चुनावों के परिणामस्वरूप विभिन्न दलों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन तो नहीं हुए किंतु यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस का पतन अधिक तेज़ी से हो रहा है। कम्युनिस्टों ने अपने गढ़ों में मार खाकर दूसरे क्षेत्रों से कमी को पूरा करके सार्वदेशिक आधार पर अपनी स्थिति को किंचित् वृद्धि के साथ कायम रखा है, प्र.सो.पा. की समाप्ति का अध्याय प्रारंभ हो चुका है, स्वतंत्र पार्टी ने यद्यपि अच्छी सफलता पाई है, फिर भी उन्होंने जो दावे किए तथा जनता में अपेक्षाएँ पैदा कीं, उनकी तुलना में वह बहुत ही अपर्याप्त हैं। अन्य छोटी और क्षेत्रीय पार्टियाँ, द्र.मु.क. को छोड़कर पीछे हटी हैं तथा अखिल भारतीय राजनीति की पृष्ठभूमि में महत्त्वहीन हो गई हैं। भारतीय जनसंघ ने क्रमशः तो काफ़ी आगे बढ़ाया है किंतु जिस ऐतिहासिक कार्य को पूरा करने के लिए उसका जन्म हुआ है, उसमें अभी वह बहुत पीछे है।

चुनाव के आँकड़े एवं अन्य तथ्य काफ़ी प्रकाश में आ चुके हैं। फिर भी विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से कुछ का यहाँ पर उल्लेख असमीचीन नहीं होगा।

उड़ीसा और केरल में मध्यस्तरीय चुनाव होने के कारण सन् 1962 में वहाँ विधानसभाओं के चुनाव नहीं हुए। इसी प्रकार सन् 1957 में आंध्र प्रदेश में केवल तेलंगाना में विधान सभा के चुनाव हुए थे। शेष प्रदेश में सन् 1955 में उपचुनाव होने के कारण तत्कालीन सदस्यों की ही अवधि सन् 1962 तक बढ़ा दी गई थी। सन् 1957 से 61 लोकसभा तथा 584 विधानसभा के द्विसदस्यीय क्षेत्र थे, जिनमें प्रत्येक मतदाता के दो-दो मत थे। अतः 50 प्रतिशत से अधिक लोग मतदान को आए तो मतों की संख्या मतदाताओं की संख्या से बढ़ जाती थी। अब इन क्षेत्रों का विभाजन हो गया है तथा सब क्षेत्र एक सदस्यीय हो गए हैं। सबको अब केवल एक ही मत प्राप्त है। अतः दोनों चुनावों के मतों की तुलना करते समय इन तथ्यों को ध्यान में रखना होगा।

मतदान का प्रतिशत बढ़ा

प्रथम महत्त्वपूर्ण तथ्य जो सामने आता है, वह यह है कि पिछले आम चुनावों की तुलना में इस बार मतदाताओं की संख्या बढ़ी है तथा अनुपात में अधिक मतदान हुआ है। मतदान का प्रतिशत पिछले तीन चुनावों में बराबर बढ़ रहा है। सन् 1952 में 45.7 प्रतिशत लोगों ने मताधिकार का प्रयोग वैध रूप से किया था। सन् 1957 में वह 46.6 प्रतिशत तथा सन् 1962 में 53.71 प्रतिशत रहा। ऐसा कोई प्रदेश नहीं है, जिसमें

मतदान पहले से अधिक न हुआ हो। बिहार और मध्य प्रदेश को छोड़कर सभी प्रदेशों में 50 प्रतिशत से अधिक मतदान हुआ है। मद्रास में तो यह 70.35 प्रतिशत है। दिल्ली में मतदान 57.29 प्रतिशत से बढ़कर 66.54 हो गया। चुनावों में मतदान के अनुपात में इस भारी वृद्धि का अनुमान न लगाने के कारण ही कुछ स्थानों पर परिणाम अप्रत्याशित रहे हैं। दिल्ली ऐसा ही उदाहरण है। इस बार अवैध मतों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। जबकि सन् 1957 में लोकसभा के लिए कुल मतदान में से 1.71 प्रतिशत मत अवैध हुए थे, सन् 1962 में यह संख्या बढ़कर 4.01 प्रतिशत हो गई है। विधानसभा के अवैध मत भी 1.87 प्रतिशत से बढ़कर 5.21 प्रतिशत हो गए हैं। सबसे अधिक अवैध मत मध्य प्रदेश में हुए, जहाँ उनकी संख्या कुल मतदान का 7.2 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि मतदान की नई पद्धति तथा लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ होने के कारण यह गड़बड़ हुई है। जहाँ मतदाताओं ने लोकसभा के लिए एक तथा विधानसभा के लिए दूसरे दल के उम्मीदवार को चुनने का प्रयत्न किया है, वहाँ इस प्रकार के अवैध मतों की संख्या बहुत अधिक है। बलरामपुर क्षेत्र में विधानसभा के लिए जनसंघ की विजय के उपरान्त भी श्री अटलबिहारी वाजपेयी की असफलता का कारण यह गड़बड़ तथा अवैध मतों की भारी संख्या है। आवश्यकता है कि इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया जाए, जबकि राजनीतिक दल चुनाव पद्धति की अधिकाधिक जानकारी देने के लिए प्रयत्नशील हो सकते हैं, चुनाव आयोग को भी संपूर्ण पद्धति को अधिक सरल बनाने के लिए कुछ उपाय सोचने चाहिए।

स्थान तथा मतदान की दृष्टि से विभिन्न दलों की स्थिति में सन् 1957 की तुलना में सन् 1962 में निम्नलिखित परिवर्तन हुए हैं :

कांग्रेस की शक्ति घटी

कांग्रेस ने सन् 1957 के चुनावों में 371 स्थान जीते तथा 47.78 प्रतिशत वैध मत प्राप्त किए थे। विभिन्न उपचुनावों तथा दलीय परिवर्तनों के बाद जब लोकसभा भंग हुई, तब कांग्रेस के सदस्यों की संख्या 375 थी। सन् 1962 में यह संख्या घटकर 360 रह गई है। मत भी पहले से कम अर्थात् केवल 44.70 प्रतिशत प्राप्त हुए हैं। मद्रास, दिल्ली, मणिपुर और हिमाचल प्रदेश में उसके लोकसभा सदस्यों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। महाराष्ट्र, मैसूर और उड़ीसा में वे बढ़े हैं। जबकि अन्य सभी क्षेत्रों में सदस्यों की संख्या कम हुई है। महाराष्ट्र में सबसे अधिक वृद्धि अर्थात् 22 से 41 हुई है। वहाँ 44 में से केवल तीन स्थानों पर अन्य दल के सदस्य विजयी हो पाए हैं। स्पष्ट है कि यह भारी वृद्धि संयुक्त महाराष्ट्र की स्थापना के कारण है। उड़ीसा में भी 8 से बढ़कर उनकी संख्या 14 हो गई है। गणतंत्र परिषद् का विघटन तथा अन्य संगठित दल का अभाव ही

इस वृद्धि के लिए जिम्मेदार है। मैसूर में लोकसभा में उसकी जीत संयोग मात्र है, क्योंकि विधानसभा में उसके सदस्यों की संख्या 151 से घटकर 148 रह गई है। लोकसभा के मतदान का प्रतिशत भी 55.52 से घटकर 52.74 प्रतिशत रह गया है। मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब और उत्तर प्रदेश में उसके लोकसभा सदस्यों की संख्या बहुत घटी है। मध्य प्रदेश में तो उसे 11 स्थान खोने पड़े। सन् 1957 में 35 की तुलना में इस बार केवल 24 स्थान उसे मिले हैं। कुल मिलाकर पिछले 372 में से केवल 285 स्थानों पर उसके सदस्य पुनर्निर्वाचित हो पाए हैं। किंतु 75 ऐसे भी स्थान हैं, जहाँ सन् 1957 में वह पराजित हुई थी किंतु इस बार उसे विजय मिली है। प्रजा समाजवादी दल से उसने 14 स्थान जीते तथा 9 हारे हैं। कम्युनिस्टों से 13 स्थान पाए तथा 12 खोए हैं। जनसंघ से उसने पाँच स्थान पाए हैं तथा 14 स्थान खोए हैं। मतों की दृष्टि से उड़ीसा को छोड़कर अन्य सभी स्थानों पर पीछे हटी है। उड़ीसा में उसकी प्रगति कुल मतदान का प्रतिशत बहुत नीचा केवल 24 होने के कारण हो सकती है। वैसे मत संख्या 73,06,768 से घटकर 10,93,297 हो गई है। विधानसभाओं में भी कांग्रेस के सदस्यों की संख्या और मत दोनों में कमी हुई है। सन् 1957 में उसे 1914 स्थान प्राप्त हुए थे, जबकि सन् 1962 में वह केवल 1,772 स्थान प्राप्त कर सकी है। इस प्रकार उसे 142 स्थान कम मिले। मतों का प्रतिशत भी 45.56 से घटकर 44.33 प्रतिशत पर आ गया है। असम (4.05), बिहार (.59), मध्य प्रदेश (11.28), मैसूर (2.90), पंजाब (3.7), गुजरात (6.3), राजस्थान (5.21) और उत्तर प्रदेश (7.49) में उसका मत प्रतिशत कम हुआ है। जबकि आंध्र में (7.49), मद्रास में (.79), पश्चिमी बंगाल में (1.05) और महाराष्ट्र में (6.88) से उसका प्रतिशत बढ़ा है। महाराष्ट्र क्षेत्र में सन् 1957 में उसे 137 तथा विपक्ष को 127 स्थान मिले थे, किंतु इस बार कांग्रेस को 215 तथा विपक्ष को केवल 49 स्थान मिले हैं। गुजरात में कांग्रेस सदस्यों की संख्या 97 से बढ़कर 113 हो गई, जबकि अन्य दल केवल 35 से बढ़कर 41 स्थान जीत पाए (सन् 1957 में गुजरात क्षेत्र में 132 स्थान थे, जबकि सन् 1962 में वे 154 हो गए) असम में उसके सदस्यों की संख्या 69 से बढ़कर 71 हो गई है, किंतु उसे पहले से कम मत प्राप्त हुए हैं। सन् 1957 में उसे 52.35 प्रतिशत मत मिले थे, जबकि सन् 1962 में केवल 48.25 मतदान उसके पक्ष में रहा। मद्रास में यद्यपि कांग्रेस के पक्ष में मतदान अधिक हुआ है, फिर भी उसके जीते हुए स्थानों की संख्या 151 से घटकर 139 रह गई है। पश्चिमी बंगाल में इस बार वह पहले से पाँच स्थान अधिक प्राप्त कर सकी। अन्य सभी प्रदेशों में उसकी मत संख्या तथा स्थान सभी में कमी हुई है। मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में तो वह बहुमत में भी नहीं आ पाई। कुछ निर्दलीय सदस्यों को कांग्रेस में मिलाकर उसका मंत्रिमंडल बन पाया है। पंजाब में भी उसकी सदस्य संख्या 120 से घटकर 90 रह गई है।

प्रजा सोशलिस्ट दल को गहरा धक्का

इस चुनाव में यदि किसी दल को सबसे अधिक धक्का लगा है तो वह प्रजा समाजवादी पक्ष है। इसके मत और सदस्य संख्या दोनों ही घटे हैं। लोकसभा के लिए सन् 1957 में उसे 10.41 प्रतिशत मत मिले थे, किंतु सन् 1962 में वह केवल 6.79 प्रतिशत प्राप्त कर सकी। विधानसभाओं में उसका प्रतिशत 10.07 से गिरकर 7.00 पर आ गया। सदस्य संख्या की दृष्टि से भी लोकसभा में 19 के स्थान पर 12 तथा विधानसभाओं में 195 के स्थान पर 149 क्षेत्रों में उसे विजय प्राप्त हुई है। सन् 1957 के निर्वाचनों के उपरांत असम, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर और उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के बाद प्र.सो.पा. के ही सदस्यों की संख्या सर्वाधिक थी। बिहार और उत्तर प्रदेश में तो उसे विरोधी दल के रूप में मान्यता भी प्राप्त थी। किंतु सन् 1962 में मैसूर छोड़कर अन्य किसी भी प्रदेश में वह अपना यह स्थान कायम नहीं रख पाई है। मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में जनसंघ ने, बिहार में स्वतंत्र पार्टी ने तथा महाराष्ट्र में शे.का. पक्ष ने उसे पीछे छोड़ दिया है। मतों की दृष्टि से गुजरात छोड़कर अन्य सभी प्रदेशों में उसे सन् 1957 की तुलना में कम मत मिले हैं। गुजरात में 6.88 प्रतिशत से बढ़कर इस बार उसे 7.86 प्रतिशत मत मिले हैं।

समाजवादी दल निर्बल हुए

समाजवादी दल ने प्र.सो.पा. से चुनावों में भी अपना भिन्नत्व प्रदर्शित किया है। यद्यपि उसकी कोई विशेष प्रगति तो नहीं हुई किंतु प्र.सो.पा. की भाँति उसने बहुत कुछ खोया भी नहीं है। उसके लोकसभा के सदस्य सात से घटकर 6 रह गए हैं तथा विधानसभाओं में उसे 59 स्थान एवं 2.7 प्रतिशत मत मिले हैं। यह संख्या तो कोई महत्वपूर्ण नहीं है किंतु असम, गुजरात और पश्चिमी बंगाल को छोड़कर वह सभी प्रांतों में प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सका है। आंध्र में श्री राजू के कांग्रेस में चले जाने के बाद उसकी स्थिति नगण्य हो गई है।

हमें ज्ञात है कि सन् 1952 के चुनावों के बाद सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी दोनों मिलकर प्र.सो.पा. के रूप में गठित हुई थीं। किंतु कुछ दिनों के बाद उनमें से कुछ लोग डॉ. लोहिया के नेतृत्व में सोशलिस्ट पार्टी के रूप में अलग हो गए। इन दोनों दलों के सन् 1952, 1957 तथा 1962 के कुल मतों का विचार करें तो पता चलता है कि वे क्रमशः कम होते जा रहे हैं। सन् 1952 में उन्हें एक करोड़ साठ लाख मत मिले थे, सन् 1957 में वे 1,25,00,000 रह गए तथा अब सन् 1962 में उन्हें केवल 1,00,00,000 वोट मिले हैं। स्पष्ट है कि कांग्रेस के समाजवाद

स्वीकार⁵ कर लेने के बाद अब अन्य समाजवादी पार्टी के लिए कोई गुंजाइश नहीं रही। जिन क्षेत्रों में कम्युनिस्टों के अधिनायकवाद का संकट बढ़ता हुआ दिखता है, जनता एक ही विचारधारा की कई पार्टियों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। अतः प्र.सो.पा. और सो.पा. दोनों ही इन क्षेत्रों में तेजी से घुलती जा रही हैं। सो.पा. के 59 स्थानों में से 45 उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार में हैं। उसी प्रकार इन प्रदेशों में प्र.सो.पा. को 149 में से 100 स्थान प्राप्त हुए हैं।

राजा-महाराजाओं का स्वतंत्र दल

स्वतंत्र पार्टी चुनावों के पहले ही बनी थी। किंतु उसे एक प्रकार से विभिन्न क्षेत्रीय पार्टियों का संघ कहना अधिक उपयुक्त होगा। हमें उसके परिणामों को भी इसी नाते देखना होगा। कुल मिलाकर वह लोकसभा में 7.89 प्रतिशत मत तथा 18 स्थान प्राप्त कर सकी है। चुनावों के बाद गणतंत्र परिषद् के विलीनीकरण के कारण उसके सदस्यों की संख्या 22 हो जाती है। विधानसभाओं में उसे 166 स्थान तथा 7.42 प्रतिशत मत मिले हैं। इनमें बिहार में जहाँ कि वह जनता पार्टी के रूप में पहले विद्यमान थी तथा राजस्थान और गुजरात में उसकी विजय महत्वपूर्ण है। तीनों प्रदेशों में उसे विरोधी दल की मान्यता प्राप्त हुई है। स्थान-स्थान पर पुराने राजा-महाराजाओं की छत्रच्छाया में पनपने के कारण यह अंदाज़ लगाना कठिन है कि इस विजय के मूल में वर्तमान संगठन तथा उसके भविष्य की संभावनाएँ कहाँ तक निहित हैं।

कम्युनिस्टों की वृद्धि उल्लेखनीय नहीं

कम्युनिस्ट पार्टी को सन् 1957 के चुनावों में 27 स्थान प्राप्त हुए थे। उसके दो सदस्य तेलंगाना क्षेत्र से पीपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट के नाम से आए थे। तदनंतर दलीय परिवर्तनों के बाद जब लोकसभा भंग हुई, तब उसके सदस्यों की संख्या तीस थी। सन् 1962 के चुनावों में उसके सदस्य 29 स्थानों पर विजयी हुए। सन् 1957 में उसे 8.92 प्रतिशत मत मिले थे, किंतु सन् 1962 में वह 9.16 प्रतिशत प्राप्त कर सकी। विधानसभाओं में इस बार उसके विजयी सदस्यों की संख्या 153 है, जबकि सन् 1957 में 161 सदस्य जीते थे। किंतु उड़ीसा और केरल में इस बार चुनाव नहीं हुए तथा सन् 1957 में आंध्र के

5. 10 जनवरी, 1955 को उछरंगराय नवलशंकर ढेबर की अध्यक्षता में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आवडी (मद्रास) अधिवेशन में सामाजिक विकास लक्ष्य के लिए समाजवाद स्वरूप स्वीकार करने का संकल्प पारित हुआ था।

6. अखिल भारतीय गणतंत्र परिषद् का गठन उड़ीसा में 1950 में पूर्व देशी रियासतों के शासकों और बड़े जमींदारों ने किया था। राजेंद्र नारायण सिंह देव इसके अध्यक्ष बने। 1962 के संसदीय चुनाव के बाद इस दल का विलय स्वतंत्र पार्टी के साथ हो गया था।

केवल तेलंगाना भाग में चुनाव हुए थे, जिनमें कम्युनिस्ट पार्टी ने पीपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट के नाम से भाग लिया था। उड़ीसा और केरल के उपचुनावों के परिणामों को यदि जोड़ा जाए तो इस बार उसके कुल विजयी सदस्यों की संख्या 181 होगी। सन् 1957 में 22 पी.डे.एफ. के प्रत्याशी जीते थे। अतः कुल मिलाकर कम्युनिस्ट पार्टी के विधायकों की संख्या सन् 1957 में 183 हो जाती है। विधानसभा के लिए उसे सन् 1957 में 7.70 प्रतिशत की तुलना में सन् 1962 में 8.58 प्रतिशत मत प्राप्त हुए हैं। बंगाल और आंध्र में जहाँ कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने कार्य को काफी केंद्रित किया था तथा बहुत अपेक्षाएँ भी लेकर चली थी, उसके सदस्यों की संख्या क्रमशः 37 से 51 तथा 46 से 50 हुई है। असम में उसके चार सदस्य पुरानी विधानसभा में थे। किंतु इस बार उसे एक भी स्थान नहीं मिला। मध्य प्रदेश और मद्रास में भी उसकी सदस्य संख्या गिरी है। किंतु अन्य प्रांतों में वे अपनी सदस्य संख्या बढ़ा सके हैं। राजस्थान में तो जहाँ इसके पहले उनका एक से अधिक सदस्य कभी नहीं रहा, इस बार पाँच सदस्य जीतकर आए हैं। आंध्र में यद्यपि उसके सदस्य 48 से बढ़कर 51 हो गए हैं, किंतु मतदान का प्रतिशत 29.05 से घटकर 19.54 रह गया है। महाराष्ट्र में भी दल को भारी क्षति हुई है। सन् 1957 में जहाँ उसके 18 सदस्य थे अब वे केवल 6 सदस्य रह गए हैं। पश्चिमी बंगाल में कलकत्ते में, जहाँ अभी तक कम्युनिस्टों का वर्चस्व समझा जाता था, उन्होंने स्थान खोए हैं। किंतु देहाती क्षेत्रों में प्रथम बार उन्हें कुछ स्थान मिले हैं। अखिल भारतीय स्तर पर भी यदि पी.डी.एफ. को लोकसभा के लिए प्राप्त 10,44,032 मतों को कम्युनिस्टों के सन् 1957 के मतों में जोड़ा जाए तो सन् 1957 में उनके कुल मत 1,17,98,107 होते हैं। यह 9.79 प्रतिशत है। इस बार उन्हें कुल 9.96 प्रतिशत मिले हैं, अर्थात् उनके मतों की वास्तविक वृद्धि .25 प्रतिशत हुई है।

भारतीय जनसंघ प्रगति-पथ पर

जनसंघ को सन् 1962 के चुनावों में लोकसभा के लिए 14 स्थान प्राप्त हुए हैं⁷ सन् 1957 में उसे चार स्थान मिले थे तथा लोकसभा भंग होते समय उसके सदस्यों की

7. 1957 के आम चुनाव में भारतीय जनसंघ के चार सदस्य चुनाव जीतकर संसद् सदस्य बने थे—बलरामपुर से अटल बिहारी वाजपेयी, रत्नागिरी से प्रेमजी भाई अस्सर, धुलिया से पाटिल उत्तमराव लक्ष्मण तथा हरदोई से शिवदीन। वहीं 1962 के लोकसभा चुनाव में निम्नलिखित 14 प्रत्याशियों ने चुनाव में जीत दर्ज की—अजित प्रताप सिंह (प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश), रामचंद्र बड़े (खरगाँव, मध्य प्रदेश), ओंकारलाल बेरवा (कोटा, राजस्थान), युद्धवीर सिंह चौधरी (महेंद्रगढ़, पंजाब), गोकर्ण प्रसाद (मिसरिख, उत्तर प्रदेश), हुकुम चंद कच्छवाई (देवास, मध्य प्रदेश), लाहड़ी सिंह (रोहतक, पंजाब), जे.एस. ओंकार सिंह (बदायूँ, उत्तर प्रदेश) स्वामी रामेश्वरानंद (करनाल, पंजाब), ब्रह्मजीत सिंह (जौनपुर, उत्तर प्रदेश), त्रिजराज सिंह (बरेली, उत्तर प्रदेश), युवराज दत्त सिंह (शाहाबाद, उत्तर प्रदेश), उमाशंकर त्रिवेदी मुंजजीभाई (मंदसौर, मध्य प्रदेश), सूरज लाल वर्मा (सीतापुर, उत्तर प्रदेश)।

संख्या छह थी। सन् 1957 में उसे 5.93 प्रतिशत मत मिले थे। अब वह बढ़कर 6.47 पर पहुँचा है।

विधानसभाओं में जनसंघ के सदस्यों की संख्या सन् 1957 में 51 से बढ़कर सन् 1962 में 120 हो गई है। मत 4.03 प्रतिशत से बढ़कर 6.21 हो गए हैं। इस प्रकार विधानसभा की जनसंघ की प्रगति महत्वपूर्ण है। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में उसे क्रमशः 49 और 41 स्थान प्राप्त हुए हैं तथा उसे विरोधी दल की मान्यता मिली है। बिहार में पहली बार जनसंघ को तीन स्थानों पर विजय प्राप्त हुई है। राजस्थान में सन् 1957 में छह की तुलना में 15 स्थानों पर तथा पंजाब में 8 स्थानों पर विजय मिली है। अन्य प्रदेशों में यद्यपि विजय नहीं मिली, किंतु मतों का प्रतिशत बंगाल के मिदनापुर जिले को छोड़कर सभी जगह बढ़ा है।

महाराष्ट्र और दिल्ली की पराजय अनपेक्षित रही। महाराष्ट्र में संयुक्त महाराष्ट्र की निर्मिति⁸ के उपरांत कांग्रेस की ओर तेजी से जनमत के झुकाव का परिणाम सभी विरोधी दलों पर हुआ है। जनसंघ भी इस आँधी का शिकार हुआ है। दिल्ली में जनसंघ के मत तो 19.72 से बढ़कर 32.66 हो गए, किंतु कोई स्थान प्राप्त नहीं हो सका। सभी विरोधी दलों द्वारा जनसंघ के विरुद्ध मोरचा बनाकर कांग्रेस की सहायता करना तथा मतदान में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि ही इसके मुख्य कारण हैं।

कुछ प्रमुख दलों के अतिरिक्त कई क्षेत्रीय पार्टियाँ भी हैं। इनमें रामराज्य परिषद् और हिंदू महासभा दोनों ही जनमत पर से अपनी पकड़ खोती जा रही हैं। हिंदू महासभा को मध्य प्रदेश में 6 तथा उत्तर प्रदेश में 2 स्थान मिले हैं। रामराज्य परिषद् को मध्य प्रदेश में 10 तथा राजस्थान में 3 स्थानों पर विजय प्राप्त हुई है। अकाली दल पंजाब में एक सबल सांप्रदायिक समर्थन प्राप्त शक्ति समझा जाता रहा है। उसे केवल 19 स्थान तथा 11.92 प्रतिशत मत प्राप्त हुए हैं। लोकसभा में भी वह केवल 3 स्थानों पर जीत सका है। सन् 1957 में उसने कांग्रेस में विलीन होकर चुनाव लड़े थे। अतः तुलनात्मक विवेचन तो संभव नहीं है किंतु यह स्पष्ट है कि उसे निर्वाचकों का विशेष बल प्राप्त नहीं है।

शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन द्वारा रिपब्लिकन पार्टी का चोला धारण किए जाने के बाद उसने पहले ही चुनाव लड़े हैं। पार्टी की सामान्य नीति किसी-न-किसी दल अथवा वर्ग के साथ गठबंधन कर चुनाव लड़ने की रही है। कुछ प्रदेशों में तो उसके अंतर्गत दोनों गुटों ने अलग-अलग दलों से समझौता कर चुनाव लड़े। एक गुट महाराष्ट्र समिति में रहकर कम्युनिस्टों के साथ चलता रहा है तो दूसरे गुट ने प्रजा समाजवादी दल तथा नाग विदर्भ आंदोलन समिति के साथ साँठ-गाँठ बनाकर अपना राजनीतिक अस्तित्व कायम

8. 1 मई, 1960 को संयुक्त महाराष्ट्र की स्थापना हुई थी।

रखा है। इस दल का सबसे खतरनाक स्वरूप उत्तर प्रदेश में प्रकट हुआ। यहाँ पर उन्होंने मुसलिम सांप्रदायिक तत्त्वों के साथ समझौता करके दलित वर्ग और मुसलमानों का संयुक्त मोरचा बनाने तथा अत्यंत ही नंगे रूप में हिंदू-विरोधी भावना उभारने का प्रयत्न किया। यह चिंता का विषय है कि कुछ स्थानों पर उन्हें सफलता मिली है। जबकि महाराष्ट्र में, जो रिपब्लिकन पार्टी का अच्छा गढ़ माना जाता था केवल 3 सदस्य जीते हैं। यू.पी. में उसके टिकट पर 8 सदस्य जीतकर विधानसभा में पहुँचे हैं। लोकसभा में उसकी 8 से घटकर 3 सीटें रह गई हैं। ये तीनों उत्तर प्रदेश से हैं। झारखंड पार्टी वनवासियों में पृथक्ता की भावना पैदा कर छोटा नागपुर तथा आस-पास के क्षेत्र को एक अलग झारखंड राज्य बनाने का नारा लेकर बहुत दिनों से काम कर रही है। वनवासियों में उसका इतना प्रभाव समझा जाता था कि कांग्रेस ने भी बिहार में उसके साथ समझौता करने का प्रयत्न किया। किंतु इस बार इसके विजयी सदस्यों की संख्या घटकर विधानसभा में 30 से 20 तथा लोकसभा में 6 से 3 रह गई है।

महाराष्ट्र का शेतकरी कामकरी पक्ष एक प्रादेशिक तथा जातिवादी दल के रूप में काम करता रहा है। संयुक्त महाराष्ट्र समिति के घटक के रूप में पिछली बार इसे अच्छी सफलता मिली थी। किंतु इस बार कांग्रेस द्वारा ही महाराष्ट्र में जातिवाद का आह्वान होने के कारण शे.का. पक्ष प्रभावी नहीं रहा। उसके सदस्यों की संख्या 31 से घटकर 15 रह गई है।

फारवर्ड ब्लाक बंगाल और मद्रास तक सीमित है। इस बार विधानसभाओं में इसके प. बंगाल में 13 तथा मद्रास में 4 सदस्य चुनकर आए हैं। लोकसभा में भी दोनों राज्यों से एक-एक सदस्य चुना गया है।

द्रविड़ मुन्नेत्र कझगम और मुसलिम लीग

भारत से अलग स्वतंत्र द्रविड़नाडु का नारा लेकर चलने वाले द्र.मु.क. को इस बार मद्रास में अच्छी सफलता मिली है। उसके 50 सदस्य विधानसभा में तथा 7 लोकसभा में निर्वाचित हुए हैं। वैसे यह कहना कठिन है कि उसकी विजय के पीछे कांग्रेस का विरोध अधिक है अथवा उसके सिद्धांतों की मतदाताओं द्वारा मान्यता। किंतु यह निश्चित है कि राजाजी के आशीर्वाद का उसने भरपूर लाभ उठाया।

असम में पहाड़ी क्षेत्रों में प्रायः सभी स्थान पृथक् हिलस्टेट की माँग लेकर चलने वाले दल को ही प्राप्त हुए हैं। स्पष्ट है कि अन्य दल उस क्षेत्र में राजनीतिक दृष्टि से निष्क्रिय ही हैं।

मालावार क्षेत्र में मुसलिम लीग का प्रभाव ज्यों-का-त्यों है। उसे वहाँ से दो लोकसभा के स्थान मिले हैं।

कश्मीर की कहानी अलग

कश्मीर के चुनावों की अपनी अलग कहानी है। यद्यपि वे भारत के चुनाव आयोग की देख-रेख में हुए, किंतु वहाँ का क़ानून शेष भारत से अलग है। वहाँ चुनाव दो हिस्सों में करवाए गए। जम्मू प्रांत में दिनांक 24 फरवरी को शेष भारत के साथ तथा कश्मीर और लद्दाख में बाद में चुनाव हुए। वोट के लिए निशान लगाने की पद्धति भी वहाँ काम में नहीं लाई गई। चुनाव में धाँधलियों की बहुत सी रिपोर्ट प्राप्त हुई हैं। प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं ने तो बिना सील तोड़े बक्सा खोलने का प्रदर्शन करके एक सनसनी ही पैदा कर दी थी। चुनाव आयोग ने बक्सों को बोरों में बंद करने का आदेश अवश्य दिया था, किंतु उसका विशेष पालन नहीं हो पाया। नामांकन पत्रादि बहुत बड़े पैमाने पर रद्द कर दिए गए। आवश्यकता है कि चुनाव आयोग ऐसे पग उठाए, जिससे जनता का चुनावों की निष्पक्षता में विश्वास जम जाए। भारत का चुनाव क़ानून भी वहाँ लागू होना चाहिए। प्रजा परिषद् ने 25 स्थानों पर चुनाव लड़ा। उसे 3 पर विजय तथा कुल 17.69 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। अन्य विरोधी दल वहाँ कोई स्थान नहीं प्राप्त कर सके। उनको मिले मत भी नगण्य हैं।

राज्यसभा तथा विधान परिषद्

राज्यसभा के द्विवर्षीय चुनावों में हमें दो स्थान, एक उत्तर प्रदेश तथा एक मध्य प्रदेश से मिले हैं। उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में श्री पीतांबर दासजी पुनर्निर्वाचित हुए हैं। राज्यसभा में हमने उत्तर प्रदेश में श्री सीताराम जयपुरिया (स्वतंत्र) तथा श्री मुरहारी (समाजवादी) का, राजस्थान में महाराजा मानसिंह (स्वतंत्र) का तथा बिहार में श्री गंगाशरण सिंह (प्र.सो.पा.) का समर्थन किया। वे सभी जीतकर आए हैं। उत्तर प्रदेश से कम्युनिस्ट सदस्य श्री जेड.ए. अहमद का स्थान रिक्त होने पर वे अपना सदस्य चुनवाकर उसकी पूर्ति नहीं कर सके। उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में हमने स्वतंत्र और समाजवादी सदस्य को अपने बचे हुए मत तथा अगली वरीयताएँ प्रदान कीं और वे भी विजयी हुए। वहाँ भी कम्युनिस्ट प्रत्याशी को हार खानी पड़ी। स्नातक एवं स्थानीय निकायों से विधान परिषद् के चुनाव हमने उत्तर प्रदेश और पंजाब में लड़े, किंतु सफलता नहीं मिली। ज़िला परिषदों में मनोनीत सरकारी कर्मचारियों की संख्या के अनुसार किसी भी विरोधी दल का इन निर्वाचन क्षेत्रों में विजयी होना कठिन है।

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के लिए हमने डॉ. राधाकृष्णन तथा डॉ. जाकिर हुसैन का समर्थन किया।

चुनाव प्रचार में सैद्धांतिकता का अभाव

चुनावों के परिणामों से भारत की राजनीति के सैद्धांतिक पक्ष के संबंध में कोई भी निष्कर्ष निकालना कठिन है, क्योंकि मतदाता का निर्णय अनेक कारणों से प्रभावित होता है। उसमें सिद्धांत पक्ष तो बहुत थोड़ा होता है। संभवतः इसीलिए अनेक दलों के बड़े-बड़े नेताओं ने भी चुनाव के प्रचार में अपने सिद्धांतों के विवेचन की आवश्यकता नहीं समझी। जबकि कांग्रेस केवल इसलिए मत का अधिकार बताती रही कि वह अन्य सब दलों से बड़ी है तथा और किसी के पास पंडित नेहरू जैसा ख्यातनामा नेता नहीं है, शेष दल इसके विपरीत यह कहते रहे कि कांग्रेस असफल रही है अथवा उसने ऐसे व्यक्ति को टिकट दिया है, जो उनके प्रत्याशी की तुलना में जातिगत अथवा क्षेत्रीय दृष्टि से उनकी निष्ठा का हकदार नहीं है। भारतीय जनसंघ ने इस संबंध में अपवाद बनने का प्रयत्न किया। इसमें कितनी सफलता मिली, यह मेरे लिए कहना संभव नहीं है। इसी प्रकार शासन दल द्वारा अनियमितताओं और भ्रष्टाचार की भी रिपोर्ट्स मिली हैं। उनका परिणाम शासन के पक्ष में पड़ सकता है। अनियमितता के कुछ प्रमुख उदाहरण छोड़ दें तो यह स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि चुनाव के परिणाम बहुतांश में जनमानस को प्रतिबिंबित करते हैं। यदि कहीं लोग भय अथवा लोभ का शिकार बन गए, या सांप्रदायिक एवं जातिगत भावनाओं में बह गए तो यही कहना होगा अन्य दलों ने उन्हें अपने प्रजातंत्रीय अधिकार को सही अर्थ में उपयोग करने के लिए सुसज्ज नहीं किया। इन अनियमितताओं का व्याप कितना था और उनका चुनावों पर क्या परिणाम पड़ा तथा उन्हें कैसे रोका जाए आदि बातों का विचार करने के लिए कार्यसमिति ने एक उपसमिति नियुक्त की है। उसका प्रतिवेदन हमें मिलेगा ही।

कांग्रेस का टिकट अब विजय का टिकट नहीं रहा

फिर भी उपर्युक्त सीमाओं के अंतर्गत हम कुछ मोटे-मोटे निष्कर्ष, चुनावों के परिणामों का ही नहीं तो संपूर्ण चुनाव आंदोलन का विश्लेषण करके निकाल सकते हैं। प्रथमतः यह कि निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कांग्रेस बड़ी तेज़ी से अलोकप्रिय होती जा रही है। चुनावों के परिणामों की अपेक्षा जनता ने जिस जिज्ञासा से दूसरे दलों की बातें सुनी, उनका साथ दिया और जहाँ उसे विरोधी दल की शक्ति दिखी, जिताया, आदि बातों से यह कहा जा सकता है कि जनता अब परिवर्तन चाहती है। कांग्रेस जीती तो है, परंतु उसका बहुमत कम हुआ है तथा वोट घटे हैं। जिस भारी बहुमत के साथ कांग्रेस प्रत्याशी स्थान-स्थान पर जीता करते थे, वह अब भूतकाल की बात हो गई है। अब कांग्रेस का टिकट विजय का टिकट नहीं रहा। बहुत जगह तो कांग्रेस बाल-बाल बच गई है। आज कांग्रेस की जीत जनता के समर्थन के कारण नहीं अपितु अन्य दलों

की संगठनात्मक तथा व्यवस्था संबंधी कमजोरी के कारण है। चुनाव के अनुभव, ज्ञान तथा तकनीकी प्रशिक्षा के आधार पर यह आशा की जा सकती है कि वह दिन दूर नहीं, जब कांग्रेस को अपदस्थ किया जा सकेगा।

पश्चिम बंगाल, आंध्र, केरल और महाराष्ट्र में कांग्रेस की शक्ति में वृद्धि तथा शेष चारों ओर सामान्यतः हास, इन राज्यों में गैर-कम्युनिस्ट दलों के लिए समर्थन का अभाव, तथा गैर-समाजवादी दलों की अन्यत्र विजय इस बात का द्योतक है कि जनता कम्युनिस्ट संकट के प्रति जागरूक है तथा कांग्रेस इस भावना का सफलतापूर्वक लाभ उठा पाती है। कम्युनिस्टों ने सार्वदेशिक आधार पर कुछ प्रगति अवश्य की होगी। किंतु यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि जनता ऐसी किसी भी स्थिति को बरदाश्त नहीं करेगी, जिससे कम्युनिस्टों का वर्चस्व प्रतिष्ठापित हो सके। कम्युनिस्ट भी इसको जानते हैं और इसीलिए वे अन्य दलों को मिलाकर संयुक्त मोरचा बनाने तथा कांग्रेस में घुसकर काम करने की नीति लेकर चले हैं। उनको अपने नाम पर अब व्यापक विजय की आशा नहीं रही है। किंतु ऐसा लगता है कि जिस संकट को जनता पहचानती है, उसके प्रति कांग्रेसजन जागरूक नहीं हैं।

गैर-समाजवादी ध्यान रखें

गैर-समाजवादी (Non-Socialist) शक्तियों ने निश्चित ही जनता पर एक गहरी छाप लगाई है। उनकी विजय महत्वपूर्ण है। किंतु यह आवश्यक है कि वे जनहित के प्रश्नों को लेकर चलें, जिससे उन्हें निहित स्वार्थों के संरक्षक कहकर बदनाम न किया जा सके।

बुराइयाँ समाप्त नहीं होतीं

सांप्रदायिक और क्षेत्रीय पार्टियाँ यद्यपि पीछे हटी हैं किंतु यह समझना भूल होगी कि ये बुराइयाँ समाप्त हो गईं। वास्तव में तो कांग्रेस तथा अन्य दलों द्वारा उनके तुष्टीकरण की नीति से उन्हें नवजीवन प्राप्त हो गया है। द्र.मु.क. की सफलता हमारी चिंता का विषय नहीं है, किंतु राजाजी द्वारा उसका समर्थन तथा मद्रास में द्रविड़ कड़गम के साथ कांग्रेस का गुप्त समझौता निश्चित ही अधिक भयावह है। मुसलिम लीग देश भर अपना जाल न फैला पाई होगी, परंतु मुसलिम-संप्रदायवादियों और रिपब्लिकंस का गठबंधन, कांग्रेस द्वारा ख्यातनाम पाकपरस्त व्यक्तियों को टिकट देना, मुसलिम पृथकतावादियों की हर जगह कांग्रेस द्वारा खुशामद तथा विघटनकारी सांप्रदायिक एवं कम्युनिस्ट तत्त्वों की साँठ-गाँठ, ऐसे तथ्य हैं, जिनमें देश की एकता और सुरक्षा के लिए घातक संभावनाएँ निहित हैं। जनता सामान्यतः राष्ट्रभक्त है तथा एकता में निष्ठा रखती है। किंतु उसे जाग्रत और संगठित करना होगा, जिससे वह इस प्रकार का पदलोलुप शक्तियों का शिकार न बन सके।

यह अवसरवादिता

कांग्रेस शासन की कर-नीति का जनता ने व्यापक विरोध किया है। सहकारी खेती को किसानों ने ठुकरा दिया है तथा कांग्रेस की गो और देश की रक्षा के विषय में बरती गई नीतियों के प्रति घोर असंतोष प्रकट किया है। यह निष्कर्ष मैं इस आधार पर निकाल रहा हूँ कि चुनाव प्रचार में कांग्रेस सहित सभी दलों ने इस विषय में एक ही भाषा बोली है। कांग्रेस के नेताओं ने अपने भाषणों में कहीं भी करों का नाम नहीं लिया। सहकारी खेती के बारे में नेहरूजी अवश्य कहीं-कहीं बोले किंतु कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने गाँवों में जाकर यही बताया कि कांग्रेस ऐसी ग़लत बात कभी नहीं कर सकती। चुनाव में कांग्रेस, कम्युनिस्ट, प्रजा समाजवादी सभी गो-रक्षक बनकर अपने क्षेत्र में गए। उन्होंने यहाँ तक झूठा प्रचार किया कि देश में कहीं गो-हत्या होती ही नहीं। देश की रक्षा के विषय में इन दलों ने अपनी असलियत को छिपाकर सबसे आगे बढ़कर रक्षा करनेवाला ही अपने को सिद्ध करने का प्रयत्न किया। प्रामाणिकता की माँग है कि जिन बातों को वे चुनाव के प्रचार में खुलकर नहीं बोल सकते थे, उन्हें अपने घोषणा-पत्र में से निकाल दें तथा तदनुरूप अपनी नीति बनाएँ।

जनसंघ का पग आगे बढ़ा

सन् 1957 के चुनावों ने यदि यह सिद्ध कर दिया था कि भारतीय जनसंघ मौसमी पार्टी न होकर भारत की राजनीति में स्थायी हो गई है तो सन् 1962 के चुनावों ने उसके विकास की संभावनाओं को प्रकट किया है। कुछ बहुत विज्ञापित एवं बहुप्रेक्षित क्षेत्रों के परिणामों ने उसकी सामान्य प्रगति पर परदा डाल दिया होगा, परंतु कोई भी राजनीति का विद्यार्थी यह माने बिना नहीं रह सकता कि जनसंघ का पग आगे बढ़ा है। किंतु हम इससे संतोष करके नहीं बैठ सकते। हमें जो विजय मिली है, उससे हमारा विश्वास अवश्य बढ़े किंतु अपनी असफलताओं की जाँच करनी होगी तथा उन्हें दूर करने के लिए पग उठाने होंगे। चुनावों में हमें जनता के अपार प्रेम का और इसीलिए हमसे उसकी भारी अपेक्षाओं का परिचय मिला है। हमारी वही पूँजी है। हम अपने ध्येय का स्मरण कर सेवाभाव और निस्स्वार्थ वृत्ति से अपने महान् कार्य को पूर्ण करने में जुट जाएँ तथा अपने आपको इतना सबल और सक्षम बनाएँ कि हम देश की चिर आशाओं और आकांक्षाओं को पूर्ण कर सकें।

वंदे मातरम्।

— पाञ्चजन्य, जून 4 तथा जून 11, 1962



24

हमारा अंतः-दलीय और अंतर-दलीय व्यवहार

वर्तमान समय में भारत, जहाँ एक विशेष मुद्दे को उठाने के लिए 'सप्ताह' मनाना सामान्य बात हो गई है, में पिछले से पूर्व के सप्ताह को पूरी निष्पक्षता के साथ 'राष्ट्रपति सप्ताह' के रूप में निरूपित किया जा सकता है।

भारत के राष्ट्रपति के गणराज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी होने, संविधान के तहत सभी अधिकारों का मूल होने और समस्त राज्य सम्मान और मान्यताएँ प्रदान करनेवाला होने के तथ्य के बावजूद उनके नाम पर कार्य करनेवाली सरकार की गतिविधियों और बयानों के जरिए प्रेस में आम तौर पर उनको नजरअंदाज किया जाता था। यहाँ तक कि जब राष्ट्रपति के संबोधन को प्रचार मिलता है तो उसे इस तरह देखा जाता रहा है कि वस्तुतः वह स्वयं अपने विचार प्रकट करने की बजाय सरकार के विचारों को प्रसारित कर रहे हैं।

परंतु परिवर्तन की इस अवधि के दौरान निवर्तमान और नए, दोनों राष्ट्रपति वह नहीं बोलने का अवसर प्राप्त कर सके, जो उनके द्वारा कहा जाना उनकी सरकार के लिए आवश्यक था।

और इन भाषणों में उन लोगों ने कुछ ऐसा कहा, जो उन लोगों के लिए अरुचिकर हो सकता है, जो सरकार की बागडोर सँभाले हुए हैं। परंतु निश्चित रूप से उन्होंने आम आदमी की भावनाओं और मनोभावों को प्रतिबिंबित किया।

सार्वजनिक रूप से राष्ट्रपति को अब तक एक ऐसी स्थिति सौंपी गई है, जहाँ उन्हें कैबिनेट से परामर्श लेना है, न कि उन्हें कैबिनेट को परामर्श देना है।

हम नहीं जानते कि निजी तौर पर दिए गए राष्ट्रपति के संयमी और बुद्धिमान परामर्शों का सरकार ने कहाँ तक ध्यान रखा है।

हालाँकि, यह अवश्यभावी है कि डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने अपने अंतिम भाषण में स्वयं को बंधनों से स्वतंत्र करते हुए बोला। निश्चित रूप से वह वर्तमान स्थितियों से संतुष्ट नहीं हैं। उनकी असंतुष्टि मूलभूत है न कि कृत्रिम जो किसी लोकतांत्रिक देश में हो सकता है। उनके विचारों का ध्यान रखना और हमारी राजनीति को उसके अनुरूप पुनः गढ़ना उचित होगा। इस सिलसिले में मैं दो बिंदुओं का उल्लेख करना पसंद करूँगा, जिसमें एक को निवर्तमान और दूसरे को नए राष्ट्रपति ने उठाया है।

दल नहीं, लोग लोकतंत्र को टिकाऊ बनाते हैं

लोकतंत्र के संदर्भ में डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने कहा कि पिछले दशक के दौरान हमने जो सफलता प्राप्त की, वह राजनीतिक दलों या सरकारी मशीनरी के कारण नहीं, बल्कि लोगों की प्राकृतिक अच्छाई और लोकतांत्रिक स्वभाव के कारण मिली। यह वक्तव्य हमारे राजनीतिक दलों के लिए शिक्षाप्रद नहीं है बल्कि इसने एक तथ्य को अभिव्यक्त किया है।

लोगों का लोकतंत्र में विश्वास राजनीतिक दलों के निर्माण के लिए हमारी सबसे बड़ी गारंटी और स्वीकृति है, जो लोगों के लोकतांत्रिक स्वभाव को संरक्षित एवं संवर्धित और व्यक्त भी कर सकती है। लोकतंत्र के पक्ष में होने का दावा करनेवाले सभी राजनीतिक दल और सरकार का भी इस संबंध में एक दायित्व है।

राजनीतिक दल सामान्य तौर पर राजनीतिक यानी सरकारी सत्ता प्राप्त करने की दृष्टि से गठित किए जाते हैं। लोकतंत्र में वे निर्धारित क़ानून के अनुरूप मताधिकार के उपयोग के माध्यम से लोगों द्वारा अभिव्यक्त समर्थन के जरिए ऐसा करना चाहते हैं। क़ानून के प्रावधानों के अतिरिक्त खेल के कई अन्य नियम भी हैं, जो राजनीतिक दलों द्वारा परस्पर और उनके अपने अंतः-दलीय मामलों में व्यवहार के लिए बनाए और लागू किए जाते हैं। आजकल अंतः-दलीय और अंतर-दलीय संबंध निर्धारित नियमों के आधार पर नहीं बल्कि स्थिति विशेष की अनिवार्यता के अनुकूल लाभकारी नीतियों के आधार पर संचालित होते हैं। एक दल के साथ दूसरे दल के बीच संबंध इतने निचले स्तर पर हैं कि इस पर शर्म महसूस करनी चाहिए। लैटिन में एक कहावत है कि 'inter arma silent leges' (युद्ध के दौरान क़ानून खामोश रहते हैं)। और भारत में विभिन्न राजनीतिक दल हमेशा एक-दूसरे से युद्धरत लगते हैं। वे इतने ऐकांतिक बन गए हैं कि यदि वर्तमान रवैया जारी रहता है तो हम एक समाज का हिस्सा बने रहने के स्थान पर स्वयं को परस्पर ऐकांतिक राजनीतिक जातियों में विभाजित और विघटित कर सकते हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि राजनीतिक दल जाति और जातिवाद के विरुद्ध अपने जोरदार भाषणों के बावजूद गुप्त रूप से इस बुराई का समर्थन करते हैं।

सामाजिक अस्पृश्यता बुरी है, राजनीतिक अस्पृश्यता बदतर है

पिछले आम चुनावों से पहले विभिन्न राज्यों में एक आचार संहिता विकसित करने और विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा इसे स्वीकार किए जाने के प्रयास हुए थे। परंतु इसमें भी यह देखा गया कि कुछ राजनीतिक दलों, जिन्हें गौण या उल्लेखनीय जनसमर्थन प्राप्त न करनेवाला नहीं माना जा सका, को अलग कर दिया गया। कुछ राजनीतिक दलों में किसी दूसरे के साथ निकटता या समानता की भावना होने के उपयुक्त आधार हो सकते हैं, परंतु इसे अन्यो को बहिष्कृत करने के लिए राजनीतिक संगोत्रता की भावना में विकसित होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, विशेष रूप से तब जब कि सम्मेलन का उद्देश्य अलग हो, जिसे उस विचारधारा विशेष या राजनीतिक गठजोड़ में शामिल किया जा सकता हो। यदि अस्पृश्यता खराब है तो राजनीतिक क्षेत्र में यह बदतर है। इस तथ्य के बावजूद कि लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की संस्था आवश्यक है, राजनीतिक आधार पर समाज का स्तरीकरण लोकतंत्र की भावना और कार्यपद्धति के विरुद्ध है। डॉ. राधाकृष्णन¹ ने कहा, 'अपनी राष्ट्रीय चिंताओं में हम लोकतंत्र को महज एक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में नहीं बल्कि नैतिक स्वभाव के रूप में अपनाते हैं।' इस नैतिक स्वाभाव के संरक्षण के लिए ही राजनीतिक व्यवस्थाओं का निर्धारण करना पड़ता है और यह देखना होता है कि यह हमारे नैतिक स्वभाव को क्षति न पहुँचाती हो।

देश के राष्ट्रीय जीवन में अपनी अत्यंत उच्च विशिष्ट स्थिति के साथ डॉ. राजेंद्र प्रसाद सेवानिवृत्ति के पश्चात् निश्चित रूप से अपने प्रभाव का उपयोग कर सकते हैं और समस्या की गहराई में जा सकने और राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता का प्रस्ताव करनेवाली एक प्रणाली स्थापित करने के लिए कुछ कर सकते हैं, ताकि लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए स्वस्थ परंपराएँ स्थापित की जा सकें।

राष्ट्रपति का परामर्श

राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन के प्रथम भाषण में एक और बिंदु जो हमारे ध्यान देने योग्य है, वह यह कि उन्होंने राष्ट्र की अवधारणा को परिभाषित करने का प्रयास किया है और हमारे राष्ट्र के मूल दर्शन को बताया है। उन्होंने कहा कि 'एक राष्ट्र व्यक्तियों का सान्निध्य नहीं है। यह मस्तिष्क के समागम, हृदय के संयोजन पर आधारित एक समाज है।'

1. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1888-1975) भारत के प्रथम उप-राष्ट्रपति (1952-1962) और द्वितीय राष्ट्रपति (1962-1967) रहे। ये भारतीय संस्कृति के संवाहक, प्रख्यात शिक्षाविद्, महान् दार्शनिक और एक आस्थावान हिंदू विचारक थे, इनका जन्मदिन (5 सितंबर) पूरे देश में शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है।

इसके पश्चात् उन्होंने पिछली 40 सदी के हमारे राष्ट्रीय उद्देश्य का स्मरण कराया। यह 40 सदी की बात है, 40 वर्ष या 40 दशक की नहीं। यदि हम 40 सदी की परंपराओं को याद कर सकें और उन्हें आगे ले जाने का प्रयास कर सकें तो राष्ट्रीय एकता की समस्या कठिन नहीं होगी।

पिछले 40 वर्ष में हमने महज लोगों या समुदायों को साथ लाकर राष्ट्र के निर्माण का प्रयास किया है। हमने उन्हें एकीकृत करने का प्रयास नहीं किया, क्योंकि हम नहीं जानते थे कि उन्हें कम-से-कम पिछली 40 सदी के सांप्रदायिक अस्तित्व की परंपरा के लोगों के साथ एकीकृत होना होगा।

लंबे अंतराल के बाद हाल ही में बैठक करनेवाली राष्ट्रीय एकता परिषद् क्या एक दार्शनिक के इन शब्दों का ध्यान रखेगी, जो अब एक राष्ट्रपति के रूप में भी हमारे सर्वाधिक सम्मान और ध्यान का पात्र है।

—ऑर्गनाइज़र, 28 मई, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



25

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : हरिगढ़

मान्यवर सर्वाधिकारीजी, अन्य अधिकारी वर्ग तथा स्वयंसेवक बंधुओ, अपना पिछले पंद्रह दिनों से यह वर्ग चल रहा है। हम अपने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्य के संबंध में भिन्न-भिन्न विषयों पर यहाँ विचार सुनते रहे हैं और मुझे विश्वास है कि संघ की तत्त्व प्रणाली और उसकी कार्यपद्धति के विषय में हमने बहुत कुछ अभी तक जो आधारभूत बातें हैं, उनको सुना होगा। वैसे हम लोग संघ के कार्य में अपने आपको लगाए हुए हैं। इस कार्य को मन में केवल एक ही इच्छा लेकर कि अपने समाज की जो आज की दुरवस्था है, वह दुरवस्था दूर होनी चाहिए और हम लोग उन्नति की ओर बढ़ें, यह हमारे मन की इच्छा है, उसके अनुसार ही हम काम में लगे भी हुए हैं, किंतु कई बार लोग इस प्रकार का प्रश्न पूछ बैठते हैं कि आखिर उन्नति करना चाहते हैं, तो उन्नति क्या है? कैसी है?

सच्चाई तो यह है कि इसका बहुत कुछ उत्तर देने की, जहाँ तक अपने काम का संबंध है, आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हमारे हृदय की जो भावना है, उसको लेकर हम कार्य कर रहे हैं और जैसे कि प्रत्येक व्यक्ति सुख क्या है, उसका थोड़ा-बहुत अनुभव करता ही है। दुःख क्या है, उसको भी पहचानता ही है। वैसे ही समाज की भी कुछ अपनी अनुभूति होती है, क्योंकि समाज जीवनमान होने के कारण बिल्कुल उस प्रकार चलता भी नहीं जैसे कि कोई और जड़ वस्तु चला करती है। फिर जो लोग काम में लगे हुए हैं, वे तो उन्नति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। उन्नति का एक स्वरूप क्या होगा? उसकी व्यावहारिक दृष्टि क्या होगी? ऐसे लोग हैं, जो कि इस प्रकार का प्रश्न भी पूछते हैं कि हिंदू राष्ट्र की उन्नति यानी आप क्या करना चाहते हैं? तो उन्हें चार बात बता सकें। दूसरे इस बात की आवश्यकता है कि काम करते-करते ऐसा न हो कि हम लोग

कहीं गलत रास्ते पर चले जाएँ। कई बार ऐसा हो सकता है। भावना में आकर हम अपना विवेक भूल जाएँ। उस समय हम अपनी वास्तविक उन्नति के स्थान पर धोखे में आ जाएँ। कई बार लोग जो वस्तु हमको चाहिए, उसके स्थान पर गलत चीज़ दे देते हैं और जिसकी कल्पना करते हैं, उससे भिन्न चीज़ हमें मिल जाती है। ऐसे धोखे होते रहते हैं। पर असली चीज़ क्या है? नकली क्या है? यह हमें परखते रहना चाहिए। असली हीरा कौन सा है? असली मोती कौन सा है? इसकी यदि हमें कल्पना नहीं तो असली मोती की जगह नकली मोती आ सकता है।

ऐसा कई बार होता है, जैसे कि एक राजा के यहाँ एक बार एक सौदागर आया। उसने उस राजा को काँच के दो टुकड़े दिए। दोनों टुकड़े देखने में एक जैसे थे। उसने बताया कि इसमें एक जवाहरात है और दूसरा काँच है। परंतु दोनों देखने में एक जैसे हैं। वहाँ पर उसकी कोई पहचान नहीं कर पाता था। उसने राजा को कहा कि आप इसमें से एक टुकड़ा ले लीजिए। क्रीमत् आपको जवाहरात की ही देनी पड़ेगी, चाहे असली हीरा लें या काँच। यह पहचानने का काम आपका है। राजा बहुत असमंजस में पड़ा। उस राजा के यहाँ पर एक साधु रहता था। उस साधु को उसने यह काम सौंपा। साधु बुद्धिमान था, जानता था। अतः उसने पहचान लिया कि कौन सा असली है कौन सा नकली। तो उसने कौन सा तरीका अपनाया, वह तरीका कहाँ तक ठीक है, उसके बारे में तो मैं जानता नहीं। परंतु कहते हैं कि उसने जब असली और नकली बता दिया तो राजा बड़े असमंजस में पड़ा कि जो हम पहचान नहीं पाए, उसे इसने अंधा होते हुए भी बता दिया। उसने कहा, 'यह तो सीधी सी बात है मैंने दोनों को धूप में रखा और धूप में रखने के बाद जो काँच था, वह गरम हो गया और जो असली जवाहरात था, वह उसके मुक्काबले में बहुत कम गरम हुआ। और इससे मैंने इस बात का अंदाज़ा लगा लिया कि कौन सी चीज़ असली है और कौन सी चीज़ नकली।' तो इस प्रकार से हमको भी असली और नकली का पता होना चाहिए, जिससे धोखा न खा जाएँ।

जैसे एक बार एक पठान था, वह बेचारा बाज़ार में आया तो एक जगह पर उसने देखा, कई बड़िया-बड़िया सफ़ेद टुकड़े चौकोर कटे हुए रखे हैं और उसने उसे खोए की चीज़ समझकर माँगा। वास्तव में वह साबुन के टुकड़े थे और जब उसने पूछा कि किस भाव देते हो तो दुकानदार ने कहा कि यह चार आने पाव है। उसने चार आने निकाले और पाव भर ले लिया और पाव भर ले आने के बाद उसको मुँह में डालकर खाने लगा, जब खाने लगा तो आखिर साबुन जब मुँह में गया तो उसका स्वाद आया। सारा मुँह का स्वाद ही बिगाड़ दिया। खाता जाता था, थूकता जाता था। उधर से एक व्यक्ति निकला और उसने पूछा कि पठान क्या कर रहे हो? उसने कहा, 'पठान क्या करता है? अपना पैसा खाता है?' तो जैसे वह पठान खाता था, वैसे ही तो अपनी स्थिति नहीं। यह कार्य

करना है, करते ही रहेंगे। उसका अपने हृदय में धारण होने के उपरांत भी अपने को इसका पता भी रहे कि आखिर हमें इस रास्ते पर जाना है। हमारा ध्येय यह है, हमें करना है।

इसका विचार करें, संक्षेप में तो इतना ही कहा जा सकता है कि अपनी प्रार्थना और अपनी प्रतिज्ञा इन दोनों में ही हमें क्या करना है, इसका विवेचन किया गया है। थोड़ा सा हम अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करें तो उसमें स्पष्ट शब्दों में यह बात कहते हैं कि हम अपनी हिंदू राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति करना चाहते हैं। किंतु इसके साथ एक चीज और हमने लगा दी है। वह यह है कि हिंदू समाज, हिंदू धर्म और हिंदू संस्कृति का संरक्षण करते हुए। यानी हमने हिंदू राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति और हिंदू समाज, हिंदू धर्म और हिंदू संस्कृति इनका संरक्षण उन दोनों को एक साथ जोड़कर रखा है। यह बात हमने नहीं कही कि हम सर्वांगीण उन्नति करना चाहते हैं, तो फिर चाहे जैसे हो। अतः धर्म को छोड़ करके उन्नति हो तो भी हम उन्नति करेंगे, अपनी संस्कृति को समाप्त करके भी उन्नति प्राप्त हो तो भी हम करेंगे। अपने समाज की चिंता न करें और अपने राष्ट्र की उन्नति हो जाए अर्थात् समाज को छोड़कर भी हम उन्नति करेंगे। ऐसी बात हमने नहीं कही।

सच्चाई तो इसके साथ दूसरी है और दूसरी यह है कि हिंदू राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति, इसकी व्यवस्था करके स्वरूप का थोड़ा बहुत उदाहरण अर्थात् हमने हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति का संरक्षण इसके द्वारा कर दिया। क्योंकि उन्नति की कल्पना हमें इसके साथ हो जाती है। जैसे गणित में किसी बिंदु को बताना पड़ता है तो किसी भी बिंदु को बताते समय उसके बारे में बताया जाता है कि यह बिंदु फलाना, फलाना है या फिर भूगोल में किसी भी स्थान को बताते समय लोग उसके अक्षांश और देशांतर बताते हैं किस अक्षांश और देशांतर के ऊपर यह फलाना नगर बसा हुआ है, तो ग्लोब के ऊपर उस स्थान को तुरंत बता देंगे कि यह वह स्थान है, जहाँ पर वह नगर बसा हुआ है। वैसे ही किसी चीज को बताना हो तो कई चीजें हो सकती हैं, जिसके द्वारा उसकी व्याख्या की जा सकती है। वैसे ही भावात्मक दृष्टि से ही व्याख्या करनी हो कि अपनी उन्नति क्या है? तो अपनी उन्नति में अपने धर्म तथा संस्कृति का संरक्षण छिपा है।

इस प्रकार जब हम प्रार्थना करते हैं तो भगवान् से यही कहते हैं, 'परम वैभव नेतु मेतत् स्वराष्ट्रम्' कि 'हे भगवान्! हमें इस बात का सामर्थ्य दें, हमें इस बात का आशीर्वाद दो कि हम अपने राष्ट्र को परम वैभव पर ले जाने के लिए समर्थ हों।' यह परम वैभव सर्वांगीण उन्नति, यह हमने वही बात कही है, उनको जैसा अपनी प्रतिज्ञा में इस बात को कह दिया है कि हमारी यह सर्वांगीण उन्नति अपनी संस्कृति और अपना धर्म और अपना समाज इसकी रक्षा करते हुए होगा, वैसी ही बात हमने यहाँ भी कह दी और यहाँ पर हमने खाली इतना ही नहीं कहा कि हम अपने राष्ट्र को परम वैभव पर ले

जाएँ, किंतु आशीर्वाद भी माँगा है। यह आशीर्वाद जिसके लिए माँगा है, उसके साथ हमने दो चीज़ और माँग ली हैं—पहली तो यह माँगी है कि हमारी संगठित कार्य शक्ति इस राष्ट्र को परम वैभव पर ले जाए। दूसरी बात हमने यह माँगी कि 'विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्' कि 'इस राष्ट्र के धर्म का संरक्षण करते हुए हमारी संगठित कार्य शक्ति राष्ट्र को परम वैभव पर ले जाने में समर्थ हो।'

यानी वास्तव में इसमें हमने तीनों चीज़ें माँगी हैं। पहली चीज़ तो हमने परम वैभव पर ले जाने की अपने हृदय की इच्छा है, यह आकांक्षा हमने प्रकट कर दी है। दूसरी बात इसमें यह कि अपने राष्ट्र के धर्म का संरक्षण करते हुए हम परम वैभव पर जाएँ, इसमें हमारे परम वैभव की कल्पना क्या है? हम किसे परम वैभव कहेंगे? इसको हमने स्पष्ट कर दिया है। हमने यह बात साफ़ बता दी है कि राष्ट्र का परम वैभव तभी है, जबकि यहाँ पर धर्म का संरक्षण होगा। अगर धर्म का संरक्षण नहीं हुआ तो राष्ट्र का परम वैभव नहीं है। जिस जगह धर्म नहीं वहाँ पर वैभव नहीं है। हमें वही वैभव चाहिए, जिसमें हमारा धर्म बचा रहेगा। बना रहेगा, धर्म का संरक्षण रहेगा। इसी के आधार पर हमें वह वैभव प्राप्त करना है और तीसरी चीज़ इसके साथ एक और कह दी है, जो कि मैं समझता हूँ, काफ़ी महत्त्व की है और वह महत्त्व की चीज़ यह है कि जो वैभव हमें मिलेगा—धर्म का संरक्षण करते हुए हमें जो वैभव प्राप्त होगा, वह भगवान् से वरदान माँग रहे हैं। भगवान् की कृपा से हमें मिल जाए, ऐसी बात नहीं। क्योंकि कृपा से यदि मिल भी गया तो भगवान् से मिले हुए वैभव का उपयोग कर सकें, उसको सँभालकर रख सकें, उसका भी तो हमें सामर्थ्य चाहिए। और इसलिए हमने इसके साथ तीसरी बात माँगी है हमारी संगठित कार्यशक्ति यानी हमने इस बात को बता दिया है कि संगठित कार्यशक्ति के बिना यह वैभव प्राप्त नहीं हो सकता। हमारे संगठन के अभाव में यदि वरदान के रूप में यह मिल भी गया तो वह वैभव हमारे लिए लाभदायक नहीं होगा। क्यों लाभदायक नहीं होगा? यह कैसे होगा? जैसे उदाहरण के लिए किसी को जो कि रोगी हो, खाना खाता है, ठीक से पचता नहीं, परंतु फिर भी अपने मन में तो भोजन की लालसा रहती है, इसलिए यदि वह लालसा करके कि मैं आज रबड़ी खाऊँगा और रबड़ी की लालसा करे और किसी से वरदान के रूप में रबड़ी माँगे, तो रबड़ी तो उसे मिल जाएगी, परंतु वह बीमार है, बीमार होने के कारण हज़म कर सकता है कि नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। यह तो हो सकता है कि यदि उसके पास रबड़ी के लिए पैसे नहीं हैं तो उसे दिया जा सकता है, यदि उसे लाने के लिए पैरों का सामर्थ्य नहीं है तो खरीदकर भी लाया जा सकता है। परंतु जहाँ तक तीसरी बात है कि बीमार होने के कारण रबड़ी पचा नहीं सकता। जब शरीर में शक्ति आएगी, तभी तो उसे पचा सकेगा। समझदार आदमी यह कहेगा कि मेरे शरीर में बल आ जाए और वास्तव में यदि शरीर में

बल आ गया और शरीर के बल के साथ-साथ खाने की रबड़ी भी माँगी। रबड़ी जो खाने की वस्तु होती है तो बल ग्रहण किए बिना उससे लाभ के स्थान पर हानि ही होगी। और इससे हमने सीधी सी बात मानी है कि अपना एक ध्येय है परम वैभव पर पहुँचना। हमने यह बताया है कि हमारे ध्येय की व्याख्या यह है कि धर्म का संरक्षण होगा। इसके साथ तीसरी बात यह भी है कि संगठित कार्यशक्ति द्वारा ही वह वस्तु प्राप्त होगी और इन तीनों चीजों को अच्छी प्रकार से समझकर चलना चाहिए।

वास्तविकता यह है कि तीनों में एक बहुत बड़ी एकरूपता, एकात्मता है। एक प्रकार से यह बात कही है कि तीनों एक ही चीज को प्रकट करने के अलग-अलग नाम हैं। शब्द अलग-अलग हैं, चाहे हम यह कहें कि हम हिंदू राष्ट्र को परम वैभव पर पहुँचाना चाहते हैं अथवा हिंदू धर्म की रक्षा करना चाहते हैं, और चाहे कहें कि हम हिंदू समाज का संगठन करना चाहते हैं। तीनों में से एक ही बात पैदा होती है, क्योंकि हिंदू समाज का संगठन बिना हिंदू धर्म का आधार लिये हो नहीं सकता और बिना हिंदू धर्म के आधार और हिंदू संगठन के हिंदू राष्ट्र को परम वैभव प्राप्त नहीं हो सकता। तीनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। आप इनमें से किसी एक को भी कह दें तो भी काम चल जाता है, इसीलिए कभी-कभी अपने लोग जो मौक़ा आता है, उसी में इसी बात को बतला देते हैं।

किसी ने पूछा, आप क्या करते हैं? संघ क्या करता है? तो कह दिया, संघ संगठन करता है, संगठन करते हैं तो हम जानते हैं कि संगठन के अंतर्गत बाक़ी सब बातें आ गईं। संगठन के अंतर्गत धर्म आ गया। जहाँ धर्म नहीं वहाँ संगठन नहीं। अधर्म के आधार पर संगठन थोड़े ही होता है। संगठन और राष्ट्र का संगठन, समाज का संगठन तो अधर्म के आधार पर नहीं होगा। चार चोर तो थोड़े दिन के लिए अधर्म के आधार पर महीने, दो महीने, चार महीने के लिए संगठन बना सकते हैं। अस्थायी काम कर सकते हैं, परंतु जो संगठन स्थायी होगा, वह तो वही संगठन होगा, जिसमें धर्म का स्थान होगा। बिना उसके नहीं हो सकता।

कोई कहे कि आप हिंदू राष्ट्र की प्रतिष्ठा की बात करते हैं, आप उन्नति की बात करते हैं, तो यह भी सच्चाई है कि बिना धर्म के हिंदुत्व तो हो नहीं सकता। यह तो हिंदुत्व है, यह कोई हिंदू नाम नहीं है। हम अपने को हिंदू कहते हैं, परंतु इस हिंदू नाम के पीछे कुछ भाव भी हैं, संस्कृति भी है। हिंदू नाम के पीछे और भी गुण हैं, केवल नाम ही नहीं है। केवल नाम रखने से तो काम नहीं बनता। उस नाम के पीछे जिस चीज को लेकर हिंदुत्व खड़ा हुआ है, यानी हिंदुस्थान के चालीस करोड़ लोग, उसकी एकता में एक धर्म है। यदि वह धर्म समाप्त हो जाए तो हम यह नहीं कहेंगे कि हम हिंदू हैं, यानी हिंदुस्थान के चालीस करोड़ लोगों की एकता होगी, जो उसे हिंदू धर्म समझकर उसकी

आचार परंपरा को ग्रहण करके चलेंगे। यदि वे हिंदू धर्म के ध्येय को समझकर चलेंगे तब तो कहा जा सकता है कि वास्तव में उन चालीस करोड़ लोगों में एकता है और अगर वे इस प्रकार के लोग नहीं रहे तो यह हो सकता है कि हिंदुस्थान में रहनेवाले चालीस करोड़ मानवों में एकता हो जाए और ऐसे चालीस करोड़ मानव, जिन्हें दुनिया हिंदू कहकर पुकारेगी अपने को हिंदू कहलाने में गौरव अनुभव करेंगे। हिंदू कहकर ही चलते हैं। परंतु बाकी हिंदू क्या है, इसका उन्हें किसी प्रकार से पता नहीं। तो यह जो चीज़ है, इसे हम अच्छी तरह से समझकर चलें। हम लोग किसी न किसी प्रकार चालीस करोड़ लोग इकट्ठे हो जाएँ, मात्र इतना नहीं चाहते। हम यह चाहते हैं कि चालीस करोड़ लोग संगठित हों और हमें विश्वास है कि यह संगठन हिंदू धर्म के आधार पर ही हो सकता है और इसी के आधार पर हमारी प्रगति हो सकती है।

इन तीनों चीज़ों को एक साथ लेकर चलना है। इन तीनों में से एक को दूसरे से हटाकर नहीं चल सकते। क्योंकि अगर कोई कहे कि हम अपने शरीर का विकास चाहते हैं तो शरीर के विकास के साथ हम आत्मा की उपेक्षा नहीं कर सकते, आत्मा के बारे में हम भूल नहीं सकते। अगर हम अपनी श्रेष्ठता चाहते हैं, अपनी प्रगति चाहते हैं, यह ध्यान में रखकर चलना होगा कि हमारे शरीर के अंदर आत्मा है। अगर यह आत्मा निकल जाए, तो यह शरीर निर्जीव हो जाएगा। संसार को केवल शरीर दिखता है, आत्मा नहीं दिखती। विकास भी केवल शरीर का ही दिखता है, आत्मा का नहीं। मान लीजिए, किसी का नाम राम प्रसाद है तो इस राम प्रसाद नाम वाले व्यक्ति के बारे में सामान्यतः हम यही कहेंगे कि यह जो शरीर दिखता है, इसे हम राम प्रसाद कहते हैं। जब तक उसके अंदर आत्मा है, तब तक राम प्रसाद नाम भी मौजूद है। हम उसे राम प्रसाद नाम से पुकारते हैं। वह हमारी आवाज़ सुनता है, प्रत्युत्तर भी देता है। काम करता है। उसके अंदर चैतन्य है। सबकुछ है। किंतु जिस दिन उसकी आत्मा चली गई, उस दिन आप उसे राम प्रसाद पुकारते रहिए, वह आपकी आवाज़ नहीं सुनेगा। उस दिन उस शरीर की कोई क्रीमत् नहीं।

इसलिए आत्मा की ज़रूरत है और दूसरी बात हम यह भी जानते हैं कि यह आत्मा काम कैसे करे तो आत्मा को एक स्वरूप देने के लिए शरीर भी ज़रूरी है। मान लीजिए, अपने हाथ हैं, पैर हैं, नाक हैं, कान हैं—ये जितने भी अंग हैं, इन अंगों के द्वारा ही आत्मा काम करती है और अगर यह कहा कि नहीं, हमको इनकी कोई आवश्यकता नहीं, केवल आत्मा चाहिए। आत्मा ही सबसे बड़ी चीज़ है। शरीर का क्या, शरीर तो नश्वर है, परंतु नश्वर शरीर होने के बाद भी आत्मा इसी शरीर के द्वारा काम करती है। अगर यह शरीर नहीं रहा तो आत्मा क्या करेगी? तो जिस प्रकार आत्मा मूल्यवान है, उसी प्रकार इस आत्मा के द्वारा काम करने के लिए शरीर भी मूल्यवान है, यह हमारा

धर्म है। धर्म के साथ हमारा समाज भी है। तो समाज की जो आत्मा है, वह समाज के द्वारा अपने आपको व्यवहार में प्रकट करती है। वास्तव में समाज धर्म के आधार पर ही काम करता है और काम करने से स्वाभाविक रूप से जो कुछ प्राप्त होता है, वह उचित है। यही परम वैभव होता है। इन दोनों का जहाँ पर मिलन हो जाए, जैसे शरीर और आत्मा का मेल होने के बाद यह शरीर आत्मा के अनुसार ही काम करे, जब शरीर आत्मा का मूल्य रखता है, आत्मा की भावना को ध्यान में रख करके, यह काम करता है तो यह काम वही होता है, जिसमें उसकी उन्नति है। फिर कोई अड़चन नहीं रहती। अड़चन तो तभी होती है, जब आत्मा और शरीर के अंदर किसी प्रकार का अंतर आकर खड़ा हो जाए।

जब इन दोनों में मेल नहीं रहता, शरीर यदि आत्मा के प्रतिकूल काम करने लगे, आत्मा की अवहेलना करने लगे, तो फिर वे सब क्रियाएँ उन्नति की ओर ले जानेवाली क्रियाएँ नहीं होंगी, वे अवनति की ओर ले जानेवाली क्रियाएँ होंगी। जबकि मन की इच्छा से ही काम करने लगे, जैसे अगर ज़बान चटपटा चाहती है तो बाकी विचार किए बिना यदि उसी की इच्छा के काम करने लगे तब ग़लत काम होगा। तो इन सब बातों का विचार कर यदि काम किया जाएगा तो वह काम ठीक होगा।

मैंने यह धर्म शब्द का जो प्रयोग किया है। मैं समझता हूँ कि उससे धर्म क्या है, इसकी थोड़ी बहुत कल्पना आपको हो जानी चाहिए। यह शब्द ही ऐसा है कि इसका प्रयोग बहुत होता है और इतना प्रयोग होता है कि आज धर्म शब्द के कई जगह अर्थ के अनर्थ भी हो गए हैं। बहुत बार तो धर्म के अंतर्गत जो चीज़ें नहीं आती हैं, वह भी धर्म के नाम पर लागू कर दी जाती हैं। इतना भी हो गया है कि धर्म एक व्यापक शब्द होने के बाद भी लोग जो छोटी-मोटी चीज़ें हैं, उनके जो छोटे-छोटे अंग हैं, उन्हीं को धर्म समझने लगे हैं। क्योंकि कई बार लोग धर्म का इतना ही अर्थ लगाते हैं कि धर्म यानी मंदिर, मसजिद, गिरजा ऐसे ही अलग-अलग धर्म हैं। यदि कोई व्यक्ति मंदिर में जाता है तो बड़ा धर्मात्मा है। मंदिर में जाना ठीक है। यह धर्म का ही एक अंग है। परंतु मंदिर में जाना ही धर्म नहीं। कोई समझता है केवल छुआछूत करना, यह धर्म है। किंतु वह धर्म नहीं है। धर्म वास्तव में क्या है? उसको भी अपने को थोड़ा समझने की ज़रूरत है। इसलिए समझने की ज़रूरत है कि धर्म के नाम पर ऐसी बहुत सी चीज़ें चल गई हैं कि जो वास्तव में धर्म नहीं है।

अंग्रेज़ी का जो शब्द है रिलीजन। उस शब्द ने बहुत बड़ी ग़लती कर दी। क्योंकि अंग्रेज़ जब यहाँ पर आए और यहाँ पर उन्होंने धर्म शब्द सुना। धर्म का वे अनुवाद करने लगे। तो बेचारों के सामने यह कठिनाई आ गई कि धर्म का क्या अनुवाद करें। फिर धर्म जैसा व्यापक शब्द, धर्म जैसी कोई कल्पना, यह अंग्रेज़ों के यहाँ पर है नहीं। जब उनकी

कुछ समझ में नहीं आया तो उन्होंने धर्म का अनुवाद कर दिया। यह अनुवाद की गलती है। अनुवाद के कारण ऐसी बहुत सी गलती हो जाती हैं। ऐसे ही अपने यहाँ पर नाते-रिश्ते जितने भी होते हैं, उनमें सबके लिए अलग-अलग शब्द हैं। इन अलग-अलग शब्दों में जैसे बहनोई और साले दो अलग-अलग शब्द हैं। परंतु अंग्रेजी भाषा में दोनों के लिए एक ही शब्द है, ब्रदर इन लॉ। कई बार तो मैं जाता हूँ और लोग परिचय कराते हैं कि ये मेरे ब्रदर इन लॉ हैं तो मेरे सामने बड़ी समस्या हो जाती है कि ब्रदर इन लॉ है तो क्या है? उनके साले हैं कि उनके जीजा हैं? दोनों में फ़र्क़ है। आखिर अपनी पद्धति में तो बहुत बड़ा अंतर भी हो जाता है। क्योंकि अगर जीजा हुआ तो वह मान्य होता है, उसका आदर सत्कार करना चाहिए। और साला हुआ तो वह साले के लिए ये मान्य हो जाता है। तो दोनों तरफ़ इतना अंतर होने के बाद भी अंग्रेजी में एक ही शब्द है। नानी हो या दादी हो, कहेंगे ग्रैंड मदर ही। अपने यहाँ तो नानी और दादी ज़मीन-आसमान का अंतर है, परंतु वहाँ नानी-दादी दोनों के लिए ग्रैंड मदर ही प्रयोग होता है। वहाँ पर आपकी चाहे भाभी हो या साली हो, चाहे सलहज हो, सबके लिए सिस्टर इन लॉ एक शब्द का प्रयोग होता है। ऐसे अंग्रेजी में अनेक शब्द हैं। इनके कारण गड़बड़ी हो जाती है। फिर वह अनुवाद में गड़बड़ हो जाती है। इसलिए अंग्रेज़ लोग जब यहाँ पर आए तो उन्होंने 'धर्म' शब्द का अनुवाद कर दिया—रिलीजन यानी पंथ। पंथ, पूजा करने की पद्धति यानी संप्रदाय। जब उन्होंने अनुवाद कर दिया तो हम भी उसका प्रयोग करने लगे और कहने लगे कि यही धर्म है। पर अपने को धर्म शब्द का यथार्थ रूप समझना चाहिए।

हम लोग हिंदू धर्म की रक्षा की बातें करते हैं तो वह कोई रिलीजन नहीं है। पर बहुत बार तो हिंदू धर्म का अनुवाद भी लोग यही कर देते हैं। यहाँ पर वैष्णव हैं, यहाँ पर सिख हैं, यहाँ पर जैन हैं, यहाँ पर शैव हैं। यहाँ पर लिंगायत हैं। वास्तव में धर्म में अनेक हैं, अनेक मत हैं, अनेक संप्रदाय हैं, अनेक प्रार्थना की पद्धतियाँ हैं, और उन सबको मिलाकर हिंदू धर्म है। फिर भी इन सबको मिलाने के बाद भी जिसे धर्म कहते हैं, वह एक ही है। यानी वह शैव और वैष्णव, सिख, लिंगायत और जैन उनका धर्म वास्तव में अलग नहीं है। मत अलग हैं, पंथ अलग हैं। धर्म एक ही है। वह धर्म सबके लिए लाभकर हो, मोक्ष का मार्ग उसके द्वारा प्रशस्त होता है।

धर्म की जो साधारण व्याख्या की गई है, वह व्याख्या है कि 'धारणास्य धर्म विज्ञाति', राष्ट्र चिंतन—'धारणात धर्मइत्याहुः' कि धारण से धर्म है, यानी जिस चीज़ के कारण, जिस शक्ति के कारण कोई वस्तु टिके, वह धर्म है और इसलिए संपूर्ण प्रजा, जनसमाज, और इससे भी अगर आगे क़दम बढ़ाना हो तो सृष्टि, इसकी धारणा धर्म के द्वारा होती है। जिससे यह टिके वह धर्म, यदि हट जाए तो वह चीज़ टिकेगी ही नहीं। वह समाप्त हो जाएगी। इसीलिए अपने यहाँ पर धर्म का प्रतीक इस नाते से बैल बताया

गया है और धर्म के चरण बताए गए हैं। अब बैल के जैसे चार पैर हैं, उन चार पैरों के सहारे पर बैल टिकता है। क्योंकि जो स्थिति है और उसकी स्थिरता है, वह इन चार पैरों के सहारे पर है। इसलिए कहा है कि जैसे-जैसे उसका एक-एक कारण खत्म होता जाता है, उसी प्रकार धर्म का एक-एक पैर खत्म हुआ तो गड़बड़ होती जाती है। कल्पना कीजिए कि किसी बैल का एक पैर टूट जाए, तो वह बैल कैसे चलेगा। कितनी कठिनाई होगी। उसको खड़े रहने में कठिनाई, उसको चलने में कठिनाई, और अगर दो टूट जाएँ तो और भी कठिनाई। तीन पैर टूट जाएँ, तो शायद खड़े रहने की भी उसकी स्थिति नहीं रहेगी और चारों टूट जाएँ तो बिल्कुल गिर पड़ेगा। बैल ठीक प्रकार से खड़ा रहे, ठीक प्रकार से चल सके, उसके लिए जैसे उसके चार पैर हैं, वैसे ही धर्म के भी चार पैर, जिन पर वह टिका रहता है।

अब लीजिए शरीर है। शरीर टिकेगा तो काम करेगा। शरीर जिस पर टिकेगा, वह शरीर का आधार है। शरीर को टिकाने के लिए भोजन जरूरी है। अगर भोजन नहीं करेंगे तो शरीर नष्ट हो जाएगा। इसलिए शरीर का धर्म क्या है? तो उसमें से एक चीज़ कि भोजन करना शरीर का धर्म है। कौन-सा भोजन करना? जो स्वास्थ्यवर्धक हो, वह भोजन करना शरीर का धर्म है। फिर अकेला भोजन ही नहीं, कौन-सा भोजन करना, किस वस्तु में सब चीज़ आ गई। इसलिए उसके नियम बनाए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर एक स्वस्थ मनुष्य का भोजन एक बीमार व्यक्ति के भोजन से भिन्न है। इसलिए यहाँ पर कोई एक निश्चित नियम नहीं बना सकते। यह तो हो सकता है कि एक के लिए जो धर्म है वह दूसरे के लिए अधर्म हो जाएगा। यानी जो आदमी स्वस्थ है, अच्छा है, हट्टा-कट्टा है, वह आराम के साथ उड़द की दाल खाता है और कहीं खीर बनी तो वह उसे आनंद के साथ खाता है तो कोई आपत्ति नहीं। अच्छी चीज़ है, खानी चाहिए। परंतु वही चीज़ कोई बीमार आदमी खा ले तो वह अधर्म हो जाएगा। क्योंकि बीमार आदमी के शरीर के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से वह भोजन करना गलत है। इसलिए कई बार गलती इसमें भी हो जाती है कि आदमी इस बात का विचार ही नहीं करता। वह एक बार किसी ने बता दिया कि यह धर्म है, उसी पर चलता है। फिर अपने यहाँ पर भी यह बहुत बड़ी अव्यवस्था और गड़बड़ हुई कि लोग कोई शब्द कहीं भी किसी भी परिस्थिति में किसी ने कह दिया और कहीं पर भी संस्कृत का श्लोक आ गया तो समझते हैं कि यह बात कह रहे हैं तो यह बिल्कुल सही है। इसमें बड़ी अड़चन आ जाती है। क्योंकि एक रोग के लिए जो दवा लागू होगी, वह दूसरे के ऊपर थोड़े ही लागू होती है। जैसा कहते हैं कि किसी गाँव में बेचारा एक साधारण सा आदमी रहता था, ज़्यादा पढ़ा-लिखा भी नहीं था। उसे बुखार आ गया। उसकी माँ ने उसका हाथ देखा, उससे कहा, 'तुझे बुखार आ गया है।' उसने कहा, 'बुखार क्या होता है?' 'देख तेरा

हाथ गरम है, अगर बुखार रहता है तो हाथ गरम हो जाता है।' यह कहकर माँ ने उसे लिटा दिया। रात भर तो बुखार खत्म हो गया और दो-तीन दिन के बाद उसका खुरपा धूप में पड़ा रह गया और जब वह वहाँ गया तो उसने देखा 'अरे! यह खुरपा तो धूप में पड़ा है और गरम है, शायद इसे बुखार आ गया है।' जोर-जोर से बोला, 'माँ, खुरपा को बुखार आ गया है।' माँ ने कहा, 'बेवकूफ, खुरपा को बुखार नहीं हुआ है।' लेकिन वह माना नहीं, दौड़ा-दौड़ा वैद्यजी के पास गया और वैद्यजी से बोला, 'वैद्यजी, इस खुरपा को बुखार आ गया है।' वैद्यजी मन ही मन हँसने लगे। उन्होंने उससे कहा, 'ठीक है, मैं दवा बताता हूँ। इसे एक रस्सी में बाँधकर कुएँ में लटका दो, ठीक हो जाएगा।' उसने ऐसा ही किया। जब खुरपा ठंडा हो गया तो वह कहने लगा, 'वाह! वाह! वैद्यजी ने कैसा अच्छा इलाज बताया।' अब थोड़े दिनों बाद ऐसा मौका आ गया कि उसकी बूढ़ी माँ को बुखार आ गया और उसका हाथ जलने लगा। शरीर जलने लगा। तो लोगों ने कहा कि माताजी को बुखार आ गया है। वैद्यजी के पास जाओ, दवा ले आओ। उसने कहा, 'वैद्यजी के पास जाने की क्या जरूरत है। मेरे पास ही इलाज है। मैं अभी ठीक कर दूँगा और ऐसा कहकर उसने अपनी माँ को पकड़कर रस्सी से बाँधा और कुएँ में लटका दिया। उसकी माँ बहुत चिल्लाई। उसने समझा, खुरपा को भी जब पानी में डाला तो पानी में गिरते ही उसकी आवाज़ हुई थी। बुखार ठीक हो रहा है। उसको दो-तीन डुबकी लगवाई। तो जैसे लोग कई बार गलती कर लेते हैं, वह यह नहीं समझते कि हर स्थिति में धर्म अलग होता है। धर्म का अर्थ है धारणा। अब शरीर की धारणा है, इसके लिए भी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में अलग-अलग धर्म होते हैं।

एक देश और काल पर जो धर्म लागू होगा, वह दूसरे देश और काल पर लागू नहीं होगा। उदाहरण छोटा-सा है जैसे कि हम लोग यहाँ पर बैठे हैं। कितनी गरमी है यहाँ पर? और कई स्वयंसेवक अपने कपड़े उतारकर बैठे हैं और लगता है कि जो कपड़े पहनने हैं, उनको भी उतार दिया जाता तो अच्छा रहता। किंतु कल्पना कीजिए कि आप जो कहीं नैनीताल में होते तो क्या करते? वहाँ पर क्या इसी प्रकार सब कपड़े उतारकर बैठ जाते। और इस तरह से वहाँ पर कपड़े उतारकर बैठते तो क्या होता? कहीं नैनीताल से ऊपर होते तो क्या करते। पहाड़ों पर बद्रीनाथ की यात्रा करने गए होते तो क्या करते। वहाँ पर इच्छा होती कि जितने भी कपड़े हैं, सब पहन लें। यहाँ की तरह क्या वहाँ आराम से सो जाते? परंतु आखिर में वही बात है कि अपना शरीर भी यही और देश भी यही है। किंतु यह जो स्थिति है, काल के हिसाब से बदलती है, स्थान के हिसाब से बदलती है। आज की जो स्थिति है, आज आप यहाँ आराम के साथ बैठे हैं। अगर दिसंबर का महीना होता तो क्या होता? हमारे एक सज्जन मित्र एक बार गरमी के दिनों में लखनऊ गए। वहाँ उन्होंने देखा कि लखनऊ के जो पुराने नवाब वहाँ रहते हैं, वह

अपना मलमल का कुरता पहनकर, टोपी लगाकर शाम के समय इत्र वगैरह लगाकर आराम से घूमते हैं। उन्होंने इनसे कहा, तुम तो बिल्कुल गाँव के आदमी हो। तुम्हें क्या मालूम, घर के बाहर इसी तरह घूमना चाहिए। उसने भी एक कुरता सिलवाया और इसी तरह घूमता रहता। अब दो-तीन महीने रहते-रहते जाड़ा आ गया और गाँव लौट गए। गाँव में वापिस आए तो सवेरे उसने सोचा कि गाँव के लोग हैं। इन्हें कुछ पता नहीं, लखनऊ में तहजीब क्या होती है? इसीलिए उसने सुबह के पाँच बजे ही अपना कुरता निकालकर पहना, इत्र वगैरह लगाकर टहलने की सोची। गाँव का बूढ़ा शॉल ओढ़कर लेटा था। उसने पूछा, 'बेटा, कहाँ जाते हो?' उसने कहा, 'घूमने जा रहे हैं।' बूढ़े ने कहा, 'ऐसे जा रहे हो तो बीमार पड़ जाओगे।' उसने कहा, 'वाह! बीमार कैसे हो जाएँगे?' और आखिर में उसे निमोनिया हो गया और शॉल ओढ़ाकर लिटा दिया और सारी मुसीबत गाँव वालों को झेलनी पड़ी। तो उसका यह हाल हो गया, क्योंकि उसने काल का विचार नहीं किया।

देश और काल का विचार करके हमारे शरीर की धारणा करने के लिए जो नियम हैं, उनका विचार करें। जो अंतरिक्ष की यात्रा करने जाते हैं, वे साँस लेने के लिए अपने साथ ऑक्सीजन के सिलेंडर ले जाते हैं, क्योंकि वहाँ पर ऑक्सीजन नहीं होती। उससे काम चलाते हैं। वहाँ पर शरीर को बिल्कुल बोझा नहीं मालूम होता, जिसको कहते हैं भारहीनता, इस प्रकार की स्थिति वहाँ पर हो जाती है। ऐसे समय में कैसे व्यवहार करना चाहिए, इसका विचार करना पड़ता है। जीवन में एक परिवर्तन करना पड़ता है। धर्म यानी शरीर की धारणा और शरीर की धारणा के नियम तो बदलते चले जाएँगे। समय के अनुसार बदलेंगे स्थिति के अनुसार बदलेंगे, ऋतु के अनुसार बदलते चले जाएँगे। कोई स्थायित्व नहीं है। परंतु जैसे कि शरीर की धारणा के नियम हैं तो जो यह शरीर दिखाई देता है, इसकी धारणा नहीं। शरीर के साथ-साथ आत्मा है, मन है, सबकी धारणा होनी चाहिए और उन सबका मेल बिठाया जाए। वास्तव में धर्म का काम क्या है? धारणा करना और धारणा करके यह जो शरीर, मन, बुद्धि—इन सबके बीच में एक मेल बैठाना। सामंजस्य उत्पन्न करना।

क्योंकि कई बार देशकाल के अनुसार या फिर एक ही देशकाल में अनेक चीजें हैं, शरीर के अंग जिसमें एक-दूसरे का विरोध हो सकता है। जैसे कि जिह्वा है, जिह्वा को रसना कहते हैं। वह रसास्वादन करना चाहती है। पर पेट और जीभ के बीच में कभी-कभी विरोध हो जाता है। जीभ तो चाहेगी थोड़ा सा चटपटा खाना चाहिए और पेट कहेगा नहीं खाना चाहिए। इन दोनों के बीच में कहीं न कहीं मेल बिठाना पड़ेगा। किसकी ज़रूरत बड़ी है—यह जो जीभ की माँग है, यह ग़लत है कि ठीक है—इसका मेल बिठाना होगा। इस मेल को बिठाने वाले लोग चाहिए। मन के ऊपर जिसका क़ाबू

रह सके। नहीं तो अगर जीभ का विचार कर लिया, बाक़ी नहीं किया तो उससे नुक़सान हो सकता है। आज और कल के बारे में आदमी कई बार ठीक से सोच नहीं पाता। आज जो हम कह रहे हैं, इस समय जो आनंद है—वह हमारे लिए कल तक़लीफ़ का कारण भी हो सकता है। परंतु यह जो आज का आनंद और कल की तक़लीफ़ है, उन दोनों में कोई मेल बिठाने वाला चाहिए। यह बीच में तारतम्य बिठाने वाला कोई चाहिए जिससे कि आपस में विरोध आकर न खड़ा हो जाए। इस विरोध के कारण कुछ गड़बड़ न हो जाए तो इसके लिए किसी न किसी चीज़ की आवश्यकता रहती है, जिससे यह गड़बड़ न हो। हम लोग सड़क के ऊपर चलते हैं तो सड़क पर चलने वाले सँभलकर चलें तो भी हो सकता है चौराहे पर एक मोटर इधर से आई, एक उधर से आई और आपस में टकरा सकती हैं। तो वह मोटर टकराए नहीं, इसके लिए चौराहे पर किसी न किसी एक सिपाही की ज़रूरत रहती है। वह हाथ देता रहता है। लोगों को बताता है कि अब की इधर की मोटर निकल जाए। इधर की निकल गई तो दूसरी तरफ़ वालों को बताता है। आप इधर से निकल जाइए तो इस सिपाही का काम क्या है? सिपाही का काम यह है कि सड़क के ऊपर इधर-उधर जो मोटर चलती हैं, वे टकरा न जाएँ, उनकी व्यवस्था बनी रहे। उनके लिए व्यवस्था बनाने वाला यह सिपाही है। वैसे ही शरीर के अंदर व्यवस्था बनी रहे, इसके लिए कुछ-न-कुछ चाहिए। यदि शरीर की आवश्यकता टकराती रही तो उससे शरीर के अंदर अड़चन पैदा हो जाती है। अब रेलगाड़ी चलती है। उसकी भी व्यवस्था के लिए नियम बनाने पड़ते हैं—जब तक सिग्नल गिराया नहीं जाएगा तब तक रेल अंदर नहीं जाएगी। अगर किसी ने कहा सिग्नल की ज़रूरत क्या है। क्या नियम बना रखा है? क्या बेकार की चीज़ है? अगर कोई ड्राइवर यह सोचे मैं इंजन के ऊपर बैठा हूँ, मैं इंजन का मालिक हूँ तो चाहे जिस लाइन पर चला सकता हूँ तो वह ग़लत है। यह सिग्नल वाला, उसे क्यों तनख्वाह मिलती है? न इसे कुछ तनख्वाह मिलती है, न इसे कुछ ज्ञान है। मैं पढ़ा-लिखा हूँ, मुझे ज्ञान है। मैं इसकी बात नहीं मानूँगा। तो न केवल रेलगाड़ी को ही नुक़सान पहुँचेगा, बल्कि उसकी स्वयं की व अन्य लोगों की भी जान जाएगी। तो जैसे एक सिग्नल का विचार करना होता है और बाक़ी के नियम भी बनाने पड़ते हैं। फिर देश में गाड़ी चलती है। ये जो नियम बनाए थे, रेलगाड़ियों के लिए धर्म है।

इसी प्रकार अपने शरीर के नियम धारण कर सकें, इसके लिए अपना धर्म है। अब शरीर के साथ एक व्यक्ति है। उस एक व्यक्ति का मन, शरीर, बुद्धि और उसकी सारी इंद्रियाँ इसमें सामंजस्य बैठाना है। तो वास्तव में धर्म का क्या काम है, सामंजस्य बैठाना। अब यह सामंजस्य दोनों प्रकार से बैठाया जाता है। कुछ सामंजस्य बिठाने के लिए नियम बनाए जाते हैं और कुछ सामंजस्य जो बिठाया जाता है कि कितने भी नियम बना

दीजिए, पर इसके साथ अंदर की भावना भी तो होती है, इच्छा भी तो होती है। कितने भी नियम बनाए जाएँ, किंतु वे सब नियम जीवन की सभी चीज़ों को लेकर तो नहीं चल सकते। अनेक ऐसी स्थितियाँ आती हैं कि जब आपको नियम तोड़ने पड़ते हैं और इसीलिए अपने यहाँ पर यह कहा गया है कि स्मृति शास्त्र है, श्रुति सबकुछ है। पर अगर ऐसी स्थिति आ जाए तो क्या करेंगे? तो अपने मन से पूछेंगे और मन आपको गवाही देगा, मन आपको बताएगा। कहा भी है, 'मनः पूतम् समाचरेत्' आप उसके अनुसार व्यवहार करिए। पर हर एक का मन ऐसा नहीं जो इस प्रकार का बन जाए कि ठीक-ठीक निर्णय ले सके। यदि इस प्रकार की स्थिति पैदा हो जाए तो वैसे ही जैसे यह धर्म में कहा गया है, शरीर और मन के अंदर सामंजस्य बैठाना होगा। व्यक्ति के शरीर के सभी अंगों के बीच में सामंजस्य बैठाना होगा।

इसी प्रकार से एक व्यक्ति और प्रकृति के साथ इनका सामंजस्य बिठाने की कोशिश नहीं की तो भी अड़चन आ जाएगी। प्रकृति का विचार करना ही पड़ता है, यह मैंने पहले ही बताया है। देश और काल का जैसे विचार करते हैं तो समस्त प्रकृति के साथ सामंजस्य होना चाहिए। प्रकृति की अवस्था के अनुसार मन का, बुद्धि का, शरीर का सामंजस्य बैठ सके, इसका विचार करना चाहिए। ठीक वैसे ही एक व्यक्ति और अनेक व्यक्तियों के विषय में कहा जा सकता है। उनका दूसरों के साथ व आपस में संबंध आता है भाई-भाई का। तो भाई-भाई के बीच झगड़ा न हो, उनके बीच सामंजस्य बैठे, इसका ध्यान रखनेवाला भी कोई चाहिए। वास्तव में यह सामंजस्य बिठाने का, संबंध बनाने का काम धर्म करता है, जिसके कारण भाई-भाई के बीच झगड़ा नहीं होता है। एक भाई दूसरे भाई का गला नहीं काटता, बल्कि एक भाई दूसरे भाई से प्रेम करना सीखता है। ऐसे ही पति और पत्नी के बीच में जिससे सामंजस्य बैठेगा, पिता और पुत्र के बीच में जिससे कुछ सामंजस्य बैठेगा, वह धर्म है। यानी जहाँ तक हो, जिसके कारण सामंजस्य बैठेगा, ताल-मेल होगा, मिलकर काम कर सकेंगे, उनके बीच का संघर्ष मिटेगा, उनके बीच का विरोध कम होगा और एक-दूसरे का हित चाहते हुए ठीक से काम कर सकेंगे। वह जो चीज़ है, वास्तव में वह धर्म है। इसलिए पिता और पुत्र के बीच पिता का धर्म क्या है, तो पिता का धर्म यह है कि पुत्र का लालन-पालन करे, पुत्र का धर्म है कि पिता की योग्य सेवा करे, पिता की आज्ञा माने यह पुत्र का धर्म है और यदि दोनों ठीक प्रकार से अपने-अपने धर्म का पालन करें, तो पिता और पुत्र के बीच का संघर्ष मिट जाएगा। यानी विरोध हटाकर दोनों एक-दूसरे से मिलकर एक-दूसरे को सुखी बनाते हुए चलते चले जाते हैं। पति और पत्नी के बीच में जिससे मेल होता है, वह भी वास्तव में यही बात है। अब व्यक्ति और राष्ट्र के बीच में जिससे मेल बैठ सके, वह राष्ट्र और व्यक्ति के बीच का धर्म है। तो केवल राष्ट्र ही क्यों?

अपने राष्ट्र के साथ-साथ संपूर्ण मानव समाज है। इस मानव समाज के साथ भी तो सामंजस्य होना चाहिए। परंतु सारा मानव समाज तो नष्ट हो जाए, सारे मानव समाज का नुकसान हो जाए और हमने कहा हमारा राष्ट्र बहुत ऊँचा हो जाए, तो इससे तो काम नहीं चलेगा। और यहाँ पर इस प्रकार का कई बार विचार हुआ है कि केवल अपना-अपना विचार किया, यानी अपने राष्ट्रगत स्वार्थ का विचार किया मानव समाज का विचार नहीं किया। जैसा पश्चिम में आजकल चल रहा है। तो केवल राष्ट्र और मानव समाज के ही विषय में तो नहीं सोचना होगा आखिर मानव ही तो अकेला प्राणी नहीं है, और भी तो हैं, उनका भी तो विचार करना पड़ेगा, यहाँ पर कुत्ता भी तो रहता है। आखिर कुत्ते का भी तो हमें खयाल रखना होगा। उसके हमारे बीच में कोई सामंजस्य हो सकता है क्या? दोनों के बीच का संघर्ष मिटाया जा सकता है क्या? इसका भी तो विचार करना पड़ेगा। फिर गाय है, बैल है, पशु, पक्षी, न जाने कितने कीटाणु—सब मानो एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। इन सबके बीच में एक संघर्ष की भूमिका समाप्त करके कोई एक सामंजस्य की भूमिका लाकर पैदा करने से ही सृष्टि चलेगी। फिर पशु-पक्षी तथा अपना जो चल जगत् दिखाई देता है, इतना ही नहीं और भी है। यहाँ पर प्रकृति है, पेड़ हैं, पौधे हैं, इनके बीच में भी कोई सामंजस्य स्थापित करना होगा। आखिर इन्हीं के द्वारा अपने को भोजन मिलता है। आम है। अगर आम अपने को लेना है तो आम, आम का पेड़ और आम के पेड़ का स्वामी—इनके बीच में संबंध चलेगा। क्या इन तीनों के बीच में कोई सामंजस्य बैठ जाएगा? अगर अपने आम की देखरेख करेंगे, आम की सोचेंगे, आम को खाद डालेंगे, आम अच्छा फलेगा—फूलेगा और उसके पकने के बाद हमें अच्छे फल मिलेंगे। आम के पेड़ का सुख इसी में है कि अच्छा पानी पाकर खूब फले-फूले। उसका इसी में आनंद है और उसके जो फल मिलते हैं, उन फलों में अपना आनंद है।

तो यह तो हुई दोनों के बीच में ताल-तेल बिठाने वाली चीज़। दोनों के बीच में समन्वय बिठाने वाली चीज़। और इसके स्थान पर जैसे ही आम की छोटी-छोटी कैरियाँ आईं, उसे तोड़कर हमने खाना शुरू किया, अगर अपने को लकड़ी चाहिए तो सोचा आम का पेड़ काट लें। पर अगर हरा पेड़ काटेंगे तो उसका तथा अपने जीवन का जो संबंध है, वह टूटता है। इसी प्रकार संपूर्ण प्रकृति के साथ भी किसी-न-किसी प्रकार का सामंजस्य बिठाकर रखना आवश्यक है। उसमें जो आह्लाद है, वह हमारे जीवन में भी पैदा हो। यदि इस प्रकार का संबंध बिठाया जाए तो वास्तव में धर्म जो है, यह व्यक्ति के अंदर उसके शरीर की धारणा लेकर संपूर्ण सृष्टि तक जितने भी भिन्न-भिन्न नाते-रिश्ते आते हैं, उनके बीच में सामंजस्य बिठाने का काम, ताल-मेल बिठाने का काम करता है।

हमारे यहाँ पर धर्म के जितने भी लक्षण बताए गए हैं, अगर आप देखेंगे तो धर्म की मनुस्मृति में जो व्याख्या की गई, उसमें धर्म के दस लक्षण बताए गए हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

कहीं धैर्य क्षमा, अस्तेय (चोरी नहीं करना), शौच, इंद्रिय निग्रह, सत्य, बुद्धि, विद्या ये धर्म के लक्षण हैं। यानी इसके द्वारा हमारा धर्म चलता है। अब इनके आधार पर समय के अनुसार नियम व्यवस्था बनती जाती है। स्थान के अनुसार बनती है। एक समय के लिए दूसरी होगी, दूसरे समय के लिए दूसरी होगी। जैसे अपना कार्यक्रम करते हैं, शारीरिक कार्यक्रम होता है। उसमें समय की एक व्यवस्था है, बौद्धिक कार्यक्रम है, उसकी भी व्यवस्था है। शारीरिक कार्यक्रम करते हैं। उस समय की अलग व्यवस्था है। भोजन के लिए बैठते हैं, उसकी तीसरी व्यवस्था है। हर समय की अपनी-अपनी व्यवस्था है। अपने अनुसार वे चलती रहती हैं, नहीं तो यदि शारीरिक कार्यक्रम होते हैं, उनका गणवेश हम बौद्धिक कार्यक्रम में पहनकर आएँगे, वही भोजन के समय पहनकर आएँगे और वही गणवेश रात्रि की विनोद बैठक में पहनकर आएँगे तो कठिनाई होगी। यह व्यवस्था नहीं चलेगी। हो सकता है कि अपने गट भी बदल जाएँ। शारीरिक कार्यक्रम में अपने गट अलग हैं, चर्चा के अपने दूसरे गट हैं। जो लोग शारीरिक कार्यक्रम में एक गण में हैं, चर्चा के समय दूसरे लोगों के बीच में होंगे और हम कोई विनोद बैठक का कार्यक्रम करेंगे तो अलग। कोई एक गट में जाकर इकट्ठे हो जाएँगे। यही सब बदलता रहता है।

तो यह सब चीजें इसी प्रकार से चलती हैं, परंतु इन सबके बीच में ताल-मेल बिठाना यह धर्म का काम है। और यह वास्तव में अपना भी धर्म है। यह धर्म सामंजस्य वाला धर्म है, इसी धर्म में से बाक्री की सारी चीजें पैदा होती हैं। और हमारा यह धर्म का दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण और पश्चिम का दृष्टिकोण—इसके अंदर बहुत बड़ा अंतर है। हमारे धर्म का दृष्टिकोण ताल-मेल बैठाने वाला है, पश्चिम का दृष्टिकोण भिन्न है। अब यह अंतर कैसा है, क्या है, इसका विचार अब आज नहीं करेंगे। इतना हम समझकर चलें कि यह हमारा धर्म है और धर्म की जैसे स्पष्ट धारणा इससे होती है। हमारी जो हस्ती है, वह हस्ती कई प्रकार की है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक—उसी प्रकार व्यक्ति की और समाज की हस्ती, राष्ट्र की हस्ती, संपूर्ण सृष्टि की हस्ती। सबके बीच में सामंजस्य बैठाना, यह धर्म का अपना आधार है, यही अपना धर्म है। इस धर्म की रक्षा करना, इसी धर्म की रक्षा करने के लिए जब हम चलेंगे तो इसी में से हमारा संगठन उत्पन्न होगा और इसी संगठन में से बाक्री की चीजें उत्पन्न होंगी।

—जून 4, 1962



26

अमरीकी अनुदान कटौती प्रकरण के सबक

कोटा में जनसंघ की केंद्रीय कार्यकारिणी के सदस्यों के सार्वजनिक स्वागत समारोह को संबोधित करते हुए दीनदयालजी ने कहा।

यदि हमारी विकास योजना में विदेशी पूँजी को महत्वपूर्ण स्थान मिलता है तो यद्यपि हो सकता है कि आर्थिक सहायता के किसी कार्यक्रम से प्रत्यक्ष तार न जुड़े हों, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी प्रभाव पड़ सकता है।

मैं यूएसएसआर से भारत के सुपरसॉनिक खरीदने के प्रश्न पर अमरीकी सरकार के रुख पर कड़ा आक्रोश व्यक्त करता हूँ। कोई भी भारतीय राष्ट्रवादी इस रुख को स्वीकार नहीं कर सकता।

सोवियत रूस से मिग सुपरसॉनिक खरीदने के हमारे कथित निर्णय की प्रतिक्रिया में अमरीका द्वारा विदेशी सहायता में कटौती ने स्पष्ट कर दिया है कि बड़े पैमाने पर विदेशी सहायता, जिनके आधार पर हमने अपनी योजनाओं का निर्माण किया है, को हमारे राजनीतिक निर्णयों पर कुछ शर्तें लागू किए बिना प्राप्त नहीं किया सकता। हो सकता है कि वर्तमान में हमारे विदेशी मुद्रा मोरचे पर किसी तरह की दिक्कतें उत्पन्न हों। जो भी हो, यह आवश्यक है कि हम विदेशी निवेश के संदर्भ में अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें।

विदेशी पूँजी, अंतर्निहित राजनीतिक प्रभाव के अलावा हमारी आर्थिक प्रगति की दिशा भी निर्धारित करती है। विदेशी प्रौद्योगिकी थोपकर हम एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं, जिसमें न केवल उत्पादन और उपभोग आवश्यकताओं के बीच बड़ा अंतराल होगा बल्कि अप्रयुक्त संसाधनों की प्रचुरता भी होगी। इसका कारण यह है कि भारी

निवेशों के बावजूद पिछले 14 वर्षों में हमने एक तरफ अभावों को तो दूसरी तरफ बड़े स्तर पर बेरोजगारी और विपूँजीकरण को विकसित किया है।

उन्होंने कहा कि रुपया भुगतान प्रणाली भुगतान संतुलन स्थित पर काबू पाने में हमारी सहायता कर सकता है, परंतु यह विदेशी शक्तियों को इन समझौतों के तहत अनुबंधित खरीद को स्वीकार करने में भेदभाव के जरिए देश के राजनीतिक जीवन को प्रभावित करने का अतिरिक्त औजार उपलब्ध कराता है।

—ऑर्गनाइज़र, जून 4, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : हरिगढ़

कल हम लोगों ने अपने लक्ष्य के संबंध में विचार किया था और उस विषय में जो अपनी प्रतिज्ञा में और अपनी प्रार्थना में कहा गया है, उसका स्मरण किया। हम अपने राष्ट्र को परम वैभव की स्थिति में पहुँचाना चाहते हैं। या जैसे कि प्रतिज्ञा में कहा गया है कि हम उसकी सर्वांगीण उन्नति देखना चाहते हैं। वैभव की यह अवस्था कैसी होगी? उन्नति की यह स्थिति कैसी होगी? इसकी कुछ कल्पना भी हमने प्रतिज्ञा और प्रार्थना दोनों में करके रखी है। वह अपने धर्म के आधार पर, क्योंकि हमने यह कहा है कि इस धर्म की रक्षा करते हुए हम इसे परम वैभव पर ले जाएँ अर्थात् यदि धर्म का विस्मरण कर दिया और यह कल्पना भी कर लें कि हमें किसी भी प्रकार का वैभव प्राप्त हो गया तो हम उसे नहीं मानेंगे।

दूसरी बात जो इससे भी अधिक सत्य है कि राष्ट्र का वैभव बिना धर्म का आधार लिए प्राप्त नहीं हो सकता। बिना धर्म की रक्षा किए वह वैभव नहीं मिल सकता। किसी वस्तु का वैभव उसके धर्म को भुलाकर कभी प्राप्त नहीं होता। उसी प्रकार अपने राष्ट्र के वैभव के संबंध में, इसके साथ ही हमने यह विचार किया था कि जब हम इस धर्म शब्द का उपयोग करते हैं तो उसकी सामान्य कल्पना क्या है? उसके नाते धर्म की जो एक व्याख्या हमने की, उसका आधार यह कि धारणा से धर्म शब्द प्रचलित हुआ था। जिससे धारणा होती है, जिस शक्ति से, जिस तत्त्व से, जिस प्रवृत्ति से, जिस व्याख्या से जिस किसी भी चीज़ की धारणा हो सके वह धर्म है। प्रजा की धारणा भी होती है और इस नाते से हम किस आधार पर टिके हुए हैं, जब इसका विचार किया तो उसमें यह भी देखा कि शरीर को टिकाए रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक हैं, वह सब धर्म के अंतर्गत आ जाएँगी। समाज कार्य के लिए जो चीज़ें आवश्यक हैं, वह समाज धर्म के

अंतर्गत आ जाएँगी। समाज और शरीर इन सबको टिकाए रखने के लिए जितनी भी चीजें जरूरी हैं, वे सब अपने धर्म के, सृष्टि के अंतर्गत आ जाएँगी। इस प्रकार से यह धर्म केवल उसकी एक इकाई है। जो भिन्न-भिन्न इकाइयाँ हैं, इन सब इकाइयों के बीच में एक सामंजस्य स्थापित करता है। यदि उसके बीच में कोई संघर्ष आ गया, कोई विरोध उत्पन्न हो गया, किसी भी कारण क्यों न हो, विरोध को मिटाकर उसके स्थान पर समन्वय करके धर्म की प्रतिष्ठापना करना, उसके लिए प्रयत्न करना और दोनों प्रकार की इकाइयाँ, सभी इकाइयाँ सामान्य आधार के ऊपर अपना विचार प्रकट कर सकें, अपने अस्तित्व को बनाए रख सकें, एक-दूसरे के साथ पूरकता के भाव से काम कर सकें, वह काम ही वास्तव में धर्म का काम है।

जैसे यदि एक व्यक्ति के शरीर का विचार करते हैं तो शारीरिक दृष्टि से उसकी जो इंद्रियाँ हैं, वे एक-दूसरे के लिए पूरक हैं। सबका योग्य विकास हो सके, आपस में संघर्ष न आए, वैसे ही एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच में कोई संघर्ष न आए और जो व्यक्तियों के समूह बनते हैं, उनके बीच में कोई संघर्ष न आए। विभिन्न प्रकार के बने हुए व्यक्तियों के समूहों के बीच में संघर्ष न आए। संपूर्ण प्राणिमात्र और मानव उनके बीच किसी प्रकार का संघर्ष उपस्थित न हो। संपूर्ण प्राणी जगत् और प्रगति के बीच में किसी प्रकार का संघर्ष उपस्थित न हो, बल्कि सब एक-दूसरे के लिए पूरकता का भाव लेकर विकास के लिए विचार करते हुए आगे बढ़ें। इस प्रकार की यह स्थिति सामान्य है। हमारा धर्म एकांगी नहीं, वह तो सर्वांगीण है, व्यापक है, सबका विचार करके चलने वाला है। यह हम लोगों का सामान्य विचार रहा है।

अन्य दृष्टि से देखा जाए तो दुनिया में और भी विचार हैं। पश्चिम के भी अनेक विचार हैं। अनेक विचारों के साथ तथा हमारे इस विचार के साथ मूलतः एक मतभेद खड़ा हो जाता है, क्योंकि हम इस प्रकार से एक इकाई और दूसरी इकाई के बीच सामंजस्य मानकर चलते हैं। परंतु पश्चिम में जो प्रमुख विचार हुआ है, वह यह कि उनके सभी प्रयत्नों में विभिन्न इकाइयों में सामंजस्य नहीं। वहाँ उन्होंने विरोध को प्रथम स्थान देकर रखा है। उनकी सामान्य कल्पना संपूर्ण जीवन के संबंध में यह रही है कि मानव का जीवन संघर्षमय है। इस संघर्ष में से ही कुछ पीढ़ियाँ समाप्त होती चली जाती हैं। बाक़ी जो हैं, वही प्रगति करती चली जाती हैं। सृष्टि भी इसी संघर्ष के आधार पर खड़ी हुई है। यानी वहाँ के जीवन में आधार पर विचार करें। अंग्रेज़ी में एक शब्द को लें तो उनकी संपूर्ण Philosophy Competition (प्रतिस्पर्धा) के ऊपर आधारित है। यही उनका विचार चलता है। अपनी जितनी भी विचारधारा है, वह सहयोग के ऊपर आधारित है। पूरकता पर आधारित है। यहाँ पर Competition का विचार नहीं है। जीवन का आधार Co-operation है। सहयोग, सहकारिता आधार है। पूरकता का आधार है,

इसको हम मानकर चलते हैं।

वहाँ इस प्रकार का विचार न करके, उन्होंने Competition के विचार को ही प्रमुखता आज भी दी है। दूसरी बात जो उन्होंने विचार किया है वह यह किया है, कि जहाँ हम प्रत्येक इकाई का विचार उसकी पूर्णता को देखने में करते हैं, वहाँ उन्होंने इकाई को पूर्णता की दृष्टि से नहीं देखा। उदाहरण के लिए यदि शरीर को लें तो हम व्यक्ति के शरीर को केवल भौतिक आवश्यकताओं का पुंज मात्र मानकर नहीं चलते। भौतिक आवश्यकताओं के साथ-साथ उसकी और कौन-कौन सी आवश्यकताएँ भी हैं, उसकी सब प्रकार की हस्तियाँ हैं। इस वस्तु को मानकर हम चलते हैं, परंतु पश्चिम के अनेक लोग केवल भौतिक दृष्टि से तैयार रहें, जो मनुष्य की भौतिक आवश्यकताएँ हैं, उसी के संबंध में विचार होता है। इसके अतिरिक्त दूसरा विचार ही नहीं आता। भौतिक और बाकी की आवश्यकताएँ हैं, इन आवश्यकताओं को प्रमुखता व बाकी को गौण स्थान देकर वे चलते हैं। व्यक्ति और समाज के बीच संघर्ष आते हैं और आ सकते हैं। यह उनका स्वाभाविक और सामान्य विचार है। यदि इस प्रकार के संघर्ष आकर खड़े हो जाते हैं तो वह एक असामान्य स्थिति है। वह धर्म की स्थिति नहीं है, तो एक प्रकार से विकृति की स्थिति है। ऐसा हम विचारकर चलते हैं। जैसे कि अपने दोनों पैर हैं। दोनों पैर भगवान् ने इसलिए बनाए कि वे ठीक प्रकार से चलें। आपस में लड़ते नहीं, टकराते भी नहीं, और दोनों पैरों का उपयोग भी हम ठीक प्रकार से कर सकते हैं। दोनों पैरों में कौन आगे जाएगा और कौन पीछे जाएगा, इसका विचार नहीं करते, झगड़ा भी नहीं होता।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य यदि कमजोर हो गया तो पैर लड़खड़ाते लगते हैं और जिन पैरों का काम यह है कि मनुष्य के संपूर्ण शरीर के बोझ को सँभालकर चलें, जिन पैरों का काम संतुलन बनाए रखना है, वे पैर भी उसके संतुलन को बिगाड़ देते हैं। ऐसी स्थिति कभी-कभी आती है, परंतु वह स्थिति हमारी कमजोरी के कारण होगी। आहार-व्यवहार में कुछ बिगाड़ से उत्पन्न हुई, किंतु यह सामान्य स्थिति नहीं। यह असामान्य स्थिति है और उस असामान्य स्थिति को दूर करना चाहिए। ऐसी स्थिति पैदा न हो, इसके लिए यदि कोई इस असामान्य स्थिति को सामान्य स्थिति कहकर चले और यही सोचकर चले कि पैरों का काम ही लड़खड़ाने का है। पैर लड़खड़ाएँ नहीं, इसलिए लकड़ी की पट्टी बाँध दें, यदि इस प्रकार का कोई विचार करके चलेगा तो मूलतः वास्तव में अलग विचार होगा। ऐसा लगता है कि पाश्चात्य जगत् के जो लोग हैं, उन्होंने बहुत कुछ इसी आधार पर अपने संपूर्ण जीवन की रचना की है और उसमें फिर अपना-अपना स्वार्थ रखकर दोनों के बीच प्रतियोगिता को आधार बनाकर प्रतिदिन बराबर करते गए और उसमें से व्यक्ति और समाज के बीच एक संघर्ष खड़ा किया। पश्चिम के लोग व्यक्ति और समाज के बीच एक संघर्ष खड़ा है, ऐसा मानकर चलते हैं।

इसलिए आज वहाँ पर दो प्रकार के लोग दिखाई देते हैं : एक ऐसे, जो व्यक्ति को प्रमुखता देकर समाज को पीछे डालकर कहते हैं कि व्यक्ति प्रमुख है। समाज जो कुछ करेगा, व्यक्ति के हितों के लिए करेगा और समाज को वहीं तक मानने को तैयार हैं, जहाँ तक व्यक्ति के लिए वह सहायक है। इस प्रकार का विचार रखनेवाले लोग पश्चिम जगत् में दिखाई देते हैं। दूसरी तरफ़ ऐसे लोग हैं जो ऐसा विचार रखते हैं कि यदि कुछ व्यक्तियों ने गड़बड़ की तो उस गड़बड़ के आधार पर यह मानकर कि सारे व्यक्ति खराब हैं और यह व्यक्ति समाज के संबंध में विचार नहीं कर सकते, ये लोग दूसरों के हित का विचार नहीं कर सकते, इसलिए इनकी सत्ता को बिल्कुल समाप्त कर देना चाहिए। वे समाज को ही प्रमुख स्थान देकर जाते हैं। कुछ लोग ऐसा मानकर चलते हैं, व्यक्ति को मान का स्थान दिया तो समाज समाप्त हो जाएगा। दूसरे लोग ऐसा कहते हैं कि यदि समाज को प्रमुखता दी, व्यक्ति समाप्त हो जाएगा। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समाज का हित—ये दोनों मानो साथ नहीं चल सकते। दोनों में से हमें एक को चुनना पड़ेगा। यदि व्यक्ति की स्वतंत्रता चाहिए तो समाज के हित की चिंता नहीं करनी चाहिए। समाज के हित की सोचने की आवश्यकता नहीं। व्यक्ति की स्वतंत्रता के हित में समाज को समाप्त कर देना चाहिए। इस प्रकार का विचार करनेवाले लोग वहाँ पर पैदा हो गए।

वे सही विचार नहीं करते हैं। मानव और बाक़ी के अन्य प्राणियों—इन सबके बीच मानो एक प्रकार का संघर्ष है। संघर्ष में मानव को अधिकार है, सभी अन्य प्राणियों का उपयोग अपने लिए करे। अपने स्वार्थ के लिए लड़ाई है, केवल शक्ति की होड़ है। डार्विन ने विचार किया और कहा कि यहाँ पर Survival है। जो योग्य हैं, वही ठीक क्रम में हैं, बाक़ी जितने अयोग्य हैं, एक-दूसरे को खाते चले जाते हैं। अपने जीवन को बनाए रखने की लड़ाई और इस लड़ाई में संघर्ष ही इसका प्रमुख आधार है। कुछ और आगे विचार करते चले जाएँ तो यह देखेंगे कि उनकी दृष्टि में मनुष्य और प्राणियों के बीच तथा मनुष्यों में संपूर्ण मानव समाज, छोटे-छोटे गुट हैं, राष्ट्र हैं और राष्ट्रों में और राष्ट्र और व्यक्तियों के बीच में, व्यक्ति की भी जो अनेक प्रकार की हस्तियाँ हैं, उन सबके बीच में मानो एक परमानेंट संघर्ष की स्थिति है।

वे यह मानकर चलते हैं कि इस प्रकार के संघर्ष, इस प्रकार की लड़ाई, इस प्रकार का वर्ग संघर्ष यह उनके सारे विचार की भूमिका है। यह आज की उनकी भूमिका नहीं है, बिल्कुल प्रारंभ की है। ईसाइयों ने स्वयं अपने मत में यही संघर्ष अपने सामने लाकर रखा। एक ओर उन्होंने शैतान और दूसरी ओर ईश्वर को रखा तथा कहा कि दोनों में यह संघर्ष बराबर चल रहा है। उसमें ही उन्होंने यह निश्चित कर दिया कि जिनके पास धन है, संपत्ति है, उत्पादन के साधन हैं, उनको उन्होंने पूँजीपति कहा, इन पूँजीपति और

मेहनत करनेवाले मजदूरों में स्थायी रूप से संघर्ष चल रहा है। श्रमिकों को ही पूर्णतः प्रमुखता देकर पूँजीपतियों को पूर्णतः समाप्त कर देना चाहिए। सारी सत्ता श्रमिकों को अपने हाथ में लेकर चलना चाहिए। फिर उसमें राजनीतिक शक्ति यही विचार प्रमुख है। यही एक विचार अपने सामने लेकर चलते चले जा रहे हैं। यह संघर्ष की भूमिका है। एक-दूसरे के बारे में मूलतः विश्वास न करके दूसरों के साथ अपना संबंध यदि आता है, तो वहाँ संघर्ष उत्पन्न होता है। यदि दो व्यक्ति मिलते भी हैं तो इसलिए मिलते हैं कि उनके समान स्वार्थ हैं। जहाँ समान स्वार्थों की भूमिका है, वहाँ पर दो व्यक्ति मिल सकते हैं। चूँकि सभी पूँजीपति मिल चुके हैं, इसलिए दुनिया के सभी मजदूर यदि उनका मुकाबला करना है तो एक होकर संघर्ष में जुट जाएँ। सभी के स्वार्थ एक हैं। समान हितों के लिए मिल जाना चाहिए। यहाँ एक व्यक्ति का संबंध एक व्यक्ति के बीच केवल स्वार्थ पर ही आधारित है। इसके आगे उसमें कोई विचार करने के लिए तैयार नहीं। यदि राष्ट्र के संबंध में विचार किया तो वहाँ भी स्वार्थ की ही भूमिका है। राष्ट्र के संबंध में उनकी कल्पनाएँ ये हैं कि एक देश में रहनेवाले लोग जिनके समान स्वार्थ हैं, ऐसे लोगों का मिला एक राष्ट्र है, इसके अतिरिक्त कोई विचार नहीं। वे लोग जब मिलते हैं तो वह भी स्वार्थ के आधार पर, जैसे कुछ लोगों को मिलाकर एक joint stock company बनती है। सभी लोग अपने-अपने पैसे देकर शेयर खरीदते हैं। शेयर खरीदने के बाद उनकी कुछ Liabilities हैं। लिमिटेड कंपनी बनकर एक फर्म बन जाती है। सबके समान स्वार्थ रहते हैं।

Partnership तैयार हो जाती है। उस Partnership में स्वार्थी लोग लाभ की आशा से एकत्र हो जाते हैं, स्वार्थ का ही विचार करके चलते हैं। उसके आगे का विचार करने के लिए तैयार नहीं। यदि राष्ट्र का विचार करेंगे, मानवता का विचार करेंगे तो उसका भी आधार समान हित, समान स्वार्थ है। सब मानवों को मिलकर समान स्वार्थ के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

अभी मैं एक लेख पढ़ रहा था, जिसमें युद्ध की विभीषिका के संबंध में एक विद्वान् व्यक्ति ने अपने विचार व्यक्त किए थे। यदि दस-पाँच एटम बम छोड़ दिए गए तो लोगों की संख्या घट जाएगी और जो बच जाएगा, उसपर इतने घातक परिणाम होंगे कि उसको मानव ही कहना कठिन होगा। इस प्रकार कठिन परिस्थिति चली आ रही है। इसलिए अमरीका और रूस को मिल जाना चाहिए। युद्ध बंद कर देना चाहिए। वे आपस में मिलकर क्या करें तो उन्होंने कहा कि थोड़े दिनों में सभी लोग मंगल तथा अन्य ग्रहों पर पहुँच जाएँगे। और मंगल ग्रह के मानव बहुत ही सभ्य और विज्ञान की दृष्टि से बहुत विकास कर चुके हैं। अतः संभवतः हमारे वहाँ पहुँचने पर उनसे संघर्ष करना पड़ेगा। यहाँ के राष्ट्रों में अब आपस में लड़ाई तो पिछले जमाने की बात हो गई

है। यह लड़ाई बंद करके अब पृथ्वी पर रहनेवाले मानवों को मंगल ग्रह पर रहनेवाले मानवों से लड़ना चाहिए।

इस प्रकार शांति से भी उनकी संघर्ष की दृष्टि है। यहाँ के और वहाँ के प्राणियों में थोड़ा-बहुत अंतर हो सकता है, परंतु वे हैं एक ही और आपस में मिलकर शक्ति, बुद्धि सबका सहयोग के साथ विकास करेंगे, इसका विचार नहीं। कुछ प्राणिशास्त्रियों का कहना है कि चींटी बहुत ही बुद्धिमान प्राणी है। उसके पास मनुष्य से कम बुद्धि नहीं। यदि उनका आकार मनुष्य से कुछ छोटा रहे परंतु बुद्धि के साथ-साथ उसमें कुछ शक्ति भी होती तो वह संभवतया मनुष्य पर विजय प्राप्त करके ही रहती। चींटी के पास केवल अभाव है शक्ति का, मनुष्य के पास उसकी तुलना में अधिक शक्ति हो गई। शक्ति अधिक प्राप्त होने के कारण चींटी चींटी ही रहेगी। यदि कहीं ऐसी कल्पना करें कि चींटी को बिल्ली का शरीर मिल जाए तो वह अधिक सशक्त हो जाएगी। तो हम सब मानव मिलकर उनके खिलाफ लड़ाई छेड़ेंगे। यह भूमिका संघर्ष की भूमिका है। वे इस भूमि को लेकर खड़े हैं। इसके बाद का विचार आएगा कि छोटे से बड़े तक सभी जगह सब संघर्ष की भूमिका है। हर एक अपने-अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अपने-अपने अधिकारों की रक्षा को लेकर चलें।

इसलिए उसमें अधिकार का विचार आता है। पश्चिम में स्वेच्छा से विवाह होने के उपरांत पति और पत्नी के रूप में आने के बाद उनकी कल्पना क्या चलती है? मानो पति पत्नी के अधिकारों को समाप्त करना चाहता है। अतः पत्नी को बराबर सजग रहना चाहिए। इतने होने के बाद पत्नी पति के अधिकारों को छीनने का प्रयत्न करती है। पति और पत्नी में संघर्ष की भूमिका खड़ी होती है। यदि सड़क पर चलते-चलते व्यक्ति किसी मोटर से टकरा जाए, accident हो जाए और यह विचार करके चले कि सदैव मनुष्य मोटर से टकराता ही रहेगा। यदि कोई जेबकतरा सड़क पर किसी की जेब कतर ले और सदैव मन में यही भूमिका बनाकर चले कि हमारे आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ जो चल रहे हैं, सभी जेबकतरे होंगे, तो बड़ी मुश्किल होगी। यदि रेल में कभी कोई डाकू आकर लूट ले, ऐसी घटनाएँ होती भी हैं, परंतु कोई यह समझने लगे कि जो भी डिब्बे में घुसा, वह डाकू ही होगा। यह धारणा भ्रामक है। पश्चिम का आधार इसी धारणा पर टिका है। वह यह संघर्ष की भूमिका मानकर चलते हैं कि राजा और प्रजा के बीच में एक संघर्ष की स्थिति है। राजा का संघर्ष करना धंधा ही है, वह प्रजा के अधिकार छीनेगा ही। इस प्रकार राजा और प्रजा के बीच संघर्ष रहेगा।

इसी प्रकार यदि देखें, उस मालिक ने, जिसने अनेक कष्ट सहकर संयम रखकर अपना तथा बाप-दादों का पैसा लगाकर एक कारखाना खड़ा किया। उधर मजदूर काम करने के लिए आते हैं, उन्हें भी जीविकोपार्जन करना है। अपने बाल-बच्चों को छोड़कर

आते हैं। दोनों मिलते हैं, काम चलता है। दोनों में संघर्ष की भूमिका है। दोनों एक-दूसरे के अधिकार छीनते हैं। दोनों के अलग-अलग हित हैं तो वही संघर्ष खड़ा होता है। वास्तव में दोनों कारखाने में बैठते हैं, दोनों प्रयत्न करते हैं। चीज़ तैयार होती है। दोनों के सामान्य हित हैं। अगर कहीं दोनों के बीच में विरोध भी खड़ा हो गया तो उस विरोध को सामान्य स्थिति मानकर नहीं चलते। वह विरोध विकृति का द्योतक है। वह विकृति है, वह सामान्य स्थिति नहीं। किंतु पश्चिम का जगत् इस स्थिति को सामान्य मानकर चलता है। यह कहते हैं कि वह विरोध है, तो यह विरोध वाली दृष्टि है। हम इसको विरोध नहीं मानते। हम दूसरे प्रकार से विचार करते हैं। हमारी उसकी एक समान हस्ती है, उस आधार पर एकता है। सत्य और शक्ति मेरे अंदर है, वह उसके अंदर भी है। इस आधार पर हम लोगों के बीच में समानता का नाता है। हमने उनको प्रमुखता दी। अतः किसी स्वार्थ के आधार पर विचार नहीं करते कि हमें समान स्वार्थों को लेकर दूसरे राष्ट्रों के साथ संघर्ष करना है।

हमारा दृष्टिकोण पश्चिम के दृष्टिकोण से भिन्न है। जैसे पश्चिम अपना-अपना विचार करके चलते हैं और वहाँ एक कहावत भी बन गई है। Every man for himself and devil takes the hind most. प्रत्येक आदमी अपनी-अपनी फ़िक्र करता है और जो सबके पीछे रह जाएगा तो पिछड़ जाएगा। उसकी चिंता कौन करेगा तो शैतान, मतलब यह कि जो पीछे पिछड़ गया, उसकी उपेक्षा होगी। यह सच्चाई जीवन में नहीं चलती। बल्कि देखेंगे कि जीवन इससे उल्टे आधार पर चलता है।

घर में देखते हैं, परिवार है, यदि परिवार का कोई व्यक्ति बीमार पड़ गया, कुछ काम नहीं कर सका, वह किसी के मतलब का नहीं रहा, अतः उसके लिए भोजन क्यों बनाना? जो परिवार में fittest है, उसे पहले और यदि बचा तो बीमार को बाद में देना। ऐसा होता नहीं। जैसे फैक्टरी में अच्छा माल बना, उसे बिकने के लिए बाज़ार में भेज दिया और जो ख़राब हुआ उसे reject कर देते हैं। उसी प्रकार यदि बीमार हो गया तो उसे समुद्र में फेंक दो, ऐसा नहीं होता। होता उलटा है, यदि वह बीमार हो गया तो उसकी ज़्यादा चिंता करते हैं। जैसे कि व्यक्ति कमाता है, यदि बाहर से घूमकर आया और माँ को बीमार देखकर, सिनेमा जाने का यद्यपि अपने मित्रों से पहले तय करके आया, तो भी उनको लौटा देता है। कहता है कि मेरी माँ बीमार है, मुझे उसे दवा देनी है, सेवा करनी है, मैं नहीं जा सकूँगा। पास में यदि पैसा होगा तो डॉक्टर को बुलाएगा, उसकी फ़ीस देगा, दवा देगा। लेकिन यह नहीं कहेगा कि माँ पड़ी रहे, मैं तो सिनेमा जाऊँगा। उसकी मुझे क्या चिंता करनी है? ऐसा विचार नहीं करता।

माँ का छोटा बच्चा है, वह दिन-रात उसका पालन करती है। तो क्या माँ और बेटे दोनों की लड़ाई अधिकारों की लड़ाई है? यदि यह दृष्टि होती तो शायद बेटे का पालन

संभव न होता। माँ और बेटे के बीच कोई लड़ाई है। यहाँ पर माँ-बाप विवाह करते हैं। परंतु अपने यहाँ संघर्ष नहीं खड़ा होता। जहाँ प्रेम होगा, वहाँ संघर्ष न होगा। हमारी प्रेरणा अधिकारों की नहीं है, अपितु कर्तव्य की है। हम कर्तव्य को आधार लेकर चलते हैं। हम सेवा का विचार करते हैं। अपनी एकात्मता है, उसका अनुभव करते हैं। एकात्मता का अनुभव करने के बाद उसके प्रति सहिष्णुता का विचार करते हैं। हम कर्तव्य का भाव लेकर चलते हैं। सहिष्णुता का भाव लेकर चलते हैं। हमारे यहाँ तो सहिष्णुता है। उससे आगे बढ़कर विचार करने का है। प्रत्येक के विचार को सुनो, वह जो शब्द कहता है, उसमें भी सच्चाई कितनी है, उसकी सच्चाई को भी सुनना चाहिए। उसको भी समझना चाहिए। इस प्रकार सहिष्णुता का भाव हमारे अंदर आता है, त्याग का भाव आता है। सेवा का भाव जीवन में आता है, एक-दूसरे के प्रति समर्पण का भाव पैदा होता है, सामंजस्य स्थापित होता है।

धर्म जिससे धारण होता है, वह धारणा संघर्ष से नहीं उत्पन्न होती। धारणा होती है इस सामंजस्य से। समन्वय होता है एक-दूसरे के जीवन से एकरूप होने से, एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करना है। महाभारत में धर्म और अधर्म की बहुत सरल व्याख्या की गई है। 'भ्रम' अधर्म है यानी मेरा यह अधर्म है। तीन अक्षर 'न मम' मेरा नहीं यह धर्म है। मेरा कुछ नहीं, जो कुछ है तेरा, यही भाव धर्म है। मैं, मेरा है, यह अधर्म है। इससे अहंकार जाग्रत होता है, स्वार्थ उत्पन्न होता है। व्यक्ति अपने को ही केंद्र बनाकर संपूर्ण सृष्टि का विचार करता है। अधर्म का भाव पैदा होता है।

यदि संसार को चलाना है तो मैं नहीं, मेरा कुछ नहीं। दूसरे का विचार करके चलो। यही विचार इसी को अपने यहाँ नाम दिया है, उसको यज्ञ कहते हैं। यज्ञ से मतलब हवनकुंड नहीं। उसमें आहुति डालना, यह यज्ञ का प्रतीक है। यह यज्ञभाव जगाने की एक पद्धति है। यह संस्कार डालने का एक तरीका है। इसलिए जब आहुति डालते हैं, तब कहते हैं 'इदं इन्द्राय इदं न मम्', यह मेरा नहीं है, यह यज्ञ की कल्पना है। इसके आगे भी कहा जो यज्ञ से योग करता है, वह तो अमृत है। प्रसाद के रूप में जो मिलेगा, उसे ग्रहण करूँगा, यह त्याग का भाव अमृत होता है। माता भोजन बनाती है तो सबके पश्चात् जो बचता है, उसे ग्रहण करती है। उसे उसी में आनंद का अनुभव होता है। परंतु होटल में देखें रसोइया पहले अपने लिए निकालकर अलग रख लेता है, तब बाद में सबको खिलाता है। माँ के भोजन में क्यों स्वाद का अनुभव और रसोइए के भोजन में क्यों नहीं। माँ को कुछ बचे-न-बचे, पर अपने पुत्रों को मिलना चाहिए। यह भाव रहता है। यह दृष्टिकोण अपने यहाँ का है। मैं अपने लिए नहीं तो दूसरे की सुविधा के लिए हूँ। मैं अपने लिए नहीं, तो दूसरे के लिए जिंदा हूँ।

व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज का हित दोनों का मेल बैठता है। व्यक्ति स्वतंत्र

है। उसपर कोई रोक नहीं, परंतु अपनी स्वतंत्रता का उपयोग यदि अपने ही लिए करेगा तो, अपने ही लिए जिंदा रहेगा तो फिर वह ग़लत कार्य करेगा। जब व्यक्ति अपने लिए जिंदा नहीं रहता तो दूसरों के लिए चिंता करता है। समाज की सेवा करने का प्रयत्न करेगा। हमारा राष्ट्र है, वह जिंदा रहे। यह भाव मन में आता है, हमारा ही राष्ट्र जिंदा रहे बाक़ी की दुनिया ख़त्म हो जाए, ऐसा विचार लेकर नहीं चले हैं।

हम यह कल्पना लेकर चले हैं कि हमारा हिंदुस्थान ऊँचा उठे और दुनिया भी रहे। कल्पना कीजिए यदि दुनिया के अंदर कोई न रहे तो क्या हमारा परम वैभव होगा? क्या संसार में केवल हिंदुस्थान रह जाए। खुद को खाने को हो पीने को हो, परंतु यदि हमारा परम वैभव देखनेवाला कोई न रहा तो परम वैभव कैसा?

यह कहानी स्मरण आती है कि एक सज्जन थे। उन्हें एक थाली मिली, जिससे वे जो चाहें, वह प्राप्त कर सकते थे। अतः उसने अपने लिए मकान माँगा तो पड़ोसी को दो-दो मिल गए। उसने अपने लिए धन माँगा तो पड़ोसी को दूना मिल गया। उसे द्वेष उत्पन्न हुआ। उसने फिर उलटा सोचना आरंभ किया। उसने माँगा, मेरी एक आँख फूट जाए। पड़ोसी की दोनों फूट गईं। उसने अपने दरवाजे के सामने एक कुआँ माँगा, पड़ोसी के दरवाजे के सामने दो कुएँ हो गए। उसने अपनी एक टाँग टूटने का माँगा, पड़ोसी की दोनों टूट गईं। धीरे-धीरे सभी अपंग होकर कुएँ में गिर गए। इसको लगा कि अब मैं सबसे बड़ा हूँ। परंतु उसके बड़प्पन को देखनेवाला कोई नहीं, वह यह भूल गया कि भले ही पड़ोसी उससे दूने धनवान बनते हैं, परंतु वह उसके कारण है। उसने भगवान् से कहा, महाराज, आपने कैसा वरदान दिया कि मेरा वैभव देखनेवाला कोई नहीं। तो भगवान् ने बताया कि तेरे कारण से उसके दो घर बने तो वैभव तो तेरा ही था।

इस प्रकार की प्रवृत्ति कि दुनिया में हम ही रहें। बाक़ी के लोगों को हड़प कर जाओ। प्रकृति पर विजय प्राप्त करो। इस प्रकार का एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को exploit कर रहा है। प्रकृति को exploit कर रहा है। यह exploitation हमारे यहाँ नहीं होता। हम प्रकृति का शोषण नहीं करते। ग़रु माता है, दूध माता के प्रसाद के रूप में लेता हूँ। हम गंगा के पानी को exploit नहीं करते, क्योंकि उसे माँ मानते हैं। और उसके द्वारा प्रसाद रूप में जल लेते हैं। हमारे यहाँ घरों में माताएँ, बहनें घर का काम करती हैं तो पश्चिम के लोग यही परिभाषा करते हैं कि पुरुष स्त्रियों का शोषण कर रहा है। पुत्र बीमार होता है, माँ दिन-रात सेवा करती है तो क्या माँ का पुत्र exploitation कर रहा है। यह exploitation नहीं। यह परिभाषा ग़लत है। संपूर्ण प्रकृति के साथ हमारा यह भाव नहीं है। इसलिए हमारा तो वैभव है, जिस वैभव में हम बहुत ऊँचे उठेंगे, धन-धान्य से देश पूर्ण रहेगा। हम ज्ञानवान रहेंगे और बाक़ी की दुनिया अज्ञानी रहेगी, यह भाव नहीं। अपितु जिस प्रकार हम बढ़ेंगे, उसी तरह दुनिया के लोगों को भी बढ़ाएँगे।

हमारे यहाँ प्राचीन काल में जो आदर्श रखे हैं, वह है 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' दुनिया को आर्य बनाओ। हमने यह नहीं कहा कि हमें ज्ञान प्राप्त हो गया तो उसे दुनिया से Secret रखें। आज तक हमने दुनिया से कोई Secret नहीं रखा। कोई चीज़ छिपाकर नहीं रखी। परंतु पात्र-अपात्र का अवश्य ध्यान रखते हैं। बीच के काल में कुछ छिपा था तो उसे पात्र-अपात्र का विचार किया। इसलिए हमारे यहाँ के लोग बाहर ज्ञान का संदेश लेकर गए, उन्हें आर्य बनाया। उसका मतलब यह नहीं कि विश्व में जो है, उनको गुलाम बनाओ। विश्व को भारत का गुलाम बनाओ अपितु उसके पीछे यह भाव है कि विश्व ऊँचा उठे। उसके आधार पर हम खड़े हुए हैं। एक प्रकार से हम देखें कि हम विश्व की एकता चाहते हैं। मानव की एकता चाहते हैं। हमारा धर्म मानव का हित चाहता है। मानव का हम सच्चे अर्थ में उत्कर्ष चाहते हैं। संसार के अंदर ढाई अरब की संख्या का मानव खाने-पीने वाला जानवर नहीं, तो सब लोग मानव बनेंगे। मानवोचित स्थान प्राप्त करके रहेंगे। यही हमारे जीवन का आधार है। इस सत्य का हमने आकलन किया है।

बड़ी इकाई छोटी इकाई का पूरक बनकर खड़ी हो, छोटी इकाई बड़ी इकाई का पूरक बनकर खड़ी हो। जैसे यदि कोई पुष्प गुँथकर माला के रूप में आ जाता है, यद्यपि उसका अलग अस्तित्व नहीं रहता, परंतु वह माला का एक अंग बन जाता है तो देवता के चरणों पर चढ़ता है। जीवन सार्थक हो जाता है। अन्यथा अलग पेड़ से गिरकर सारा पुष्प कुम्हलाकर नष्ट हो जाता है। इससे पुष्प की हस्ती समाप्त नहीं होती, अपितु पुष्प का विकास होता है। उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। इसी प्रकार समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एकरूपता चाहिए। इससे उसका व्यक्तित्व नष्ट नहीं होता, अपितु विकसित होता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त नहीं होती अपितु समाजरूपी विराट् स्वरूप का अंग बनकर स्वयं विराट् बन जाता है। यदि यह भाव रहा कि मेरा इससे कोई संबंध नहीं, मेरा इसका कोई नाता नहीं, तो दोनों के बीच संघर्ष आ गया।

वास्तव में इन दोनों के बीच कोई संघर्ष नहीं, व्यक्ति और समाज के बीच कोई संघर्ष नहीं, अगर संघर्ष की कल्पना आई तो उस संघर्ष में से बराबर दुःख ही दुःख पैदा होता जाता है। हमारे यहाँ ऐसी कोई कल्पना नहीं। हम अपने आपको एक करना चाहते हैं।

इसलिए जब हम संगठन की बात करते हैं तो हमारा यह संगठन इसी आधार पर खड़ा है, नहीं तो कौन संगठन करता है, क्यों मिलकर रहें? बहुत लोगों को लगता है, स्वार्थ के लिए संगठन फिर उसमें भी कौन सा स्वार्थ। फिर हम संघ का कार्य करते हैं। हमारा कौन सा स्वार्थ सिद्ध होता है। सामूहिक रूप में संगठन का विचार करें। स्वार्थ का आधार लेकर चलेंगे तो उसमें कोई प्रेरणा नहीं रहेगी। संगठन तो इसलिए होता है

कि हमारे राष्ट्र का जीवन है। एक हमारी परंपरा चली आ रही है। इस आधार के ऊपर ही हम विश्व को भी देखते हैं।

सौभाग्य का विषय है कि आज दुनिया के दूसरे देश भी कम-से-कम यह मंजूर करने लगे हैं कि मानव की एकता होनी चाहिए। उनको लग रहा है कि मानव लड़ रहा है, यह ठीक नहीं। मानव में लड़ाई बंद होनी चाहिए। इसका विचार कर रहे हैं। उनको शायद पता नहीं, ज्ञान नहीं—उसका मौलिक आधार कौन होगा? उसके पीछे का तत्त्वज्ञान कौन सा होगा? वह तत्त्वज्ञान हमें प्राप्त है। हजारों वर्षों से हम इसको लेकर चले हैं। और चलेंगे तो हमारा चालीस करोड़ के राष्ट्र का एक जीवन ऐसा नहीं रहेगा कि इधर-उधर की मार खा रहे हैं। सबसे छोटे, पददलित, पिछड़ा हुआ राष्ट्र-जीवन दिख रहा है। बहुत से लोग अपने व्यक्तिगत जीवन को ही सबकुछ समझकर, उससे थोड़ा समाधान होगा, ऐसा विचारकर चलते हैं। राष्ट्र-जीवन का विचार करने के बाद में ऐसा लगता है कि हिंदुस्थान ऐसा राष्ट्र है, जो आर्थिक और सब दृष्टि से पिछड़ा हुआ है।

हिंदुस्थान का सामान्य नागरिक अपने सामान्य, अपनी राष्ट्रीय भावना से दूर भागता है, क्योंकि राष्ट्र का विचार करते ही पाकिस्तान की धमकियाँ ध्यान में आती हैं। अपनी lowest income है, यानी राष्ट्रीय आमदनी इतनी पीछे है कि राष्ट्र का विचार करते ही उनके सामने यह आता है कि इतना करोड़ों का विदेशों से क़र्ज़ा ले रखा है, इसका क्या होगा? दुनिया के बाक़ी लोग अंतरिक्ष में चले जा रहे हैं और लोग कहते हैं कि हम तो बैलगाड़ी के युग में जा रहे हैं। एक सज्जन थे लखनऊ में, उनका जन्म सन् 1948 के बाद जब गांधीजी की हत्या नाथूराम गोडसे के द्वारा हुई, तब हुआ था। अब दुर्भाग्य से कहिए या संयोग से कहिए कि उनका नाम भी नाथूराम था। उनका नाम लेते ही नाथूराम गोडसे का स्मरण हो जाता था, उन्होंने अपना नाम नाथूराम बदल दिया। उन्होंने उसे बदलकर नाथूलाल कर दिया। पहले तो उन्होंने नाथूलाल कर दिया। लोगों को फिर भी अच्छा नहीं लगा। फिर तो नाथूलाल को भी बदलकर रामनिवास कर लिया। नाम बिल्कुल ही बदल डाला। यह सोचने का ग़लत तरीक़ा है। उससे काम नहीं होगा। हमारे सामने केवल इतना ही प्रश्न नहीं है कि चीन ने अब हमारे ऊपर आक्रमण किया तो उस आक्रमण को समाप्त कर दें। हमारी राष्ट्रीय आय कम है, राष्ट्र की आमदनी बढ़ा लें; यह चीज़ें करणीय हैं। परंतु हमारी गति वहीं तक नहीं है। इसके आगे भी कुछ करना होगा, जैसे कि अंग्रेज़ों को हटाया। हमारी स्वतंत्रता का अर्थ इतना ही हमारे सामने नहीं है। अंग्रेज़ों को आखिर क्यों हटाया, इसलिए कि दुनिया में हमारा राष्ट्र कुछ करने के लिए पैदा हुआ है। हम दुनिया को कुछ देने के लिए पैदा हुए हैं। हम मंदिर में पूजा करने जाते थे, अंग्रेज़ों ने हमें पूजा करने से रोका। उसकी पूजा में वो बाधक होता था, उसने हमको हथकड़ी पहनाकर जेल में डाल रखा था।

जिस ध्येय देवता की पूजा करने के लिए हम चल रहे थे, उसके बीच में बाधक बनकर वह खड़ा हो गया था। हम जेल से छूटकर आए हैं। आज जो छूटा है तो पहला काम क्या करना चाहिए? पहला काम यही कि हम मंदिर की ओर जाएँ। उसी के लिए हम जेल गए थे, परंतु यदि मंदिर की ओर न जाकर सीधे सिनेमा देखने चले जाएँ, क्योंकि महीने भर से सिनेमा देखने नहीं गए थे, जेल में इतने दिन से बंद थे, तो यह गलत होगा। सबसे पहले हमें उस मंदिर की ओर जाना चाहिए, जो बाधाएँ आती हैं, उनको दूर करना होगा। यदि हमारे मार्ग में चीन आएगा तो उसको दूर करेंगे और जो अन्य विकृतियाँ हमारे सामने बाधक बनकर आएँ, तो हमारा धर्म है कि हम उन्हें दूर करें। दुनिया में हम कुछ करने के लिए पैदा हुए हैं, इस सत्य को हम पहचानें।

यह सत्य शक्ति के आधार पर टिक सकता है, उसका हम ध्यान करें। जैसे समुद्र भी यज्ञ करता है, समुद्र का पानी भाप बनकर उड़ता है, पानी से वर्षा होती है। संपूर्ण सृष्टि को चैतन्य मिलता है। वह सब सृष्टि को ही अपना देता चला जाता है। यह यज्ञ के भाव हैं, जिसके आधार पर सृष्टि चल रही है। वह हमारे जीवन का भाव बने तो हम देखेंगे कि फिर मानव के जीवन में अशांति के स्थान पर शांति आएगी। यह काम हमें करना है। संसार को ज्ञान का संदेश देंगे। यह काम करने के लिए इसका सीधा तरीका यह है कि हमें अपने जीवन को उसके अनुसार ढालना पड़ेगा और जीवन के ढालने का व्यावहारिक रास्ता हमने अपना लिया है। हमने जिस मार्ग का अवलंबन किया है, वह आप सबको पता है। वह है अपना संघ का दैनिक कार्य। संघ की पद्धति से हम समाज का संगठन करते हैं।

यहाँ पर लोगों के सामूहिक स्वार्थों की पूर्ति नहीं होती, यदि कोई सोचे कि यहाँ तमाम लोग एकत्र होते हैं। हम व्यापारी हैं तो लोगों से संबंध लाकर हमारा व्यापार बढ़ेगा। मैं डॉक्टर हूँ। प्रत्येक के परिवार में लोग बीमार पड़ते हैं, अतः हमारी Practice बढ़ेगी। तो यहाँ उलटा होता है। यदि बाहर फ्रीस मिलती है तो यहाँ अपनत्व के कारण वह भी नहीं मिलती। यदि कोई अध्यापक सोचे, यहाँ काफ़ी विद्यार्थी हैं। अतः यहाँ आने पर ट्यूशन प्राप्त होगा। तो यहाँ उलटे मुफ्त में पढ़ाना पड़ता है। हमारे संगठन का आधार स्वार्थ नहीं। हमने जिस आधार पर अपना संगठन खड़ा किया है, उसमें अपने राष्ट्र-जीवन की एकात्मता का दर्शन होता है। यही भाव हम विश्व के संबंध में भी रखते हैं। संपूर्ण विश्व योग्य दृष्टि देने का हिंदू राष्ट्र का यह अवतार कार्य है। इस अवतार कार्य को पूरा करना यही परम वैभव है। जब तक यह अवतार कार्य पूरा नहीं होता, तब तक हमारा परम वैभव होता नहीं। परम वैभव प्राप्त करने के लिए जो चीज़ हम माँग सकते हैं, वह धर्म के आधार पर होगी। और तीसरी वस्तु भी संगठित कार्यशक्ति, जिसके द्वारा परम वैभव प्राप्त होगा, उसका आधार भी धर्म ही होगा। इसलिए वह संगठित शक्ति, धर्म और

परम वैभव तीनों वस्तुएँ एक ही हैं। उदाहरण के लिए, एक बूढ़ा था, उसने तपस्या की। ईश्वर ने उससे एक वरदान माँगने को कहा। वह बूढ़ा अंधा था, गरीब भी और निःसंतान भी। तीनों वस्तुएँ चाहता था, परंतु वरदान एक ही मिलना था। अतः उसने बुद्धिमत्ता से यह वरदान माँगा कि मैं अपने नाती को सोने की कटोरी में खीर खाते हुए देखूँ। अब इस एक ही वरदान से उसे आँख, धन और संतान भी प्राप्त हो गई।

इसी प्रकार हमने भी भगवान् से तीनों चीजें माँग लीं। किंतु ये तीनों चीजें एक ही हैं। संगठित कार्यशक्ति बिना धर्म के संभव नहीं और धर्म के बिना परम वैभव नहीं। अतः इस कार्य का विचार करें, उसके लिए संपूर्ण शक्ति आ गई तो हमारे प्रतिदिन के कार्य के द्वारा ही एक-एक कदम आगे बढ़ाकर अपने जीवन में सुख और आनंद की प्राप्ति हो सकेगी।

—जून 5, 1962



28

एकता परिषद् को डी.एम.के. की धमकी की गंभीरता का अहसास नहीं

संवाददाता सम्मेलन को संबोधित करते हुए दीनदयालजी ने कहा कि राष्ट्रीय एकता परिषद् द्रविड़ कड़गम और द्रविड़ मुनेत्र कड़गम जैसे दलों द्वारा आरोपित गंभीर धमकी के प्रति पर्याप्त जागरूकता प्रदर्शित करने में विफल रही। दीनदयालजी का वक्तव्य।

क्षेत्रवाद से बहुत बदतर है

अलगाववाद; यह राष्ट्रवाद-विरोधी है

यद्यपि डी.एम.के. के दर्शन को 'क्षेत्रीय अंधभक्ति का अतिवादी स्वरूप' कहना गलत नहीं हो सकता, फिर भी यदि यह देश के अन्य भागों में दिखने वाले क्षेत्रवाद के दानव से एकजुट हो जाए तो यह इसके खतरनाक परिणामों को कम करके आँकना होगा।

यद्यपि क्षेत्रवाद के पैरोकार हमारे राष्ट्र और देश के एक होने के तथ्य को अस्वीकार नहीं करते, परंतु अलगाववादी हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व की इस मूलभूत अभिधारणा को पूरी तरह खारिज करते हैं।

एक पृथक् द्रविड़ संस्कृति और राष्ट्रीयता की मनगढ़ंत अवधारणा को अस्वीकृत और समाप्त करने के लिए रचनात्मक कदम उठाए जाने चाहिए और दूसरी तरफ वर्तमान संघीय संविधान को संशोधित किया जाना चाहिए और भारत को प्रांतों में विकेंद्रीकृत शक्तियों का एकात्मक राज्य घोषित किया जाए।

कर-विरोधी आंदोलन शुरू किया जाएगा

जनसंघ इस वर्ष के केंद्रीय और राज्य बजटों में लागू नए करों के विरुद्ध देशव्यापी आंदोलन शुरू करेगा।

जनसंघ कुछ राज्यों में प्रस्तावित की जा रही भूमि दर में किसी भी वृद्धि के भी विरुद्ध है।

बैठक और सम्मेलन आयोजित करने के अलावा जनसंघ बढ़ा हुआ किराया लागू होने के दिन 1 जुलाई को रेलवे स्टेशनों पर विशाल प्रदर्शन करेगा।

भू-राजस्व में वृद्धि का विरोध करने के लिए ग्राम प्रतिरोध समितियों के गठन का प्रस्ताव है।

केंद्रीय और राज्यों के वित्त मंत्रियों को अपने निर्णयों पर पुनर्विचार करना चाहिए और ऐसी स्थिति बनने देने को टालना चाहिए, जो लोगों को सीधी कार्रवाई का सहारा लेने को बाध्य करे।

जनसंघ और आर.एस.एस.

मतभेद? जहाँ तक मैं जानता हूँ, न जनसंघ में है और न ही आर.एस.एस. में। जहाँ तक 'जनसंघ और आर.एस.एस. के बीच मतभेद' की बात है, यह प्रश्न उन लोगों के लिए निरर्थक है, जो इन दोनों संगठनों के दो भिन्न कार्यपरिधियों में कार्य करने की स्पष्टता को जानते हैं।

जनसंघ में कई लोग ऐसे हैं, जो आर.एस.एस. के सदस्य हैं, परंतु कई ऐसे भी हैं, जो नहीं हैं। जैसे मैं पिछले 20 वर्ष तक आर.एस.एस. में रह चुका हूँ। आर.एस.एस. एक सांस्कृतिक संगठन है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि इसके सदस्य राजनीति में भागीदारी नहीं करते। वस्तुतः इसके सदस्य कई राजनीतिक दलों में सक्रियता से कार्य करते हैं।

जैसे दृष्टांत के लिए कई अन्य कांग्रेसियों समेत श्री लालबहादुर शास्त्री आर्य समाज के सदस्य हो सकते हैं और कई और हिंदी साहित्य सम्मेलन के सदस्य हो सकते हैं। परंतु यह किसी तरह से इन संगठनों को एक-दूसरे से नहीं जोड़ता या किसी एक को दूसरे की शाखा नहीं बनाता।

इन संगठनों की गतिविधियों की स्पष्ट कार्यपरिधि है। यही जनसंघ और आर.एस.एस. के साथ भी है। इस मुद्दे पर वास्तव में कोई भ्रम नहीं है, जब तक कि कोई भ्रमित होने पर आमादा न हो और मैं कुछ समाचार-पत्रों को जानता हूँ, जो तय कर के यह कर रहे हैं।

लोकतंत्र के निमित्त शहीद

मैं पिछले रविवार को मुंगेर विधानसभा उपचुनाव के दौरान मैदारीपुर मतदान केंद्र पर पुलिस गोलीबारी की निंदा करता हूँ। जब लोग कांग्रेस द्वारा अवैध प्रचार के विरुद्ध विरोध कर रहे थे, पुलिस ने एक प्रांतीय मंत्री की उपस्थिति में गोलीबारी का सहारा लिया, जिसने संपूर्ण त्रासद घटना को और अधिक निंदनीय बना दिया। मैं पुलिस गोलीबारी में मारे गए लोगों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। वे लोकतंत्र के निमित्त शहीद हुए हैं।

जनसंघ यह माँग करता है कि इसके लिए न्यायिक जाँच बैठाई जाए। आयुक्त द्वारा वर्तमान जाँच उद्देश्य को पूरा नहीं करती है।

—ऑर्गनाइज़र, जून 11, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



29

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली

हम लोग हिंदू समाज का संगठन एक राष्ट्रीय आधार पर कर रहे हैं। हिंदू राष्ट्र, यह हम सब लोगों की श्रद्धा का एक विषय है और हमारी ऐसी मान्यता है कि यह आधारभूत है। किंतु कई बार यह प्रश्न पैदा होता है कि हम हिंदू राष्ट्र की प्रतिष्ठा चाहते हैं अर्थात् क्या चाहते हैं? कुछ लोग यह भी कहते हैं कि हमें हिंदू राष्ट्र का निर्माण करना है। इस प्रकार की शब्द रचना, जिसमें राष्ट्र के निर्माण की बात कही जाती है, वह थोड़ी सी भ्रामक होती है, क्योंकि उसके पीछे यह भाव छुपा रहता है कि जो चीज नहीं है, वह हमें पैदा करनी है। आजकल बहुत से लोग इस प्रकार राष्ट्र निर्माण की बात कहते हैं। उनके लिए यह सत्य है, क्योंकि वे ऐसे राष्ट्र की बात मानते हैं, जिसका वे वर्तमानत्व नहीं मानते, भविष्य में वह बन जाए, इसकी इच्छा है। इसीलिए कहते हैं—हमें राष्ट्र बनाना है।

किंतु हिंदू राष्ट्र कोई ऐसी चीज नहीं है, जो हमें नए सिरे से बनानी है अर्थात् हिंदू राष्ट्र की प्रतिष्ठा का अर्थ हिंदू राष्ट्र को जन्म देना नहीं। हिंदू राष्ट्र है। वे कहते हैं—ये हिंदू राष्ट्रवादी हैं। आजकल 'वाद' शब्द बहुत चल गया है। और किसी न किसी वाद को लेकर चलना भी चाहिए, ऐसा लोगों का आजकल आग्रह रहता है। इसीलिए वे ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि हम भी अपने को किसी वाद का कहें, इसलिए हमें वे हिंदू राष्ट्रवादी कहते हैं। किंतु 'हिंदू राष्ट्रवाद' यह शब्द प्रयोग भी गलत है। यह कल्पना है। इस कल्पना को लोग सत्य करना चाहते हैं। ऐसी कल्पना, जिसका वे स्पष्टीकरण या मन में कोई तारतम्य बिठाने का प्रयत्न करते हैं।

ऐसे बहुत से वाद हैं। राष्ट्र के विषय में भी सोचते हैं कि इसमें अनेक वाद होंगे और उनमें से एक हिंदू राष्ट्रवाद। हिंदू राष्ट्र कोई वाद का विषय नहीं, कल्पना भी नहीं

है। यह सत्य है, स्वयं प्रमाण है। इसके लिए कुछ प्रमाण दिए जाएँ, इसकी भी आवश्यकता नहीं। यह बात है कि अंधे को भी दिखने वाली चीज़ को वे नहीं देखते और प्रमाण माँगते हैं। लकीर के फ़कीर हैं। यदि कोई सामने खड़ा हो और कहा जाए कि तुम मनुष्य हो इसका प्रमाण दो, तो कठिन है। छोटी सामान्य चीज़ों का प्रमाण देना तो कठिन है। लोग कहते हैं कि प्रमाण नहीं तो हम यह नहीं मानेंगे।

एक समाचार-पत्र में पिछली लड़ाई की एक घटना आई। दो सेनाओं में कहीं लड़ाई हुई। कुछ मारे गए कुछ घायल हो गए, बाक़ी हट गए। बाद में अस्पताल की एक टुकड़ी भेजी गई, ताकि घायलों का उपचार और मरों को दफ़नाया जा सके। इससे पूर्व एक डॉक्टर जाँच के लिए गया। जाँच करके उसने घायलों की तथा मरे लोगों की अलग-अलग सूची बनाकर भेजी। दफ़नाने वाली सूची लेकर मुर्दों को उठाकर मोटर में ले गए। मुर्दों को उठाकर जब गाड़ी में डाल रहे थे तो एक कराह उठा और बोला, 'अरे! मैं तो जिंदा हूँ।' उन्होंने उसका नंबर पूछा तो उसने नंबर बता दिया। उन्होंने नंबर लिस्ट पर लिखा देखकर कहा, 'ठीक है तुम मुरदे हो।' डॉक्टर से यह ग़लती हो गई थी, वह नहीं पहचानता था कि वह जिंदा है या मुरदे। उसकी सूची पर अधिक विश्वास किया गया और प्रत्यक्ष बोलने पर नहीं।

इसी प्रकार लोग हिंदू राष्ट्र का प्रमाण पूछते हैं। वस्तुतः कोई प्रमाण नहीं, यह स्वतः सत्य है। हिंदू क्यों हैं? क्योंकि हिंदू हम अपने को कहते हैं। यह हमारे हृदय की बात है, भावनात्मक अनुभूति है। इसलिए यह वाद नहीं, वाद से परे एक सत्य है।

तीसरी चीज़ पैदा होती है। यह वाद भी नहीं, और हमें कोई नई चीज़ भी बनानी नहीं। हिंदू राष्ट्र पुराना है, कब से है—इसका पता लेना इतिहासज्ञों का काम है, उनमें मतभेद पैदा हो सकता है। किंतु मतभेदों के कारण हमारे अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता। Date of Birth के बारे में भी झगड़ा हो जाता है। कोई म्यूनिसिपैलिटी की तिथि को प्रामाणिक मानता है तो कोई हाई-स्कूल के सर्टिफिकेट को और कोई जन्मपत्री की तिथि को। कलकत्ता हाईकोर्ट के जज के रिटायरमेंट का झगड़ा हो रहा है। उनकी आयु में दो-तीन वर्षों का अंतर है। कभी भी पैदा हुए वह वर्तमान में हैं, यह सत्य है। हिंदू राष्ट्र कब पैदा हुआ, यह अतीत की घटना है। खोज हो सकती है, परंतु उस खोज के परिणामों से हमारे अस्तित्व से कोई इनकार नहीं कर सकता।

राष्ट्र नाम की इकाई हमारे ही नहीं, अन्य देशों के लिए भी होती है। यह कृत्रिम रूप से बनता नहीं, यह जीवमान इकाई है। जैसे एक शरीर एक इकाई के रूप में मालूम होता है तो दिखाई देता है। किंतु यह सब मानते हैं कि इस भौतिक शरीर से भी आगे कोई चीज़ है, जो दिखती नहीं है—मानसिक है, बौद्धिक है। हरेक जीव में भौतिक अस्तित्व से आगे जाकर उसका एक मानसिक अस्तित्व, बौद्धिक अस्तित्व, आत्मिक

अस्तित्व भी है। जीवमान चीज़ बनाई नहीं जाती, पैदा होती है। मोटर और घोड़े की तुलना करें। पुर्जों को इकट्ठा कर, एक तरतीब से जोड़कर मोटर बना सकते हैं। पेट्रोल डालें तो मोटर चलने लगती है। किंतु घोड़े के सब अंग जोड़कर उसे चमड़े में सी दें तो वह घोड़ा नहीं बनेगा। क्योंकि वह जीवमान इकाई है। क्रागज के फूलों से, पत्तियों से क्रागज का पेड़ तो बना लेंगे किंतु पत्ते, टहनियाँ आदि गोंद से चिपकाकर वास्तविक पेड़ नहीं बन सकता। वह तो बीज से पैदा हो सकता है। पानी और खाद देकर पोषण देने से उस पेड़ में से स्वयं ही पत्ते और टहनियाँ निकलेंगी।

इसी प्रकार राष्ट्र भी चारों ओर से जोड़कर नहीं बनता, वह पैदा होता है, उसका विकास होता है और उसके विकास के साथ अंग पनपते हैं। राष्ट्र के लक्षण हैं—देश, समाज, संस्कृति, इतिहास, एक दृष्टि, समान शत्रु मित्र भाव। बहुत से लोग समझते हैं कि ऐसी सब चीज़ें समान बना दो तो राष्ट्र बन जाएगा। देश है, समाज है, यदि इतिहास समान नहीं तो उसे भूल जाओ। अगर कोई कहे कि गंगा और यमुना का त्रिवेणी में संगम होता है तो पहले की गंगा को भूल जाओ, गंगा गंगा नहीं रहेगी। इसी प्रकार जहाँ से सबका इतिहास समान हो, उससे पहले का इतिहास भूल जाओ तो वह इतिहास नहीं रहेगा।

राष्ट्र बनता नहीं पैदा होता है। हमारा राष्ट्र भी पैदा हुआ है। हाँ, राष्ट्र का विकास, प्रगति और क्षय होता है, उत्थान और पतन होता है। जैसे मनुष्य बलवान भी हो सकता है और दुर्बल भी। मेरा एक परिचित मित्र बीमारी के कारण दुर्बल हो गया था तो कुछ देर बाद मेरे से पहचाना भी नहीं गया। बहुत रोग से सिर के बाल तक उड़ जाते हैं। यह सब हो सकता है। बच्चा पैदा होकर बड़ा होता है और उसकी दाढ़ी-मूँछ भी निकल जाती है, यह विकास है और यह कृत्रिम रूप से होता है, यह ग़लत है। जब हिंदू राष्ट्र की प्रतिष्ठापना की बात करते हैं तो वस्तुतः सत्य का साक्षात्कार करने लगते हैं। इस साक्षात्कार से जीवन की समस्याएँ दूर होती चली जाएँगी। हिंदू राष्ट्र के कई पहलू हैं। इनको हमें पहले समझ लेना होगा। बहुत बार लोग इसके वास्तविक तत्त्व को न समझकर छोटे स्वरूप को ही पूर्णरूपेण मान लेते हैं। जैसे प्रसिद्ध कहावत है कि छह अंधे किसी हाथी को देखने गए तो पूँछ पकड़ने वाले ने रस्सी कहा, पेट वाले ने ढोल कहा, पैर वालों ने स्तंभ कहा। परंतु उनकी अनुभूति सर्वांगीण और व्यापक नहीं थी, इसलिए कल्पना पूरी हुई नहीं, वे परस्पर लड़ने लगे।

कई बार तो पूरी अनुभूति न होने के कारण अच्छी-से-अच्छी चीज़ को भी हम छोड़ देते हैं। प्रारंभ में कोई ग़लत अनुभूति हो गई तो और भी कठिन है। जैसे टेढ़ी खीर का क्रिस्सा है। यह टेढ़ी खीर आई कहाँ से? किसी ने सूरदास से पूछा, खीर खाओगे? सूरदास ने कभी खीर खाई नहीं थी। उसने पूछा, कैसी होती है तो कहा, सफ़ेद होती है। सफ़ेद क्या होता है तो कहा, बगुले जैसा। सूरदास के पूछने पर कि बगुला कैसा होता है

तो हाथ को टेढ़ा करके बताया गया कि ऐसा होता है। सूरदास ने हाथ को टटोलकर देखा तो वह टेढ़ा था। उसने कहा, नहीं भाई मैं टेढ़ी खीर नहीं खाता। इसी प्रकार हिंदू राष्ट्र के बारे में भी एकांगी ज्ञान वाले इसे ठीक से नहीं समझते।

एक सज्जन मिले और बोले कि हिंदुत्व यानी छुआछूत, भेदभाव, मुसलमानों से झगड़े। लेकिन यह स्वरूप तो नहीं। मनुष्य जीवन में अनेक चीजें आती हैं, तो एक चीज को सार्थक मान लेना ग़लत होगा। यदि किसी के साथ झगड़ा हो जाए और अपनी रक्षा में उसके साथ दो-दो हाथ कर लें और उससे यही निष्कर्ष निकालें कि यह लड़ाकू है, यह जानने का यत्न नहीं किया कि वह क्यों लड़ रहा था। अतः एकाध घटना पर एकाध स्थिति को देखकर generalization नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह ठीक नहीं है। कुत्ता किसी की ओर भौंकता है और काटने लगता है, यदि वह कुत्ते से बचने के लिए भाग जाए तो यह निर्णय लेना कि वह डरपोक है, ग़लत होगा। सुबह यदि कोई देर तक सो रहा है तो उसे कुंभकरण का नाम देना ग़लत होगा, क्योंकि हो सकता है कि वह रात को देर तक जागा हो या उसकी तबीयत अच्छी न हो। हमें हिंदू समाज का व्यापक दृष्टिकोण लेकर चलना चाहिए। किसी एक घटना या अंग को लेकर इसे नहीं समझ सकते। मैं एक बार केरल गया। वहाँ के कार्यकर्ताओं से बात हुई। उन्होंने ईसाइयों द्वारा आई कठिनाइयों का वर्णन किया। मैंने कहा कि विचार करना चाहिए। उनके लिए केवल ईसाइयों द्वारा कठिनाइयों से मुक्ति का विचार करना ही हिंदुत्व है। किंतु मुसलमानों के आक्रमण के बारे में सोचने को तैयार नहीं। यह निगेटिव दृष्टिकोण से विचार करना है। अर्थात् परिस्थिति विशेष और समय विशेष के कारण हिंदू यानी मुसलिम विरोधी, अकाली विरोधी, इस प्रकार यह एक पहलू का निगेटिव रूप लेते हैं और कई तो ब्राह्मण को ही हिंदुत्व कहते हैं। वास्तव में वे हिंदू को टुकड़े-टुकड़े करके देखते हैं। हिंदू के सर्वस्व रूप को वे देखते नहीं। हिंदू का विचार यानी उसके सारे अंगों को मिलाकर विचार करना होगा।

राष्ट्र में तीन प्रमुख चीजें हैं—देश, समाज, संस्कृति। तीनों को साथ विचार करना होगा, किसी एक को नहीं। कई लोग भूमि को लेकर चलते हैं। जो इस देश में रहता है, वह हिंदू है—यह व्याख्या प्रादेशिक आधार पर है। आखिर भूमि ही तो राष्ट्र का आधार नहीं है। भूमि में जो कुछ पैदा हुआ, वह यदि राष्ट्र का है तो देशद्रोही भी उसी भूमि में उत्पन्न होता है। शरीर पर जुएँ भी पैदा होती हैं तो क्या उनका पालन करेंगे। प्रादेशिक आधार पर्याप्त नहीं। यह एक आधार है।

दूसरा समाज है। समाज के संबंध में भी एकात्मकता का विचार है और तीसरी, संस्कृति का भी, इन तीनों का मेल होगा तो उसे हम कहेंगे—हिंदू राष्ट्र की प्रतिष्ठापना।

संपूर्ण हिंदू समाज में एकात्मकता का भाव यदि नहीं है तो यह हिंदू राष्ट्र की

प्रतिष्ठापना में बाधक होगा। किसी कारण से यह अनुभूति कम हो गई है तो उसकी पूर्ति करनी पड़ेगी। एक अंग यदि दुर्बल हो गया तो भी उसके बारे में अपनेपन की अनुभूति तो रहती ही है। यह अपनेपन का भाव आवश्यक है। यदि शरीर को लकवा मार जाए तो वह भाग सुन्न हो जाता है। कोढ़ हो जाने पर यदि वहाँ से मांस काट भी दिया जाए तो वेदना की अनुभूति नहीं होती। किंतु स्वस्थ शरीर में कहीं भी सुई चुभो दें तो सारे शरीर में वेदना की अनुभूति होती है। काँटा पैर में लगता है किंतु दर्द सारे शरीर को अनुभव होता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उसकी दुर्बलता को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। संपूर्ण हिंदू समाज में एकता की अनुभूति होनी चाहिए। कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक प्रत्येक व्यक्ति किसी भाषा, उपासना पद्धति, संप्रदाय का हो, उसमें एकात्मकता प्रकट होती रहनी चाहिए। आज यह भाव असामान्य है। यह भाव तो सब में रहता है, किंतु जब कोई कठिनाई आती है तो यह भाव पुनः स्मरण हो आता है और जब कठिनाई नहीं रहती तो यह विस्मरण हो जाता है। कबीर ने भी कहा है—

दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।

जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय॥

अष्टग्रह इकट्ठे हुए तो कितना भजन, कीर्तन, हवन आदि हुआ। परीक्षा से पूर्व नास्तिक भी हनुमानजी की मूर्ति को नमस्कार कर आता है। कठिनाई में ही ये भाव जाग्रत् होते हैं।

एक स्थान पर शाखा के लिए संघ स्थान चाहिए था। एक सज्जन की जगह उपयुक्त थी। हम लोग उनके पास गए और स्थान के लिए कहा। किंतु उन्होंने हमें फिरकापरस्त कहकर इनकार कर दिया। हम चले गए। छह महीने बाद वही सज्जन अपने आप कार्यालय में आए और कहा कि मैंने बहुत गलती की कि उस समय आपको इनकार किया। संघ तो बहुत अच्छा है। बहुत आग्रहपूर्वक उन्होंने अपने स्थान पर शाखा लगाने के लिए कहा। बाद में हमें पता लगा कि उस स्थान पर कुछ मुसलमान आकर खेलते थे और उन सज्जन की लड़कियों पर आवाजें कसते थे। इसपर उनके हिंदुत्व के संस्कार जाग्रत् हो उठे। तो कठिनाई आने पर यह भाव जाग्रत् होता है।

पूर्वी बंगाल में हिंदुओं पर अत्याचार होते हैं, उससे दुःख होता नहीं। ढाका विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों पर गोली चलती है तो पार्लियामेंट में प्रश्न नहीं उठता, किसी को दुःख नहीं होता। किंतु छह सौ संथालों पर भारत आते हुए गोली चली तो उसका सबको दुःख हुआ, पार्लियामेंट में प्रश्न पूछे गए, क्यों? यह तो हृदय की अनुभूति की बात है। संथालों के साथ अनुभूति है।

कई बार व्यक्ति अपनी भावनाओं को प्रकट नहीं होने देता। किंतु वास्तविकता प्रकट हो ही जाती है। नाना भाषाएँ बोलने वाला भी अनायास मातृभाषा ही बोलेगा।

नाना फड़नवीस¹ के दरबार में बहुत सी भाषाएँ बोलने वाला एक व्यक्ति आया। सब भाषाओं पर उसका समान रूप से अधिकार था। उसने चैलेंज किया कि कोई उसकी मातृभाषा बता दे। रात को उसके सो जाने पर नाना फड़नवीस ने पानी का घड़ा भरवाकर उसके सर पर दे मारा। वह एकदम हड़बड़ा उठा और गुजराती में बड़बड़ाया। दूसरे दिन दरबार में फड़नवीस ने जब बताया कि तुम्हारी मातृभाषा गुजराती है, तो वह दंग रह गया। जब उसने पूछा कि कैसे पता लगा तो बताया कि बड़बड़ाने पर मुख से स्वाभाविक रूप से जो निकले, वह मातृभाषा होती है। एक बैरिस्टर और उसके ग्रामीण पिता का उदाहरण है। 'यह मेरा पिता है' ऐसा कहने में बैरिस्टर को कुछ लज्जा लगी, उसने सत्य को छिपाया। इसी प्रकार 'यह हिंदू राष्ट्र है', इस सत्य को कुछ लोग छिपाते हैं। जीवन में जब हम सामान्य व्यवहार में हिंदू के नाते चल सकेंगे, तब हमारे अंदर हिंदुत्व होगा। विपत्ति के समय ही हिंदू राष्ट्र नहीं। हिंदू-मुसलमान झगड़ा हुआ तो हम हिंदू झगड़ा खत्म हुआ तो हिंदुत्व चला गया, यह ग़लत है। भावात्मक रूप से हिंदू हमारे अंदर आए, यह हिंदू राष्ट्र का एक पहलू है।

दूसरी चीज़, जिस प्रकार समाज के सब लोगों से हमारा बंधुता का नाता है, उसी प्रकार हम सबका देश से संबंध होना चाहिए। वह संबंध माँ और बेटे के रूप में चाहिए। वह उस देश को कर्मभूमि, मातृभूमि, पुण्यभूमि के रूप में देखता है, भोग भूमि के रूप में नहीं। जिसके अंदर इस देश का घटक होने की भावना होगी, वह इस देश को भोगभूमि नहीं मानेगा। भोगभूमि मानना इस देश की राष्ट्रीयता में बाधक है। माता की economic value कोई नहीं देखता। यहाँ मुझे सौ रुपए पर नौकर रखना पड़ता है और माताजी को बुला लूँ तो वे साठ रुपए खा जाएँगी, तो भी तीस रुपए की बचत होगी—इस दृष्टि से कोई नहीं देखता। माँ के प्रति तो ममता का भाव होता है। इसी प्रकार देश के बारे में हमारा ममता का भाव होना चाहिए। धीरे-धीरे उसकी एक-एक चीज़ के प्रति ममता का भाव उत्पन्न हो—गंगा के लिए, हिमालय के लिए भी यही भाव हो—यानी हमने इसे पुण्यभूमि मातृभूमि के रूप में देखा। फिर जो टुकड़े करने का विचार है, यह उत्तर है, यह दक्षिण है, यह प्रांत मेरा है—यह भाव राष्ट्र भावना के विपरीत है।

देश के बारे में मातृभाव, समाज में एकता की भावना और जीवन के बारे में हमारा एक दृष्टिकोण है। अन्य देशों के लोगों में भी अपने-अपने देश के प्रति प्रेम भावना होती है। जैसे इंग्लैंड के प्रति वहाँ के लोगों में प्रेम तथा भक्ति है। किंतु हमारे देश में भक्ति और प्रेम पैदा हो जाए, इतना ही काफी नहीं। हम चालीस करोड़ लोग यदि मिलकर

1. नाना फड़नवीस (1742-1800) मराठा योद्धा थे, जिन्हें शिशु पेशवा 'माधवराव द्वितीय' के राजदरबार में शासन कार्य चलाने के लिए नियुक्त समिति का प्रधान बनाया गया था। अपनी चतुराई और बुद्धिमत्ता के सहारे मृत्युपर्यंत मराठा राज्य का सफल संचालन किया तथा उन्हें एकसूत्र में आबद्ध रखने में सफल रहे।

खड़े हो जाएँ और कहें कि इस माँ की रक्षा के लिए अपने रक्त का कण-कण बहा देंगे तो इतना ही पर्याप्त नहीं होगा। केवल यह तो आक्रमण के समय की बात होगी। जब आक्रमण नहीं होगा, बिल्कुल शांति होगी, उस समय हम क्या करेंगे? हमारे जीवन की दिशा क्या होगी? आखिर कुछ Positive direction चाहिए, और वह है संस्कृति।

हमने जीवन को देखा है तो टुकड़े-टुकड़े में नहीं, एक पूरे रूप में। इससे आगे परंपरा को देखा है। हम अपने राष्ट्र की किसी चीज़ का मूल्यांकन करते हैं, तो भौतिक रूप से ही नहीं, पारमार्थिक रूप से भी। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों को लेकर चलेंगे। एकांगी दृष्टि से वैभव प्राप्त करना राष्ट्र-जीवन में बाधा है। ऐसा वैभव प्राप्त करने की इच्छा करनेवाले लोग आज बहुत हो गए हैं, किंतु ऐसा ठीक नहीं। रावण ने सोने की लंका तो प्राप्त कर ली किंतु उसका दृष्टिकोण हमारे राष्ट्र-जीवन के अनुकूल नहीं बैठा। आज आदर्श राज्य के रूप में सब रामराज्य ही चाहेंगे। रावण राज्य कोई नहीं। कौरवों का आदर्श नहीं, युधिष्ठिर और कृष्ण की व्यवस्था का चरित्र हमारे सामने होना चाहिए। जीवन की जो कल्पनाएँ हमारी रही हैं, उनके आधार पर महारानी पद्मिनी जौहर² की चिता में भस्म हो गई। कोई नहीं कहेगा कि उसने अच्छा नहीं किया। जीवन के मूल्य हैं—सतीत्व, सेवा, सत्य, पारमार्थिकता। सहिष्णुता का मूल्य है। भौतिक और पारमार्थिक जीवन के समन्वय का हमने विचार किया। जीवन के इन मूल्यों के बिना राष्ट्र नहीं हो सकता। इनके बिना यह चालीस करोड़ लोगों का स्नेहमंडल नहीं तो चालीस करोड़ लुटेरों का देश हो सकता है।

वास्तव में यह हमारी मूल प्रकृति है। यहाँ परंपरा का विकास मूल प्रकृति के आधार पर होता है। इसके लिए National Integration Committee की आवश्यकता नहीं होती। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जो यह कहने को तैयार हो कि राम ने गलती की, मूर्खता की। भगवान् राम आदर्श हैं। दुर्बलता के कारण आदमी बहुत सी इधर-उधर की बातें कर जाता है तो आत्मा धिक्कारती है। किंतु पाप-पुण्य क्या है, यह तो आत्मा बताती है। आत्मा की आवाज़ हमें सुनाई दे सके, और अपने राष्ट्र-जीवन में वह आवाज़ खड़ी हो सके। अतः देश, समाज, संस्कृति—ये तीन चीज़ें राष्ट्र का आधार हैं।

2. महारानी पद्मिनी, सिंहल द्वीप के राजा गंधर्व सेन और रानी चंपावती की बेटी थी, इनका विवाह चित्तौड़ के राजा रतनसिंह के साथ हुई। रानी पद्मिनी बहुत सुंदर थी और उनकी खूबसूरती पर एक दिन दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की बुरी नज़र पड़ गई। अलाउद्दीन किसी भी क्रीमत पर रानी पद्मिनी को हासिल करना चाहता था, इसलिए उसने 1303 ई. में चित्तौड़ पर हमला कर दिया। रानी पद्मिनी ने आग में कूदकर जान दे दी, लेकिन अपनी आन-बान पर आँच नहीं आने दी। इनकी कथा कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अवधी भाषा में 'पद्मावत' ग्रंथ में लिखी है।

जिस संपूर्ण भूमि को हमने मातृभूमि के रूप में देखा, वह कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक हमारे सामने खड़ी है। राजनीतिक दृष्टि से यह भूमि आज कितनी है, यह आधार नहीं। क्योंकि राजनीति और राज्य लक्ष्मी की तरह चंचल हैं। चंद्रगुप्त मौर्य का राज्य हिंदूकुश तक फैला। राज्य के छोटे-बड़े होने से मातृभूमि की कल्पना में अंतर नहीं पड़ता। हम संपूर्ण देश के प्रति श्रद्धा लेकर चलेंगे। आज भी सिंधु नदी और ननकाना साहिब³ पाकिस्तान में हैं तो क्या हमारी श्रद्धा के पात्र नहीं। पाकिस्तान में भी जो हिंदू नागरिक हैं, उनकी श्रद्धाएँ हमारे सामने हैं। राज्य की सीमाएँ श्रद्धाओं को नहीं बाँध सकतीं। सांस्कृतिक मूल्य राज्य के कानूनों पर निर्भर नहीं होते। तलाक का कानून तलाक देने वाला भी अच्छा नहीं मानेगा, क्योंकि यह हमारा आदर्श नहीं।

इसकी जो संस्कृति है, उस संस्कृति का आत्मीकरण हमारे जीवन के अंदर आए और उसके आधार पर हम सुख का जीवन व्यतीत करें। दूसरे देशों में स्वाभिमान के आधार पर हमारे संबंध बनें, कमजोरी के आधार पर नहीं। राष्ट्र के व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए हम उन्हें भी ऊँचा उठा सकें तो यह कह सकेंगे कि देश के प्रति हमारी ममता विद्यमान है। भगवान् ने क्यों पैदा किया है—यह लक्ष्य का भी साथ-साथ साक्षात्कार होगा। हमारा भी कुछ कर्तव्य है, हम दुनिया को कुछ दें। खाएँ, पीएँ और मर जाएँ, यह नहीं। सृष्टि में हमारा जो मिशन है, उसको पूरा करेंगे। राष्ट्र की ठीक कल्पना हो, जीवन मूल्यों की ठीक कल्पना हो—यही राष्ट्र की प्रतिष्ठापना है। प्रार्थना में भी हम दुहराते हैं—हम इस राष्ट्र को वैभवशाली बनाने के लिए विजयशील संगठन शक्ति से धर्म का संरक्षण करते हुए समर्थ होएँ और हमारा सामर्थ्य सामान्य व्यवहार में प्रकट हो।

—जून 17, 1962



3. ननकाना साहिब (लाहौर से 48 मील पश्चिम) सिख पंथ का पवित्र स्थान है जहाँ सिख पंथ के संस्थापक व प्रथम गुरु नानक देव (1469-1539) का जन्म हुआ था। ननकाना नगर को पहले रायपुर, बाद में राय-भोई-दी-तलवंडी के नाम से जाना जाता था, गुरु नानक देव के बाद से इसे ननकाना साहिब कहा जाने लगा।

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली

हम लोगों ने अपने कार्य के तात्त्विक अधिष्ठान का विचार किया, और कल भी राजेंद्र सिंहजी¹ ने हमारे सम्मुख अपनी कार्यपद्धति के विषय में भी कुछ विचार रखे। अब जिस तत्त्व को मूर्त स्वरूप देने के लिए, जिस कार्यपद्धति को व्यवहार में लाने के लिए हम चले हैं, उसका एक बहुत ही महत्त्व का अंग, जिसे न्याय की भाषा में 'उपादान कारण' कहा है, वह हम भी हैं। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है तो घड़े के लिए जो अनेक कारण हैं—कुम्हार, मिट्टी, चाक और वह क्रिया, जिससे घड़ा बनता है—सब चीजें न हों तो वह घड़ा नहीं बन पाएगा। यदि मिट्टी है और कुम्हार व चाक नहीं अथवा कुम्हार है, मिट्टी व चाक नहीं तो घड़ा नहीं बन पाएगा। यदि बाक्री सबकुछ है किंतु क्रिया नहीं तो भी घड़ा नहीं बन सकता। जैसे घड़े की दृष्टि से सब बातों का विचार करना पड़ता है, उसी प्रकार अपने कार्य की दृष्टि से भी हमें तत्त्व के सिद्धांत का विचार करना पड़ता है, उस कार्यपद्धति का भी जिसको लेकर हम कार्य कर रहे हैं। इन दोनों में भी अधिक महत्त्वपूर्ण वह मेटेरियल है, जिससे हम यह काम करना चाहते हैं—यानी स्वयंसेवक। स्वयंसेवक और संघ एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। हम स्वयंसेवकों द्वारा ही संघ लोगों के पास जाएगा। हमें देखकर वे संघ का कुछ अनुमान लगाएंगे। यानी हम संघ को लोगों के पास ले जाने का साधन हैं, माध्यम हैं। हम इसके साधन ही हैं, नहीं तो यह तो बड़ी फैक्टरी है। इसमें जो माल (final

1. प्रो. राजेंद्र सिंह 'रज्जू भैया' (1922-2003) प्रयाग विश्वविद्यालय में व्याख्याता थे, 1952 में संघ के प्रांत कार्यवाह बने और 1954 में भाऊराव देवरस के प्रांत छोड़ने के बाद उनकी जगह पूरे प्रांत का दायित्व संभालने लगे। 1962 से 1965 तक उत्तर प्रदेश के प्रांत प्रचारक रहे, अंततः 1994 से 2000 तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चौथे सरसंघचालक बने।

product) तैयार होता है, वह final product हम हैं।

लोग तो हमें देखकर ही अंदाज़ा लगाएँगे। हम चाहे कहेँ कि हमारी कार्यपद्धति की ओर देखो। किंतु कभी किसी कारण से कोई चीज़ पूरी तरह तैयार न हो; जैसे फल कभी तैयार न मिले या सड़ा हुआ मिले तो पहले जैसी चीज़ मिलेगी, हमारा अंदाज़ा उसके अनुसार ही होगा। कल ही माधवरावजी² कटहल की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे, मैंने कहा, नहीं, नहीं कटहल तो बहुत खराब होता है। कारण क्या? मैंने जो कटहल एक बार खाया, शायद वह खराब था या मैं अस्वस्थ था, वह मुझे अच्छा नहीं लगा। निष्कर्ष का कारण चाहे कुछ भी हो, परंतु मेरे ऊपर उसकी पहली छाप अच्छा न होने की लगी। संघ के बारे में भी यही बात है। पहली छाप संघ के बारे में संघ के स्वयंसेवक की ही पड़ती है। लोग हमको देखकर अंदाज़ा लगाते हैं कि संघ कैसा होगा? संघ का जीता-जागता चैतन्य रूप संघ का स्वयंसेवक उनके पास जाता है। यदि वे देखेंगे कि वह दृढवत् है, त्यागी है, सेवाव्रती है तो विरोधी के मन में भी आए बिना न रहेगा कि संघ अच्छा है। आज भी लोग कहते हैं, संघ अच्छा है, संघ का स्वयंसेवक अच्छा होता है। हम एक ओर संघ की बाक़ी सब चीज़ें और दूसरी ओर स्वयंसेवक को रख दें तो हम कहेंगे कि स्वयंसेवक सबकुछ है। स्वयंसेवक के बिना संघ कुछ नहीं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में एक ओर अपने राष्ट्रीय आधार और दूसरी ओर हमारा संगठन, इनको जोड़ने वाला स्वयंसेवक है। स्वयंसेवक दोनों के बीच कड़ी है, इस महत्त्व के स्थान को हम समझें।

कई बार बाहर के लोगों में जो विचार चलते हैं कि स्वयंसेवक—अर्थात् कुछ काम करनेवाला। कभी कोई अधिवेशन आदि का बड़ा काम आ गया तो कुछ नेता होते हैं और कुछ दूसरे कुरसी-मेज़ उठाने वाले स्वयंसेवक अर्थात् उनका काम के ध्येय और नीति से कोई संबंध नहीं। सेवाभाव को ही प्रमुख समझते हैं, यह स्वयंसेवकत्व नहीं। कोई आंदोलन आया तो स्वयंसेवक बन जाना, यह नहीं—

माँ का डर न बाप का डर।

बेटा बन गया वालंटर॥

किंतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जन्मदाता ने कहा कि स्वयंसेवक का अर्थ यह नहीं है। स्वयंसेवक कोई बिना पैसों का मज़दूर नहीं। यह तो किसी भी एक ध्येय के लिए सर्वस्व बाज़ी लगाकर उस ध्येय को सिद्ध करने के लिए जो तैयार है, वह स्वयंसेवक है। उसका जीवन ध्येयार्पित होना चाहिए। स्वयंसेवक के लिए पहली आवश्यकता है— ध्येय का ज्ञान, उसका साक्षात्कार करने के लिए मन में लालसा और उसके लिए प्रयत्न। प्रयत्न के बिना हम अपने को स्वयंसेवक नहीं कह सकेंगे। प्रयत्न के साथ स्वयंसेवकत्व

2. माधवरावजी से तात्पर्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक माधव सदाशिव गोलवलकर 'श्री गुरुजी' (1906-1973) से है।

प्रारंभ होता है। अर्थशास्त्र में want और demand में अंतर क्या? इच्छा और माँग में अंतर क्यों नौ सौ पचास लाख रेडियो की इच्छा हो सकती है, किंतु रेडियो बनाने वाला उसका विचार नहीं करता। रेडियो के इच्छुकों में से जितनों के पास खरीदने की सामर्थ्य होगी तो वह उनकी माँग होगी। रेडियो वाला उनकी माँग का विचार करेगा। इसी प्रकार हिंदू राष्ट्र के वैभव की इच्छा रखनेवाले बहुत होंगे, परंतु इस इच्छा से वे स्वयंसेवक नहीं बन गए। इच्छा के साथ जब प्रयत्न का मेल बैठ जाता है, तब हमारा स्वयंसेवकत्व प्रारंभ होता है।

स्वयंसेवकत्व का आधार—ध्येयार्पित जीवन। हिंदू राष्ट्र को उन्नत, वैभव-संपन्न करने का जो हमारे दिमाग में ध्येय है, वह यदि निकल गया, उसका विस्मरण हो गया तो हमारा स्वयंसेवकत्व कैसा? यदि रेडियो लेने गए बाज़ार में और कपड़ा ले आए तो यह स्वयंसेवकत्व नहीं। ध्येय के बिना दौड़-धूप, त्याग, तपस्या सभी व्यर्थ है। केवल त्याग ही से स्वयंसेवकत्व नहीं होता। ध्येय के अनुसार ही त्याग आदि साधनों का मूल्यांकन किया जाता है। साधन की उदात्तता इसी प्रकार से प्राप्त होती है। सूरदास ने कहा है, 'इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो।'

एक छुरी बलि देने के लिए काली के मंदिर में रखी है और एक छुरी कसाई के घर में। दोनों एक सी छुरियाँ हैं, किंतु फिर भी दोनों में अंतर है। एक माली भगवान् के लिए माला बनाता है सात्त्विक भाव से, दूसरा राजा के लिए बनाता है—राजस भाव से और तीसरा पैसा कमाने के लिए किसी विलासी वृत्ति वाले के लिए बनाता है—तामस भाव से। कार्य वही है तीनों का, किंतु ध्येय अलग-अलग हैं। हमारा त्याग, दौड़-धूप इस बात पर निर्भर करता है कि जीवन का ध्येय है या नहीं। ध्येयनिष्ठा गई तो स्वयंसेवकत्व का कोई मूल्य नहीं। इसलिए स्वयंसेवक और ध्येयनिष्ठा दोनों एक हैं, समीकरण हैं। जैसे प्राण के बिना शरीर रहता तो है किंतु कोई मूल्य नहीं। इसी प्रकार ध्येयनिष्ठा के बिना स्वयंसेवक का कोई मूल्य नहीं।

ध्येय यदि सब स्वयंसेवकों के सामने है तो शाखा आदि में चैतन्य आ जाएगा। बहुत से लोगों ने हमारी कार्यपद्धति का अनुकरण किया। शाखाएँ लगाई, खेल, लाठी, ड्रिल आदि भी किए, लेकिन कुछ ही देर चलकर बंद हो गए। किस वस्तु के अभाव में वे नहीं चल सके? उन्होंने बाहर की वस्तुओं की नक़ल की। संघ का स्वयंसेवक कोई लाठी का लठैत नहीं, कवायद करनेवाला पलटन का सिपाही नहीं। वह तो ध्येयनिष्ठ है। स्वयंसेवक के कार्यक्रमों में, प्रचलन गीतों में ध्येय बराबर है।

ध्येयार्पित जीवन का किसी भी स्थिति में विस्मरण नहीं होना चाहिए। जैसी हवा चली वैसी बात करनेवाले बहुत मिल जाते हैं। 'मैं भी स्वयंसेवक था' यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है, यानी हम भूतजीवी हैं। स्वयंसेवक के साथ 'था' नहीं। क्योंकि

जहाँ 'था' होता है, वहाँ भूत होता है। स्वयंसेवक तो हमेशा वर्तमान 'मैं हूँ' में रहता है और जब तक हूँ यानी जीवन भर रहूँगा। स्वयंसेवक जीवन में एक ही बार बनता है, क्योंकि हमारा ध्येय एक है, वह बदलता नहीं। कइयों का ध्येय हर साल बदलता है और वे ही हवा के रुख के साथ चलते हैं। जमाने के साथ चलना चाहिए—इसे वे व्यावहारिकता समझते हैं। स्वयंसेवक जमाने के साथ नहीं चलता, जमाने को बदलते हैं। जमाने के साथ ही चलना होता तो पूजनीय डॉक्टरजी संघ शुरू ही क्यों करते? वे भी कहते, 'हिंदू मुसलिम सब एक'।

वह ऐसा ही समय था—'गंगा गए गंगादास जमुना गए जमुनादास' और पोखर में स्नान कर लिया तो पोखरदास। तुलसीदास ने राम की कथा शिव के मुँह से कहलवाई, जो स्वयं को 'रामदास' कहते हैं। वे पार्वती से कहते हैं, 'हरि और हर में कोई भी अंतर नहीं, जो हरि का भक्त और हर का द्रोही है अथवा हर का भक्त और हरि का द्रोही है, वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।' ईश्वर के अनेक नाम हैं। तुलसी ने राम को हृदय में बसाया। एक बार वे वृंदावन में कृष्ण के मंदिर में गए तो कृष्ण की मूर्ति को नमस्कार नहीं किया—

मोर मुकुट कटि काछनी, भले बने हो नाथ।

तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बाण लो हाथ॥

कृष्ण की मूर्ति कोदंडधारी राम की मूर्ति बन गई। तुलसीदास ने पूजा की और जब वे चले गए तो मूर्ति फिर कृष्ण रूप हो गई। यह है उत्कट ध्येय निष्ठा। जिधर किसी ने कहा, उधर ही चल पड़े, यह ध्येयवादी नहीं। ससुराल जानेवाले, खिचड़ी-खिचड़ी बोलते हुए शेखचिल्ली का उदाहरण, यह सब स्वयंसेवक के लिए ठीक नहीं। उसे तो एक ध्येय सम्मुख रखकर सतत काम करना है। काम के बिना ध्येयार्पित जीवन का कोई मतलब नहीं। हिंदू राष्ट्र का कीर्तन करने से हिंदू राष्ट्र बनता नहीं, उसके लिए काम करना पड़ता है और वह काम शाखा का है। तो ध्येयनिष्ठा के साथ-साथ लोकसंग्रह होना चाहिए। स्वयंसेवकत्व के ये दो आधार हैं।

हमने देखा है कि ध्येयनिष्ठा के पीछे लोकसंग्रह भी चाहिए। हमारा ध्येय कोई व्यक्तिगत ध्येय नहीं। यह तो राष्ट्र का ध्येय है। राष्ट्र को गौरवशाली बनाने का कार्य है। समष्टि का कार्य है, तो उसके लिए लोक-संग्रह होना चाहिए।

लोक-संग्रह करना है तो जैसा भी हुआ, इकट्ठा कर लिया, यह नहीं। उसके लिए विनयशीलता चाहिए। शुद्ध व्यवहार चाहिए, संतुलित जीवन चाहिए। यह सब इस भाव से करना कि इन सब लोगों को एक-एक करके संगठन में लाना है। हमें सेवा के लिए सेवा नहीं करनी, सेवा द्वारा संघकार्य बढ़ाना है। यदि हम देखें कि यह संघ में नहीं जा सकता तो हम उसकी सेवा को छोड़कर किसी और की सेवा करें, जो अपने साथ आ

सकता हो। अपने यहाँ तो चींटियों को भी अन्न डालते हैं, लेकिन स्वयंसेवक तो जाकर चींटियों को नहीं डालते। क्योंकि हमें पता है कि हमने चींटियों को स्वयंसेवक नहीं बनाना। मेले में जाकर हमें मेले का प्रबंध भी नहीं करना। सब प्रकार के अच्छे काम होते हुए भी संगठन के बिना उनकी क्रीमत नहीं। जैसे बाज़ार में हम जो वस्तु खरीदने जाएँ वही खरीदनी चाहिए। अन्य वस्तुएँ अच्छी होने पर भी हमें उनकी आवश्यकता नहीं होगी। मान लो, एक विद्यार्थी बाज़ार में साइंस की पुस्तक लेने जाता है। वह न मिले एक अच्छी-सी बढ़िया दिखने वाली आयुर्वेद पुस्तक खरीदने को यदि दुकानदार कहे तो वह पुस्तक उस विद्यार्थी के लिए किस काम की, विद्यार्थी उसका क्या करेगा? विज्ञान की पुस्तक और आयुर्वेद की पुस्तक दोनों में ज्ञान है, किंतु विद्यार्थी को तो साइंस का ज्ञान चाहिए। इसी प्रकार जीवन में अच्छे काम होते हुए भी उनमें से हम लोक-संग्रह का काम करते हैं। लोग हमें संकुचित कह सकते हैं। परंतु इसमें संकुचितता कुछ नहीं। जो विशाल ध्येय हमने अपने सामने रखा है, उसकी पूर्ति करनी है। रेलवे स्टेशन जाने के लिए आसपास की आकर्षक चौड़ी सड़कों पर ही चलेंगे। चलते समय अगर कहीं कूड़ा पड़ा हो तो उसे ही साफ़ करने नहीं लग पड़ेंगे। सुंदर बाग की सैर के चक्कर में नहीं पड़ेंगे। यदि पड़ गए तो रेलवे स्टेशन से गाड़ी नहीं पकड़ सकेंगे। किसी सज्जन ने मुझसे कहा कि आपकी काशी में इतनी बड़ी शाखा है और काशी नगरी बड़ी गंदी पड़ी है। उस तीर्थ स्थान की आप सफ़ाई क्यों नहीं करवाते? मैंने कहा, 'हमारे स्वयंसेवक काशी नगरी को साफ़ करने के लिए नहीं हैं। अपने जिम्मे हमने जो काम लिया है, वह है लोक-संग्रह का काम। अगर कभी भगवान् के दर्शन हों तो संघ का स्वयंसेवक उनसे यही वरदान माँगेगा कि आप हमारी शाखा में आइए, चलिए कबड्डी खेलिए। यह हमारा लोक-संग्रह का काम है, यह पहली बात है।

दूसरी बात है कि लोक-संग्रह में भी ध्येयनिष्ठ स्वयंसेवक में अनुशासन पालन करने की भावना होनी चाहिए। ध्येयनिष्ठा और अनुशासन यदि कायम हैं तो लोक-संग्रह का कार्य चलता रहेगा। अनुशासन का अर्थ भी आजकल विकृत हो गया है। अनुशासन का प्रयोग, किसी को निकालने के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई होती है। अनुशासन निकालने के लिए नहीं, जोड़ने के लिए है। अनु का अर्थ किसी के अनुसार चलना। अनुशासन हमारे हृदय का है और इस ध्येय के अनुसार चलना है। मोटे तौर पर इसे आज्ञा पालन कहते हैं। आज्ञा पालन नहीं तो अनुशासन नहीं। यहाँ मुख्य शिक्षक ने अगर दक्ष की आज्ञा दी या सीटी बजाई तो सभी स्वयंसेवक देखने लगे कि सर्वाधिकारीजी आए हैं या नहीं और क्योंकि वे मुझे दिखाई दिए नहीं, इसलिए मैं दक्ष में नहीं आया, यह बात ठीक नहीं। सीटी ग़लत भी बजाई गई तो भी स्वयंसेवकों को दक्ष में आना चाहिए। आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। सर्वाधिकारीजी आए या नहीं, यह देखना मुख्य

शिक्षक का काम है। अच्छी-से-अच्छी भावना होने पर भी यदि आज्ञा का पालन नहीं किया तो अहं जाग्रत् हो जाएगा। अनुशासन और अहंकार दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। अहंकार और भक्ति भी साथ-साथ नहीं चल सकते। जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। इसलिए हम अहंकार नहीं करेंगे, आज्ञा का पालन करेंगे। जैसा बताया वैसा करेंगे, बुद्धि लगाएँगे, सोचेंगे। परंतु बुद्धि कहाँ लगानी है। दक्ष की आज्ञा में बुद्धि नहीं लगानी। कहीं बाहर काम के लिए, शाखा खोलने के लिए गए तो उसमें बुद्धि का प्रयोग करेंगे। एक सेठ का अँगोछा गिर गया तो उठाने की आज्ञा न मिलने के कारण नौकर ने उसे नहीं उठाया। सेठ ने उसे कहा, जो भी चीज़ गिरे, उठा लो। एक बार सेठ घोड़े पर जा रहा था और नौकर उसके पीछे-पीछे चल रहा था। घोड़े ने लीद की तो नौकर ने वह लीद उठा ली। ऐसा निर्बुद्धि आदमी आज्ञा पालन नहीं कर सकता। अनुशासन के लिए बुद्धि की आवश्यकता है।

बुद्धि के साथ अनुशासन, लोक-संग्रह और ध्येय निष्ठा—ये स्वयंसेवक के तीन आधार हैं। तीनों के सहारे चले तो प्रेम, विनयशीलता, त्याग, सेवा आदि गुण अपने आप आ जाएँगे। सन् 1947 तक तो एक विशिष्ट ध्येय को लेकर राष्ट्र विचार का काम करनेवाले लोग थे, चाहे उनके मार्ग अलग-अलग थे। किंतु सन् 1947 के बाद जो सबसे बड़ी कमी आई है, वह यह है कि अपने सामने बड़ा आदर्श ध्येय लेकर चलने वाले लोगों की संख्या गिरती जा रही हैं। आज अधिक-से-अधिक कोई यही सोचता है कि मैं प्रधानमंत्री बन जाऊँ। इसलिए लोग आज संघ की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहे हैं। क्योंकि यहाँ राष्ट्र का विचार करके निस्स्वार्थ भाव, अनुशासन और लोक-संग्रह की भावना से युक्त स्वयंसेवक हैं। हमारे में वाहवाही की इच्छा नहीं। जितनी हमारी संख्या बढ़ेगी, तेजस्विता बढ़ेगी, उतनी ही अधिकाधिक कार्य की प्रगति होगी और हमारा आत्मविश्वास बढ़ेगा तथा स्वाभिमान का भाव जाग्रत् होगा।

—जून 22, 1962



संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : अलीगढ़

स्वयं जीवित रहने की वृत्ति के कारण ही एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पना चाहता है। यह वृत्ति हमारे जीवनादर्श में नहीं है।

भारत और पश्चिम के विचारों में मूलभूत अंतर है। हम समाज की अनेक इकाइयों में सामंजस्य मानकर चलते हैं और पश्चिम में विरोध को महत्त्व दिया गया है। उनकी कल्पना है कि संपूर्ण मानव जीवन संघर्षमय है। सृष्टि इसी संघर्ष के आधार पर टिकी हुई है। उनका समूचा जीवन दर्शन प्रतिस्पर्धा पर आधारित है। भारत की सारी विचारधारा सहयोग और परस्परपूरकता पर आधारित है। हम प्रत्येक सामाजिक इकाई को उसकी पूर्णता में देखते हैं, पर वे उसे पूर्णता में नहीं देखते। हम व्यक्ति के शरीर को भौतिक आवश्यकताओं का पुंज नहीं मानते। हमने उनकी बौद्धिक, मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को भी महत्त्व दिया है। परंतु पश्चिम में अधिकांश लोग शरीर की भौतिक आवश्यकताओं के बीच संघर्ष की स्थिति मानते हैं। इसमें वे भौतिक आवश्यकताओं को प्रमुखता प्रदान करते हैं। यह सत्य है कि व्यक्ति और समाज में संघर्ष के क्षण आते हैं, परंतु यह स्थिति स्वाभाविक नहीं, असामान्य है। यह स्थिति धर्म की नहीं, यह तो विकृति है।

इस संघर्ष की मान्यता के कारण पश्चिम में दो प्रकार के चिंतक मिलते हैं। एक तो वे हैं, जो व्यक्ति को प्रमुख मानते हैं, समाज को गौण मानकर चलते हैं, वे समाज को वहीं तक मानते हैं, जहाँ तक वह व्यक्ति के हितों की रक्षा करता है।

दूसरे प्रकार के विचारक समाज को श्रेष्ठ और व्यक्ति को गौण मानते हैं। ये व्यक्ति की सत्ता को एकदम समाप्त कर देना चाहते हैं। ये मानते हैं कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समाज का हित साथ-साथ नहीं चल सकते। दोनों में से हमें एक ही चुनना होगा।

डार्विन¹ के 'शक्तिशाली ही जीता है' के सिद्धांत के आधार पर उन्होंने अपने जीवन की रचना की। इसीलिए वहाँ केवल अपने स्वार्थ के लिए लड़ाई और होड़ है। प्रत्येक एक-दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देखता है। वहाँ दो व्यक्ति आपस में इसलिए मिलते हैं कि उनके समान स्वार्थ हैं। पूँजीपति एक साथ हैं तो मजदूर एक साथ। राष्ट्र के संबंध में भी स्वार्थ की भूमिका छिपी रहती है। वे समान स्वार्थ के व्यक्ति समूह को ही राष्ट्र मानते हैं।

पश्चिम में प्रत्येक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहता है। यहाँ पति-पत्नी के अधिकारों की लड़ाई चलती है। प्रेम विवाह होते हैं, फिर भी संघर्ष बना रहता है। हमारे यहाँ विवाह माँ-बाप कराते हैं, फिर भी संघर्ष नहीं होता है। जहाँ सचमुच का प्रेम है, वहाँ संघर्ष हो ही नहीं सकता। हमारी प्रेरणा अधिकारों की नहीं, कर्तव्य की है। हम कर्तव्य को आधार लेकर चलते हैं। हम सेवा का विचार करते हैं, अपनी एकात्मकता और सहिष्णुता का अनुभव करते हैं। हम दूसरे की बात को भी सच्ची मानकर सुनते हैं।

धर्म संघर्ष से नहीं सामंजस्य से उत्पन्न होता है। एक-दूसरे के जीवन से एकात्म होना ही धर्म होता है। महाभारत में धर्म-अधर्म की बड़ी सरल व्याख्या की गई है। 'मम' यह अधर्म है। 'न मम' यही धर्म है। मेरा कुछ नहीं, सब तेरा है, यही धर्म है। सबकुछ मेरा है, यही अधर्म है। इससे अहंकार जाग्रत् होता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति स्वयं को केंद्र मानकर संपूर्ण समाज का विचार करता है।

यदि संसार को चलाना है तो 'न मम' का विचार करना होगा। इसी को अपने यहाँ 'यज्ञ' कहा गया है। यज्ञ का अर्थ हवनकुंड नहीं। उसमें आहुति डालना यह यज्ञ का प्रतीक है, यह यज्ञ भाव जगाने की एक पद्धति है। यह संस्कार डालने का एक तरीका है। इसीलिए आहुति के समय कहते हैं कि यह मेरा नहीं देवता का है। जो प्रसाद में मिलता है, उसे ही हम ग्रहण करते हैं। यह त्याग का भाव है। मैं अपने लिए नहीं, दूसरे के लिए हूँ, यही अपनी जीवनदृष्टि है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज के हित में दोनों में मेल होना आवश्यक है, व्यक्ति को स्वतंत्रता मिली है। उस पर कोई रोक नहीं है, पर यदि वह स्वतंत्रता का उपयोग अपने लिए ही करेगा तो ग़लत होगा। व्यक्ति को अपने लिए ही नहीं समाज के लिए भी जीना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो वह समाज की सेवा का प्रयत्न करेगा।

हम रहें, हमारा राष्ट्र रहे और बाक़ी के लोग समाप्त हो जाएँ, यह कल्पना अत्यंत घातक है। हम अपने राष्ट्र का वैभव चाहते हैं, पर यदि उस वैभव को कोई देखनेवाला न रहा तो हमारा वैभव किस काम का?

1. चार्ल्स डार्विन (1809-1882) ने क्रम विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया, विकासवाद कहलाने वाला यही सिद्धांत आधुनिक जीवविज्ञान की नींव बना। डार्विन का मत था कि प्रकृति क्रमिक परिवर्तन द्वारा अपना विकास करती है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'Origin of Species' है।

स्वयं जीवित रहने की इस वृत्ति के कारण ही एक राष्ट्र को हड़पना चाहता है, यह वृत्ति हमारे जीवनादर्श में नहीं है। हम न तो प्रकृति का शोषण करते हैं और न राष्ट्र का ही। हम गाय को माँ मानते हैं उसका दूध प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। गंगा को माँ मानते हैं, उसका जल पीकर अपने को धन्य समझते हैं। हमारे यहाँ माँ-बहिनें घर का काम करती हैं। तो पश्चिम के लोग यह मानते हैं कि हम स्त्रियों का शोषण करते हैं। यह भाव गलत है। माँ पुत्र की सेवा करती है, उसका शोषण नहीं होता है। यह माँ की ममता है। बहन का स्नेह है, जिसके कारण वह कार्य करती है। हम ज्ञानी होंगे और सारी दुनिया मूर्ख रहेगी, ऐसा हम नहीं सोचते। हमने अपने समक्ष विश्व को आर्य बनाने का, श्रेष्ठ बनाने का सिद्धांत रखा। अपने ज्ञान को छिपाया नहीं, समूचे विश्व में फैलाया है। संसार के सबलोग मानव बने, मानवोचित व्यवहार करें। यही हमारे जीवन का मूलभूत विचार रहा है।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एकात्मकता होनी चाहिए। ऐसा होने से उसका व्यक्तित्व नष्ट नहीं होगा, अपितु और भी विकसित होगा। व्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त नहीं होगी, समाज की विराटता में मिलकर और भी विराट हो जाएगी। यदि व्यक्ति ने अपने को समाज से अलग माना तो संघर्ष अवश्य ही खड़ा होगा। वास्तव में व्यक्ति और समाज के बीच में कोई संघर्ष नहीं। यदि संघर्ष आया तो यह दुःख का ही कारण होता है। हमारे यहाँ ऐसी कोई संघर्ष कल्पना नहीं है।

आज संसार के अन्य लोग भी समझ रहे हैं कि मानव की एकता आवश्यक है। मनुष्य-मनुष्य के बीच की यह लड़ाई बंद होनी चाहिए, ऐसा सब लोग सोच रहे हैं। पर शायद उन्हें यह पता नहीं कि इस एकता के लिए कौन सा तत्त्व ज्ञान है, जो इसके आधार के रूप में प्रतिष्ठित होगा। हम उसे जानते हैं कि वह तत्त्वज्ञान कौन सा है? हमें वह प्राप्त करना है। हजारों वर्षों से हम उसे लेकर चले रहे हैं। यदि हम उस तत्त्वज्ञान के साथ चलते रहेंगे तो यह पददलित, हेयराष्ट्र-जीवन एक दिन समाप्त होकर रहेगा।

संसार में हम कुछ करने के लिए पैदा हुए हैं। यह सत्यभाव हम पहचानें। यह सत्यशक्ति के आधार पर ही टिक सकता है, यह भी हम समझें और उसी के आधार पर सारे विद्वेष को समाप्त कर विश्व में सामंजस्य स्थापन का पुण्य कार्य संपन्न करने का संकल्प लें। समूचे समाज में यज्ञभाव उत्पन्न करें। जैसे समुद्र का पानी वाष्प बनकर बादल बनता है, फिर बरसकर उसी के पास आ जाता है। वैसा ही भाव हम भी प्राप्त करना प्रकृति से सीखें। प्रकृति के इस भाव के आधार पर ही सृष्टि टिकी है। यदि यह भाव हमारे जीवन में भी आया तो हम देखेंगे कि मानव जीवन में अवश्यमेव शांति आएगी और हमारा तत्त्वज्ञान विश्व की अस्थिरता को समाप्त करने में सहायक सिद्ध होगा।

—जून 22, 1962



संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली

यह बौद्धिक वर्ग 1962 का हो सकता है, क्योंकि संकलित सामग्री के कैटलॉग में यह 1962 के खंड में उल्लिखित है।

जब हिंदू समाज का विचार करते हैं, तब केवल हिंदूनामधारी लोग, जो यहाँ रहते हैं, उन तक ही दृष्टि नहीं जाती। अनेक अतिरिक्त अपने जीवन के तत्त्व हैं, मूल्य हैं, हमारी जीवन-निष्ठाएँ हैं, जीवन-श्रद्धाएँ हैं, सिद्धांत हैं जिनकी हम रक्षा करना चाहते हैं। प्रतिज्ञा में भी हम अपने धर्म की, समाज की, संस्कृति की रक्षा करने की बात करते हैं। प्रार्थना में भी भगवान् से आशीर्वाद माँगते हैं, धर्म की रक्षा करते हुए परम वैभव की प्राप्ति की कामना करते हैं। बिना धर्म की रक्षा के वैभव मिला तो हम उसे स्वीकार नहीं करेंगे। दो क़दम आगे बढ़कर यदि विचार करें तो पता लगेगा कि धर्म को छोड़कर जो कुछ भी मिलेगा, वह वैभव नहीं, पराभव ही होगा। यह हो सकता है कि मन की विकृति के कारण उसी पराभव को हम वैभव ही समझें। कभी-कभी ऐसा होता है, मन की विकृति के कारण या फ़ैशन के कारण तकलीफ़ होने पर भी उसमें आनंद का अनुभव करते हैं।

गरमी के दिन हैं पर फ़ैशनपरस्त मनुष्य कोट-पैंट पहनता है, टाई भी बाँधता है। इससे उसे गरमी लगती है, पसीना आता है, पर फ़ैशन के दबाव में उसमें ही शान समझता है। वास्तव में पैंट कोई गौरव की चीज़ नहीं। बहुत सी ऐसी चीज़ों में मनुष्य गौरव मानता है, जो वस्तुतः मन की विकृति के कारण ही गौरवास्पद लगती हैं। पराभव में भी गौरव मानने वाले लोग इतिहास में हो गए हैं। गुलाम बनकर परकीयों को अपना माना, और यदि उनकी जरा सी कृपा प्राप्त हुई तो स्वयं को धन्य समझा। मुगलों ने

मानसिंह को 'सवाई मानसिंह' कहा। उसने इसी में गौरव माना। जो अंग्रेजों की अधिक गुलामी करते थे, उन्हें अंग्रेज खिताब देते थे, उसमें लोग गौरव मानते थे। परकीयों का साथ देने में गौरव का अनुभव होना मन की विकृति ही तो है। दो प्रेम भरे प्रशंसा के शब्द प्राप्त हो गए, उसी में धन्यता मानने की यह मनोवृत्ति गलत ही नहीं, त्याज्य है।

मानसिंह नहीं, अपमानसिंह

धर्म को छोड़ने के बाद जो कुछ प्राप्त हो, वह गौरव नहीं। वैभव तो प्राप्त होता ही नहीं। जो प्राप्त होता भी है, वह गौरव वैभव नहीं कहलाता। रावण लंका का राजा था, स्वर्ण लंका का स्वामी, पर धन होने पर भी उसे वैभव संपन्न नहीं माना गया, क्योंकि उसके पास धन था, राज्य था, पर शांति नहीं थी। परेशान था। राम का नाम सुनते ही चिंता होती थी, ईर्ष्या बढ़ जाती थी, द्वेष था। घर में पतिव्रता मंदोदरी जैसी पत्नी होने पर भी उसका सम्मान नहीं कर पाता था। सामंजस्य नहीं था। विभीषण जैसा भाई था। पर उसके वचन उसे अच्छे नहीं लगते थे। वह कुटी बनाकर बाहर रहता था। इस प्रकार घर में ही पति-पत्नी की, भाई-भाई की बनती नहीं थी। मन में चिंता, अस्थिरता, द्वेष विद्यमान रहते थे। ऐसी स्थिति में ऐश्वर्य मिल भी सका तो वह सुखी नहीं कहा जा सकता। मन को भी सुख चाहिए, केवल शरीर को नहीं। सुख के बारे में सोचते समय मनुष्य यह गलती करता है, वह केवल शरीर की सोचता है। पश्चिमी देशों ने यही गलती की पर, अब उनकी धारणाओं में सुधार हो रहा है। पहले शरीर का ही विचार करते रहे, पर जब वह सुख मिलने पर भी मन को दुःख ही रहा, तब उसका विचार प्रारंभ हुआ।

रोटी का सुख श्रेष्ठ है, रोटी ही सबकुछ है, ऐसी कुछ लोगों की धारणा है। यह बात सच है कि रोटी से मनुष्य जिंदा रहता है, पर यदि सबको रोटियाँ मिलने लगे तो भी सब जिंदा रहेंगे ऐसा नहीं। मनुष्य की अन्य लालसाएँ भी हैं, जिनका तृप्त होना ज़रूरी है। जो रोटी सम्मानपूर्वक मिले वही अच्छी लगती है, सम्मान बेचकर जो रोटी मिले वह नहीं चाहिए। हम तुलना करके देखें ऋणा प्रताप को घास की रोटी और मानसिंह को मिलने वाले रस भरे व्यंजन की। किस रोटी को हम पसंद करेंगे? एक रोटी को खाकर प्रताप धर्म पर डटे रहे, मानसिंह रस भरे व्यंजन खाकर गुलाम बना रहा। स्वतंत्रता मुगल दरबार को बेच दी। मानसिंह का स्मरण गौरव नहीं जगाता, वास्तव में उसे हम अपमान सिंह ही कह सकते हैं। रोटी ही सबकुछ होती तो यह अंतर क्यों होता?

आजकल लोग कहते हैं कि जीवन का स्तर (स्टैंडर्ड) बढ़ाओ। आज जीवन स्तर

1. राजा मानसिंह (1550-1614) आमेर (आंवेर) के कच्छवाहा राजपूत राजा थे। अकबर की मुगल सेना में सेनापति थे। मानसिंह ने उड़ीसा और आसाम को जीतकर उनको बादशाह अकबर के अधीन बना दिया। राजा मानसिंह से भयभीत होकर काबुल को भी अकबर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। अकबर ने खुश होकर इन्हें 'सवाई मानसिंह' कहा और बंगाल, बिहार, दक्षिण और काबुल का शासक नियुक्त किया था।

बढ़ाने का अर्थ शरीर की आवश्यकतापूर्ति के साधन ज़्यादा बढ़ाने से रहता है। एक बार गंगाजी में एक व्यक्ति नहाने जाता है, एक धोती और तौलिया लेकर। तौलिया पहनकर स्नान कर लेता, फिर धोती पहन लेता है। उधर प्रथा ही है। बड़े-बड़े लोग धोती-तौलिया से ही काम चलाते हैं। पर पश्चिमी दृष्टिकोण में यह तरीका उच्च जीवन स्तर का नहीं। यदि धोती, साबुन, तेल, मंजन ले आए तो स्तर ऊँचा। और यदि गुसलखाने में नहाना है, शॉवर बाथ है, शैंपू है तो स्तर और भी ऊँचा माना जाता है। अन्य-अन्य प्रकार की चीज़ें एकत्र करना स्तर बढ़ाना माना जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि आप इन वस्तुओं का उपयोग न करें। पहले भी यहाँ ये वस्तुएँ थीं। हम उपयोग भी करते थे। पर इन उपयोगों की वस्तुओं की बहुलता के माप में यह मानें कि जीवन स्तर ऊँचा है, ग़लत है। हमारे यहाँ तो संन्यासी को श्रेष्ठ मानते हैं। जिसका न घर रहता है, न गुसलखाना, न रहने का ठिकाना, न सोने का वस्त्र। वस्त्र भी एक लँगोटी। जो दे दिया, वह खा लिया। ऐसा जो वीतरागी है, वह श्रेष्ठ है। जो वैभव-संपन्न, वह छोटा है। नापने का तरीका कौन सा होना चाहिए। पश्चिम का तरीका उल्टा है। शरीर की आवश्यकता को ही सबकुछ माना जाता है। पर अपनी संस्कृति की मान्यता है, शरीर सबकुछ नहीं, मन भी है। वह शांत रहना चाहिए। शरीर सुखी और मन दुःखी तो लाभ नहीं, मन का सुख बहुत बड़ा सुख है। मन के संतोष के बारे में तो अपने यहाँ कहा है कि—

गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन धन खान।

जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान॥

सब धन मिल जाए, पर मन में संतोष न हो, तो व्यर्थ। मनुष्य की लालसा अपरिमित है। इतना मिला, इतना और मिल जाए, यह इच्छा बनी रहती है। बैंक बैलेंस बढ़ता जाए, ऐसा ही हमेशा लगता रहता है। भगवान् राम और राजा रावण में क्या अंतर था। सोने की लंका का स्वामी था, पर लालसा बढ़ी हुई थी। राम का ऐसा नहीं था। राज्य मिलने वाला था, पर वनवास मिला। दोनों में समान आनंद व संतोष। वास्तव में रावण की आँखें धन की ओर, राम की कर्तव्य की ओर थीं। राजा होने पर भी स्त्री को भगा लाया। क्या यह राजा का कर्तव्य था? कर्तव्य तो है प्रजापालन। पर वह तो धाक जमाना चाहता था। कैसे धाक जमेगी इसका विचार। कैसे विध्वंस किए जाएँ, नए टैक्स कैसे लिये जाएँ, जो टैक्स न दे, उससे कैसे सूद वसूला जाए, इसी को वह अपना ध्येय मान बैठा था। धन-संपत्ति साधन हैं, पर जब ये ही साध्य बन जाते हैं तो रावण का भाव। उसको साधन मानना राम का भाव। राज्य मिलेगा, प्रजा का पालन करूँगा, वनवास मिला कर्तव्य की पूर्ति करूँगा। यह भावना रही। हमारे जीवन में जब मोह हो जाता है, पाँच सौ से सात सौ, दो हजार कैसे होंगे, यह विचार प्रबल रहे तो दुःख पैदा होगा। साधन को साध्य समझने की प्रवृत्ति दुःख का मूल है।

निन्यानबे का चक्कर

एक सेठ थे। उनके मकान में नीचे एक गृहस्थ रहता था अपनी पत्नी के साथ। आयु तो कम थी पर दोनों बड़े सुख से रहते थे। मेले-ठेले में जाना, मित्रों की आवभगत आदि बातों में आनंद से दिन बीत रहे थे। एक बार सेठजी की पत्नी ने कहा, देखो आप इतना कमाते हैं, पर कभी जीवन में आनंद नहीं लेते। हमेशा उदास और व्यस्त रहते हैं। आय भी कम नहीं, पर जीवन में सुख नहीं। वह नीचे के दंपती देखो, आय कम है, पर उनके जीवन में आनंद है। तब सेठजी ने कहा, वह अभी निन्यानबे के फेरे में नहीं पड़ा है। फिर एक रात को निन्यानबे रुपए की थैली उसके घर में पटक दी। जब उस गृहस्थ को थैली मिली, उसने रुपए गिने, निन्यानबे निकले। फिर उसने सौ करने का सोचा। वह खर्च कम करने लगा। जब सौ रुपए हुए तो दो सौ रुपए करने का विचार किया। धीरे-धीरे जीवन के सब आनंद छूट गए। पैसा जोड़ना, यही धुन रही। यह परिवर्तन देखकर सेठजी बोले, 'अब यह निन्यानबे के चक्कर में पड़ गया है।'

यह चक्कर मनुष्य को वैभवशाली नहीं बनाता। पैसा चाहिए, जरूरत भी है, उपयोग में भी आता है। पर केवल साधन के रूप में ही विचार करें, साध्य न बनाएँ। अन्यथा अनेक प्रकार की समस्या पैदा करता है। शरीर के साथ मन भी रहता है। उसका भी सुख है। दोनों का संबंध बना रहे। इसके साथ आगे और भी विचार करना पड़ता है। शरीर व मन के साथ बुद्धि का भी सुख चाहिए। तन का, मन का सुख मिला, पर बुद्धि का न मिला तो पूर्ण सुख नहीं, पागल को तन का मन का सुख मिलता है, मस्त रहता है। पर बुद्धि ठीक नहीं, उलझन में रहती है, अपना ही सर दीवार में फोड़ लेता है। फिर तन, मन दोनों दुःखी हो जाते हैं। इनके साथ ही एक और सुख है आत्मा का सुख। आत्मा का सुख बड़ा सुख है। सब सुख प्राप्त होते हैं पर यदि आत्मा में ग्लानि हो तो फिर पूर्ण सुख नहीं। आत्म-ग्लानि क्या है, आत्मा क्या है, यह समझना टेढ़ी चीज़ है। फिर भी मोटे रूप में देख सकते हैं।

अपने को छोड़कर जब दूसरों के सुख का विचार करने लगते हैं, मन में समाधान होता है कर्तव्य पूर्ति में तथा अच्छा दृश्य देखने में भी एक समाधान है। डूबते हुए को निकालकर लाने में तकलीफ़ होती है, पर उसे बचाने का समाधान मिलता है। यह किस प्रवृत्ति के कारण होता है। यदि शरीर का विचार करें तो तकलीफ़ होती है। फिर क्यों व्यक्ति बचाने जाता है। जान-पहचान का या रिश्ते का है, तो भी ठीक है, पर ऐसा भी नहीं, बिना किसी संबंध या परिचय के व्यक्ति डूबनेवाले को बचाता है। उसमें जो आनंद है, वह एक प्रकार का आत्मसुख है। आत्मा के कारण ही पूर्ण सृष्टि से हम बँधे हैं। फूल खिलते हैं, मोर नाचता है, तब दृश्य देखकर हमें आनंद आता है। बादल

आसमान में छा जाते हैं। पानी गिरने जैसा होता, तभी मनुष्य को आनंद आता है। कोई कहेगा कि वह आनंद तो स्वार्थ के कारण है। लोग सोचते हैं कि वर्षा होगी, कृषि बढ़ेगी और हमें सुख मिलेगा, पर ऐसा नहीं। बच्चे भी जो हिसाब नहीं करते, ऐसे वातावरण में प्रसन्न रहते हैं। प्राकृतिक दृश्य देखकर प्रसन्न होते हैं। आत्मा का सृष्टि के साथ जो संबंध है, उसी के कारण आनंद मिलता है। मनुष्य यानी तन, मन, बुद्धि एवं आत्मा के सामूहिक समुच्चय का रूप। चित्त एवं अहंकार आदि भी है। पर बड़े रूप में चतुष्टय का नाम मनुष्य (इनका पूरा-पूरा विचार करते ही मनुष्य का विचार हो सकता है)। एक का विचार किया, वह अधूरा रहा। सबका अलग-अलग से विचार हो जाएगा, पर मनुष्य का विचार नहीं होगा।

लक्ष्य

जो शरीरवादी हैं, वे शरीर का विचार करते हैं। उसी को प्रमुख मानते हैं। बुद्धि का नियंत्रण ही मनुष्य जीवन पर रहता है। 'मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है' ऐसा कहा जाता है। पर वास्तव में मनुष्य बुद्धि का प्रयोग करके बहुत कम काम करता है। केवल कुछ प्रतिशत हम जूता पहनते हैं, सोचते नहीं कि पहले दायें या बायाँ। भोजन के समय भी बुद्धिपूर्वक सोच-सोचकर ग्रास नहीं लेता, पहले यह खाऊँगा आदि-आदि। माँ बच्चे का पालन करती है। वह बुद्धि महत्त्व की चीज़ है, बिना बुद्धि के गड़बड़ भी हो जाती है, फिर भी बुद्धि ही सबकुछ नहीं। बुद्धि को सबकुछ समझना बुद्धिहीनता है। कई बार हम बच्चों को छकाते हैं, कहते हैं—हमें पकड़े। कुछ देर बाद जब पकड़ लेते हैं, तब हम कहते हैं यह तो हाथ पकड़ा। फिर वह पाँव, नाक, चोटी पकड़ता है। पर हम कहते हैं कि यह तो हम नहीं। उसके सामने समस्या है कि क्या पकड़े। वस्तुतः यह शरीर यानी हम नहीं, यह सच है। शरीर के साथ मन, बुद्धि, आत्मा जुड़ी है। आत्मा चली जाती है और सब रहता है। पर वह मनुष्य बेकार हो जाता है। फिर भी आत्मा सबकुछ है। ऐसा नहीं। आत्मा को कहें कि जरा खाना खा ले, वह नहीं खा सकती। जरा चित्र बना ले, तो वह नहीं बना सकती। बिना शरीर की सहायता के आत्मा सक्रिय नहीं। राजा या मंत्री को सब अधिकार होते हैं, पर वह दफा 144 नहीं लगा सकते। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट द्वारा ही यह कार्य करवाना पड़ेगा। पद्धति है। आत्मा सबकुछ करनेवाली होने पर भी जब भोग भोगने पड़ते हैं, तब शरीर की आवश्यकता रहती ही है। बिना शरीर के आत्मा न तो भोग भोग सकती है, न तपस्या कर सकती है। कोई भी अच्छी या बुरी बात नहीं कर सकती। पर शरीर से मोह ठीक नहीं। उदाहरण के लिए घर रेलगाड़ी से श्रेष्ठ है, पर रेल का अपने आप में महत्त्व है। वह अपने को घर तक पहुँचाती है। यदि इंदौर से भोपाल के लिए प्रस्थान करें तो कुछ ही घंटों में पहुँच जाएँगे। पर यदि भोपाल पहुँचकर भी हम

रेल से न उतरें, यह सोचकर कि कितनी अच्छी गाड़ी है यहाँ तक ले आई। तो लोग उत्तर देंगे, वह तो साधन मात्र है, उससे मोह हो जाए तो गलती है। सबका (तन, मन, बुद्धि, आत्मा) मेल बिठाना तो हमारी संस्कृति का लक्ष्य है पूर्णता का, एकता का विचार हमारा लक्ष्य रहा है, अधूरा विचार नहीं।

जग सुखी तो हम सुखी

अब इसके बाद जो दूसरी बात का विचार करना पड़ेगा, जिसका बहुत झगड़ा चलता है कि यह मनुष्य मैं एक हूँ, और इसमें मेरा शरीर, मेरा मन, मेरी बुद्धि, मेरी आत्मा यह एक हो गई। किंतु इतना ही होने के बाद पूर्ण हो गया क्या? यह पूर्णता हो गई क्या? तो पता चलेगा कि नहीं भाई, मैं पूर्णता नहीं। पूर्णता के लिए तो फिर हमें इसके आगे भी समाज का विचार करना पड़ता है। समष्टि का विचार करना पड़ता है। संपूर्ण समाज का विचार किए बिना तो मैं पूर्ण होता ही नहीं, अकेला सोचता चलूँ कि मैं अकेला अपने मन का, बुद्धि का, आत्मा का, सबका विचार करूँगा किंतु जीवन में पता लगता है कि अकेला तो आदमी कुछ नहीं कर सकता। अकेला तो अधूरा है। अकेला आदमी न तो अपनी किसी भौतिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है। मन का सुख भी नहीं, बुद्धि का सुख नहीं। आत्मा का सुख भी नहीं। अकेले मन में सुख नहीं, क्योंकि हम अकेले नहीं हैं। हम तो एक समष्टि के छोटे से घटक हैं। उस समष्टि के साथ हम अपने आपको जुड़ा हुआ समझते हैं। उसके अंगभूत हैं। यह एक विचार हमारे जीवन के अंदर होना चाहिए। इस संबंध में भी बहुत भ्रम लोगों के जीवन में दिखाई देता है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो मनुष्य के इस अकेले को ही सबकुछ समझते हैं। और कहते हैं कि भाई, मैं हो गया सबकुछ। अपने में सबकुछ है। हम सुखी तो जग सुखी, ऐसा जो लोग मानकर चलते हैं, यह ग़लत बात है। हमारे यहाँ कहा, 'नहीं भाई, जग सुखी तो हम सुखी। अगर जग को सुख है तो हमको सुख होगा। हम सुखी तो जग सुखी वाली चीज़ नहीं। क्योंकि हम जग के साथ जुड़े हुए हैं। हमारा संबंध है। बच्चा बिल्कुल छोटा सा पैदा होते समय बेचारा कुछ कर ही नहीं सकता। कुछ नहीं कर सकता। उसको तो दूसरों के ऊपर आश्रित रहना पड़ता है। और मनुष्य के संबंध में तो यह कहा है कि मनुष्य तो दूसरे के ऊपर सबसे ज़्यादा आश्रित है। छोटा बच्चा बड़ा होने के बाद भी सोचेगा कि मैं सबकुछ हूँ। बाकी दुनिया से मुझे क्या सरोकार, तो काम नहीं चलेगा। किसान अपने घर में जो है खेती कर लेगा। खेती करने के बाद उसको और जो चीज़ें लगेंगी, कपड़ा कहाँ से लाएगा? कपड़े के लिए तो उसको दूसरे पर निर्भर रहना ही पड़ेगा। और कपड़ा बनाने वाले को और जो है अन्न के लिए किसान पर निर्भर रहना पड़ेगा। तो दोनों एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। वास्तव में समाज में जो विशेष बात है,

वह यही कि हम एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। हम स्वयं आत्मनिर्भर जिसको कहेंगे कि हममें सबकुछ है, ऐसा सत्य नहीं है। हम दूसरों के ऊपर निर्भर रहते हैं सदैव। और दूसरों के ऊपर निर्भर केवल भौतिक दृष्टि से रहते हैं, ऐसी बात नहीं। भौतिक दृष्टि से हमारी निर्भरता कितनी है, यह तो अपने को समझ में आती है। क्योंकि हम दूसरों से ही कपड़ा लेते हैं। दूसरों के सहारे पर हम अगर बीमार पड़ जाएँ तो वही हमारी चिकित्सा करते हैं। सब कामों में हमको दूसरे लोग मदद करते हैं।

—जून 22, 1962



परमाणु विरोधी सम्मेलन

गांधी शांति प्रतिष्ठान के तत्त्वावधान में नई दिल्ली में हुए परमाणु हथियार विरोधी सम्मेलन ने इस अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर भारतीय जनता की भावनाओं को उचित अभिव्यक्ति दी।

यद्यपि यह आश्चर्यजनक है कि कुछ महान् हस्तियों ने सम्मेलन के उन घोषित उद्देश्यों, जिसके लिए यह आयोजित हुआ था, के परे जाकर भारत को यह सलाह दे डाली कि उसे इकतरफा तौर पर निरस्त्रीकरण करते हुए उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि वे सम्मेलन के उच्च नैतिक उद्देश्यों की रौ में बह गए और इस परामर्श के व्यावहारिक परिणामों की तरफ दृष्टिपात नहीं किया।

उनके प्रस्ताव सिर्फ अप्रासंगिक ही नहीं थे बल्कि इससे परमाणु शक्तियों से परमाणु शस्त्रों को अनुपयोगी बनाने की अपील का प्रभाव भी कम हो गया।

यह संभव है कि ये शक्तियाँ इसका फायदा उठाकर उल्टे हम पर ही हावी हो जाएँ और इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान दिलाएँ कि अपने ही महान् नेताओं की बातों पर अमल करने में विफल हैं।

परंतु स्वाभाविक है कि कोई भी व्यक्ति इन दोनों के बीच अंतर पहचान सकता है। संपूर्ण निरस्त्रीकरण और सेनाओं को भंग करने जैसे क्रदम आज संभवतया संभव नहीं हो सकते और यदि वर्तमान शक्तियों के नैतिक कद और उनकी मनोदशा पर विचार करें तो यह आत्मघाती क्रदम साबित हो सकता है। परंतु इसमें कोई जोखिम नहीं है, यदि महान् शक्तियाँ परमाणु हथियारों के प्रयोग का प्रलोभन छोड़ दें और परमाणु परीक्षण बंद कर दें। वर्तमान में ये चीजें सिर्फ शीतयुद्ध की रणनीतियों में ही सहायक हो रही हैं। इस रूप में शीत युद्ध वास्तविक युद्ध से कहीं ज्यादा हतोत्साहित करनेवाला

है। मानवता को भय से मुक्ति दिलाने की जिस गारंटी का अटलांटिक चार्टर में वादा किया गया था, उसके बजाय हम लोगों को और भय के माहौल की तरफ़ ले जा रहे हैं।

डॉ. जाकिर हुसैन का लज्जास्पद बयान

डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने जब सम्मेलन को संबोधित किया और भारत को कुछ सलाह दी तो यह पूरी तरह उनकी व्यक्तिगत राय थी और इससे इस देश की सरकार पर किसी तरह का कोई दायित्व नहीं थोपा जा सकता। परंतु जब थोड़ी सी अलग भाषा में भारत के उपराष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन भी उन्हीं के सदृश विचार व्यक्त करते हैं तो निश्चित रूप से उन्होंने देश के लिए एक लज्जाजनक स्थिति उत्पन्न की है।

बताते हैं कि उन्होंने कहा कि इकतरफ़ा रूप से निशस्त्रीकरण का साहसिक क़दम उठाने वाला देश मानवजाति में अपने विश्वास को दरशाएगा, 'जो भविष्य में मानव जाति के अहिंसक विकास में उसे स्पष्ट रूप से नैतिक अगुआ की भूमिका प्रदान करेगा।' इस बिंदु पर और जोर देते हुए उन्होंने कहा कि 'यह उन्हें वह गौरव दिलाएगा, जो इतिहास आज तक किसी विजेता को नहीं दे पाया है।'

इस तरह के सुवचन विनोबा भावे¹ जैसे संत या राजेंद्र प्रसाद जैसे सेवानिवृत्त राष्ट्रपति के मुँह से ही अच्छे लग सकते हैं। पर देश के उच्च पद पर बैठे नेता को अपने विचार व्यक्त करने में सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि उनकी बात सरकार की आधिकारिक नीति मानी जाती है। एक ख़तरनाक क़दम के खिलाफ़ जनमत को संगठित करके इस सम्मेलन ने निस्संदेह मानवजाति की महान् सेवा की है। परंतु हमें यह समझना चाहिए कि सम्मेलन के आयोजकों का उद्देश्य यह नहीं हो सकता था कि हम खुद ही विश्व के नेता की पदवी धारण कर लें। यह बस एक ऐसे मुद्दे पर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास था, जिसमें सारे संसार की रुचि है।

बड़बोलापन बंद हो

मुझे लगता है कि समय आ गया है, जब हमें वैश्विक नेतृत्वकर्ता, चाहे यह नैतिक हो या अन्य तरह की जैसी बातें तत्काल प्रभाव से बंद कर देनी चाहिए। हम बड़बोलेपन या शेखी से बचें। थोड़ी सी विनम्रता व यथार्थबोध से हमें अपने देश और विश्व दोनों के लिए श्रेष्ठतर परिणाम मिल सकते हैं। हमेशा प्रवचन देने वाले रवैये से समस्याएँ

1. विनोबा भावे (1895-1982) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सत्याग्रही, सर्वोदय समाज की परिकल्पना करते हुए 1951 में 'भूदान यज्ञ' आंदोलन की नींव रखी, विनोबा पद यात्राएँ करते और गाँव-गाँव जाकर बड़े भू स्वामियों से अपनी जमीन का कम-से-कम छठा हिस्सा स्वैच्छिक रूप से भूदान के रूप में भूमिहीन किसानों के बीच बाँटने के लिए देने का अनुरोध करते थे।

खड़ी होंगी, इससे हमें सिर्फ अवहेलना बोध मिलेगा और अंत में ऐसी स्थिति आ सकती है, जहाँ हम बलिदान का यशोगान कर अपनी विलुप्ति के लिए खुद को सांत्वना दें। बातों की शेखी से शायद ही कोई लाभ मिलता है, बस बहुत हो चुका।

—ऑर्गनाइज़र, जून 25, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



दोनों गुटों से अलग रहने की नीति में परिवर्तन इष्ट नहीं

26 जून, 1962 को यह लिखित वक्तव्य जनसंघ के अजमेरी गेट स्थित कार्यालय से प्रकाशित किया गया था। इस सूचना के साथ इसे राष्ट्रधर्म मई, 1978 के दीनदयाल स्मृति अंक में अप्रकाशित दस्तावेज के रूप में प्रकाशित किया गया।

सुरक्षा परिषद् में कश्मीर के प्रश्न पर पिछले दिनों में जो विवाद हुआ है¹ तथा जिस प्रकार रूस के निषेधाधिकार के प्रयोग के उपरांत उसका अंत हुआ है, उससे प्रश्न के समाधान का मार्ग तो प्रशस्त नहीं हुआ, किंतु अंतरराष्ट्रीय वायुमंडल अवश्य धूमिल हो गया है। जहाँ तक भारत का संबंध है, यहाँ की जनता तथा विचारी पुरुष बहुत दिन पूर्व ही इस विषय पर संयुक्त राष्ट्र संघ से न्याय तथा किसी भी समाधानकारक हल की आशा छोड़ चुके हैं। यदि भारत के प्रतिनिधियों ने इस विवाद में भाग लिया है तो वह केवल शिष्टाचार के कारण तथा पाकिस्तान को यह कहने का अवसर न मिले कि भारत का पक्ष सबल और तर्क शुद्ध नहीं है, इस उद्देश्य से।

किंतु अब समय आ गया है कि हम इस व्यर्थ के वितंडावाद से अपना हाथ खींच लें, क्योंकि अनेक बार अपनी स्थिति तथा कश्मीर के संबंध में भारत का संवैधानिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा न्यायशुद्ध अधिकार स्पष्ट कर देने के बाद हमारे लिए और

1. पाकिस्तान ने 1962 में संयुक्त राष्ट्र का ध्यान एक बार फिर कश्मीर समस्या की ओर आकर्षित करते हुए कश्मीर में आत्म-निर्णय की माँग दोहराई। 22 जून, 1962 को आयरलैंड द्वारा प्रायोजित द्विपक्षीय बातचीत का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, लेकिन स्थायी सदस्य सोवियत संघ ने वीटो लगाकर इसे समाप्त कर दिया था।

कुछ कहने के लिए शेष नहीं रह जाता। आज दुनिया की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ, यहाँ तक कि पाकिस्तान भी, इस समस्या के समाधान में कोई बड़ी भारी अभिरुचि नहीं रखते। वे तो इसे केवल शीतयुद्ध का एक मोहरा बनाकर उपयोग करना चाहते हैं। भारत की नीति शीतयुद्ध से दूर रहने की है और इसलिए हमें यह देखना होगा कि हम उसमें अनिच्छा से क्यों न हो, घसीटे न जाएँ। हमें इसके लिए कोई बाध्य नहीं कर सकता कि हम असंबंधित विषयों पर अथवा संबंधित विषयों पर असंगत विवाद में भाग लें। आज जबकि सुरक्षा परिषद् में यह मुद्दा चौदह वर्ष पुराना हो गया है तथा कालचक्र के परिवर्तन के साथ कश्मीर ने संवैधानिक दृष्टि से बहुत प्रगति कर ली है, पुराने प्रस्तावों की दुहाई देने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। कहने को तो हैदराबाद और जूनागढ़ की शिकायतें भी संयुक्त राष्ट्र संघ में पड़ी हैं और यदि उन्हें कल अमरीका अथवा रूस अपने राजनीतिक हितों की दृष्टि से प्रचार के उद्देश्य से खोदकर निकाले, तो क्या हम उस विवाद में भाग लेंगे। सत्य तो यह है कि इस प्रकार के विवाद में भाग लेने का अर्थ अपने आंतरिक मामलों में संयुक्त राष्ट्र संघ को हस्तक्षेप करने का अवसर देना है। यह हमारी संप्रभुता एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रतिकूल है।

वर्तमान में यदि कश्मीर का कोई प्रश्न शेष है तो वह पाकिस्तान से उसके एक तृतीयांश की मुक्ति का है। हमने युद्ध विराम स्वीकार करके मुक्ति के प्रयत्नों को स्थगित कर दिया था। किंतु अपनी भूमि पर से अपने अधिकार का कभी परित्याग नहीं किया। यदि पाकिस्तान शांतिपूर्वक पीछे नहीं हटता तो हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य हो जाता है कि उसे बलपूर्वक बाहर निकालें। भारत के सुरक्षा मंत्री श्री कृष्ण मेनन ने यह घोषणा की है कि भारत पाकिस्तान के विरुद्ध बल प्रयोग का कोई इरादा नहीं रखता। किंतु मैं समझता हूँ कि इस घोषणा के अंतर्गत पाकिस्तानी आक्रमण के विरुद्ध संरक्षण एवं खोए हुए भू-भाग की मुक्ति के लिए किए गए प्रयत्न नहीं आते। संयुक्त राष्ट्र संघ के आज तक के रवैये से यह स्पष्ट हो गया है कि वह इस विषय में भारत के न्यायोचित अधिकार की मान्यता एवं उसकी अवाप्ति के लिए कोई सहायता करने को तैयार नहीं। हमें तो अपने सहारे ही उस समस्या का समाधान करना होगा।

कश्मीर विवाद ने हमें एक बार पुनः अपनी वैदेशिक नीति का परीक्षण करने के लिए विवश किया है। अमरीका, ब्रिटेन तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्रों ने इस विषय पर जो रुख अपनाया है, वह संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांतों एवं उद्देश्यों, समस्या के तथ्यों, विश्व शांति और सद्भावना की आवश्यकताओं तथा संबंधित जन समुदाय की भावनाओं, इच्छाओं और हितों के विपरीत है। स्पष्ट है कि उनकी नीति के निर्धारण में इन तत्त्वों का कोई स्थान नहीं। प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने इस विषय में अत्यंत ही संयत शब्दों में अपनी व्यथा को प्रकट किया है। विश्व की इस संस्था का गौरव बढ़ाने के लिए जो सदैव

प्रयत्नशील रहा हो, उसका मन सुरक्षा परिषद् के इस अपवाद पर टूकटूक हो जाए तो आश्चर्य नहीं। यदि हम गंभीरतापूर्वक सोचेंगे तो हमें पता चलेगा कि इस विवाद से पाकिस्तान और रूस को छोड़कर और किसी को लाभ नहीं हुआ। पाकिस्तान ने जब इस प्रश्न को सुरक्षा परिषद् में उठाया तो उसकी मंशा अपने अंदर के असंतोष को भारत-विरोधी वातावरण पैदा कर दिशा मोड़ करने तथा भारत-अमरीकी संबंधों में बिगाड़ पैदा करने की थी। पाकिस्तान के शासन की जड़ अपनी भूमि तथा जनता के हृदय में नहीं है। वह प्रतिक्रिया तथा अमरीकी समर्थन के सहारे ही अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहता है। उसका यह उद्देश्य कुछ अंशों में पूरा हुआ, यह कहा जा सकता है। रूस ने निषेधाधिकार का प्रयोग करके सहज ही भारत की सद्भावना प्राप्त कर ली। रूस की वीटो से सुरक्षा परिषद् का प्रस्ताव चाहे गिर गया हो किंतु उससे भारत का कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है। क्योंकि अब इस बात की संभावना बढ़ गई है कि यह प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा में उठाया जाए। पाकिस्तान के हाथ में यह अधिकार बना हुआ है। और जैसा कि हम जानते हैं, पाकिस्तान इसका उपयोग जब भी वह भारत को गाली देना चाहेगा, कर लेगा। जहाँ तक भारत का संबंध है, उसके सिर पर तलवार लटकी हुई है। यदि सुरक्षा परिषद् का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता तो भी स्थिति कोई भिन्न नहीं हुई होती। क्या बिना भारत की मरजी के सुरक्षा परिषद् कोई भी निर्णय हमारे ऊपर नहीं लाद सकती। हो सकता है कि उस परिस्थिति में हम संयुक्त राष्ट्र से इस प्रश्न पर अलग होने के निर्णय की उपादेयता अधिक अनुभव कर पाते। किंतु रूस के मतदान के मूल में प्रमुखतया शीत युद्ध की नीतियाँ होने के उपरांत भी यह कहना ठीक नहीं होगा कि वह भारत के प्रति किसी सद्भाव से प्रेरित था।

अमरीका ने इस मामले में कुछ कमाने के स्थान पर खोया ही है। उसने सबकुछ पाकिस्तान को खुश करने अथवा अपनी दोस्ती निबाहने के लिए ही किया, यह कुछ लोगों का मत हो सकता है। किंतु यह मान वस्तुस्थिति पर परदा डालना होगा। प्रारंभ में अमरीका इस बात के लिए उत्सुक नहीं था कि पाकिस्तान इस प्रश्न को सुरक्षा परिषद् में उठाए। किंतु बाद में तो ऐसा लगा कि पाकिस्तान के मुकाबले में अमरीका ही उसमें अधिक दिलचस्पी लेने लगा। मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त की कहावत चरितार्थ हो गई। अमरीका के दबाव के कारण ही जिन लोगों ने सुरक्षा परिषद् में भारत के पक्ष का समर्थन किया, उन्होंने प्रस्ताव पर भारत के विरुद्ध मत दिया। अमरीका का यह पग उस शृंखला की एक कड़ी है, जिसके अंतर्गत उसने भारत को आर्थिक सहायता में भी कटौती की है। ऐसा लगता है कि अमरीका अब यह समझने लगा है कि भारत उसकी सहायता के बिना नहीं चल सकता। इसलिए दबाव लाकर वह हमारी नीतियों में परिवर्तन करवाना चाहता है। रूस से मिग विमानों की खरीद संबंधी प्रस्ताव ने भी उसके मन पर

परिणाम किया है। अमरीकी नीति परिवर्तन का चाहे जो कारण हो, हमें यह विचार करना पड़ेगा कि हम अपनी पुरानी नीति कायम रखें अथवा उसमें कोई परिवर्तन करें। आज की नाजुक अवस्था में कुछ लोग हमें सलाह देते हैं कि हम अपनी स्वतंत्र नीति का परित्याग कर किसी एक गुट में सम्मिलित हो जाएँ। उनकी सलाह भारत की स्वतंत्रता नीति के मूल में निहित कारण परंपरा के ज्ञान के अभाव तथा किसी एक गुट के प्रति पक्षपात अथवा अत्यधिक विरोध का ही परिणाम है। यद्यपि हम मानते हैं कि दोनों गुटों से अलग रहने की नीति एक सिद्धांत के रूप में शाश्वत नहीं हो सकती, किंतु फिर भी जिन आधारों पर उसे स्वीकार किया गया है, उनके बने रहते उसमें परिवर्तन करना इष्ट नहीं होगा। आज तो हमारी नीति की परीक्षा का अवसर है। हम डरकर या प्रतिक्रिया में उसका परित्याग कर बैठें तो ठीक नहीं होगा। अमरीका हमारे ऊपर दबाव लाना चाहता है। परंतु हमारी स्वतंत्रता और स्वाभिमान का तत्काज है कि हम न झुकें। यदि अमरीका स्वतंत्रता और प्रजातंत्र की दुहाई देकर भी केवल अपने पिछलग्गू और चाटुकार देशों के ही अस्तित्व को स्वीकार कर सकता है तो हम उसे बता दें कि वह अभी भारत को नहीं समझ पाया। पाकिस्तान को जिन बटखरों से उसने तौला है उन्हीं से यदि वह भारत को तौलने की कोशिश करेगा तो धोखा खाएगा।

अमरीकी नीति की प्रतिक्रिया में हम रूसी गुट में भी नहीं जा सकते। आज अमरीका वाले अपनी नीतियों के दुष्परिणामों का विचार न कर पाएँ, किंतु हमने तो अपना निर्णय भावात्मक आधार पर किया है। हमारी भौगोलिक स्थिति, विश्व की राजनीति, भारतीय राष्ट्र का अवतार कार्य तथा हमारे राष्ट्रीय हित सबका विचार करने के उपरान्त हमने इन गुटों से अलग रहने की नीति अपनाई है। हम उसे सहज नहीं छोड़ सकते। अमरीकी दबाव का उत्तर रूस की छत्रच्छाया नहीं, स्वाभिमान और दृढ़ता है।

हमें अपनी नीति के आधारभूत तत्त्वों का परित्याग नहीं करना है। किंतु उस नीति को व्यवहार में लाने वाले विदेश विभाग की कीलें अवश्य कसनी होंगी। आज की हमारी संकटपूर्ण स्थिति नीति की खराबी के कारण नहीं, उन लोगों की खराबी के कारण है, जो उसको ठीक रूप से काम में नहीं लाए। प्रधानमंत्री, पं. नेहरू ने बताया कि मिग विमानों संबंधी समाचार विभाग से निकलकर समय के पूर्व ही अखबारों में आ गया और उससे बात का बतंगड़ बन गया। प्रश्न है कि यह बात प्रकाश में कैसे आई? इसके लिए कौन जिम्मेदार है? यही नहीं, आज विदेशों में यह आम धारणा बन गई है कि हमारी विदेश नीति के प्रवक्ता तथा राजदूतों के विचारों और नीति के व्यतिकरण में भारी अंतर है। श्री कृष्ण मेनन से हम जिस मोह के साथ चिपटे हुए हैं, वह हमारे राष्ट्रीय दृष्टिकोण में बाधक है। अपने पक्ष में हमारा प्रचार नगण्य जैसा है तथा विदेश विभाग के व्यापक क्षेत्र की संपूर्ण नीतियों में सामंजस्य और समन्वय तो कहीं दृष्टिगोचर ही नहीं होता।

स्वतंत्र विदेश नीति का यह भी तकाजा है कि हम किसी भी विषय पर किसी एक गुट मात्र पर निर्भर न रहें। हमने तृतीय पंचवर्षीय योजना बनाते समय इस बात को भुला दिया। आज अमरीका द्वारा आर्थिक सहायता में कटौती पर हमारे यहाँ तहलका मच गया है। किंतु हमने ऐसी योजना ही क्यों बनाई, जिसकी पूर्ति बिना इतनी भारी मात्रा में विदेशी सहायता के संभव न हो। निश्चित ही आज हमें अपनी योजनाओं में इस प्रकार परिवर्तन करना होगा कि हम उन्हें अपने सहारे ही पूरा कर सकें।

अमरीका के वर्तमान रुख का यह असर हुआ है कि हमारे प्रधानमंत्री, पं. नेहरू चीन के प्रति कुछ नरम हो गए हैं। किंतु यह ग़लत है। इससे भारत की सुरक्षा के संबंध में एक निश्चितता तथा लापरवाही का भाव पैदा हो सकता है। हम यह भी अच्छी तरह समझकर चलें कि तटस्थता का अर्थ बारी-बारी से तुष्टीकरण नहीं है। हमें तो दोनों ही शत्रुओं का दृढ़ता से सामना करना होगा और उसके लिए आवश्यक शक्ति संचय करनी पड़ेगी।

—जून 26, 1962



कमर तोड़ टैक्स तानाशाही का पथ प्रशस्त कर रहे हैं

1 जुलाई दिल्ली की सार्वजनिक सभा में दीनदयालजी का भाषण।

“यह अत्यंत ही खेद का विषय है कि केंद्र और प्रांत सरकारें, नित्य नए करों का बोझा जनता के ऊपर लादती जा रही हैं। वे यह भी विचार नहीं करती कि इनका देश की अर्थव्यवस्था पर कितना विपरीत प्रभाव पड़ेगा तथा सामान्य जनों को कितने कष्ट सहने पड़ेंगे। ये टैक्स तीसरी योजना के नाम पर लगाए जा रहे हैं। परंतु जिन तथ्यों के आधार पर तीसरी योजना बनाई गई थी, वे निराधार सिद्ध हुए हैं। एक वर्ष में ही स्थिति इतनी बदल गई है कि अब तीसरी योजना के निष्कर्ष सही नहीं रहे। ऐसी स्थिति में चाहिए तो यह था कि परिवर्तित अवस्था के अनुसार योजना में बदलाव कर अर्थव्यवस्था को संतुलित किया जाता। किंतु सरकार पुराणपंथियों के समान योजना के अक्षरों से चिपटी हुई इन नए-नए टैक्सों को लगा रही है। फलतः एक ओर टैक्सों का बोझा बढ़ रहा है तो दूसरी ओर वस्तुओं के मूल्य। विदेशी मुद्रा तथा आधारभूत एवं पूँजीगत वस्तुओं के अभाव ने इस स्थिति को और भी विषम बना दिया है। इन सबके साथ बढ़ती हुई बेकारी तो प्राणघातक ही सिद्ध हो रही है।” उक्त शब्द भारतीय जनसंघ के अ.भा. महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने विगत 1 जुलाई को गांधी मैदान दिल्ली में आयोजित कर-वृद्धि विरोधी सभा में कहे।

गरीबों पर भार

सरकार ने जो नए टैक्स लगाए हैं तथा रेल और अन्य परिवहन साधनों के भाड़े में

तथा सरकारी कारखानों के उत्पादन के मूल्यों में वृद्धि की है, उससे लगभग 250 करोड़ रुपया राष्ट्रीय आमदनी में से उसके पास अतिरिक्त पहुँच जाएगा। एक वर्ष में यह बोझा बहुत अधिक है। इसका अनौचित्य एवं निर्ममता और भी भयंकर रूप में सामने आ जाती है, जबकि हमें पता चलता है कि इसका अधिकांश भारत के गरीब और मध्यम दर्जे के लोगों पर ही पड़ेगा। आज 100 में 65 व्यक्ति ऐसे हैं, जिनकी आय जीवन-निर्वाह के स्तर से भी नीचे है। परंतु सरकार उनको भी छोड़ने को तैयार नहीं।

जाँच-आयोग नियुक्त हो

केंद्र और प्रांत की कराधान नीतियों में आज कोई उत्पादन शुल्क, बिक्रीकर और चुंगी लगा दी जाती है। इनका निर्धारण किसी सुविचारित नीति के अंतर्गत न होकर मनमाने तरीके और राजनीतिक कारणों से होता है। जनसंघ का मत है कि एक कर जाँच आयोग नियुक्त करना चाहिए, जो कि इस बात का पता चलाए कि कौन से वर्ग कितना भार वहन कर सकते हैं तथा विभिन्न सत्ताओं में कराधान का संयोजन कैसे हो?

फूट के बीज

पंजाब सरकार ने तो अपनी कर नीति से फूट के बीज बो दिए हैं। हरिजन कल्याण आवश्यक है तथा उसके लिए देशव्यापी कार्यक्रम हाथ में लेना होगा। संविधान में उसकी व्यवस्था की गई है। किंतु पंजाब सरकार का तरीका हरिजनों का कल्याण नहीं, अकल्याण ही करेगा। क्या यही मार्ग है, जिससे सरदार प्रताप सिंह कैरों¹ भावात्मक एकता पैदा करना चाहते हैं?

चुनौती का सामना करें

इन दुर्वह करें कि विरुद्ध जनक्षोभ जितना व्यापक और संगठित होता जा रहा है, उतना ही विभिन्न प्रांतीय सरकारें बौखलाती जा रही हैं। श्री चंद्रभानु गुप्त² और सरकार कैरों ने एक और भेद-नीति का अवलंबन कर विरोधी दलों को बाँटने की कोशिश की है तो दूसरी ओर दंड नीति के सहारे जनता को कुचलने की धमकी दी है। यदि कमर तोड़ टैक्स और तानाशाही हुकूमत ही आज की समाजवादी सरकारें समाजवाद की पहिली किशत के रूप में पेश कर सकती हैं तो उन लोगों की आशंका सही थी, जो स्लाव-संस्कृति के इस नए वैचारिक दानव को स्वतंत्रता और जनहित का शत्रु मानकर उसका विरोध कर रहे थे। हम तो शांति से अपना विरोध प्रकट करना चाहते हैं, किंतु सरकार संकट पैदा करने की चाल चल रही है। जहाँ एक ओर जनता को अपने हितों और

1. सरदार प्रताप सिंह कैरों (1901-1965) संयुक्त पंजाब के 1956 से 64 तक मुख्यमंत्री रहे।

2. चंद्रभानु गुप्त (1902-1980) उत्तर प्रदेश के तीन बार (क्रमशः 1960-1963; मार्च 1967; 1969-1970) मुख्यमंत्री रहे थे।

अधिकारों पर होने वाले आघातों की रक्षा के लिए दी हुई चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए, वहाँ उसे बुद्धिमानी के साथ सरकार की चालों से बचकर उसके जाल में फँसने से भी अपने आपको रोकना होगा।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 9, 1962



मुखर्जी और टंडन

दो महान् हस्तियाँ, जिनका संसार एक-दूसरे से इतना अलग हो, जब दोनों के स्वभाव व चारित्रिक विशेषताएँ इतनी अलग हों कि जिसमें कोई साम्यता खोज पाना असंभव हो तो ऐसे व्यक्तियों के बीच तुलना करना न तो उचित है और न सुरक्षित। महान् व्यक्तियों के संदर्भ में देखें तो उनकी विशिष्टताएँ इतनी सुस्पष्ट और सुविकसित होती हैं कि वे स्वयमेव एक अलग श्रेणी बन जाती हैं। तथापि बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन और श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी दोनों ही महान् हस्तियों की उस कोटि में आते हैं, जो दूर से देखने में तो महान् लगते ही हैं, परंतु जब आप पास जाएँ तो वे और महान् लगते हैं।

आज उस तरह के और उनकी प्रजाति के असंख्य लोग हैं, जिन्हें कृत्रिम तरीकों से बढ़ा-चढ़ाकर महान् बना दिया गया है। समाचार-पत्रों व अन्य प्रचार के माध्यम से अपना व्यक्तित्व चमकाने और नेतृत्व कला का अभ्यास करते-करते वे महानता को प्राप्त हो गए और वे तब तक महान् हैं, जब तक कि आप सौभाग्यशाली हैं, जो आपने उन्हें नजदीक से नहीं जाना समझा। एक बार इन्हें निकट से जान लिया तो ये आसाधारण व्यक्तित्व क्षुद्र देवता से दिखने लगेंगे। इनसे बहुत अधिक संपर्क आपको इतना चिड़चिड़ा बना सकता है कि जीवन से आसक्ति ही समाप्त हो जाए। दूसरे ध्रुव पर वे हैं, जिनके धूसर भाग्य पर विलाप के लिए प्रसिद्ध शोकगीत हैं। वे सचमुच महान् लोग हैं, शुद्धतम किरण की तरह निष्कलंक, परंतु वे उसी तरह समुद्र की अतल गहराई में अविदित और अकीर्तित मृत्यु को प्राप्त हो गए, जिस तरह उनका जीवन और कार्य रहा। परंतु डॉ. मुखर्जी और टंडनजी इनसे से किसी भी श्रेणी से संबंध नहीं रखते। नाम और प्रसिद्धि के साथ उनका अपना अलग मोल था। परंतु सत्य यह है कि उनकी सेवाओं और योग्यता के लिए जनता के बीच उनकी स्वीकृति उससे कम रही, जिसके वे वास्तविक अधिकारी

थे। वे कितने भी उच्चपद पर हों, पर उसे छोड़ने में विलंब नहीं किया। वस्तुतः यदि उनकी बात करें तो पद से उनकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ी, बल्कि इसके विपरीत उनकी प्रतिष्ठा से पद का मान बढ़ा।

डॉ. मुखर्जी को कैबिनेट मंत्री बनाकर सम्मानित किया गया, पर जब उन्होंने कैबिनेट छोड़ी तो जनता के मन में उनके प्रति आदर भाव और बढ़ गया।¹

एक सच्चे कर्मयोगी जैसे

टंडनजी जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बने तो उन्होंने इस पद को एक अवर्णनीय प्रभामंडल प्रदान किया, जिसे आज कोई स्वीकार करने को तैयार नहीं है। उस वर्ष बहुत तीखा मुकाबला था। और टंडनजी ने इसमें विजयी बनकर यह स्पष्ट कर दिया कि इस संगठन में उनके विश्वसनीय अनुयायियों की संख्या काफ़ी बड़ी है। परंतु इस पद को छोड़ते समय उन्होंने अपनी महानता का असली परिचय दिया, उन्होंने बिना किसी मालिन्य या दुर्भावना के पद को तिलांजलि दे दी।² एक सच्चे कर्मयोगी की तरह उन्होंने इस संघर्ष में बिना किसी आसक्ति के अपना सबकुछ झोंक दिया, परंतु बाद में इस मूल्यवान् पारितोषिक का इस तरह परित्याग कर दिया, जैसे इससे कोई लेना-देना ही नहीं हो।

उत्तर प्रांत विधानसभा का अध्यक्ष रहते हुए टंडनजी महान् थे, परंतु पूर्व अध्यक्ष बनने के बाद वे महानतम हो गए। वे कांग्रेस के महान् अध्यक्ष थे, परंतु पदत्याग के बाद उनकी महानता और बढ़ गई।

टंडनजी और मुखर्जी दोनों ही भारतीय संस्कृति और मर्यादा के प्रतिनिधि हैं और दोनों ने ही इसकी सर्वोच्चता के लिए लड़ाई लड़ी। उस समय भारत की मौलिक संस्कृति पर एक संकर प्रजाति का पौधा आरोपित करने के प्रयास चल रहे थे। टंडनजी

1. डॉ. श्यामप्रसाद मुखर्जी नेहरू कैबिनेट में उद्योग एवं आपूर्ति मंत्री थे। लेकिन 8 अप्रैल, 1950 को नई दिल्ली में हुए नेहरू-लिथाकत पैक्ट के विरोध में इन्होंने तत्कालीन वित्त मंत्री क्षितिज चंद्र नियोगी के साथ इस्तीफा दे दिया था। मुख्यतः दोनों देशों में अल्पसंख्यकों के अधिकार को सुरक्षित रखने, लूटी हुई संपत्ति की वापसी और जनरल धर्म परिवर्तन रोक के उद्देश्य से यह समझौता हुआ था। इस मापदंड पर पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) से निष्कासित होकर पश्चिम बंगाल आए करीब दस लाख हिंदुओं की चर्चा भी होनी चाहिए थी। लेकिन दिल्ली पैक्ट के मसौदे में यह मुद्दा शामिल नहीं था। श्यामा बाबू पूर्वी बंगाल में हिंदुओं की दुर्दशा के लिए पाकिस्तान को ज़िम्मेदार मानते थे एवं पैक्ट में इसे शामिल करना चाहते थे, जिसके लिए नेहरू तैयार नहीं हुए।
2. सरदार पटेल के समर्थन से पुरुषोत्तम दास टंडन ने 1950 में आचार्य कृपलानी को पराजित कर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष का चुनाव जीता। पं. नेहरू चाहते थे कि आचार्य कृपलानी अध्यक्ष बनें, चुनाव पश्चात् 26 अगस्त, 1950 को नेहरू ने पटेल को लिखे पत्र में संगठन से अपने मतभेद को ज़ाहिर किया और 'इन परिस्थितियों में प्रधानमंत्री पद पर बने रहने का कोई औचित्य नहीं है' लिखा।

और मुखर्जी, दोनों ही इस प्रयास के विरोध में थे और इसका प्रतिरोध किया, एक ने कांग्रेस में रहकर और दूसरे ने इससे बाहर रहकर। चाहे हिंदू महासभा के जरिए या फिर परिवर्तित परिस्थितियों में जनसंघ के जरिये, मुखर्जी ने भारतीय राष्ट्र पर 'साझा संस्कृतिवादियों' के आक्रमण के समक्ष एक प्रतिरोध खड़ा करने का यत्न किया। टंडनजी ने स्वतंत्रता के पूर्व व उसके पश्चात् हिंदी के नाम पर यह लड़ाई लड़ी।

टंडन जी और भाषा

टंडनजी के हिंदी के प्रति आग्रह को लेकर विशेष रूप से अहिंदी भाषी लोगों में बहुत सी भ्रांतियाँ हैं। वे यह सोचते हैं कि पूरे देश में हिंदी को अंततः क्षेत्रीय भाषाओं के प्रतिद्वंद्वी के रूप में थोपने का प्रयास किया जा रहा है जो अंततः आगे चलकर सभी क्षेत्रीय भाषाओं का स्थान ले लेगी। वस्तुतः यह मुद्दा हिंदी बनाम क्षेत्रीय भाषाओं का न कभी था और न है, अपितु यह हमेशा से हिंदी बनाम हिंदुस्तानी और भारतीय भाषाओं बनाम अंग्रेज़ी का है। अंग्रेज़ी की वकालत करनेवाले अपनी नादानी में यह सोचते हैं कि अंग्रेज़ी के एक राष्ट्रव्यापी भाषा बनने से क्षेत्रीय भाषाओं को कोई नुकसान नहीं होगा। परंतु यदि अंग्रेज़ी का प्रसार जारी रहा तो भारत की महान् भाषाओं के दिन गिने-चुने रह गए हैं।

अंग्रेज़ीदां अपनी सनक में कुछ भी कहें, पर जब तक भारत की उर्वर और समृद्ध भाषाएँ हैं तब तक कोई भी शक्ति यहाँ अंग्रेज़ी को बनाए नहीं रख सकती।

इनके विनाश का दिन आने में कुछ विलंब हो सकता है परंतु इसका निर्णय उसी दिन सुना दिया गया था, जिस दिन अंग्रेज़ों ने भारत छोड़ा।

अलगाववाद के साथ समझौता है हिंदुस्तानी

वास्तविक मुद्दा हिंदी और हिंदुस्तानी के बीच का है। हिंदुस्तानी जैसी कोई भाषा न थी, न है। यह अलगाववादियों और राष्ट्रविरोधियों के साथ समझौते का परिणाम है, जो अंततः पाकिस्तान के रूप में फलित हुआ।

भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का पहिया ही नहीं है, वरन् यह जनता के उन जीवन-मूल्यों से भी जुड़ी है जिनके लिए इसकी उपयोगिता है। इस संदर्भ में भारत की राष्ट्रीय भाषाएँ इतनी आदर्श हैं कि आप अपने सांस्कृतिक चरित्र को खोए बिना इनमें से किसी भी भाषा का प्रयोग कर सकते हैं।

यदि मथुरा का कोई व्यक्ति मद्रास में बस जाता है और वहाँ अपने लंबे प्रवास के दौरान हिंदी के बजाय तमिल बोलने लगता है तब भी उसने अपना कोई अवयव नहीं खोया। अंतिम परिणाम ज्यों का त्यों रहेगा। परंतु अंग्रेज़ी या फ्रेंच के साथ ऐसा नहीं है।

और हिंदुस्तानी क्या है? यह एक कृत्रिम विश्व भाषा है, जो पूरे देश की बजाय

सिर्फ उत्तर भारत के लोगों को अभिव्यक्ति के उपकरण प्रदान करती है और वह भी सिर्फ उन्हें जिन्हें अरबी व फारसी के शब्दों का अच्छा ज्ञान है। इस तरह की भाषा, भले ही इसे कृत्रिम रूप से निर्मित कर लिया जाए, लोगों से उसी तरह उतनी दूर रहेगी जैसे अंग्रेजी है। अधिकतर हिंदीभाषियों और सभी अहिंदीभाषियों के लिए यह उसी तरह अग्राह्य है जैसे लैटिन या ग्रीक। इससे भी कहीं अधिक यह भारत को असांस्कृतिक बनाने के षड्यंत्र का भाग है। यदि हिंदी के संदर्भ में यह प्रयास सफल हो गया तो भारत की अन्य भाषाएँ भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं रहेंगी, जो अपने पाठ व संदर्भ के आधार पर उसी समरूप संस्कृति का अंग हैं, जिसे कि हिंदी क्षेत्र से विस्थापित किया जा रहा है। यह टुकड़ों-टुकड़ों में सर्वनाश की प्रक्रिया है। इसके बाद साझा संस्कृति के पैरोकार क्या माँग नहीं करेंगे कि मराठी, बांग्ला, कन्नड़ और तमिल में भी अरबी व फारसी के शब्द भरे जाएँ और हिंदुस्तानी को दो लिपियों में लिखा जाए। टंडनजी का विश्वास एक संस्कृति में था और इसी नाते उन्होंने हिंदी का मुद्दा उठाया। हिंदी के कल्याण में सभी भारतीय भाषाओं का कल्याण है।

हमारा कर्तव्य

इन महान् उद्देश्यों के लिए संग्राम करनेवाले ये शूरवीर अब हमारे बीच नहीं हैं, परंतु यह सुनिश्चित करना हमारा कर्तव्य है कि संघर्ष समाप्त न हो। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी हमें एक ऐसे संगठन का उत्तरदाय दे गए हैं जो हमारी संस्कृति और धरोहर के विध्वंस के षड्यंत्र के मर्यादोचित प्रतिरोध के लिए एक सबल और सक्षम उपकरण बनने के लिए प्रयासरत रहेगा। टंडनजी ने कांग्रेस में रहकर उसके भीतर अपनी लड़ाई लड़ी, पर दुर्भाग्य से, इसे आगे बढ़ाने के लिए वे कोई संगठित संस्था या निकाय नहीं छोड़ गए हैं।

जब तक वे थे, कांग्रेसी उनके पीछे खड़े हो सकते थे, परंतु अब कोई ऐसा केंद्रीय व्यक्तित्व नहीं रहा।

राजर्षि टंडनजी के प्रति उनकी श्रद्धांजलि यही होगी कि वे यह सुनिश्चित करें कि हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी सेवाएँ व्यर्थ नहीं जाएँ और ऐसे समय में जहाँ दूसरा पक्ष दृढ़ संकल्प के साथ जन-इच्छाओं की उपेक्षा व अवहेलना के प्रयास में जुटा है, वे टंडनजी की परंपरा का सम्मान करते हुए निर्भीक होकर सफलतापूर्वक लड़ने के लिए संगठित हो जाएँ।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 16, 1962

(अंग्रेजी से अनूदित)



भारत सरकार की भाषा नीति संविधान के प्रतिकूल

नई दिल्ली से दीनदयालजी का प्रेस वक्तव्य।

हिंदी को मिश्रित हिंदुस्तानी से प्रतिस्थापित करने और दूसरे अंग्रेजी को एक संबद्ध आधिकारिक भाषा के रूप में थोपने की सरकार की भाषा नीति भाषा से जुड़े संविधानों के प्रावधानों के उलट है।

समाचार प्रसारक ऑल इंडिया रेडियो में उपयोग की जानेवाली भाषा के बारे में गंभीर विवाद उठ खड़ा हुआ है। इस मुद्दे पर जनाक्रोश बढ़ना जारी है। यह खेद का विषय है कि हाल के वर्षों, जब भाषा विवादों ने काफी झगड़ों और आंदोलनों को उकसाया है, के अनुभवों के बावजूद सरकार ने बिना किसी तुक या कारण के एक बार फिर इस बर् के छत्ते में हाथ डाल दिया है। इसकी नई कार्रवाई विवेक और बुद्धिमत्ता के अभाव को सुस्पष्टता से दर्शाती है।

संविधान में आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका और हिंदी के स्वरूप के संदर्भ में अत्यंत स्पष्ट प्रावधान किए गए हैं।

यह कहा जाना चाहिए कि इस संदर्भ में सरकार की नीति इन प्रावधानों के प्रतिकूल है और इसलिए संविधान के विरुद्ध है।

साधारण हिंदी के नाम पर संकर भाषा को थोपने की चाहत को संविधान सभा में स्पष्ट रूप से खारिज किया जा चुका है।

दिल्ली और आसपास के उर्दू-शिक्षित शहरी लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा हिंदी नहीं है और न ही यह संपूर्ण देश के लिए सार्वजनिक भाषा के रूप में काम कर सकती है।

संविधान ने 15 वर्ष की समय-सीमा निर्धारित की है, जिसके भीतर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को सभी सरकारी कार्यों के लिए अनिवार्य रूप से अपनाया जाना है। सरकार इस संदर्भ में आवश्यक क़दम उठाने में विफल रही है।

प्रथम भाषा आयोग की संस्तुतियाँ¹ कूड़ेदान के हवाले की जा चुकी हैं और संसदीय समिति की रिपोर्ट पर राष्ट्रपति के निर्देशों को विस्मृत किया जा चुका है।

संविधान में यह भी कहा गया है इस वर्ष के बाद द्वितीय भाषा आयोग का गठन किया जाएगा।

संविधान के इस निर्देश की अवज्ञा की जा चुकी है और सरकार भाषा के प्रश्न के संदर्भ में मनमाने तरीके से आगे बढ़ती आ रही है।

सरकार को द्वितीय भाषा आयोग के गठन से पूर्व भाषा समस्या के बारे में कोई नया निर्णय लेने का अधिकार नहीं है और इसके बाद भी केवल आयोग की रिपोर्ट के आधार पर ही निर्णय लिये जा सकते हैं।

भाषा का यह प्रश्न राष्ट्रीय मुद्दा है और यह दलगत राजनीति से ऊपर है। कोई आश्चर्य नहीं कि लगभग सभी राजनीतिक दलों का बड़े वर्ग द्वारा व्यक्त किए गए विरोध के बाद भी सरकार ने अपने आत्महंता क़दम को रोका नहीं है। यह राष्ट्र और इसकी संस्कृति के लिए एक गंभीर ख़तरा होगा।

जनसंघ अपनी पूरी शक्ति के साथ सरकार की नीति का विरोध करने के लिए दृढ़ संकल्पित है। इसलिए भारतीय जनसंघ की सभी इकाइयाँ इस संदर्भ में जनमत बनाने और इसमें लोगों के सक्रिय विरोध को दर्ज कराने के लिए तैयार करें।

मैं सूचना एवं प्रसारण मंत्री² और भारत सरकार से समय से पूर्व चेत जाने का आह्वान करता हूँ। वे हिंदी के स्वरूप को विकृत न करें। वे भारतीय भाषाओं के स्वाभाविक और सही स्थान को हड़पने में अंग्रेज़ी की सहायता भी न करें और अंग्रेज़ी को अनिश्चितकाल के लिए बनाए रखने की इच्छा न करें।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 16, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



1. हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितंबर, 1949 को स्वीकार किया गया। इसके बाद संविधान में राजभाषा के संबंध में धारा 343 से 352 तक की व्यवस्था की गई। हिंदी के प्रयोग को क्रियान्वित करने के लिए 1955 में बी.जी. खेर की अध्यक्षता में प्रथम राजभाषा आयोग का गठन किया गया, खेर आयोग ने हिंदी को एकान्तिक व सर्वश्रेष्ठ स्थिति में पहुँचाने पर जोर दिया व 3 दिसंबर 1955 को राष्ट्रपति के आदेशानुसार जनता के साथ पत्र-व्यवहार, प्रशासनिक रिपोर्ट, संसद रिपोर्ट, हिंदी भाषी राज्यों के साथ पत्र व्यवहार, अंतरराष्ट्रीय संगठनों में भारतीय पदाधिकारियों के नाम जारी किए जानेवाले औपचारिक दस्तावेज़ अंग्रेज़ी के साथ ही हिंदी में भी जारी किए जाने की व्यवस्था की गई। लेकिन 1957 में गठित संसदीय राजभाषा समिति / जी.बी. पंत समिति ने हिंदी को प्रधान राजभाषा बनाने पर जोर तो दिया, लेकिन अंग्रेज़ी को हटाने के बजाय उसे सहायक राजभाषा बनाए रखने की वकालत की। हिंदी के दुर्भाग्य से सरकार ने खेर आयोग को महज औपचारिक माना और हिंदी के विकास के लिए कोई ठोस क़दम नहीं उठाया, जबकि सरकार ने पंत समिति की सिफ़ारिशों को स्वीकार किया, जो आगे चलकर राजभाषा अधिनियम 1963/67 का आधार बनी।
2. बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर (1903-1984) भारत के 1952 से 1962 तक सूचना एवं प्रसारण मंत्री थे।

शासन हिंदी का स्वरूप विकृत करने की चेष्टा न करे

आकाशवाणी पर प्रसारित समाचारों की भाषा को लेकर पिछले दिनों से काफ़ी विवाद खड़ा हो गया है। धीरे-धीरे यह प्रश्न व्यापक जन-क्षोभ का कारण बनता जा रहा है। यह अत्यंत ही खेद का विषय है कि भाषा के प्रश्न पर पिछले दिनों से देश की राजनीति में बहुत कुछ अवांछित हलचलों के उपरांत भी, पिछले अनुभवों से लाभ न उठाते हुए शासन ने बिना किसी कारण के बर के छत्ते में हाथ डाला है। स्पष्ट ही इसमें नीतिमत्ता का अभाव प्रकट होता है।

हिंदी को राजभाषा बनाने तथा तदनुसार रूप के संबंध में संविधान में असंदिग्ध प्राविधान होने के उपरांत भी शासन जिस नीति का पालन कर रहा है, वह संविधान के प्रतिकूल है। सरल हिंदी के नाम पर जिस संकर भाषा को लादने का प्रयत्न किया जा रहा है, उसे संविधान सभा ने पहले ही ठुकरा दिया है। दिल्ली और उसके आसपास उर्दू पढ़े हुए शहरी लोगों की भाषा न तो हिंदी है और न देश में व्यापक रूप से समझी जाती है।

संविधान में हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के राजकाज में व्यवहार के लिए 15 वर्ष की मर्यादा रखी गई थी। शासन ने इस दृष्टि से कोई प्रयत्न नहीं किया। प्रथम राजभाषा आयोग की सिफ़ारिशें रद्दी की टोकरी में डाल दी गई हैं तथा संसदीय समिति के प्रतिवेदन के उपरांत राष्ट्रपति ने जो आदेश दिए थे, उनका भी पालन नहीं किया जा रहा है। संविधान में निर्देश है कि दस वर्ष के उपरांत दूसरा राजभाषा आयोग बिठाया जाएगा। शासन ने उस निर्देश का उल्लंघन किया है, और आज मनमाने ढंग से काम कर रहा है। दूसरे आयोग की नियमित और उसके प्रतिवेदन के बिना सरकार को भाषा के संबंध में कोई भी निर्णय करने का अधिकार नहीं है।

भाषा का यह प्रश्न दलीय राजनीति से परे एक राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न है। फलतः सभी दलों के अधिकांश व्यक्ति शासन की इस नीति का विरोध कर रहे हैं। भारतीय जनसंघ अनुभव करता है कि यदि शासन को उसके आत्मघाती प्रयत्नों से नहीं रोका गया तो राष्ट्र और संस्कृति के लिए भारी संकट उत्पन्न हो जाएँगे। जनसंघ अपनी संपूर्ण शक्ति से इस नीति का विरोध करेगा। जनसंघ की सभी शाखाएँ इस संबंध में जनमत के संगठन एवं सक्रिय विरोध-प्रदर्शन की तैयारी करें। मेरी सूचना मंत्री और शासन से अपील है कि वे समय रहते चेतें तथा न तो हिंदी के स्वरूप को भ्रष्ट करने का प्रयास करें और न भारतीय भाषाओं को उनके स्वाभाविक अधिकार से वंचित कर अंग्रेजी को बनाए रखने का दुस्साहस ही करें।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 6, 1962



चलिए एक नई योजना बनाएँ

अपने निवेश कार्यक्रम को पूरा करने के लिए तीसरी योजना को 5,750 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है, यानी 10,400 करोड़ रुपए के कुल योजना आकार के आधे से अधिक। संयुक्त राज्य अमरीका और अन्य भारत अनुदान क्लब की दृष्टि से योजना तैयार की गई। इससे हमारे सामने ऐसी स्थिति आ गई है, जिसका समाधान सामयिक उपायों से नहीं हो सकता। हमें मूल रूप से अपना दृष्टिकोण संशोधित करना होगा और इस तरीके से योजना बनानी होगी कि विदेशी मुद्रा योजना को सीमित करने का कारक न बने।

द्वितीय योजना के दूसरे वर्ष से दिखना शुरू हुआ विदेशी मुद्रा संकट फिर खतरनाक अनुपात तक पहुँच गया है।

हमारा विदेशी मुद्रा भंडार 100 करोड़ रुपए से नीचे तक गिर गया है। भारत सरकार को आई.एम.पी. के साथ 10 करोड़ डॉलर की स्टैंड-बाई क्रेडिट की व्यवस्था करनी पड़ी जिसमें से आज की तारीख तक 2.5 करोड़ डॉलर का उपयोग हो चुका है।

वित्त मंत्री का अभियान

वित्त मंत्री ने संयुक्त राज्य अमरीका और पश्चिमी यूरोपीय देशों का दौरा किया और भारत के दृष्टिकोण को समझाने की कोशिश की। आश्वासन तो नहीं, हाँ आशाओं के साथ वे लौटे। संसद् में उनके वक्तव्य के अनुसार पहले दो वर्ष की विदेशी मुद्रा आवश्यकता में 38 करोड़ रुपए का अंतर अभी बना हुआ है। उन्होंने चिंता व्यक्त की कि ब्रिटेन के साझा बाजार में प्रवेश के कारण यूरोप में हमारे निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

निर्यात संवर्धन के लिए अनेक प्रयासों के बावजूद हमारी निर्यात आय में उल्लेखनीय

सुधार नहीं हुआ। 1962 के पहले छह महीनों के दौरान हमने 309.43 करोड़ रुपए मूल्य के माल का निर्यात किया, जो 1961 की सापेक्षित अवधि में 315.46 करोड़ रुपए था। इस दर से लक्ष्य प्राप्त होने की संभावना नहीं है।

स्थिति से निपटने के लिए निर्यात प्रतिबंधों को कड़ा किया गया। परंतु इससे बदले में हमारा निर्यात ही प्रभावित हुआ, क्योंकि कई निर्यातयोग्य वस्तुओं में आयात तत्त्व होते हैं। इससे हम एक दुष्चक्र में फँस गए हैं। जैसे-जैसे वर्ष बीतेंगे, स्थिति और गंभीर होती जाएगी। अपने निवेश कार्यक्रम को पूरा करने के लिए तीसरी योजना को 5,750 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है, यानी 10,400 करोड़ रुपए के कुल योजना आकार के आधे से अधिक। यदि हम पी.एल. 480¹ के तहत 600 करोड़ रुपए के खाद्य आयात, क्रीमतों में परिवर्तन के कारण और कम आकलन के कारण पुनर्भुगतान और समायोजन की आवश्यकताओं को जोड़ लें तो यह आँकड़ा और अधिक हो जाएगा। संयुक्त राज्य अमरीका और भारत अनुदान क्लब के अन्य देशों का रुख वह नहीं है, जो तब था जब हमने योजना तैयार की थी। जो भी कारण हो, हम ऐसी स्थिति के सामने हैं, जिसका समाधान सामयिक उपायों से नहीं हो सकता। हमें मूल रूप से अपना दृष्टिकोण संशोधित करना होगा और इस तरीके से योजना बनानी होगी कि विदेशी मुद्रा योजना को सीमित करने का कारक न बने।

भुगतान संतुलन में असंतुलन सीधे अंतरराष्ट्रीय असंतुलन से संबद्ध है, यानी वर्तमान उपभोग को संतुष्ट करने और उत्पादन के लिए निवेश के बीच घरेलू व्यय के वितरण से। इसे निम्न समीकरण के माध्यम से समझाया जा सकता है।

यदि एन राष्ट्रीय आय, सी उपभोग, आई निवेश, ई निर्यात, एम आयात और एस बचत है तो

$$\begin{array}{llll}
 & \text{एन} & = & \text{सी} + \text{आई} \quad (\text{ई} - \text{एम}) \\
 \text{साथ ही} & \text{एन} & = & \text{सी} + \text{एस} \\
 \text{तो} & \text{एस} & = & \text{आई} + (\text{ई} - \text{एम}) \\
 \text{या} & \text{एस} - \text{आई} & = & (\text{ई} - \text{एम})
 \end{array}$$

यदि आई एस से बड़ा है तो एम ई से बड़ा है, यानी यदि देश में निवेश बचत से अधिक है तो आयात निर्यात से अधिक होना चाहिए। इसके अनुरूप मान लिया गया है कि एक अविकसित देश, जहाँ निवेश की आवश्यकता बचत की क्षमता से बहुत अधिक

1. अमरीकी कांग्रेस ने दुनिया भर में खाद्य सहायता प्रदान करने के लिए 'Food For Peace' कार्यक्रम की शुरुआत की, अमरीकी राष्ट्रपति ड्वाइट डी ने 10 जुलाई, 1954 को कृषि व्यापार विकास और सहायता अधिनियम 'Public Law-480' पर हस्ताक्षर किए थे। मुख्यतः अमरीकी कृषि की आर्थिक स्थिरता और कृषि वस्तुओं के अंतरराष्ट्रीय व्यापार के विस्तार के उद्देश्य से ही अमरीकी कांग्रेस ने 1954 में सार्वजनिक क़ानून पारित किया था।

होती है, में इसे विदेशी आयात से पूरा करना पड़ेगा। यदि इस असंतुलन से बचना है तो बचत को निवेश के बराबर करना ही एकमात्र विकल्प बचता है। और यहीं योजना की रणनीति मर जाती है।

योजनाकारों को या तो निवेश के अनुरूप बचत को बढ़ाकर या फिर बचत क्षमता के अनुरूप निवेश की योजना बना कर इस खाई को भरने के तरीके और माध्यम तलाशने पड़ेंगे।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए लोगों के राजनीतिक उद्देश्यों के अनुरूप विभिन्न तरीकों का सुझाव दिया जा चुका है। बाध्यकारी बचत और प्रोत्साहन, ये दो सामान्य तौर पर स्वीकार्य काम करने के तरीके हैं।

यह हो सकता है और हमेशा दोनों का संयोजन होता है और इनका न्यायसंगत अनुपात ही वह चीज़ है जिस पर योजना प्रशासन की सफलता और लोकप्रियता पर निर्भर करती है।

व्यावहारिक उद्देश्य के लिए निवेश और बचत को उनकी सामान्य प्रकृति छोड़नी पड़ती है और इन्हें गुणात्मक और मात्रात्मक, दोनों रूपों में माना जाता है। वस्तुतः गुणात्मक पहलू ही है जो मात्रात्मक पहलू को प्रशासित करता है। बढ़ी हुई बचत बड़े निवेश में परिवर्तित नहीं हो सकती है, यदि उसकी पहचान न हो या बचतकर्ता और निवेशक के बीच संस्थागत कड़ी न हो। निवेश जब तक फलदायी न हो, अपव्यय हो सकता है, जैसे बिना संतुष्टि के उपभोग। और जब मनुष्य में भी निवेश पर विचार किया जाता है तो यथोचित और नियंत्रित उपभोग अंततः निवेश में परिवर्तित हो सकता है। इसलिए एक योजनाकार को बचत-वृद्धि और उपभोग के सभी पहलुओं का ध्यान रखना होगा। यहीं आकर वर्तमान योजनाकार भटक गए। इससे एक ओर हमने अभाव और दुर्लभता की चुनौती झेली और दूसरी ओर कामगार तथा औद्योगिक क्षमता निष्क्रिय स्थिति में रहे।

पश्चिमी प्रौद्योगिकी हमारे लिए अनुकूल नहीं है

चलिए, एक नई योजना बनाएँ। परियोजना और उत्पादक इकाइयों के आयात तत्त्व को एकदम न्यूनतम स्तर तक घटाएँ। इस मिथ्या धारणा को कि पश्चिमी प्रौद्योगिकी देशों के लिए अनुकूल है और सार्वकालिक है, त्याग दें। श्री गुन्नार मिर्डल² ने अविकसित देशों की समस्याओं की समझ के अभाव के लिए पश्चिमी लेखकों की आलोचना करने

2. कार्ल गुन्नार मिर्डल (1898-1987) स्वीडिश अर्थशास्त्री थे। इन्होंने एशिया-अफ्रीका-लातिनी अमरीका की बदहाली, कंगाली व पिछड़ेपन और यूरोप एवं अमरीका की समृद्धि के अनुभवों के आधार पर क्षेत्रीय विकास के अर्थशास्त्र की पुस्तक की रचना की। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक 'एशियन ड्रामा' थी। 1974 में मुद्रा और आर्थिक विचलन के सिद्धांत के क्षेत्र में अग्रणी कार्य तथा आर्थिक, सामाजिक, संस्थागत घटनाओं के तीक्ष्ण विश्लेषण के लिए अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

के साथ ही ऐसे संपूर्ण साहित्य को सतही बताते हुए अपनी पुस्तक इंटरनेशनल इकोनॉमी में कहा था—

‘औद्योगिक उत्पादन तकनीकी के भी समायोजन की आवश्यकता होगी। आधुनिक देशों में ये तकनीकें विकसित हो चुकी हैं और परिणास्वरूप कमोबेश मानकीकृत उपकरण में परिवर्तित हो चुकी हैं, जिन्हें अब अविकसित देशों में बिक्री के लिए प्रस्तावित किया जाता है। ये लंबे विकास का परिणाम हैं, जिसमें आर्थिक प्रगति के परिणामस्वरूप श्रम का अभाव और प्रचुर पूँजी साथ ही साथ इंजीनियरों, फोरमैन और कामगारों के बीच उच्च स्तरीय शिक्षा और तकनीकी कौशल जैसी प्रवृत्तियों का प्रभुत्व बढ़ा है। अविकसित देशों में श्रम की प्रचुरता, पूँजी के अभाव, शिक्षा और तकनीकी कौशल का निम्न स्तर कम पूँजी-सघन उपकरणों, निम्न श्रम बचत उपकरणों और आमतौर पर अधिक सामान्य तकनीकी के उपयोग को आर्थिक रूप से लाभकारी बनाएगा। साथ ही साथ इनमें से कई देश विश्व के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में हैं, जबकि हमारी सभी आधुनिक औद्योगिक तकनीकियाँ समशीतोष्ण क्षेत्रों की स्थितियों के लिए उपयुक्त हैं।’

जब हम नई प्रौद्योगिकी की बात करते हैं तो इसका अर्थ विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों के उपयोग से इनकार करना नहीं होना चाहिए। उस ज्ञान का उपयोग कैसे किया जाना है, इसका निर्णय हमारी स्वयं की स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए।

विदेशी प्रौद्योगिकी का आयात करने का अर्थ एक लंबे समय के लिए उन पर निर्भर होना होता है। हम मात्र संयंत्र और मशीनरी का आयात नहीं करते बल्कि कच्चे माल और स्पेयर पार्ट के लिए भी इन देशों पर निर्भर हो जाते हैं।

और मात्र कुछ ही उदाहरण नहीं हैं, जब इनमें से किसी की अनुपलब्धता के कारण गंभीर संकट उत्पन्न हो चुका है। दिल्ली में बिजली संकट इसका स्पष्ट उदाहरण हैं।

तीसरी योजना में 5,750 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा आवश्यकता में से 3,650 करोड़ रुपए की आवश्यकता रखरखाव आयात के लिए हैं। दूसरी योजना अवधि में कुल आयात 5,360 करोड़ रुपए का हुआ था।

निःसंदेह चूँकि हम प्रगति कर रहे हैं, इसलिए हम रखरखाव के लिए अधिक-से-अधिक आयात कर रहे हैं। मध्यवर्ती वस्तुओं के आयात में वृद्धि एक सीमा तक समान निष्कर्ष देती है। योजना को स्वीकृति देते समय योजना आयोग मात्र अपनी वर्तमान विदेशी मुद्रा आवश्यकता का ध्यान रखता है। इसे यह भी ध्यान देना चाहिए कि उस इकाई को बनाए रखने के लिए कब तक विदेशी आयात की आवश्यकता होगी। विदेशी गठबंधन के मामले में उद्योग की वर्तमान और भावी आयात मात्रा अत्यंत अधिक होती है।

एक ओर जहाँ सभी देश विकल्प तलाशने में व्यस्त हैं और इसके चलते हमारा

अधिकांश परंपरागत निर्यात प्रतिस्थापित हो रहा है, वहीं हमने इस महत्वपूर्ण कार्य पर कोई ध्यान नहीं दिया है। हमारे पास कई राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ और अनुसंधान केंद्र हैं। परंतु अब तक आर्थिक और वाणिज्यिक महत्व के कार्य बहुत कम हुए हैं। यदि हम कच्चा माल और अन्य सामान स्थानीय रूप से प्राप्त कर सकें तो हम निश्चित रूप से विकास आयातों के लिए अधिक भुगतान कर सकते हैं। श्री टी.टी. कृष्णामाचारी³ ने हाल ही में मोटर वाहनों के काष्ठ ढाँचे के लिए मूल्यवान सुझाव दिया था। यदि योजनाकार इस दिशा में अपने मस्तिष्क का प्रयोग करें तो हम आवश्यक समझे जानेवाले कई आयातों का त्याग सकते हैं।

यह एक सामान्य और एक बड़ी सीमा तक यथार्थ धारणा है कि उत्पादन क्षमता का पूरी तरह उपयोग नहीं हो रहा है। निश्चित रूप से यदि पूर्ण क्षमता से काम नहीं कर सकती तो महँगी विदेशी पूँजी से उत्पादन क्षमता सृजित करने का कोई अर्थ नहीं है।

यहाँ तक कि क्षमता सृजन और उपयोगिता के बीच सदैव एक समयांतराल होता है और हमें स्वयं मात्र प्रभावी क्षमता की ही चिंता करनी चाहिए, यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि पुराने उद्यमों पर विचार किए बिना नए उद्यमों को लाइसेंस दिया जा रहा है।

अदूरदर्शी लेन-देन

हमें संपूर्ण योजना को संशोधित करना होगा, ताकि अंततः हम अपने स्वयं के संसाधनों को जुटाने पर अधिक निर्भर रहें। निकट भविष्य में हमें वायदा किए गए अनुदानों के अनुरूप वर्तमान योजना को पुनर्चरणबद्ध भी करना पड़ सकता है।

अधिकांश विदेशी अनुदान देशवार और परियोजनावार सहबद्ध होते हैं। यह किसी मानकीकृत उपकरण को लेने को कठिन बना देता है और स्पेयर पार्ट की समस्या सृजित कर सकता है।

यद्यपि वर्तमान के लिए हमें देखना होगा कि योजना की अभाज्यता पूर्ण है और कोई अंतराल बचा हुआ नहीं है। यदि यह नहीं किया जाता है तो निरुपयोगी क्षमता और अभाव की स्थिति उभर सकती है। विदेशी कर्ज लेने की अपनी अत्यधिक उत्कंठा के कारण हम सभी तरह के नवोन्मेषों पर सहमत हो रहे हैं। इनमें से कई आर्थिक रूप से मजबूत और राजनीतिक दृष्टि से बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं हैं। यदि दूसरा पक्ष रूप में भुगतान के लिए सहमत होता है तो दबाए जाने पर हम तत्परता से किसी भी शर्त को स्वीकार कर लेते हैं।

पूर्वी यूरोप और कम्युनिस्ट देशों के साथ हमारा व्यापार इसी आधार पर है। यही

3. टी.टी. कृष्णामाचारी (1899-1974) देश के चौथे वित्त मंत्री (1956-58) रहे तथा 1956 में नई दिल्ली में स्थापित National Council of Applied Economic Research के नियामक मंडल के सदस्य थे।

स्थिति अफगानिस्तान, मिस्र, बर्मा, पाकिस्तान और उत्तरी वियतनाम के साथ है। अमरीका के पास भी गेहूँ के कर्ज के पुनर्भुगतान से प्राप्त रुपए की निधि है। डॉ. बी.आर. शेनॉय⁴ के अनुसार उनके व्यय का एक मुद्रास्फीतिक प्रभाव हुआ है।

रुपया भुगतान देशों के कुछ अनाचारों के कारण हमारा परंपरागत निर्यात भी प्रभावित हुआ है। इस संदर्भ में आयात एवं निर्यात नीति पर मुदलियार समिति कहती है कि—

‘इन (रुपया भुगतान) समझौतों की योग्यता पर जनमत कुछ सीमा तक विभाजित रहा है। व्यय पक्ष पर यह कहा जाता है कि गुणवत्ता के स्तर पर रुपया भुगतान देशों से आयातित सामान के मूल्य कुछ ऊँचे होते हैं; आपूर्ति अनियमित होती है, इन देशों के आपूर्तिकर्ताओं की कोई बिक्री पश्चात् सेवा नहीं है, या प्रतिस्थापित हिस्सों की आपूर्ति के लिए कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं है, रुपया खाते पर आय मात्र कुछ समय के लिए विदेशी मुद्रा देनदारी को स्थगित करने के समान है, यह दीर्घावधि में फलदायी नहीं होता, विदेशी मुद्रा की शुद्ध बचत है, कुछ रुपया भुगतान देश अपने अधिशेष रुपए को तरल बनाने के क्रम में भारतीय बाजार में अत्यधिक खरीद करते हैं। वे संभवतः विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए आपूर्ति का कुछ हिस्सा भारत के परंपरागत बाजारों में छूट पर उतार देते हैं, जिससे भारतीय निर्यात की मात्रा में वास्तव में कोई शुद्ध वृद्धि नहीं होती और इन देशों को निर्यात में दृश्य वृद्धि गैर-परंपरागत बाजारों को आपूर्ति के मामूली विचलन से अधिक कुछ नहीं होता।’

विदेशी अनुदान का एक और पहलू है, जिसकी ओर विल्फ्रेड मंडेलबम ने अपनी हालिया पुस्तक प्रॉस्पेक्ट्स फॉर इंडियन डेवलपमेंट में ध्यान खींचा है। अब तक प्रयुक्त विदेशी तकनीकी ने शहरीकरण को और शहरी जनसंख्या में अधिक आय की पीढ़ी को बढ़ाया है। आय वितरण पर महालनोबिस समिति ने भी इस बात की पुष्टि की है। आय का यह असमान वितरण महँगाई बढ़ाता है। प्रो. मंडेलबम लिखते हैं—

‘शहरी उपभोग और निवेश वस्तुओं के बीच व्यापक प्रतिस्पर्धा से बढ़ी शहरी आय का, ग्रामीण आय में सापेक्षिक वृद्धि की तुलना में, मुद्रास्फीतिक प्रभाव अधिक व्यापक होगा।’

अतः वे चेतावनी देते हैं कि सरकार को ‘शहरी आय को बढ़ाने वाली शक्तियों के बारे में विशेष रूप से चिंता करनी’ चाहिए। वह उच्च वर्ग की प्रवृत्ति के प्रति भी आलोचनात्मक हैं, जिसे मैं महसूस करता हूँ कि यह विदेशी अनुदान के एक महत्वाकांक्षी

4. बेल्सिकोथ रघुनाथ शेनॉय (1905-1978) भारत में परंपरागत उदारवाद के एक अत्यंत प्रभावशाली समर्थक अर्थशास्त्री थे, साथ ही भारतीय आर्थिक संघ के अध्यक्ष और अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्रियों की संस्था ‘मोंट पेलेरिन सोसायटी’ के सदस्य थे।

कार्यक्रम में पश्चिमी मॉडल के अंधानुकरण का कारण और प्रभाव, दोनों हैं। उच्च वर्ग विदीर्ण है, क्योंकि उनके भारतीय होने के तथ्य पश्चिमीकरण के आकर्षण के बीच में होने से 'वे भारत में स्वयं को संप्रयोजित करने में कठिनाई महसूस करते हैं।' इन सबने शिक्षितों और प्रशासकों में एक अज्ञात आकर्षण विकसित किया है। ये लोग आम लोगों को उत्साहित करने और उनमें से सर्वश्रेष्ठ को सामने लाने में विफल रहे हैं। यह आत्मनिर्भरता के अहसास को बमुश्किल ही विकसित कर सकता है। प्रो. शिल्स इस प्रवृत्ति के बुरे प्रभावों को समुचित रूप से व्याख्यायित करते हैं, जब वे कहते हैं कि 'अज्ञात आकर्षण का नुकसान यह है कि यह भौतिक वातावरण के साथ जुड़ाव के अभाव और इसके चलते सहचर देशवासी की क्षमताओं और अक्षमताओं के प्रति एक सामाजिक अंधता के स्वरूप और उनकी समस्याओं तथा उनकी स्थिति से उनके लिए कुछ करने के लिए उत्तेजित होने के कारण सहचर देशवासी की मनःस्थिति के लिए अति न्यूनता की सहानुभूति से जुड़ा हुआ है।'

सीनेट की बहसों से अमरीकी रणनीति का खुलासा

अमरीकी सीनेट में अनुदान के प्रश्न से जिस तरह निबटा गया, वह यह स्पष्ट करता है कि राजनीतिक हित अपनी भूमिका निभाते हैं और यदि हम अंतरराष्ट्रीय मामलों में अपनी राह स्वयं चुनने का निर्णय करते हैं, जैसा कि हमें एक संप्रभु देश के रूप में करना चाहिए, तो अनुदान का भविष्य अनिश्चित है। यहाँ तक कि पहले भी अनुदान कार्यक्रमों के राजनीतिक निहितार्थ स्पष्ट किए जा चुके हैं। प्रो. जैकब विनर ने एक दशक पहले लिखा था—

‘मात्र एक कारक, जो किसी अविकसित देश के लिए वास्तव में एक बड़े आर्थिक अनुदान कार्यक्रम को स्वीकृति देने के लिए हमें सहमत करा सकता है, वह यह होगा कि शीतयुद्ध में उन देशों की मित्रता और गठबंधन हमारे लिए रणनीतिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक रूप से लाभकारी है। और यह भी कि बड़े पैमाने पर आर्थिक अनुदान हमें ऐसी मित्रता और गठबंधन के लिए आश्वस्त कर सकता है और यह कि आर्थिक अनुदान की अत्यधिक बड़ी समस्या की हमें पड़ने वाली लागत इन रणनीतिक लाभों के लिए भुगतान की दृष्टि से आध्यधिक क्रीमत नहीं होगी।’

एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा कि ‘शक्ति की राजनीति के खेल में अविकसित देश एक सीमा तक प्यादे होते हैं।’ हमने इस स्थिति का अनुभव किया है।

सभी कोणों से देखने पर यह आवश्यक लगता है कि हम स्वयं को विदेशी पूँजी पर इस अत्यधिक निर्भरता से मुक्त करें। मैं पृथक्तावादिता या निरंकुशता की पैरवी नहीं करता। परंतु यदि हमें प्रगति और विकास को त्वरित करना है और संपूर्णता से करना है

तो निश्चित रूप से योजना का पुनर्निर्माण करना होगा। यह अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्थितियों, राजनीतिक और आर्थिक हितों की माँग है।

कुछ मूल उद्योगों में विदेशी पूँजी की जायज आवश्यकता हो सकती है। हम जो भी कुल अनुदान प्राप्त करते हैं या प्राप्त कर सकते हैं, उसका उपयोग उन उद्योगों के विकास में करना चाहिए। अन्य उद्योगों के लिए हम तब तक के लिए सुखसाधन स्थगित कर सकते हैं, जब तक कि हम स्थानीय रूप से उसका उत्पादन न करने लगें।

—*ऑर्गनाइज़र, अगस्त 15, 1962*

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



नगरीय निकायों के लिए अधिक स्वायत्तता

कानपुर नगर महापालिका ने 16 अगस्त को अपने निगम भवन में दीनदयालजी का नागरिक अभिनंदन किया। स्वागत भाषण में महापौर डॉ. धीरेंद्रनाथ बनर्जी ने उन्हें 'भारत की प्राचीन संस्कृति और परंपराओं के भक्त' के रूप में उनका उल्लेख किया और एक ऐसा व्यक्ति बताया, जिसने खुद को संबद्ध आंदोलनों के लिए समर्पित कर दिया, जिसका जवाब देते हुए दीनदयालजी ने कहा :

स्थानीय प्रशासन में सफलता का कोई मानक यदि उनके पास रहा हो तो स्थानीय निकायों के लिए पूर्ण स्वायत्तता होनी चाहिए।

स्थानीय प्रशासन लोकतांत्रिक सरकार की नींव रहा है और स्थानीय निकायों की सफलता पर ही लोकतंत्र की सफलता निर्भर करती है।

उन्हें यह काम सौंपने में साख और व्यापक सोच को रेखांकित किया गया है, जो सफल लोकतंत्र के प्राथमिक आधार थे। सौहार्दपूर्ण संबंधों के मार्ग में राजनीतिक मतभेद आड़े नहीं आने चाहिए। ऐसे मौके अवश्य तैयार करने चाहिए, जिनसे एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने के लिए सुअवसर उत्पन्न हों। और इसके बाद, नागरिक मामलों में, राजनीतिक मतभेदों की प्रासंगिकता लगभग समाप्त हो जाती है।

पंडित नेहरू ने औद्योगिक केंद्रों को 'आधुनिक युग के तीर्थ के रूप में' चित्रित किया है। उस संदर्भ में कानपुर राज्य में सबसे बड़ा 'तीर्थ-केंद्र' है। फिर कानपुर भारत के अनेकों स्वतंत्रता सेनानियों के लिए कर्मभूमि रहा है।

उनका एक ही ईश्वर

एक औद्योगिक शहर के रूप में कानपुर, बंबई, अहमदाबाद और बंगलोर की श्रेणी में था। इन शहरों में जो लोग आए, उनमें से अधिकांश का सिर्फ एक ही लक्ष्य था,

एक ही महत्त्वाकांक्षा थी। उनका सिर्फ एक ही ईश्वर था—रूपया। और उसमें आधुनिक जीवन का पाप समाया था। इन औद्योगिक शहरों में यह एक हमेशा मौजूद रहने वाला खतरा था, जो कि धीरे-धीरे यहाँ रहने वाले लोगों को उनके टिके रहने के पारंपरिक साधनों से उखाड़ने के साथ दौलत के उपासकों में बदल सकता था।

नगर निकाय को इस पहलू पर भी स्वयं चिंतित होना चाहिए और परखना चाहिए कि इस विनाशकारी प्रक्रिया को रोकने में क्या कोई योगदान किया जा सकता है।

यह पूछने पर कि 'आपकी प्रतिबद्धता कहाँ के लिए है?', मौज-मस्ती करनेवाले ज्यादातर लोगों का लगभग एक सा जवाब होगा 'कानपुर के लिए', कोई आश्चर्य नहीं कि कानपुर की आबादी में तेजी से वृद्धि हुई है। इससे नगर निकाय पर बड़ा बोझ लद गया है।

मुझे यह बताते हुए खुशी है कि सभी दलों के सहयोग से नगर महापालिका एक टीम भावना से काम कर रही है और इस तरह नागरिक प्रशासन में एक स्वस्थ परंपरा की स्थापना हुई है। निगम की विकास योजनाओं के वित्त पोषण के लिए आय के कुछ स्वतंत्र स्रोत खोजने की जरूरत है और राज्य एवं केंद्र सरकार से ऋण पर बहुत अधिक निर्भरता के विरुद्ध सचेत रहने की जरूरत है।

हमारे लोकतांत्रिक ढाँचे की बुनियादी इकाई के रूप में नगरीय निकायों को स्वयं संविधान में एक सांविधिक जगह दी जानी चाहिए, न कि सिर्फ राज्य विधान से उनको शक्ति मिलनी चाहिए।

स्थानीय निगम भवन में आयोजित इस समारोह में एक हजार से अधिक आमंत्रितों ने भाग लिया।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 27, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



साम्यवाद रूसी राष्ट्रवाद का हथियार मात्र है

जनसंघ अजमेर स्वाध्याय शिविर में दीनदयालजी का भाषण।

“भारतीय संस्कृति एवं मर्यादाओं को छोड़कर यदि हमारा जीवन अथवा यहाँ की राजनीति चली तो हमारा कल्याण नहीं हो सकता। इससे न तो हमारा ही हित-साधन होगा, न ही स्वराज्य को साकार कर सकेंगे।” भारतीय संस्कृति के नाम पर आज देश में भ्रम एवं अज्ञान व्याप्त है। यह सही है कि संस्कृति शब्द की व्याख्या एक कठिन काम है। इस दृष्टि से अपने देश में तथा बाहर भी प्रयत्न हुए हैं, पर पूर्ण सफलता प्राप्त होती दिखाई नहीं दी है, संस्कृति की व्याख्या आत्मा की व्याख्या के अनुरूप ही कठिन कार्य है। इस कठिनाई के कारण कई विचारक ऐसा अनुभव करते हैं कि आत्मा जैसी कोई वस्तु है ही नहीं, यही बात संस्कृति के संबंध में भी लागू की जाती है।

भौगोलिक एवं ऐतिहासिक कारणों से कुछ भिन्नताएँ ऐसी हैं, जो मानव समाज के एक अंग में दृष्टिगत होती हैं, कुछ लोगों का ऐसा कहना है कि अब भौगोलिक दूरी कम होती जा रही है तथा संपूर्ण मानव-समाज एक-दूसरे के अधिक निकट आता जा रहा है। इससे भिन्न संस्कृतियों जैसी कोई वस्तु न रहकर मानव संस्कृति ही रहेगी। इस स्थिति का विवेचन भी एक कठिन कार्य है। आज राष्ट्रों के बीच ऐसे दूरगामी गहरे अंतर हैं, जो जीवन के संपूर्ण दृष्टिकोण से संबंध रखते हैं। आगे यह स्थिति बदल जाएगी, ऐसा दिखाई भी नहीं देता है।

राष्ट्रवाद को कोई वाद मिटा नहीं सका

संपूर्ण मानव-समाज को एक आधार पर खड़े करने के प्रयत्न हुए हैं, परंतु राष्ट्रवाद की भित्ति से टकराकर वे असफल सिद्ध हुए हैं, ईसाइयत का प्रयत्न भी एक ऐसा ही प्रयत्न था। वह राष्ट्र नहीं मानती, संपूर्ण मानव को ईसाइयत के आधार पर एक करना

चाहती थी, परंतु राष्ट्रवाद की टक्कर में ईसाइयत पीछे पड़ गई। एक ही मतावलंबी होने के पश्चात् भी आज यूरोप में भिन्न राष्ट्र खड़े हैं। राष्ट्रीय हितों की पूर्ति का जब भी प्रश्न उठा, ईसाइयत गौण हो गई।

इसलाम का प्रयत्न भी कुछ ऐसा ही हुआ, इसलाम भी राष्ट्र नहीं मानता। संसार के लोगों को इसलाम के आधार पर बाँधने के प्रयास हुए हैं, इसलाम एवं गैर-इसलाम यही एक अंतर माना गया, परंतु यह तर्क व्यवहार में चल नहीं पाया। पश्चिम एशिया के अरब देशों में अब राष्ट्रवाद प्रमुख हो गया है। मुसलिम शासक पहले खलीफा के नाम पर शासन करते थे। परंतु स्वयं तुर्की ने अपने यहाँ से खलीफा को निकाल बाहर किया। ईरान, अफगानिस्तान, मिस्र, सीरिया आदि में आज राष्ट्रवाद ही प्रमुख हो रहा है। इजराइल एक यहूदी राष्ट्र है, जिसका अरबों से परंपरागत धार्मिक झगड़ा है, परंतु फिर भी तुर्की ने इसे राजनीतिक मान्यता प्रदान कर दी, राजनीति में उन्होंने धर्म को पीछे छोड़ दिया।

अनेक देशों में जीवन की रचना, विकास, सामाजिक संबंध, साहित्य, राजनीति आदि पर इसलाम का प्रभाव न होकर उनकी परंपराओं का पड़ा है। इंडोनेशिया में इसलाम का प्रभाव होते हुए भी वहाँ की परंपरा एवं संस्कृति पूर्णतया भिन्न है। पाकिस्तान की जीवन रचना में नारा भले ही इसलाम का लगाया गया हो किंतु वहाँ की परंपरा का प्रभाव पड़ा है। कठमुल्लाओं को यदि छोड़ दिया जाए तो सामान्य समाज एक स्तर पर आ रहा है। प्राचीनकाल में महमूद गजनवी एक पक्का मुसलमान समझा जाता था, वह मूर्ति-भंजक था। सोमनाथ के प्रसिद्ध मंदिर का विध्वंस उसी ने किया था, किंतु जब उसने फिरदौसी से अपना इतिहास लिखवाया तो वह इतिहास इसलाम का नहीं बना। उसने रुस्तम और सोहराब¹ के गीत गवाए, जो मुसलमान नहीं थे। पाकिस्तान की सरकार ने भी पाकिस्तान के 5000 वर्ष नामक एक पुस्तक छपाई है, इसमें मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा का इतिहास लिखा गया है, राजा दाहिर² की वीरता के गुणगान गाए गए।

1. रुस्तम-सोहराब : ईसा की नवीं शताब्दी के समय फ़ारस (ईरान) में एक विख्यात योद्धा था रुस्तम व उनका पुत्र था सोहराब, जो कि पिता तुल्य ही वीर था। रुस्तम फारस की सेना में था तथा सोहराब यूनान की सेना में भरती हो गया, फ़ारस-यूनान युद्ध में दुर्भाग्यवश पिता के हाथों पुत्र की मौत।
2. राजा दाहिर : सिंध के राजपूत राजा के पीछे कोई वंशज नहीं था, इसलिए उन्होंने अपने प्रधानमंत्री चच को राजा बना दिया, जिनके पुत्र हुए दाहिर सेन, राजा चच के बाद उनके छोटे भाई चंदर ने सिंध पर 7 साल राज किया जिसमें उन्होंने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित कर दिया था, जिसके कारण सिंध की जनता में काफ़ी रोष हो गया था, 7 साल बाद 679 ई. में दाहिर ने सत्ता सँभाली और सनातन धर्म को राज्यधर्म घोषित किया, साथ ही बौद्ध धर्म को पूर्ण संरक्षण दिया। वे बहुत दूरदर्शी थे, इनके शासनकाल में सिंधु देश का हर नागरिक सुखी-संपन्न व आनंद में घूम रहा था, सिंध का समुद्री मार्ग पूरे विश्व के साथ व्यापार करने के लिए खुला हुआ था। सिंध के व्यापारी उस काल में भी समुद्र मार्ग से व्यापार करने दूर देशों तक जाया करते थे और इराक-ईरान से आने वाले जहाज सिंध के देबाल बंदरगाह (वर्तमान कराची) होते हुए अन्य देशों की तरफ जाते थे। इनके शासन काल में ही 712 ई. में मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में इसलामी खलीफ़ा का आक्रमण सिंध प्रांत पर हुआ था।

राजा पुरु³ के पराक्रम का भी वर्णन है, विदेशियों के आक्रमण का भी चित्रण है। यह हो सकता है कि इसमें भाषा के प्रयोग में अंतर रहा हो, परंतु भाव परंपरागत है। पाकिस्तान बनने के पूर्व तक बंगाल में उर्दू भाषा के लिए आंदोलन किया गया, परंतु अंत में उन्होंने अपनी बँगला भाषा को ही स्वीकार किया है। पुरातन-परंपरा प्रमुख नहीं, ऐसा सोचना अस्वाभाविक होगा।

कम्युनिज्म रूसी राष्ट्रवाद का नारा

आज के समय में साम्यवाद के नाम पर ऐसा प्रयत्न चला है। वास्तव में तो इस व्यवस्था को साम्यवाद नाम देना ही उचित नहीं। कम्युनिज्म राष्ट्रवाद को नहीं मानता, शोषक एवं शोषित के आधार पर उन्होंने समाज का वर्गीकरण करना चाहा, परंतु वह चल नहीं पाया। स्वयं लेनिन को अपने देश के लिए मार्क्स के सिद्धांतों की व्याख्या अपने अनुरूप करनी पड़ी। आज कम्युनिज्म रूसी राष्ट्रवाद का हथियार बन गया है। वह दूसरे देशों के राष्ट्रवाद से टकराया है। चीन एवं रूस के मनमुटाव का कारण राष्ट्रवाद है। युगोस्लाविया का पृथक्करण, हंगरी एवं पोलैंड के विद्रोह पृथक् राष्ट्रवाद की झलक हैं, आज जो मेल है, वह अधीनता के कारण है।

संस्कृति जीवन का एक दार्शनिक दृष्टिकोण है

राष्ट्रवाद एक शक्ति है, आँखें बंद करके उसको न मानना अनुचित है। उसी आधार पर संस्कृति जीवन का दृष्टिकोण है, जिसके मूल में सदैव दर्शन रहता है। हमारे यहाँ इसपर गंभीर रूप से विचार हुआ है। सत्य क्या है, इसकी खोज में हमारे लोग लगे रहे हैं। हमने जीवन में मोटे रूप से चार सत्ताएँ मानी हैं—1. व्यष्टि (प्राणी), 2. सृष्टि (प्रकृति), 3. समष्टि (समाज), 4. परमेष्टि (ईश्वर-ब्रह्म)। जहाँ तक चौथी सत्ता का प्रश्न है, इस संबंध में मतभेद रहे हैं। कुछ मानते हैं, कुछ नहीं मानते, समष्टि का अर्थ समाज अधिक सरल है।

समाज का अर्थ भी आज कई रूप में लिया जाता है, दस लोग जहाँ एकत्र होते हैं, उसे भी समाज कहते हैं तथा संपूर्ण मानव समाज को भी समाज की संज्ञा दी जाती है। मानव की उत्पत्ति के संबंध में भी विचार हुआ है। हम डार्विन के सिद्धांत को नहीं

3. राजा पुरु चौथी शताब्दी ई. पू. में भारत के एक महान् राजा थे। पुरु का नाम यूनानी इतिहासकारों ने 'पोरस' लिखा है। उनके वर्णनानुसार मकदूनिया के राजा सिकंदर ने 326 ई. पू. में जब पंजाब पर आक्रमण किया, उस समय पुरु का राज्य झेलम और चिनाब नदियों के बीच में स्थित था। पुरु इस बात का उदाहरण प्रस्तुत करता है कि भारतीय क्षत्रिय राजा शूरवीर और स्वाभिमानी होते थे। यद्यपि पुरु की सिकंदर द्वारा पराजय हो चुकी थी, फिर भी पुरु का युद्ध कौशल, उसकी वीरता तथा उत्साह ने सिकंदर को बहुत प्रभावित किया और उसने पुरु से मित्रता कर ली थी।

मानते, जहाँ कि बंदर से सुधारकर मानव का निर्माण हुआ। हम यह भी नहीं मानते कि सबसे पहले आदम और हव्वा उत्पन्न हुए जिनकी कि संतान मनुष्य है। मनुष्य की भी एक अमैथुनिक सृष्टि है। मनुष्य समाज के रूप में एक साथ कई स्थानों पर पैदा हुआ। प्रत्येक समाज अपनी कुछ मूल प्रकृति लेकर उत्पन्न हुआ। वनस्पति की भी एक मूल प्रकृति होती है। आम की एक मूल प्रकृति है। बीज, खाद, वायु, पानी के कारण अंतर आता रहता है, परंतु मूल एक ही रहता है, समाज की भी एक मूल प्रकृति है। इस मूल प्रकृति को ही 'चिति' कहते हैं। हम सब एक हैं, यह क्यों कर लगता है, क्योंकि हमारी चिति एक है, चिति ही संस्कारयुक्त होकर संस्कृति बन जाती है, आज जो सांस्कृतिक भिन्नता दिखाई देती है, उसका कारण है कि मूल समाजों की चिति प्रकृति भिन्न थी, चिति तब समझ में आती है, जब परमानंद एवं परमवैभव की अनुभूति का आधार होता है, प्रेय एवं श्रेय का विवेचन किया जाता है, जीवन का परम सुख जहाँ मिलता है, वह समाज की चिति है।

सतीत्व के संबंध में हमारी एक धारणा है। पशुओं के समान जीवन बिताना तो कहीं भी उचित नहीं माना गया है। रूस में इसके संबंध में एक नया प्रयोग किया गया— पति पत्नी के स्थायी संबंधों के कारण कुटुंब बनता है, कुटुंब से निजी संपत्ति की भावना बनती है। इसलिए ये लोग सतीत्व की भावना व विवाह की कौटुंबिक भावना को हेय मानने लगे, परंतु लेनिन भी इस सिद्धांत को चला नहीं पाया। आत्मा के संबंध में भी सर्वत्र खोज एवं चिंतन हुआ है, परंतु हमारे जीवन में जितना स्थान इसके लिए है, वह अन्य कहीं नहीं, केवल हमारे यहाँ ही नीतिमत्ता, संयम, नैतिकता, अपरिग्रह आदि हैं, ऐसा मानना भी गलत होगा। दूसरे देश भी ऐसा करते हैं, किंतु हमने ही सबसे अधिक चिंतन किया है। हमने हिंसा करते हुए भी हिंसा को बुरा माना है, धर्म के लिए युद्ध किया है, धर्म की व्यवस्था के लिए ही महाभारत का युद्ध हुआ था, जीवन की यह विशेषता बनी चिति के कारण ही। हमारा एक दृष्टिकोण बना है, यह चिति ही प्रत्येक संस्कृति को अलग-अलग करती है। संस्कृति वहाँ बनेगी, जहाँ चिति होगी; कटा हुआ हाथ कभी मनुष्य नहीं कहलाएगा, वैसे ही कुछ लोगों के संगठन मात्र से समाज नहीं बनता, भिन्न-भिन्न चितियों के लोगों से भी समाज नहीं बनाया जा सकता।

संस्कृति और विकृति

राष्ट्र का निर्माण भी संस्कृति के आधार पर होता है। एक राष्ट्र की जो लोग अलग संस्कृति मानते हैं, वे एक राष्ट्र के अंग नहीं हो सकते। जब जिन्ना ने मुसलमान की अलग संस्कृति की बात प्रारंभ की तो अंत एक अलग राष्ट्र के रूप में हुआ। द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम भी आज अपनी अलग संस्कृति मानकर एक अलग राष्ट्र बनाने की योजना कर रही है।

जब तक एक संस्कृति का भाव नहीं होगा, तब तक एकता नहीं हो सकती।

समाज की मूल प्रकृति के अनुसार यदि संस्कार पड़े तो वह संस्कृति होगी, यदि संस्कार प्रतिकूल रहे तो वह विकृति होगी। कुछ लोग तो परिवर्तन को भी संस्कृति मानते हैं। पर परिवर्तन यदि हमारी एकता को बनाए तब तो ठीक है, अन्यथा निरर्थक है। मज़ाक मित्रता का भी परिचायक होता है और आंतरिक वैमनस्य का भी। समाज की एकात्मकता का जिससे विरोध हो, उस परिवर्तन को हम स्वीकार नहीं करेंगे। हजारों वर्ष से चले आ रहे समाज की धारणाओं में यदि भेद आ जाए तो वह विकृति होगी। वहाँ अपना-पराया का भेद आते ही कठिनाई उपस्थित होगी। हमने रावण को बुरा मानते हुए भी कभी पराया नहीं कहा। यही बात दुर्योधन एवं जयचंद पर भी लागू होती है। आज द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम रामचंद्रजी का इसी आधार पर विरोध करती है कि वे उत्तर से आए थे और रावण के राक्षस होते हुए भी उसे अपना मानती है, यह विकृति का लक्षण है। मुसलमानों ने भी जबसे अपने-पराए का भेद किया तो उनमें विकृति आ गई। मसजिद में जाना विकृति नहीं, जो इस देश का है, वह मेरा नहीं यह विकृति है। हमने संपूर्ण देश को पुण्यभूमि कहा है, परंतु कुछ भाग को पाकिस्तान तथा बाक़ी को न पाकिस्तान कहना विकृति है।

विकृति और संस्कृति का मेल असंभव

कुछ लोग विकृति एवं संस्कृति के मेल की बात करते हैं, परंतु वह हो नहीं सकती। हिंदू-मुसलमानों के मेल में कांग्रेस ने देश की वही दुर्गति की है। मुसलमानों को यदि राणा प्रताप एवं शिवाजी की बातें अच्छी नहीं लगीं तो कांग्रेस ने उनकी बात छोड़ना ही श्रेयस्कर समझा। हिंदुओं की औरंगजेब के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया देखी तो अकबर को राष्ट्रीय पुरुष के रूप में खड़ा करने का प्रयास किया गया। इस प्रकार के प्रयत्नों से राष्ट्रीय एकता उत्पन्न नहीं हो सकती। संस्कृति के आधार के बिना राष्ट्रीय एकता संभव नहीं है, इस संस्कृति ने ही हमें हजारों वर्षों तक जोड़े रखा है।

भारतीय संस्कृति से विभिन्नता में एकता संभव

विचारों की भिन्नता तो प्रकृति से आई है, हममें भेद है परंतु पृथक्ता नहीं। संपूर्ण सृष्टि में विविधता है समानता नहीं, परंतु इस विविधता में ही एकता सन्निहित है। समष्टि में एकता होना एक माता के चार पुत्रों के विभिन्न कार्य एवं संस्कार होते हुए भी उनका खून एक होने जैसा है। प्रकृति में जो भेद है, वही मनुष्य में है, इस कारण हमने मानव मात्र को एक साँचे में ढालने का प्रयास नहीं किया। परंतु विविधता एवं विकृति भिन्न वस्तु है; हमने विविधता को स्वीकार किया है। हम इस सीमा तक गए हैं कि

हमने सबमें एकता देखी, “एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति” यहाँ मूर्ति का पूजन करनेवाले ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करनेवाले न स्वीकार करनेवाले सभी को समाज में पूर्ण स्थान प्राप्त रहा है, परंतु राष्ट्र की एकात्मकता के रूप में बाधक रूप से कोई वस्तु आई तो देश में उसका विरोध हुआ है। बौद्ध एवं जैन दोनों ही निरीश्वर वादी मत हैं। बौद्ध मतावलंबियों ने जब देश के आक्रमण पर अपने धर्मावलंबी विदेशियों का साथ दिया तो उनमें विकृति आई और देश ने उनका प्रतिकार किया, आज बौद्ध मत देश में एक प्रकार से समाप्त हो गया, इसके विपरीत जैन मत उसी रूप में देश में चला आ रहा है।

हमारे जीवन का आधार दर्शन है, हम न पूँजीवादी हैं, न समाजवादी—हम न व्यक्तिवादी हैं, न समष्टिवादी, इनको हमने स्वीकार नहीं किया हुआ है। हम एकात्मवादी, समन्वयवादी एवं पूरकतावादी हैं, इसी आधार पर हमारी संस्कृति खड़ी है।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 3, 1962



चीनी साम्राज्य के प्रतिकार के लिए संगठित हों

अगस्त मास के अंतिम सप्ताह में कलकत्ता के हिंदुस्थान क्लब में श्री घनश्याम बेरीवाल द्वारा दीनदयालजी के सम्मानार्थ आयोजित चाय पान के कार्यक्रम पर एक संक्षिप्त भाषण।

चीन के आक्रमण से गंभीर स्थिति उत्पन्न हो गई है। देश के लिए सम्मानपूर्ण ढंग से हम उस समस्या का अभी तक समाधान नहीं कर पाए हैं। चीन के प्रधानमंत्री श्री चाऊ एन लाई जब पहली बार भारत आए थे¹ तब श्री नेहरू ने उनसे कहा था कि जब तक भारत की भूमि पर से चीनी सेनाएँ नहीं हटा ली जातीं, तब तक कोई बातचीत नहीं हो सकती। परंतु गत 26 जुलाई को भारत सरकार ने जो विरोध पत्र भेजा है, उसमें चीन ने 1956 में भारत की जिस भूमि को अपना कहकर कब्जा जमाया था, उस अवैध माँग को स्वीकार कर एक प्रकार से समर्पण का भाव प्रकट किया गया है। यह अपने देश के लिए केवल घोर अपमानजनक ही नहीं, देश की सुरक्षा की दृष्टि से भी भयंकर संकट उत्पन्न करनेवाला है। आज की परिस्थिति में हम वह भू-भाग वापस ले सकें या

1. 25 जून, 1954 को चीन के प्रधानमंत्री श्री चाऊ एन लाई भारत की राजकीय यात्रा पर आए और भारतीय भू-भाग पर चीनी सेना के अतिक्रमण की बात स्वीकारते हुए इसमें सुधार की बात कही। इसके बाद दोनों प्रधानमंत्रियों ने अंतरराष्ट्रीय व्यवहार और सहअस्तित्व के आवश्यक सिद्धांतों के रूप में संयुक्त रूप से पंचशील सिद्धांतों को स्वीकार किया था। इसके बाद अक्तूबर 1954 में जवाहर लाल नेहरू ने चीन का दौरा किया तथा नवंबर 1956 में चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई दुबारा भारत आए। इसके बाद 1956-57 में लद्दाख में चीनी घुसपैठ हुई और सितंबर 1959 में चीनी सरकार ने पहली बार लद्दाख के 50,000 वर्ग मील क्षेत्र पर अपना औपचारिक दावा पेश किया। इसी प्रकार उत्तर-पूर्वी सीमांत नेफा क्षेत्र (अब अरुणाचल प्रदेश) पर भी चीन ने अपना दावा ठोका था।

न ले सकें, हमेशा के लिए उस पर से अपना दावा छोड़ दिया जाना, आत्म समर्पण है, और सरकार के इस कार्य के विरुद्ध संपूर्ण देश को जाग्रत् करना होगा।

संसद् सर्वोच्च है

प्रधानमंत्री ने कहा है कि वे देश को हानि पहुँचाने वाली कोई बात नहीं करेंगे और इसलिए उन्हें चीन के समझौते के बारे में खुली छूट दे दी जाए। परंतु यह प्रजातंत्र देश है, यहाँ की जनता, यहाँ की संसद् की संपूर्ण सम्मति मिले बिना प्रधानमंत्री को कोई भी कार्य करने का अधिकार नहीं है। अतः उनकी यह माँग केवल प्रजातंत्र के विरुद्ध ही नहीं, यह तानाशाही और स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति की भी परिचायक है। चीन ने बार-बार हमें धोखा दिया है। तिब्बत के मामले में उसने धोखा दिया। पंचशील के समझौते के साथ-साथ उसने हमारे देश पर आक्रमण शुरू कर दिया। अतः इस प्रकार इस समस्या का हल नहीं होगा। हम जितनी दुर्बलता दिखाएँगे, उतना ही अधिक संकट मोल लेंगे। अतः इस परिस्थिति का ठीक से विश्लेषण कर सरकार कोई भी दुर्बलता का पग न उठाए, इसके लिए प्रबल जनमत जाग्रत् करना आवश्यक है।

अंग्रेज़ी की गुलामी असह्य

देश की भाषा-नीति में अंग्रेज़ी को 'सखी राजभाषा' (Associate Language) बनाए रखने के लिए शासन की ओर से विधेयक प्रस्तुत करने की बात कही जा रही है। यह बात देश के लिए अत्यंत घातक है। यह बात स्पष्ट है कि अंग्रेज़ी राजकाज के लिए सहायक भाषा नहीं हो सकती। यह विधेयक यदि अभी शासन कार्य में प्रविष्ट कराया जाए तो इसका दूरगामी और घातक परिणाम होगा। राजकाज देश की अपनी ही भाषा से चल सकता है, विशेषकर एक स्वतंत्र सार्वभौम प्रजातंत्रीय देश में। अतः यहाँ की भाषा अंग्रेज़ी नहीं हो सकती। किसी भी मापदंड से यह बात देश के लिए लाभकारी और गौरवजनक नहीं है। पर इसके विषय में भी जनमत जाग्रत् करना आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना सरकार झुकने वाली नहीं है।

हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं में विरोध नहीं

बहुत लोग यह आशंका प्रकट करते हैं कि हिंदी के कारण विरोध पैदा होगा। परंतु ऐसी आशंका निराधार है। प्रत्येक प्रदेश में प्रदेश की अपनी भाषा से काम चलेगा। केवल थोड़े से राजकाज के काम में हिंदी चलेगी। जहाँ यह प्रयत्न हुआ कि केंद्र में अंग्रेज़ी और प्रदेश में प्रादेशिक भाषा में काम होगा, वहाँ यह प्रयत्न असफल सिद्ध हुए हैं। राजभाषा आयोग ने अपने प्रतिवेदन में कहा है कि मद्रास और बंगाल की विधान-सभाओं में प्रादेशिक भाषा के बदले अंग्रेज़ी का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। यही दो

प्रदेश हैं, जहाँ पर स्कूलों में हिंदी को आवश्यक विषय के रूप में नहीं चालू किया गया है। भारत के अन्य सभी प्रदेशों में हिंदी चालू की गई है। वास्तव में भारत की सभी भाषाएँ एक ही परिवार की सदस्या हैं। इसलिए उनका परस्पर एक साथ जितना मेल हो सकता है—अंग्रेज़ी के साथ उतना नहीं हो सकता।

‘अपना राज’ कहाँ है?

फिर भी अपने दुराग्रह के कारण अंग्रेज़ी को बनाए रखने का जो प्रयत्न शासन तथा कुछ और लोगों की ओर से चल रहा है, वह हमारे स्वाभिमान के लिए अपमानजनक है। अगर 1965 में हिंदी का प्रयोग व्यावहारिक नहीं लगता तो उसके बाद हमें उसका विचार करना चाहिए। प्रधानमंत्री ने कहा है कि तब तक हिंदी नहीं आएगी, जब तक अहिंदी भाषी इसके बारे में निर्णय नहीं लेते। इस प्रकार के असावधान वक्तव्यों और अदूरदर्शी विचारों द्वारा हमारे नेतागण एक नए बँटवारे और विद्वेष के बीज देश में बो रहे हैं। संविधान बनते समय उसके बनाने वाले भारत के सभी भाषा-भाषी थे और अपनी भाषा की नीति उसी समय संविधान के द्वारा स्वीकृत हो चुकी है। फिर आज यह नई बात क्यों कही जा रही है? मालवीयजी ने कहा था, “अपने देश में अपना राज।” यदि यहाँ अंग्रेज़ी में राजकाज चलेगा, वह कैसे अपना राज बनेगा?

ठोस सुझाव

हिंदी का विचार न करते हुए आप अपने प्रदेश से अंग्रेज़ी को निकाल दीजिए। प्रदेश की भाषा से राजकाज तथा अन्य काम चलाइए। फिर हिंदी स्वयं और स्वाभाविक रूप से जितना आवश्यक होगा, उतना स्थान बना लेगी।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 10, 1962



शिक्षक दिवस : कुछ विचार

पिछले सप्ताह 5 सितंबर को देश ने 'शिक्षक दिवस' मनाया। यह दिन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन का जन्मदिन था और उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की थी कि यह 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाया जा सकता है। राष्ट्रपति खुद एक शिक्षक हैं। यहाँ तक कि देश का सर्वोच्च पद ग्रहण करने के बावजूद, वे नहीं भूले कि वह स्वयं शिक्षक हैं, बल्कि शिक्षक की भूमिका के महत्त्व के प्रति जागरूक रहे, और उनकी समस्याओं के प्रति सचेत रहे। यह इसलिए है कि वे शिक्षकों की भलाई की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश करते रहे।

शिक्षक या गुलाम?

हालाँकि शिक्षा और शिक्षक के महत्त्व की प्रधानता को स्वीकार किया जाता है, परंतु आम तौर पर समाज ने शिक्षक की उपेक्षा की है। मैं अपने स्वयं के पहले के अनुभवों में से एक को याद करने की कोशिश कर रहा हूँ। अपनी बी.ए. की परीक्षा के बाद मैं अपनी गरमी की छुट्टी के लिए घर वापस चला गया था। अपने शहर में मैं अपने हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री पन्नालाल माथुर से उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए मिलने गया। न सिर्फ़ एक शिक्षक के रूप में बल्कि हमारे परिवार के साथ घनिष्ठ के कारण श्री माथुर का मेरे प्रति स्नेहपूर्ण लगाव था।

कुछ अनौपचारिक बात करने के बाद उन्होंने मुझसे सवाल किया—'क्या तुम आगे के अध्ययन के लिए विचार कर रहे हो?'

'मैं (शिक्षक) प्रशिक्षण कॉलेज जाने का इच्छुक हूँ, मेरा सरल जवाब था।

वे एक पल के लिए चुप हो गए और उनका चेहरा उदास व स्थिर हो गया। फिर एक आवाज कड़वाहट के साथ गूँजी, उन्होंने कहा—'तुम कुछ और कर लो, सड़क के

किनारे मोची का काम कर लो और जूते गाँठो, लेकिन कृपया अपने आप को इस कीचड़ में मत डालो, जो मास्टरी के इस व्यवसाय में है।'

मैं उनकी इस टिप्पणी पर हक्का-बक्का रह गया, और उन्हें विस्मय से देखता रह गया।

उन्होंने आगे कहा, 'सच क्या है, मैं तुम्हें बताता हूँ, 'अगर तुम्हारी इच्छा दोनों दुनिया—यहाँ, और अगली में अपनी संभावनाओं को खराब करने की है, किसी भी तरह एक शिक्षक बन जाओ।'

मैंने एक शब्द भी नहीं कहा। उस समय मैंने सोचा कि एक कुलीन पेशे के विरुद्ध उनकी कड़वाहट के पीछे शायद कोई दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव रहा है।

समाज से खारिज

समय बीतने के साथ मैं ट्रेनिंग कॉलेज में शामिल हो गया। हालाँकि, मैंने वहाँ जो देखा, उसने मुझे मनवा दिया कि शिक्षण के इस कुलीन पेशे के प्रति व्यक्ति में जो आदर्शवाद या सेवा की भावना का जोश होता था, वह अब नहीं रह गया है। केवल उन्हीं लोगों का झुकाव शिक्षण की ओर हुआ, जो कहीं और समायोजित नहीं हो सके।

प्रशिक्षुओं में से अधिकांश आई.सी.एस. परीक्षा से नायब तहसीलदार-पद के लिए योग्यता परीक्षा तक की विभिन्न परीक्षाओं में दाखिल हो चुके थे, लेकिन जो विफल हो गए, शिक्षक बनने के बारे में सोच लिया। जॉनसन ने राजनीति को बदमाशों का अंतिम आश्रय बताया है। भारत में अध्यापन वास्तविकता में हताशा की अंतिम शरण बन गया है। यह सिर्फ आत्महत्या की ओर एक क़दम है।

आजादी के बाद भी स्थिति में कोई बदलाव नहीं हुआ है। इसमें कोई शक नहीं कि शिक्षा का व्यापक फैलाव हुआ है, लेकिन समाज में शिक्षक की स्थिति, अगर कुछ है, तो नीचे ही गिरी है। अतीत में उन्होंने लोगों की श्रद्धा के रूप में जिन गुणों को अर्जित किया था, वह अब पतन की ओर हैं। इससे भी खराब स्थिति यह है कि उनमें उन गुणों को स्वयं में विकसित करने की इच्छा का अभाव है। कारण यह कि समाज के मूल्यों में बदलाव आ रहा है। आर्थिक रूप से, शिक्षक कम आय वर्ग का है। इसलिए उसके अंदर हीनता की भावना प्रबल है। वह इस भावना के खिलाफ़ लड़ता है और एक सम्मानपूर्ण जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए संघर्ष करता है, वह अपनी आय की पूर्ति के लिए उपाय खोजता है, जिससे उसके भीतर जो थोड़े-बहुत विशिष्ट गुण बचे होते हैं, वे नष्ट होने लगते हैं। परिणाम यह कि उसके पास न तो पैसा रहा और न ही सम्मान।

न तो पैसा और न ही सम्मान

ऐसी स्थिति समाज के लिए गंभीर समस्या उत्पन्न कर रही है। आखिरकार समाज

आदर्शों पर टिका होता है। यह सिर्फ 3 आर-रीडिंग, रीजन, रिसाइट (पाठ, विमर्श, वाचन) नहीं है, जोकि एक शिक्षक अपने छात्र को प्रदान करता है। छात्र अपने शिक्षक से अपने मूल आदर्शों को भी आत्मसात् करता है। अनुशासन, कानून के प्रति आदर और नियम, आदि उसके बुनियादी आदर्शवाद की सिर्फ बाहरी अभिव्यक्ति भर हैं। यदि आप आज छात्र में अनुशासन की भावना भरते हैं, तो आप कल एक अनुशासित समाज होने की उम्मीद कर सकते हैं। और अगर समाज ने मूल्यों की उपेक्षा की, जो अनुशासन को बढ़ावा देते हैं, तो यह उम्मीद करना व्यर्थ है कि छात्र में इस सद्गुण का विकास होगा।

अगर हम यह इच्छा रखते हैं कि छात्र को शिक्षक का सम्मान करना चाहिए, तो पहले शिक्षक को स्वयं का सम्मान करना चाहिए। स्कूल कोई जलरोधी डिब्बा नहीं है जिस पर शेष समाज के प्रभावों का असर नहीं होगा। सामान्यतः यदि समाज शिक्षक को निम्न और साधारण मानेगा, तो छात्र भी उसे बहुत ज्यादा सम्मान नहीं दे सकते। और यदि छात्र उसका सम्मान नहीं करता, वह उससे सीख नहीं पाएगा। मुझे लगता है कि इन दिनों शिक्षा के स्तर में गिरावट के लिए यह बुनियादी कारण है। इस गिरावट पर अंकुश लगाने के लिए हमें पाठ्य-पुस्तकों और पाठ्यक्रम में फेरबदल के संबंध में सोचते रहना है। शिक्षा प्रणाली के साथ इस तरह की सतही सोच से कोई लाभ नहीं होने जा रहा है। हमें समस्या तक जाना होगा।

शिक्षक की आर्थिक स्थिति में सुधार और उसका सामाजिक दर्जा बहाल करना आज की मुख्य आवश्यकता है। उसे अभाव और चिंता की जकड़न से मुक्त किया जाना चाहिए। अगर वित्त की कोई कमी है, मैं योजनाओं के प्रतिबंध में बदलाव की सिफारिश करूँगा। लेकिन समाज सिर्फ इन आधे भूखे शिक्षकों के साथ आगे नहीं जा सकता।

कुलपतियों को शपथ लेनी चाहिए

शिक्षक का सामाजिक स्तर बढ़ाने के लिए बहुआयामी प्रयास की आवश्यकता है। इस 'शिक्षक दिवस' के लिए पहली बार सुझाव केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा गठित समिति में छात्र अनुशासनहीनता के सवाल पर आया था। इसका सुझाव था कि यह दिन हमारी प्राचीन परंपरा के विधि-विधान में व्यास पूर्णिमा के रूप में मनाया जा रहा था। उस सुझाव में काफ़ी वजन था। शिक्षक के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए परंपरा के साथ यह कहीं ज्यादा सहजता से जुड़ जाएगा।

आवश्यकता इस बात की भी है कि शिक्षक का राजनीतिक स्तर ऊँचा किया जाए, लेकिन इसे कट्टरवादी राजनीति से दूर रखा जाए। इस प्रकार विधायी मायने में शिक्षक का प्रतिनिधित्व बढ़ाया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षकों को भी इन चुनावों के लिए मतदान का अधिकार दिया जाना चाहिए। शिक्षक को ग्राम और जिला परिषदों में भी

जगह दी जानी चाहिए।

आज सभी विश्वविद्यालयों के कुलपति पद राज्यपालों या राष्ट्रपति के लिए आरक्षित हैं। इस स्थिति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। यदि हम इन उच्चपदस्थ सरकारी महानुभावों द्वारा खुद से ऐसी प्रथाएँ विकसित करा सकें जो कि शिक्षण संस्थानों के प्रमुखों को सम्मान दे सके, तो मुझे लगता है कि उसका समाज पर बहुत ही स्वस्थ प्रभाव पड़ेगा। अतएव, उदाहरण के लिए शपथ ग्रहण समारोहों में परिवर्तन किया जा सकता है। आज शपथ मुख्य न्यायाधीशों द्वारा दिलाई जाती है। कुलपतियों द्वारा प्रशासन को शपथ दिलाना शायद इस दृष्टिकोण से बहुत उपयोगी हो सकता है। सरकारी समारोह में भी उन्हें उच्च जगह दी जानी चाहिए।

शिक्षकों के लिए भी यह जरूरी है कि उन्हें स्वयं को समाज के बाकी हिस्सों से अलग-थलग नहीं करना चाहिए। आजकल यह देखा गया है कि शिक्षक समाज की विभिन्न गतिविधियों से स्वयं को दूर रखने में प्रवृत्त है। यह ठीक बात नहीं है। अपने-अपने क्षेत्रों में यदि वे लोगों की गतिविधियों में स्वस्थ भाव से रुचि लेते हैं और उन्हें उचित नेतृत्व देते हैं तो विद्यालयों और कॉलेजों में उनके महत्त्व में भी वृद्धि होगी। अन्य क्षेत्रों में शिक्षकों की सेवाओं से उन्हें छात्रों के बीच भी आदर और सम्मान अर्जित होगा। आखिरकार जीवन एक है। यह रेलगाड़ी का डिब्बा नहीं हो सकता।

अगर शिक्षा समाज का आधार है, शिक्षक इस आधार का सबसे महत्वपूर्ण अंश है। आइए, हम सभी इसे मजबूत बनाने के लिए प्रयास करते हैं।

—*ऑर्गनाइज़र, सितंबर 17, 1962*
(अंग्रेज़ी से अनूदित)



संसदीय परंपराओं के निर्माण का उत्तरदायित्व सरकार भी ले

अध्यक्षों का चुनाव निर्विरोध

संपन्न करने की विधि अपनाई जाए

संसद् के पिछले सत्र में समाजवादी दल के तीन सदस्यों को निलंबित किया गया। लोकसभा में नहीं, राज्यसभा में भी यह घटना घटी। राज्यविधान सभाओं में तो इसके पहले भी समय-समय पर समाजवादी दल के सदस्यों को अध्यक्ष की आज्ञा की अवहेलना करने पर सदन के बाहर निकालने और निलंबित करने के अवसर आ चुके हैं, परंतु जहाँ तक मुझे स्मरण है, संसद् में यह पहला ही मौका है, जब किसी सदस्य का नाम निर्देश किया गया हो। संसदीय प्रजातंत्र में ये असाधारण घटनाएँ हैं और निश्चित ही किसी विकृति एवं रोग की सूचक हैं। यदि इन घटनाओं के पात्र कोई निर्दलीय सदस्य होते अथवा वे आकस्मिक होतीं तो उन्हें मानव स्वभाव की कमजोरी कहकर टाला जा सकता था। किंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। समाजवादी दल ने उसे कार्यक्रम के रूप में स्वीकार किया है। फलतः सभी विधानमंडल में उसके सदस्य कोई न कोई अवसर ढूँढ़कर अपने उद्देश्य को पूरा करने का प्रयत्न करते रहते हैं। समाजवादी दल के सभापति श्री राजनारायण सिंह ने उनका समर्थन किया है और बताया है कि वर्तमान काल में संसदीय प्रजातंत्र की सफलता के लिए उनका यह क़दम आवश्यक है।

गंभीरता से विचार करें

समाजवादी दल के अतिरिक्त देश के अन्य लोगों ने इस प्रवृत्ति पर चिन्ता प्रकट की

है। स्वयं राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने इस प्रकार की अनुशासनहीनता पर चिंता का भाव व्यक्त किया है। प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने सुझाया है कि इस बुराई से लड़ने के लिए उसे बिठला देना चाहिए, किंतु विभिन्न दलों के व्यक्तियों से बात करने के बाद पता चलता है कि यह रोग की कोई सही और कारगर चिकित्सा नहीं हो सकती। हमें इस संबंध में गंभीरता से विचार करना होगा।

विचित्र समस्या

श्री राजनारायण सिंह¹ ने कहा है कि आज भारत में प्रजातंत्र के स्थान पर दलीय अधिनायकवाद है और इसलिए उसका विरोध करने के लिए सदस्यों को इस प्रकार के पग उठाने ही पड़ेंगे। परंतु यह सर्वविदित है कि समाजवादी सदस्यों ने अभी तक जो भी हठ प्रदर्शन किया है, वह शासक दल के विरुद्ध नहीं अपितु अध्यक्ष के विरुद्ध है। स्पष्ट है कि जब वे अध्यक्ष के आदेशों की अवहेलना को शासक दल का विरोध मानते हैं तो एक विचित्र समस्या खड़ी हो जाती है, जिसका समाधान सहज नहीं। हमें तो दोनों को अलग करके ही चलना होगा।

नई पद्धति

ये अप्रिय घटनाएँ अधिकांश में 'काम रोको' प्रस्तावों को लेकर हुई हैं। सामान्यतः सदस्य इन प्रस्तावों का उपयोग किसी भी महत्त्व की घटना की ओर संसद् तथा उसके द्वारा देश का ध्यान आकृष्ट करने के लिए करते हैं। किंतु विरोधी दलों द्वारा किए इन प्रस्तावों को शासन अपने लिए निंदाजनक मानता रहा है और इसलिए उनका विरोध करता है। शासन की यह धारणा पूर्णतः सही नहीं, किंतु यह प्रश्न कोई बड़े महत्त्व का नहीं है। समस्या तो तब खड़ी होती है, जबकि अध्यक्ष महोदय अपने स्वविवेक का उपयोग कर इस प्रकार के प्रस्तावों की अनुमति नहीं देते। प्रारंभ में इस प्रक्रिया से भी बहुत कुछ काम चल जाता था, क्योंकि अध्यक्ष महोदय सदन में आकर यह बता देते थे कि अमुक-अमुक सदस्यों ने इन विषयों पर स्थगन प्रस्ताव भेजे हैं, किंतु इन कारणों से उन्हें अस्वीकृत कर दिया गया है। सदस्यों को कभी थोड़ा-बहुत बोलने का भी मौका मिल जाता था। इससे वे समाधान कर लेते थे, क्योंकि देश को पता चल जाता था कि महत्त्वपूर्ण घटनाओं की ओर संसद् के सदस्य जागरूक हैं। हाल ही में इस प्रक्रिया को बदल दिया गया है। अब लोकसभा के अध्यक्ष अपने चेंबर में ही उनके संबंध में निर्णय कर लेते हैं तथा अस्वीकृत हुआ तो उसकी सूचना सदस्य के पास भिजवा देते हैं।

1. राजनारायण सिंह 'लोकबंधु' (1917-1986) उत्तर प्रदेश विधानसभा के 1952-62 तक सदस्य तथा नेता प्रतिपक्ष रहे। सोशलिस्ट पार्टी के 1961 से 64 तक चेयरमैन रहे।

सदस्य को न तो संसद् में उस प्रश्न को उठाने का मौक़ा मिलता है और न संसद् को ही पता चलता है कि इस संबंध में कुछ हुआ है। परिणाम यह होता है कि अनेक प्रश्न टल जाते हैं। देश की जनता शायद यही सोचती होगी कि उनके प्रतिनिधि उन विषयों पर मौन हैं।

रस्साकशी और निलंबन कांड

कुछ सदस्यों ने इस पद्धति को नाकामयाब करने के लिए यह रास्ता ढूँढ़ निकाला कि पूर्व-सूचना होने पर भी वे अपने स्थगन प्रस्ताव के संबंध में अध्यक्ष महोदय से कुछ-न-कुछ निवेदन करने तथा उसे स्वीकृत करने के लिए विवाद करने लगे। अध्यक्ष की ओर से डाँट पड़ने के बाद भी समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों को यह मालूम होने लगा कि उन सदस्यों ने इन विषय पर प्रस्ताव दिया है और उसका किसी-न-किसी रूप में प्रकाशन होने लगा। सदस्यों और अध्यक्ष की यह रस्साकशी ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी, त्यों-त्यों उसमें से निलंबन के अप्रिय कांड पैदा होने लगे।

राष्ट्रपति आगे बढ़ें

स्पष्ट है कि इन घटनाओं के मूल में सदस्यों की यह भावना कार्य करती है कि उनके मुँह पर किसी-न-किसी प्रकार ताला लगाया जा रहा है। जहाँ एक ओर यह मानना पड़ेगा कि संसद् में किसी भी प्रकार से सदस्यों के बोलने की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाना अवांछनीय है, वहाँ दूसरी ओर व्यावहारिक दृष्टि से संसदीय प्रक्रिया की कुछ व्यवस्थाएँ भी स्वीकार करनी पड़ेंगी। संसदीय प्रजातंत्र का वर्णन वाद-विवाद द्वारा शासन, ऐसा किया गया है। निश्चित ही उसकी सफलता विवाद के लिए अधिकतम अवसर प्रदान करने में ही है। विशेषकर आज जबकि शासक दल का बहुत भारी बहुमत है, यदि अन्य सदस्यों को अपनी भावनाओं के प्रकटीकरण का अवसर न मिले तो आश्चर्य नहीं कि उनमें एक विफलता का भाव घर कर जाए। यही भाव इन अप्रिय घटनाओं के रूप में प्रकट होता है। उसकी रोकथाम उनको 'अलग' करने अथवा बहिष्कार की नीति से नहीं हो सकती है। हमें तो इस बात का प्रयत्न करना होगा कि संसद् एक भावात्मक रूप ग्रहण कर सके। सदस्यों को यह लगना चाहिए कि संसद् में उन्हें न केवल सभी महत्त्व के प्रश्नों को उठाने की छूट है वरन् उनके शब्दों की क़ीमत भी की जाती है। यदि यह भावना बढ़ी तो उनकी आलोचना भी अधिकाधिक संयमित और रचनात्मक होती जाएगी। इस दृष्टि से यह उपयोगी होगा कि राष्ट्रपति सभी दलों के प्रतिनिधियों और अध्यक्षों की एक अनौपचारिक बैठक का आयोजन कर इस तनाव को कम करें।

समाचार-पत्रों का दायित्व

इस दिशा में समाचार-पत्र भी बहुत कुछ कर सकते हैं। आजकल यह एक सामान्य प्रवृत्ति हो गई है कि समाचार-पत्र केवल उन्हीं घटनाओं का अधिक प्रकाशन करते हैं, जो असाधारण एवं सनसनीपूर्ण हों। यदि कोई सदस्य अपने भाषण में किसी विषय का उल्लेख करेगा तो यह आवश्यक नहीं कि वह पत्रों में स्थान पा जाए। किंतु यदि उस प्रश्न पर वह सदन त्याग देगा, अथवा अध्यक्ष से झगड़ जाएगा तो निश्चित ही अलग से और कभी-कभी तो कई कॉलमों के शीर्षक के स्थान पर उसका वर्णन छपेगा, जिसे पढ़कर चारों ओर जनता में यह धारणा हो जाएगी कि अमुक सदस्य बहुत सक्रिय और हिम्मत वाला है। जो समाचार-पत्र इस प्रकार के कांडों और प्रवृत्ति की कड़ी टीका करते हैं, वे अपने समाचारों के द्वारा उसे बढ़ावा देते हैं।

दलगत राजनीति और अध्यक्ष

इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए अध्यक्ष के निर्वाचन और उसकी परंपरा के संबंध में भी कुछ विचार करना होगा। ब्रिटेन में हाउस ऑफ कॉमन्स का अध्यक्ष निर्दलीय होता है। किंतु भारत में सभी अध्यक्ष शासक दल के प्रतिनिधि ही नहीं, उसके सदस्य भी हैं। जब 1935 के विधान के अंतर्गत भारत में विधानसभाएँ बनी थीं, उस समय टंडनजी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हाउस ऑफ कॉमन्स की परंपरा की अवहेलना करके कांग्रेस की सदस्यता चालू रखी। किंतु उन्होंने यह भी घोषणा कर रखी थी कि जिस दिन विरोधी दल के दो सदस्य उनकी निष्पक्षता को चुनौती देंगे, उसी दिन वे पद त्याग कर देंगे। उनका व्यक्तित्व महान् था और वे इस असिधारा व्रत को निभा गए। किंतु सबसे उसकी आशा नहीं की जा सकती। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यक्षों को शासक दल के प्रभाव से मुक्त किया जाए। इस हेतु भारतीय जनसंघ ने इस परंपरा का श्रीगणेश करने का सुझाव रखा था कि अध्यक्ष का चुनाव निर्विरोध हो। किंतु अभी तक यह हो नहीं पाया है। अध्यक्षगण दलीय राजनीति से जितने दूर एवं स्वतंत्र होंगे, उतना ही उनके आदेशों और शब्दों में बल बढ़ता जाएगा। कांग्रेस ने इस पद की महत्ता को बहुत ही घटा दिया है। वह दलगत ही नहीं, गुटबंदी की राजनीति का शिकार बन गया है। उसे इस दलदल से निकाले बिना संसदीय प्रजातंत्र की स्वस्थ परंपराएँ नहीं चल पाएँगी।

— पाञ्चजन्य, सितंबर 20, 1962



निर्विरोध निर्वाचन का एक अन्य पहलू भी है

यह बताना तो कठिन है कि उद्घाटन प्रथा का उद्घाटन कब, कहाँ और किसने किया, किंतु किसी प्रतिवाद के भय के बिना यह कहा जा सकता है कि इसका श्रीगणेश वर्तमान मंत्रियों और राजनीतिक नेताओं ने, जो उद्घाटन के फंदे में इतने फँसे हैं कि उन्हें शासन और समाज के अन्य कार्यों की ओर ध्यान देने की फुरसत ही नहीं मिलती, नहीं किया है। वास्तव में तो संपूर्ण पद्धति के मूल में जो भावना काम करती है, वह आज के 'सेक्यूलर' और तर्क प्रधान भौतिकवादी मतवाद के साथ असंगत है। उद्घाटन की भावना का संबंध मनुष्य को धर्मपरायणता एवं अदृश्य के प्रति विश्वास और श्रद्धा से है। किसी भी नए कार्य को प्रारंभ करने के पूर्व अनागत अनिष्ट को टालने तथा इष्ट का आह्वान करने की कामना से ही उद्घाटन समारोहों का आयोजन किया जाता रहा है। फलतः इन आयोजनों के साथ कर्मकांड आवश्यक हो गया। आज भी जब कहीं उद्घाटन समारोह करना होता है तो कुछ-न-कुछ कर्मकांड अनिवार्य हो जाता है। कहीं अपनी प्राचीन पद्धति के अनुसार यज्ञ और पूजा होती है तो कहीं नारियल फोड़ा जाता है। कुछ लोग पश्चिम की नकल करके फीता काटते हैं या उनकी अन्य किसी पद्धति का अभिनय करते हैं। जो लोग नारियल फोड़ने पर आपत्ति करते हैं, उन्हें फीता काटने में कुछ भी अटपटा नहीं लगता। कार्यक्रम जो भी हो, व्यक्ति इन कर्मकांडों के द्वारा आधिदैविक शक्तियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है।

उद्घाटन के पीछे कृतज्ञता अथवा समर्पण भाव तो आज दृष्टिगोचर नहीं होता, किंतु फिर भी प्रत्येक कार्य का उद्घाटन अनिवार्य अंग बना हुआ है। पिछली बार जब विंध्यप्रदेश का दौरा कर रहा तो एक नदी पर पुल होते हुए भी हमें नीचे की ऊबड़-खाबड़ रपट से उसे पार करना पड़ा। पहुँचने पर मालूम हुआ कि अभी पुल का उद्घाटन

नहीं हुआ है। इसी प्रकार एक स्थान पर बाँध बन गया था और उसमें पानी भी था, किंतु 'उद्घाटन' के अभाव में किसान उस पानी का सिंचाई के लिए उपयोग नहीं कर पाए, यद्यपि उस वर्ष सूखे के कारण उनकी फ़सल बरबाद हो गई। उद्घाटन के काम में बराबर लगे रहने के बाद भी मंत्रिगण अनेक चीज़ों का उद्घाटन करने के लिए समय नहीं निकाल पाते। पहले यह समस्या नहीं थी, क्योंकि उस समय उद्घाटन के लिए स्थानीय पुरोहित एवं अधिकारी से काम चल जाता था। उस समारोह में महत्त्व उद्घाटनकर्ता का नहीं अपितु उद्घाटन क्रिया का था। अब नए पुरोहित आ गए हैं। पुराने पीछे पड़ गए हैं। नई चीज़ों की माँग और फैशन के कारण जैसे हम सभी क्षेत्रों में अभावग्रस्त हैं, वही स्थिति 'उद्घाटन' के क्षेत्र में भी है।

अभाव की इस अवस्था में 'निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते' उक्ति के अनुसार मुझे इस सप्ताह आगरा छात्र संघ के उद्घाटन के निमित्त जाना पड़ा। छात्रसंघ के अध्यक्ष महोदय जब मेरे पास आए तो मैंने उन्हें सलाह दी थी कि वे मेरे स्थान पर किसी शिक्षाशास्त्री को ले जाएँ तो अधिक योग्य होगा। किंतु आजकल राजनीति का अत्यधिक प्रभाव होने के कारण अथवा शिक्षाविदों के बीच सदैव रहने के कारण कुछ परिवर्तन की इच्छा से, उन्होंने मुझे ही चलने का आग्रह किया। अपने जीवन में उद्घाटन समारोहों का उद्घाटन कई वर्ष पहले हो जाने के कारण मेरी विशेष रुचि उस ओर नहीं थी। फिर उत्तर प्रदेश जनसंघ इस समय नए टैक्सों के विरुद्ध आंदोलन की तैयारी कर रहा है। 'अंधेर नगरी के अबूझ राजा' ने जिस प्रकार दीवाल के गिरने के लिए संन्यासी को दोषी ठहरा दिया, वैसे ही आज का मत्सर-प्रपीड़ित, शंकाकुल एवं पदासक्त, अतः भयविकंपित शासन कहीं दूरान्वय से भी उस कॉलेज के साथ मेरा संबंध जोड़कर अन्याय न कर बैठे, इस संभावना को भी मैं टालना चाहता था। फिर भी मेरी कुछ नहीं चली और मैं उद्घाटन के निमित्त गया। लगभग एक मास पूर्व छात्र-संघ के निर्वाचन हो चुके थे, किंतु उद्घाटन के अभाव में विचारे पदाधिकारी काम नहीं कर सकते थे। यदि यह अवसर टल जाता तो फिर दशहरे की छुट्टियाँ थीं, और इस प्रकार आधा वर्ष तो ऐसे ही चला जाता।

आगरा कॉलेज देश के बहुत पुराने कॉलेजों में है। जहाँ वह स्थित है, वहाँ किसी समय पेशवाओं की कचहरी थी। बाद में श्री गंगाधर पंडित ने अपनी संपूर्ण जागीर उसके साथ लगाकर लगभग 1823 में इस शिक्षा केंद्र की स्थापना की। यदि आगरा कॉलेज और सेंट जॉन्स कॉलेज के तत्कालीन अंग्रेज़ प्रिंसिपलों में खींचतान नहीं होती तो इलाहाबाद के स्थान पर आगरा ही उत्तर प्रदेश में पहला विश्वविद्यालय होता। आज भी आगरा कॉलेज प्रदेश के प्रमुख कॉलेजों में है तथा उसके प्रधानाचार्य के मत में किसी भी विश्वविद्यालय से होड़ ले सकता है। किंतु शासन ने विश्वविद्यालय और कॉलेजों के

प्राचार्यों एवं प्राध्यापकों के वेतनक्रम में जो भेद रखा है, उसके कारण इस कॉलेज को कठिनाई हो रही है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यदि कुछ ध्यान दे तो ये शिक्षा केंद्र अपना स्तर बनाए रख सकेंगे।

मैं यद्यपि आगरा कॉलेज का छात्र नहीं रहा, फिर भी मुझे वहाँ पढ़ने का अवसर मिला है। बहुत वर्षों तक अंग्रेजी और इतिहास की स्नातकोत्तर कक्षाएँ सेंट जॉन्स कॉलेज और आगरा कॉलेज में मिलकर सप्ताह में तीन-तीन दिन होती थीं। अतः एक कॉलेज में नाम लिखाने के बाद भी उस समय छात्र दोनों कॉलेजों के प्राचार्यों से शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। आज जबकि छात्रों में अनुशासनहीनता की बहुत शिकायत की जाती है, मैंने सोचा था कि बीस वर्ष पहले ही इस दृष्टि से काफ़ी ख्याति प्राप्त आगरा कॉलेज अब तो आसमान को चढ़ गया होगा। परंतु मुझे अपनी भूल सुधारनी पड़ी। मैंने छात्रों को काफ़ी अनुशासित एवं शिष्टाचारपूर्ण पाया। मुझे लगता है कि हम नई पीढ़ी को कोसना बंद कर दें।

आगरा कॉलेज छात्र-संघ के इस वर्ष के चुनावों की यह विशेषता रही कि सभी प्रमुख पदों का निर्वाचन निर्विरोध हुआ। प्रत्याशियों ने आपस में बैठकर पर्चियाँ डाल लीं, और इस प्रकार मतदान की झंझट टाल दी। इस संबंध में उन्हें सब ओर से बधाई मिली। मैं भी इस नाते तो उन्हें बधाई दे सकता हूँ कि उन्होंने जिस पद के लिए वे प्रत्याशी थे, उसके प्रति निरासक्त भाव का परिचय दिया। चुनाव की अनेक बुराइयाँ आसक्ति के कारण ही पैदा होती हैं। किंतु प्रश्न का दूसरा पहलू भी है। प्रजातंत्र में निर्वाचन किसी भी पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति के चुनाव की पद्धति मात्र नहीं अपितु लोक-शिक्षा और लोक संस्कार का भी साधन है। आज निर्वाचनों में होने वाली बुराइयों को देखकर अनेक लोग यह चाहने लगे हैं कि इस पद्धति को समाप्त कर दिया जाए। किंतु वह उपाय ऐसा ही है, जैसे सरदर्द में सर को फोड़ देने का सुझाव देना। चुनावों की बुराइयों को समाप्त करने का सबसे कारगर साधन है जागरूक मतदाता। मतदाता बिना निर्वाचन कराए जायत् नहीं हो सकते। अतः निर्वाचन ही निर्वाचन के दोषों को दूर करेगा। बुराई यदि आज प्रकट हो रही है तो उससे घबराएँ नहीं, उसका मुकाबला करें तथा सामूहिक रूप से उसका निराकरण करने का प्रयत्न करें। निर्वाचन सहज ही इस सामूहिक प्रयत्न का अवसर प्रदान करते हैं।

आज निर्वाचन की पद्धति में सर खपाकर जो उसे दोषरहित बनाने के पीछे पड़े हैं, उनको मेरी सलाह है कि वे अपनी शक्ति मतदाताओं को संगठित और शिक्षित करने में लगाएँ। इंग्लैंड में पिछली शताब्दी में वहाँ की राजनीतिक पार्टियों ने नारा लगाया था, अपने मालिकों को शिक्षित करो। उनका तात्पर्य अक्षर ज्ञान से था। हमें राजनीतिक शिक्षा का ध्येय लेकर इस काम को करना होगा। जैसे-जैसे विधानसभाओं की जड़ें

समाज में गहरी और व्यापक बैठती जाएँगी, वैसे-वैसे चुनावों में दिखने वाली सभी प्रकार की बुराइयाँ समाप्त हो जाएँगी। हाँ, जो लोग ऐन मौके पर चुनाव के मैदान में कूदकर तथा अपनी-अपनी योग्यता का अथवा तथ्य अनुमान एवं अहंकार लेकर चलते हैं, वे सदैव ही अपनी असफलता के लिए कुछ-न-कुछ कारण ढूँढ़ते रहेंगे। 'नाच न आवे आँगन टेढ़ा' की कहावत चरितार्थ करनेवालों की चिल्ल-पुकार पर आँगन को सीधा करने के चक्कर में न फँसें। जो मतदाता आज बुराई का शिकार होता है, वही समर्थ होने पर उसका निराकरण कर सकेगा।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 1, 1962



आंदोलन पर्याप्त नहीं है : कच्छ और डांग क्षेत्रों की उपेक्षा

आज के दौर में जब जन-आंदोलन रोज का सिलसिला बन गया है, एक संगठन के रचनात्मक पहलू की उपेक्षा किए जाने की संभावना बढ़ जाती है। जिन समस्याओं से लोग जूझ रहे हैं, वे अनगिनत और विकट हैं, इन्हें जनता के बीच काम करनेवाला एक संवेदनशील और सहानुभूतिशील कार्यकर्ता दूर नहीं कर सकता है, परंतु उन्हें उठा सकता है। हालाँकि, यह अहसास होना चाहिए कि जो लोग समाज के विधिपूर्वक व्यवस्थित विकास के पक्ष में खड़े हैं, इस वर्ग में नित्य गिरावट आ रही है और हम जो लोकतंत्र में विश्वास रखते हैं और अपने आदर्शों से जुड़े रहे हैं, सिर्फ जनता में असंतोष पैदा करके या उनके असंतोष का शोषण करके नहीं रह सकते। उन्हें यह अवश्य ही सोचना चाहिए कि जनता की शिकायतों के निवारण के लिए आंदोलन के साथ-साथ यह उचित रूपों में आगे बढ़ता रहे, इससे शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक प्रकृति की संस्थाएँ भी सशक्त होती हैं। शेक्सपियर के खलनायक के साथ राग मिलाते हुए कम्युनिस्ट यह कह सकते हैं : 'घटनाओं को अपने हिसाब से होने दो' लेकिन हम जो अराजकता पैदा करने की इच्छा नहीं रखते, ऐसा नहीं कर सकते। हम आसानी से खतरनाक स्थिति पर काबू नहीं पा सकते।

इसलिए यह आवश्यक है कि संगठनात्मक ढाँचे के निर्माण पर उचित ध्यान दिया जाए और जहाँ तक संभव हो, इसकी सुव्यवस्थित इकाइयों का प्रसार किया जाए। बढ़ते करों और क्रीमतों के खिलाफ आंदोलन, सरकार की भाषा-नीति, चीनी आक्रमण से निबटने में इसकी भीरुता, पाकिस्तानी खतरा और विध्वंस आदि के विरुद्ध आंदोलन की तैयारी के लिए जनमत को लामबंद किया जाए। इनका समाख्यान संबंधित क्षेत्रों में

जनसंघ की शाखाओं की स्थापना के साथ किया जाना है। संगठन के बिना कार्यकर्ता आत्मघाती होगा, और कार्यकर्ता के बिना संगठन निरर्थक होगा। प्रांतीय और क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं के शिविर अब तक फगवाड़ा, अजमेर, कानपुर, कलकत्ता और जूनागढ़ में हुए हैं, जिसमें इन चार उद्देश्यों पर जोर दिया गया। उन्होंने कितना आत्मसात् किया, यही उनकी सफलता की कसौटी होगी।

जूनागढ़ में गुजरात प्रदेश कार्यकर्ता शिविर से पता चला है कि सौराष्ट्र, गुजरात और कच्छ की तीन इकाइयों को अभी भी आधिकारिक स्तर पर एकीकृत किए जाने की जरूरत है। जहाँ तक जनसंघ का संबंध है, यह अपनी स्थापना के बाद से एकीकृत आधार पर काम कर रहा है। 1951 से ही गुजरात प्रदेश जनसंघ ने अपना अधिकार क्षेत्र बढ़ा दिया था, जिसे वर्तमान में गुजरात राज्य के रूप में जाना जाता है। लेकिन सरकार उसी नीति का पालन करती दिख रही है, जो तीन इकाइयों को अलग मानती है। वहाँ से एक इकाई या अन्य द्वारा भेदभाव की लगातार शिकायतें आ रही हैं। गुजरात और सौराष्ट्र के संबंध में यह भावना कांग्रेस के भीतर समूहों और प्रतिद्वंद्विता का कारण बन रही है, जबकि कच्छ में यह विपक्ष बनाम कांग्रेस का एक मामला है। कांग्रेस कच्छ में कभी भी बहुत शक्तिशाली नहीं रही थी। स्थानीय निकायों से लेकर संसद तक के सभी चुनावों में कांग्रेस हमेशा बुरी तरह से हारी है। नतीजा यह है कि डांग के साथ-साथ कच्छ संग एक अविकसित क्षेत्र के रूप में व्यवहार किया जा रहा है। इन दो क्षेत्रों को छोड़कर पूरे राज्य में पंचायतों का गठन किया जा रहा है।

क्या यह विकेंद्रीकरण की योजनाओं को प्रस्तुत करने में कांग्रेस के इरादों की कलाई नहीं खोलता? यह केवल उन्हीं क्षेत्रों में सत्ता का विकेंद्रीकरण करना चाहती है, जहाँ उसे जीत का यकीन है। कच्छ के लोग इस भेदभाव को लेकर दुःखी हैं। अपनी पार्टी को बढ़ाने के लिए कांग्रेसजन कितनी दूर जा सकते हैं, यह इस जघन्य भूमिका से आँका जा सकता है कि वे मांडवी नगरपालिका के विभाजन का खेल खेल रहे हैं। इस तथ्य के बावजूद कि पाकिस्तानी एजेंटों ने स्थानीय आबादी को उकसाकर एक खास इलाके को राष्ट्रविरोधी गतिविधियों का केंद्र बना दिया है, कांग्रेसी उस आबादी के लिए एक अलग नगरपालिका की माँग का समर्थन इस निरर्थक उम्मीद में कर रहे हैं कि उस पर उनका नियंत्रण हो जाएगा, जिसके लिए कम-से-कम, वे जानते हैं कि पूरे नगर में एकजुट विपक्ष के विरुद्ध उनके पास सफलता का कोई अवसर नहीं है।

भूमि क़ानून भी भेदभावपूर्ण है। लंबे समय से लोग इसके खिलाफ़ आंदोलन कर रहे हैं। किसान और छोटे भूस्वामी ऐसा कुछ नहीं चाहते, जो गुजरात और सौराष्ट्र में किसानों को नहीं दिया गया है। कोई भी यह समझने में विफल है कि उनको समान न्याय के दायरे में क्यों नहीं लाया जाना चाहिए।

देश के सभी अर्थशास्त्रियों की तरफ से वर्तमान योजनाओं के लिए उनके विरोध की सबसे पहली आवाज बनने का श्रेय श्री बी.आर. शेनॉय को जाता है। दूसरी योजना के मसौदे पर अर्थशास्त्रियों के पैनल की रिपोर्ट पर असहमति नोट में उन्होंने जो कहा, सच हो गया है, और अब अधिक-से-अधिक अर्थशास्त्रियों और आम-नागरिकों द्वारा स्वीकार किया जा रहा है। योजना आयोग का अब मानना है कि सरकार की नीतियों की आलोचना करनेवाले अर्थशास्त्रियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। समर्थन के लिए कितने लोग उनके साथ हैं, उन्हें शायद यह पता लगाने में मुश्किल हो रही है।

प्रो. शेनॉय ने योजना के लिए सरकार के गुमराह करनेवाले और अलाभकर दृष्टिकोण के बारे में लोगों को शिक्षित करने के अपने प्रयासों को छोड़ा नहीं है। हालाँकि, उन्हें लगता है कि वर्तमान योजनाओं का निर्माण आर्थिक उद्देश्यों की सिद्धि के बजाय राजनीतिक उद्देश्यों के लिए ज्यादा किया गया है, और देश की आर्थिक स्थितियों से उनको समर्थन मिलता नहीं दिखता, लेकिन राजनीतिक उद्देश्यों के अनुकूल कृत्रिम स्थितियाँ तैयार कर दी गई हैं, इन योजनाओं के बुरे प्रभाव से निबटने और उन्हें मूल रूप से बदलने के लिए, प्रभावी तरीका अर्थशास्त्रियों के बजाय राजनीतिक दलों के पास ही है। उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उनकी इच्छा है कि सही सोच और आजादी-पसंद सभी राजनीतिक ताकतों का एक संयुक्त मोर्चा बने, ताकि वर्तमान सरकार और उनके वामपंथी सहयोगियों की कठोरता से नियंत्रित और केंद्रित आर्थिक नीतियों का सफलतापूर्वक विरोध किया जा सके।

—ऑर्गनाइज़र, अक्टूबर 1, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



घोर अर्थवादी दृष्टिकोण से ही विकृतियाँ पनप रही हैं

अपने राष्ट्र-जीवन की प्रकृति, विकृति, और संस्कृति पर विचार करने से पूर्व इन तीनों शब्दों के अर्थ समझना आवश्यक है। हम पहले प्रकृति का विचार करें। प्रकृति वह गुण है, जिसको लेकर कोई जीवमान वस्तु पैदा होती है। निर्जीव वस्तुओं की भी प्रकृति होती है। पर उसका विचार करना यहाँ अभीष्ट नहीं, हम लोग पूर्व जन्म में विश्वास रखते हैं। इस जन्म में हमें जो प्रकृति प्राप्त होती है, वह हमारे पूर्व जन्म के संचित कर्मों का परिणाम है। यह हमारी मूल प्रकृति होती है। इसमें परिवर्तन नहीं होता। बाहरी वातावरण तथा समाज की परिस्थितियाँ प्रकृति को प्रभावित अवश्य करती हैं, पर आमूल परिवर्तन नहीं कर सकतीं।

विकृति का मूल कहाँ?

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्वतंत्र प्रकृति होती है। वह अपनी प्रकृति के अनुरूप विकास करके ही जीवन में उन्नति कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति में साहित्यिक प्रतिभा है तो वह एक सफल कवि या साहित्यकार ही हो सकता है, इंजीनियर या वैज्ञानिक नहीं। इसी प्रकार शिल्प अथवा विज्ञान में अभिरुचि रखनेवाला सफल साहित्यकार नहीं बनता। इसीलिए कहा भी जाता है कि कवि जन्मजात होते हैं, बनाए नहीं जाते। यदि कोई व्यक्ति अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के विपरीत दिशा की ओर आगे बढ़ने की चेष्टा करता है, तो इससे विकृति का जन्म होता है।

भारत की आध्यात्मिक प्रवृत्ति

जैसे प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न होती है, वैसे ही प्रत्येक राष्ट्र की प्रकृति भी भिन्न होती है। भारत की भी अपनी एक प्रकृति है। हमारे इतिहास का अध्ययन करने से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि हमारे यहाँ सम्राटों या लक्ष्मी पुत्रों की तुलना में ऋषि-महर्षियों को अधिक महत्त्व दिया गया। बड़े-बड़े राजा भी इन महर्षियों के सम्मुख नतमस्तक होते थे। हमारे राष्ट्र की भूमि प्रकृति अध्यात्म प्रधान रही है। हम भौतिक समृद्धि के आकर्षक नारे की ओट में इसे बदल नहीं सकते। यदि हमने अपनी मूल प्रकृति की अवहेलना कर आगे बढ़ने की चेष्टा की तो हमारे राष्ट्र-जीवन में अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न होंगी। हमने भौतिकता का विचार नहीं किया, ऐसी बात नहीं है। हमारे यहाँ अतीत काल में अनंत भौतिक समृद्धि थी। इसी समृद्धि से आकृष्ट होकर विदेशी आक्रमणकारी यहाँ आए। उन्होंने मनमाने ढंग से उसे लूटा। हमने भौतिकता को दुर्लक्ष्य नहीं किया, पर हमारी वृत्तियाँ, धर्म, आध्यात्मिकता या देशचिंतन में ही अधिक रमीं। दुर्भाग्य से आज हमारा राष्ट्र-जीवन अपनी मूल प्रकृति से हटता जा रहा है। हम एकांगी भौतिक प्रगति की दौड़ में अग्रसरत्व प्राप्त करने के लिए व्यग्र दिखाई पड़ते हैं। परिणामस्वरूप संकीर्ण प्रादेशिकता, जातीयता, भाषावाद आदि अनेक रूपों में हमारे राष्ट्र-जीवन में विकृतियाँ आ रही हैं। हमारे राष्ट्र का इतिहास ऋषि-मुनियों की साधना का, तपश्चर्या का एवं त्यागमय जीवन का इतिहास है। विश्व-विजय की कामना लेकर आने वाले सिकंदर की पराजय का इतिवृत्त हमारे पुराणों में कहीं नहीं मिलता।

राष्ट्र के प्रति अविचल श्रद्धा

अपने राष्ट्र जीवन का विचार करने से पूर्व राष्ट्र शब्द पर कुछ विचार करना समीचीन होगा। राष्ट्र शब्द की शास्त्रीय व्याख्या में हम न जाएँ तो भी इतना तो मानना ही होगा कि राष्ट्र बनने के लिए एक भूमि विशेष में रहनेवाले लोगों के हृदय में उसके प्रति अविचल श्रद्धा का भाव होना आवश्यक है। राष्ट्र केवल मात्र नदियों, पहाड़ों, मैदानों या कंकड़ों के ढेर से नहीं बनाता। यह केवल भौतिक इकाई नहीं। इसके लिए देश में रहनेवाले लोगों के हृदयों में उसके प्रति असीम श्रद्धा की अनुभूति होना प्रथम आवश्यकता है। इसी श्रद्धा की भावना के कारण हम अपने देश को मातृभूमि कहते हैं।

श्रद्धा का आधार क्या?

मातृभूमि के प्रति श्रद्धा का कुछ आधार होता है। अनेक वर्षों तक एक देश में रहने के कारण एक साहचर्य एवं आत्मीयता के भाव का जन्म होता है। धीरे-धीरे राष्ट्र का एक इतिहास बनता है। कुछ बातें राष्ट्रीय गौरव की और कुछ लज्जा का कारण बनती

हैं। गौरव की बातों का स्मरण कर हम गौरवान्वित होते हैं और लज्जा की बातों को याद कर लज्जित होते हैं। मोहम्मद गोरी या मोहम्मद गजनवी ने भारत पर आक्रमण किया, इस घटना पर हम विचार करते हैं, तो हमारे मन में स्वभावतः एक आक्रोश उत्पन्न होता है। हमारी आत्मीयता पृथ्वीराज तथा इस देश के अन्य शासकों के प्रति होती है। यदि किसी की आत्मीयता अपने देश-बांधवों के प्रति न होकर परकीय आक्रमणकारियों के प्रति हो तो यह मानना होगा कि उस व्यक्ति में राष्ट्रीयता का भाव नहीं है। जब हम महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी या गुरु गोविंद सिंह का स्मरण करते हैं तो हमारा मन उनके प्रति आदर और श्रद्धा से झुक जाता है। इसके विपरीत जब हम औरंगजेब, अलाउद्दीन, क्लाइव या डलहौजी का नाम याद करते हैं, तो इनके प्रति एक विदेशी आक्रांता के प्रति जो भाव उत्पन्न होना चाहिए, वही भाव उत्पन्न होता है। इस प्रकार जो लोग एक प्रदेश विशेष में रहते हों, जिनके हृदयों में मातृभूमि के प्रति असंदिग्ध श्रद्धा का भाव हो, जिनके जीवनादर्शों में साम्य हो, जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टि हो, शत्रु-मित्र समान हों, ऐतिहासिक महापुरुष एक हों, राष्ट्र का निर्माण होता है।

मूलधारा से पृथक् रहने से विकृति उत्पन्न हुई

हमारे राष्ट्रजीवन का प्रवाह हजारों वर्षों से चल रहा है। इसमें अनेक प्रकार की विविधता की धाराएँ आकर मिली हैं। जैसे गंगा में अनेक छोटे-मोटे नाले आकर मिलते हैं, पर वे मिलने के बाद गंगा के अखंड प्रवाह में आत्मसात् हो जाते हैं, वैसे ही हमारे राष्ट्र-जीवन प्रवाह में भी शक-हूण आदि अनेक जातियाँ आकर मिली हैं और एकरस हो चुकी हैं। यदि कोई जाति इस मूल जीवन प्रवाह से पृथक् रहने की चेष्टा करती है तो उससे विकृति का जन्म होगा।

विविधता में एकता

हमारा राष्ट्र-जीवन एक विस्तृत भू-प्रदेश पर परिव्याप्त है। इसमें अनेक विविधताएँ हैं। यह विविधता स्वाभाविक है। इससे हमारे जीवन में सौंदर्य का भाव ही परिपुष्ट होता है। जैसे विविध प्रकार के फूलों के द्वारा भी एक सुंदर माला गुँथी जा सकती है, वैसे ही विविधताओं का एक विशिष्ट माध्यम के द्वारा समन्वय स्थापित किया जा सकता है। जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि ही वह समन्वय का माध्यम है। पर यह समन्वय समान प्रकृति की वस्तुओं में ही हो सकता है। विकृति के साथ समन्वय नहीं हो सकता। विविध प्रकार के अन्नों से मिलकर खिचड़ी बन सकती है। पर उसमें कंकड़ मिलाने से विकृति उत्पन्न हो जाएगी। शरीर में फोड़ा हो जाने पर उसका ऑपरेशन करना पड़ता है, उसके साथ समझौता करने का अर्थ स्वयं को विकारयुक्त या अस्वस्थ बनाना होगा। राष्ट्र के

जीवन में भी यही सिद्धांत लागू होता है। हमारी भाषाएँ भिन्न हो सकती हैं, उपासना पद्धति भिन्न हो सकती है, वेशभूषा में अंतर हो सकता है, खान-पान में भिन्नता हो सकती है, रहन-सहन के तरीके अलग हो सकते हैं, रीति-रिवाज पृथक् हो सकते हैं, पर इन सब प्रकार की विविधताओं में भी समन्वय प्रस्थापित किया जा सकता है। यदि हमारे अंतःकरण में मातृभूमि के प्रति अडिग श्रद्धा है, यदि हमारी हृदय-कुछ समान आदर्शों एवं जीवन मूल्यों से झंकृत होती है तो समन्वय प्रस्थापित करना कोई कठिन बात नहीं। यदि श्रद्धा का यह भाव नहीं है तो ये सब भिन्नताएँ विघटन ही जन्म देंगी।

समन्वय के कारण संघर्ष नहीं

समन्वय के भाव को परिपुष्ट बनाने के लिए सहिष्णुता का होना आवश्यक है। सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता है। इसी विशेषता के कारण यहाँ अनेक संप्रदाय चले। कोई शिव की उपासना करे या विष्णु की, शक्ति की आराधना करे या गणपति की, इससे कोई संघर्ष नहीं हुआ।

हमारा आदर्श

यूरोपीय देशों में जैसा रक्तिम संघर्ष धर्म के नाम पर हुआ, वैसा यहाँ नहीं हुआ। हम यह नहीं कहते कि इस पैगंबर और इस पुस्तक को मानने से तो बहिश्त मिलेगा और नहीं मानने से दोज्जख। यह मजहबी असहिष्णुता भारत की प्रकृति नहीं। किसी के धर्म को बलपूर्वक परिवर्तन करना हमारी परंपरा नहीं। हमारा दृष्टिकोण यही रहा कि सब लोग अपना-अपना स्वभाव प्राप्त धर्म आचरित करके सिद्धि को प्राप्त करें। हमने साधक की मन-स्थिति, योग्यता और परिस्थिति का विचार कर उसके लिए सिद्धिमार्ग का निश्चय किया। जिसमें ज्ञान की प्रखरता है, वह ज्ञान मार्ग का अवलंबन करके लक्ष्य सिद्धि करे। ज्ञान के समान पवित्र अन्य कुछ नहीं, ऐसा कहकर इस मार्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया। भावुक हृदयों के लिए भक्ति मार्ग का अनुसरण करना उचित बताया गया। भक्त तर्क से नहीं श्रद्धा से भगवान् को पा सकता है। जिसमें कर्म की प्रबलता हो, वह निष्काम भाव से कर्मयोगी बने। ज्ञानमार्गी एवं भक्तिमार्गी से भी कर्ममार्गी की विशिष्टता स्वीकार की गई। ज्ञान, भक्ति एवं कर्म के उचित समन्वय का आदर्श प्रस्थापित किया गया। ज्ञानरहित भक्ति ढोंग है, कर्मरहित ज्ञान व्यर्थ है, भक्तिरहित कर्म नीरस होता है और ज्ञानरहित कर्म अंधा होता है। इस प्रकार भक्ति समन्वित ज्ञानयुक्त निष्काम कर्म ही हमारा आदर्श है।

विवेकानंद का उदाहरण

कुछ लोग मानवता का विचार सबसे पहले करने की बात करते हैं। उनकी दृष्टि

में एक देश या राष्ट्र का विचार करना संकीर्णता है। पर यह दृष्टिकोण शुद्ध नहीं। देशभक्ति और मानवता की सेवा में कहीं कोई विरोध नहीं। मानवता की सेवा करने के लिए देशभक्ति प्रथम सोपान है। जिसे अपनी जननी और जन्मभूमि के प्रति ही प्रेम नहीं, वह मानवता की क्या सेवा करेगा? जो व्यक्ति नारीमात्र को माता के रूप में मानकर सबकी सेवा करने का प्रयत्न करे, पर अपनी माँ की सेवा को संकीर्णता कहे तो उसे क्या कहा जाए? सबकी सेवा करते हुए भी अपनी माँ तो अपनी माँ ही रहेगी। माता का जो स्वाभाविक स्नेह अपनी ओर से संतान के प्रति होगा, वैसा अन्य किसी स्त्री की संतान के प्रति नहीं हो सकता। यशोदा जैसी माता इस दृष्टि से अपवाद हो सकती है, पर सामान्य जगत् में ऐसी माताएँ दुर्लभ होती हैं। जो व्यक्ति अपनी माँ को संकटापन्न अवस्था में देखकर भी दूसरों की माताओं की सेवा करता फिरे, वह चाहे कितने ही ऊँचे आदर्शवाद से अनुप्रेरित क्यों न हो, व्यावहारिकता के तो प्रतिकूल ही माना जाएगा। अपनी माँ चाहे कुरूप हो या सुंदर, इसका विचार नहीं किया जाता। वह अपनी माँ है, इसी नाते से वह वंदनीय है, आदरणीय है और अभिनंदनीय है। यदि माँ के स्वाभिमान को चोट पहुँचती है तो उसका पुत्र माँ के किसी अंग की उपयोगिता का विचार कर उसके स्वाभिमान को चोट पहुँचाने के निमित्त को दूर नहीं करता। माँ के अंगों की उपयोगिता और अनुपयोगिता का विचार ही मातृभक्ति की भावना के विपरीत है। हमारे प्रधानमंत्री का यह कथन कि चीन ने जिस भूमि पर अधिकार कर लिया है, वह बंजर है, जनशून्य है, वहाँ घास भी नहीं उगती, अतः उसके लिए संघर्ष नहीं किया जा सकता, मातृभक्ति की भावना के प्रतिकूल है। हमने भारत को माता के रूप में माना है। इसका कण-कण हमारे लिए पवित्र है। इसके कण-कण में पावित्र्य की महान् शक्ति छिपी हुई है। स्वामी विवेकानंद जब विश्व भर में भारतीय धर्म, संस्कृति एवं दर्शन की विजय वैजयंती फहराकर भारत में लौटे तो उन्होंने मद्रास में आकर भारत की मिट्टी को मलकर स्नान किया। बाद में उपस्थित जनता के आश्चर्य का शमन करने के लिए उन्होंने कहा, 'मैं काफ़ी समय से विदेशों में प्रवास पर था। इस अवधि में अनेक प्रकार के लोगों के संसर्ग में आया, अनेक देशों में घूमा। उनसे संभव है मेरे शरीर में कुछ विकृति आई हो, मैं उन सब विकृतियों को दूर कर रहा हूँ।'

अंग्रेज़ क्या कहता है?

कितनी श्रद्धा थी उनके हृदय में भारत के प्रति। हम जरा इंग्लैंड का उदाहरण लें। वहाँ सूर्य के दर्शन भी वर्ष में 10-20 बार से अधिक नहीं होते। लोग सर्दी के कारण ठिठुरते रहते हैं। इतना अन्न भी उत्पन्न नहीं होता कि वे अपना पेट भर सकें। उन्हें अन्न के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। फिर भी किसी अंग्रेज़ से पूछो, 'तुम्हें दुनिया

में कौन सा देश सर्वाधिक प्रिय है? वह बिना रुके उत्तर देगा, इंग्लैंड मुझे सर्वाधिक प्रिय है। एक अंग्रेज़ कवि ने भी जब यह कहा कि England! with all the faults I love thee, इसी भाव को प्रकट किया है।'

मातृभक्ति के अभाव का दुष्परिणाम

दुर्भाग्य से हमारे राष्ट्रजीवन में मातृभक्ति के अभाव के कारण अनेक विकृतियाँ आईं। पाकिस्तान का निर्माण राष्ट्रजीवन की विकृति का ज्वलंत उदाहरण है। मुसलमानों का यह दृष्टिकोण कि हमारा जहाँ राज्य है, वह भूमि पाक है और शेष नापाक, विकृतिमूलक है। संपूर्ण देश हमारे लिए पवित्र है, ऐसा भाव उनके मन में उत्पन्न नहीं हुआ। इसीलिए भारत माँ का अंग काटकर पाकिस्तान बना दिया गया। पृथक् नागालैंड की माँग के मूल में भी यह भारतभूमि के प्रति अभक्ति की ही भावना विद्यमान है। यह देश का दुर्भाग्य है कि उसके प्रधानमंत्री तथा उनके जी हुजूर लोग नागालैंड के निर्माण पर नागा समस्या के 'शांतिपूर्ण समाधान' पर प्रसन्नता व्यक्त करें और कहें कि हमने नागाओं को भारतीय संघ का सहभागी बना लिया है, मानो इससे पूर्व वे हमारे सहभागी न हों। नागालैंड को संसद् की स्वीकृति मिली, उसकी स्याही सूखने भी न पाई थी कि असम के पहाड़ी इलाकों में रहनेवाले अन्य लोगों ने पृथक् मिजोलैंड की माँग रख दी है। चीन ने हमारी 14000 हजार वर्ग मील भूमि पर अधिकार कर लिया। इस तथ्य को भी दुर्लक्ष्य कर कुछ लोग इस पर अभी अपना मत स्थिर नहीं कर पाए कि चीन ने आक्रमण किया या नहीं। यह सब परिस्थिति मातृभक्ति के अभाव के कारण उत्पन्न हुई है। जहाँ संपूर्ण देश के प्रति ममता एवं आत्मीयता भाव नहीं होता, वहाँ ऐसी ही अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

सेवा बनाम अधिकार

इन विकृतियों को दूर करने का उपाय हमारी संस्कृति के पास है। हमारी संस्कृति का आधार भोग नहीं अपितु त्याग रहा। त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। भगवान् राम ने लंका को जीतकर उसका राज्य विभीषण को दे दिया। उन्हें उस स्वर्णमयी लंका की तुलना में अपनी मातृभूमि अयोध्या ही अधिक पसंद आई, क्योंकि जननी और जन्म-भूमि स्वर्ग से बढ़कर होती है। छत्रपति शिवाजी ने जयसिंह को लिखा कि तुम मुगलों का साथ छोड़ दो, फिर यह सारा राज्य तुम करो। मुझे राज्य की भूख नहीं है। भरत ने भगवान् राम की पादुकाओं को राज्य सिंहासन पर विराजमान कर स्वयं नंदी ग्राम में तपस्वी के रूप में जीवन-यापन करते हुए राज्य कार्य का संचालन किया। चाणक्य ने चंद्रगुप्त के लिए एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया, पर स्वयं निस्पृह कर्मयोगी की

भाँति राज्य से निरासक्त रहे। आज हमारे राजनीतिक जीवन में जो विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं, वे इसी आसक्ति के कारण उत्पन्न हुई हैं। सेवा का स्थान अधिकार ने ले लिया है।

एकमेव मार्ग

जीवन के प्रति अतिशय अर्थवादी दृष्टिकोण के कारण भी अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। हमने पैसे को परमात्मा मान लिया है। मानवीय भावनाओं एवं जीवन-मूल्यों का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं। व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आधार आज उसका चरित्र नहीं, उसकी योग्यता नहीं, उसके गुण नहीं, पैसा ही प्रतिष्ठा का आधार बन गया है। यह स्थिति विकृतिमूलक है। हमें यह मानकर चलना होगा कि अर्थ हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधनमात्र है, साध्य नहीं, जीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदलना होगा। दृष्टिकोण का यह परिवर्तन भारतीय संस्कृति के आदर्शों के आधार पर ही हो सकता है। इस गौरवमयी संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठापना से ही राष्ट्र-जीवन में चतुर्दिक् परिव्याप्त विकृतियों का शमन एवं निराकरण हो सकता है।

— पाञ्चजन्य, अक्तूबर 15, 1962



48

केंद्र में सुरक्षा परिषद्

नेता की अपील

बंगलौर, 24 अक्टूबर : भारतीय जनसंघ के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने कल सुझाव दिया कि केंद्र में एक राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् का गठन होना चाहिए, जिसमें सभी राष्ट्रवादी तत्त्व शामिल हों।

श्री उपाध्याय ने माँग रखी कि देश की सुरक्षा एक ऐसे व्यक्ति को सँभालनी चाहिए, जो विवादों से परे हो।

उन्होंने कहा कि चीन के साथ राजनयिक तरीके से निपटने के उपायों में अब कतई विलंब नहीं होना चाहिए।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, अक्टूबर 24, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



चौंकाने वाला है नवीनतम प्रस्ताव

‘अयोग्य’ बातचीत

पूना, 25 अक्टूबर : भारतीय जनसंघ के महासचिव श्री दीनदयालजी उपाध्याय ने कहा कि भारत सरकार का ताजा प्रस्ताव चौंकाने वाला है, जिसमें 8 सितंबर से पहले की स्थिति पर चीनी सेना के वापस लौटने की स्थिति में सीमा विवाद के विषय पर बातचीत करने को कहा गया है, जो इस विषय पर अब तक की सरकार की नीतियों से पीछे हटना है।

प्रेस में दिए एक वक्तव्य में श्री उपाध्यायजी ने याद दिलाया कि अभी तक समझौता बातचीत की शर्त यह रही है कि उन्हें शुरू किए जाने से पहले आक्रमण से पहले की स्थिति बहाल की जाए।

बेकार उम्मीद

‘इस शर्त से पीछे हटकर हमने न सिर्फ यह दर्शाया है कि चीन जितना अधिक आक्रामक होगा, हम उतना ही अधिक समर्पण करने को तैयार हो जाएंगे। प्रधानमंत्रीजी ने सभी हारे हुए क्षेत्रों को वापस लाने की जो घोषणा की थी, और जिस घोषणा का लोगों ने खुले दिल से समर्थन दिया था, उसे देखते हुए सरकार का यह वक्तव्य चौंकानेवाला है।

‘वास्तव में, जब हमारी सेनाएँ आक्रमण का मुँहतोड़ जवाब देने का प्रयास कर रही हैं, बातचीत का प्रस्ताव निरर्थक है।’

जनसंघ नेता ने कहा कि कम्युनिस्ट चीन के साथ किसी प्रकार की सकारात्मक बातचीत की आशा बेकार है। इस दिशा में पिछले आठ वर्षों का इतिहास विश्वास करने के बजाय निराशाजनक ही रहा है।

— द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 25 अक्टूबर, 1962
(अंग्रेजी से अनूदित)



पश्चिमवाद, निरपेक्षतावाद और धन बल पर विचार

प्रश्न : पश्चिमी सभ्यता देश में फैलती जा रही है। इसे रोकने के लिए क्या किया जा सकता है ?

उत्तर : मुझे लगता है कि यह क्षणिक है। हमारा लोकतंत्र इस बात की गारंटी है कि यह अधिक दिनों तक नहीं चल पाएगा।

प्रश्न : क्या हमारे पास पश्चिमीकरण के विकल्प उपलब्ध हैं ?

उत्तर : मैं समझता हूँ, हाँ। दवा का उदाहरण लें। एलोपैथ में हाल में थैलिडोमाइड को विनाशकारी माना गया है। पेन्सिलिन को भी संदेह से देखा जा रहा है। जबकि आयुर्वेद एक पुरानी और सफल चिकित्सा पद्धति रही है। मुझे ऐसा नहीं लगता कि आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में आयुर्वेद अपना स्थान नहीं बना सकता और भारत में चिकित्सा का आधार नहीं बन सकता है।

प्रश्न : क्या आप भारतीय शिल्प के विषय में भी ऐसा ही समझते हैं ?

उत्तर : बिल्कुल। हमारे प्राचीन भवन आज भी यथावत् हैं, जबकि आधुनिक गगनचुंबी भवन धराशायी हो रहे हैं। हम सीमेंट का अंधाधुंध प्रयोग कर रहे हैं, जो हमारी जलवायु के प्रतिकूल है। आधुनिक मकान आवश्यकता से अधिक खुले हुए हैं, जहाँ प्रकाश, धूल और लू के थपेड़े अधिक आते हैं। बीच में खुली जगह के साथ वर्गाकार मकान सामाजिक निवास का द्योतक है, जहाँ पड़ोसी के साथ भाईचारा निभाया जा सकता है।

प्रश्न : लेकिन हमारा कोई राष्ट्रीय पेय नहीं है।

उत्तर : क्यों नहीं। गरम दूध हो या ठंडा, ठंडई, लस्सी, छाछ, सभी स्वास्थ्यवर्धक

पेय हैं। ये सभी पानी को मात देते हैं।

प्रश्न : अंग्रेजों का प्राचीन क़ानून (ऐंग्लो-सैक्सन¹ लॉ) श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि यह सभी लोगों को बराबर का स्थान देता है।

उत्तर : यह सही है। लेकिन दूसरी क़ानून व्यवस्थाओं में भी मानवों में भेद नहीं किया गया है। हिंदू क़ानून में इतना ही भेदभाव है कि एक ब्राह्मण का सिर नहीं काटा जा सकता। लेकिन प्राचीन भारत में सिर काटने की प्रथा उतनी प्रचलित भी नहीं थी, जितनी उन्नीसवीं सदी तक इंग्लैंड में थी। (यद्यपि नेपाल के पूर्व राजा टंका प्रसाद आचार्य नेपाल के नियम के अनुसार ब्राह्मण होने की ही वजह से इस सजा से बच गए थे।)

दूसरी ओर प्राचीन अंग्रेजी क़ानून में सभी मानवों की बराबरी नाममात्र को है। हर कोई जानता है कि एक धनी व्यक्ति अच्छे वकील की सेवा लेकर और क़ानूनी प्रक्रिया को लंबा खींचकर अपने पक्ष में न्याय को खींच लेता है। हिंदू क़ानून के कई प्रावधान पश्चिमी क़ानून में नहीं हैं। आपसी समझौते को हिंदू धर्म में मान्यता प्राप्त है। इसी प्रकार प्रायश्चित्त का भी स्थान है, जिससे हृदय परिवर्तन होता है; जबकि पश्चिमी क़ानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।

प्रश्न : मुझे डर है कि पश्चिम काफ़ी ताकतवर है।

उत्तर : निश्चित रूप से। लेकिन स्वदेशी से इसका जवाब दिया जा सकता है। एक तरह से मैं पश्चिम के सामानों और तौर-तरीकों का स्वागत करता हूँ।

डॉ. वी.के.आर.वी. राव² ने सत्य कहा है कि हमें सादगी अपनानी चाहिए। अमरीका जैसे देशों के लिए सादगी मारक होगी। इससे औद्योगीकरण धीमा

1. ऐंग्लो-सैक्सन : मध्यकालीन यूरोप में जर्मन भाषाएँ बोलने वाली जातियाँ थीं, जिन्होंने 5वीं शताब्दी में दक्षिणी और पूर्वी ब्रिटेन में बसना शुरू कर दिया था। उन्हीं की संतति से आधुनिक इंग्लैंड का राष्ट्र जन्मा है। इंग्लैंड पर उनका राज पाँचवीं सदी के विलियम विजयी से सन् 1066 में शुरू होने वाले नॉर्मन राज तक जारी रहा। मूलतः ऐंगल लोग जर्मनी के ऐंगलेन क्षेत्र से आए थे तथा सैक्सन लोग जर्मनी और नीदरलैंड के सैक्सनी क्षेत्र से आए लोग थे।
2. विजयेंद्र कस्तूरी रंगा वरदराजा राव (1908-1991) प्रमुख भारतीय अर्थशास्त्री थे। इन्होंने भारतीय संदर्भ में विकास के लिए कृषि को प्राथमिकता देने की बात कही थी। ये कई महत्वपूर्ण पदों पर रहे, जिनमें-खाद्य विभाग में योजना सलाहकार (1945-46); वाशिंगटन में भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार (1946-47); निदेशक, दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स (1948-1957); कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय (1957-1960); निदेशक, आर्थिक विकास संस्थान, दिल्ली (1960-1963); योजना आयोग के सदस्य (1963-1966); केंद्रीय परिवहन व जहाजरानी मंत्री (1967-1969); भारत सरकार में शिक्षा व युवा सेवाओं का प्रभार (1969-1971); निदेशक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन संस्थान (1972-77); राष्ट्रीय प्रोफेसर, भारत सरकार (1985-1990)।

होगा, बेरोज़गारी और हताशा बढ़ेगी। परंतु हमारे देश के लिए सादगी को नहीं अपनाना घातक होगा। हम अपने धन को उस तरह खर्च नहीं कर सकते।

प्रश्न : राष्ट्रीय विकास को हम खुद संचालित क्यों नहीं कर सकते? आखिरकार सभी महत्वाकांक्षी व्यक्ति उन शक्तियों से लैस होते हैं, जो समाज के विकास में सहायक होते हैं?

उत्तर : मैं समझता हूँ कि व्यक्तिगत उत्थान की बजाय देशभक्ति विकास का श्रेष्ठ पहिया है। निजी महत्वाकांक्षा पर जोर देने से गरीबी बढ़ेगी, असंतोष फैलेगा। जबकि भारत के लिए भारतीय सर्वश्रेष्ठ दर्शन होगा।

प्रश्न : एक बार फिर पश्चिमीकरण की ओर उन्मुख होते हुए संयुक्त परिवार की अवधारणा समाप्त होती जा रही है।

उत्तर : संयुक्त परिवार कम हो रहे हैं, क्योंकि इनसे उत्पादकता में कमी आ रही है। परिवार में सिर्फ एक व्यक्ति कमाता है। यदि संयुक्त परिवार की उत्पादकता में वृद्धि हो तो फिर से इसका विकास होगा। सरकार सहकारिता को तो छूट दे रही है, लेकिन संयुक्त परिवार के रूप में हमारी प्राकृतिक सहकारिता को कोई सहायता नहीं दे रही। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जिन सहकारिताओं में पारिवारिक मामले शामिल रहे हैं, वही सफल हुए हैं। संयुक्त परिवार एक प्राकृतिक सहकारिता है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर संतुष्टि प्रदान करता है।

दूसरी तरफ़ खाद्य सहकारिता सामूहिक संतुष्टि प्रदान करता है, जिसमें व्यक्तिगत लाभ नहीं होता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परिवार और जाति टूट गए तो मनुष्य अकेला रह जाएगा। ऐसी स्थिति में या तो कम्युनिज्म की तरह समाज होगा या सामाजिक जीवन समाप्त हो जाएगा। संयुक्त परिवार और जाति व्यवस्था सर्वाधिकारवाद को समाप्त करने के श्रेष्ठ उपाय हैं।

प्रश्न : क्या हम एक तटस्थ देश हैं? क्या हम एक हो सकते हैं? पश्चिम के तौर-तरीकों को देखते हुए, जिसमें अंग्रेज़ी भाषा, कॉमनवेल्थ, स्टर्लिंग बैंक, सैनिक अभ्यास, नई सेवा इत्यादि जैसे तौर-तरीके हों?

उत्तर : मुझे लगता है कि हम तटस्थ हैं। यह सच है कि हम कई मामलों में पश्चिम के करीब हैं। परंतु यह भी सत्य है कि पश्चिम को हम सदा उपनिवेशवादी के रूप में देखते आए हैं। अतः हमारे साथ रिश्तों में पश्चिम ऊपर नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त समय आ गया है, जब हम पश्चिम की कुछेक खूबियों से पार पा जाएँ।

मैं समझता हूँ कि भारत में कम्युनिस्टों का ही उधर झुकाव है। शेष सभी दलों की विदेश नीतियाँ तटस्थ हैं।

प्रश्न : धन बहुत ताकतवर है। विकास के लिए धन रूपी ताकत होना आवश्यक है। इसपर कैसे लगाम लगाई जा सकती है?

उत्तर : मैं समझता हूँ कि इस समस्या का समाधान दो स्तर पर हो सकता है। पहले तो अर्थव्यवस्था का विकेंद्रीकरण किया जाए, ताकि धन का अधिक संचय हो सके। दूसरा, धन से इतर मूल्यों को समुचित महत्त्व दिया जाए। आधुनिक भारत में पुराने समय के क्षत्रियों की वीरता अथवा ब्राह्मणों के ज्ञान को महत्त्व नहीं दिया जाता है। वैश्य कर्म का मूल्य दुनिया भर में फैला हुआ है। यह आश्चर्य की बात है कि पत्रकारों के सम्मेलन का उद्घाटन प्रधानमंत्री या कोई दूसरे लोकप्रिय नेता करते हैं बजाय किसी वरिष्ठ पत्रकार के। दूसरा विकल्प होता है, कोई धनी व्यक्ति जो मोटी रकम दान में दे। किसी कलाकार, किसी वैज्ञानिक या किसी कवि को जन सम्मेलन में आमंत्रित करने की कोई नहीं सोचता। आज तक किसी विश्वविद्यालय ने उपाधि प्रदान करने के लिए शंकराचार्य को नहीं बुलाया है।

इन स्थितियों में परिवर्तन होना चाहिए। एक तरीका यह हो सकता है कि प्रतिनिधित्व का तरीका बदला जाए। आज सभी जनप्रतिनिधि स्थानीय समीकरणों के आधार पर चुने जाते हैं। मैं समझता हूँ कि विषयों के आधार पर भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। उससे धनबल की क्षमता में कमी आएगी। साथ में ऊँचे लाभ पर अधिक कर लगाना चाहिए, और ऐसे करों की वसूली अधिक कारगर तरीके से होनी चाहिए। आज निजी क्षेत्र के उपक्रम भरपूर लाभ कमा रहे हैं, और सरकारी उपक्रमों में ताकत इकट्ठा हो रही है। ये दोनों समाज के लिए बुरे हैं। विकेंद्रीकरण और सहयोग हमारी सामाजिक अर्थव्यवस्था का आधार होना चाहिए।

प्रश्न : लेकिन सरकार निश्चित रूप से लघु और सहकारी इकाइयों के हितों के लिए काम कर रही है?

उत्तर : मैं चाहता हूँ कि वो और करे। कोटे का सीमेंट या बिजली कनेक्शन पाने के लिए लघु इकाइयों को बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बड़े औद्योगिक घरानों को लघु उद्योगों की तुलना में आसानी से और सस्ते दर पर कर्ज मिल जाता है। कई बार लघु उद्योगों को ऊँची दरों पर ब्याज अदायगी करनी पड़ती है। बैंक भी छोटी कंपनियों के

साथ कारोबार नहीं करना चाहते, जिनके लिए ये अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होते।

हम धनी लोगों या उनके धनोपार्जन के विरुद्ध नहीं हैं। सभी सभ्य समाज में निजी संपत्तियाँ होती हैं। लेकिन एक विलगाव है। स्वतंत्र दल संपत्ति को संपूर्ण अधिकार मानता है, जिसे छुआ भी नहीं जा सकता। हम ऐसा नहीं सोचते। हम संपत्ति को हानिकारक नहीं मानते। हम दोनों स्थितियों से अति आसक्त नहीं हैं।

मुझे लगता है कि संपत्ति को सामाजिक उद्देश्य में लगाया जाए। मैं चाहता हूँ कि निजी संपत्ति को जनता और धर्मार्थ कार्यों के लिए अधिक-से-अधिक खर्च करना चाहिए। जनता के लिए ट्रस्ट और अधिक होने चाहिए। ये सभी उपाय अमीरी को लाभदायक बना सकते हैं।

—ऑर्गनाइजर, नवंबर 1, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



कम्युनिस्ट चीन से संबंध विच्छेद किया जाए

कम्युनिस्ट चीन के वर्तमान व्यापक आक्रमण के चलते हुए उससे कोई समझौता वार्ता न करने का जो दृढ़ संकल्प भारत सरकार ने व्यक्त किया है, उसका हम स्वागत करते हैं। परंतु चीनी प्रस्तावों के उत्तर में भारत सरकार की यह माँग कि चीन 8 सितंबर को सीमा तक अपनी फ़ौजें हटा ले, यह प्रकट करती है कि भारत सरकार अपने पहले वायदे से हट गई है, जिसमें कहा गया था कि जब तक देश को आक्रमणकारियों से पूर्णतः मुक्त नहीं कर लिया जाता, कोई वार्ता नहीं हो सकती।

इस प्रकार की नीति, विशेषकर एक ऐसे दुश्मन के प्रति, जो हमारी शांतिप्रियता को हमारी दुर्बलता समझता हो, न तो सम्मानजनक है और न प्रभावकारी ही। वास्तविकता तो यह है कि इस समय किसी भी प्रकार की समझौता-वार्ता का परिणाम केवल देश की जनता के बढ़ते हुए उत्साह को कम करने तथा दुश्मन को पीछे ढकेलने के हमारे प्रयासों को कमजोर बनाने में ही होगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि जब तक अपनी मातृभूमि आक्रमणकारियों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो जाती, तब तक कोई बातचीत न की जाए।

देश के सभी वर्गों ने आज सरकार को अपने पूर्ण सहयोग एवं समर्थन का आश्वासन देते हुए वर्तमान चुनौती का मुकाबला करने का जो दृढ़ निश्चय प्रगट किया है, उससे देश में नवीन चेतना व कार्यशक्ति का उदय हुआ है। सरकार को चाहिए कि इस जन उत्साह का उचित उपयोग करने के लिए ऐसा कार्यक्रम बनाए, जिससे आक्रमणकारियों को सीमा के पार खदेड़ देने के सरकारी निश्चय पर जनता का विश्वास बन सके। देश में संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सरकार ने इस दिशा में क्रदम उठाने के लिए आवश्यक अधिकार भी ले लिये हैं। परंतु ऐसा दिखाई देता है कि कांग्रेस सरकार अन्य

राष्ट्रभक्तों के वर्गों को विश्वास में लेना नहीं चाहती। उड़ीसा के मुख्यमंत्री¹ के राष्ट्रीय सरकार निर्माण करने के सुझाव पर कांग्रेस कार्यसमिति ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की है, उससे प्रकट होता है कि आज इस राष्ट्रीय संकट को भी वे किस दृष्टिकोण से देखते हैं।

यद्यपि यह समय पुरानी बातों को स्मरण करने का नहीं है, फिर भी यह कहना आवश्यक है कि न तो सरकार ने ठीक तैयारी की है और न वह आक्रमणकारी की चरित्रहीनता व बर्बरता के भीषण संकट के प्रति सावधान ही रही है। अतएव यह आवश्यक है कि अब ऐसे निश्चित पग उठाए जाएँ, जिससे यह पता चले कि सरकार परिस्थिति की गंभीरता को समझ रही है तथा उसने अपनी नीति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। मेरी राय में इस समय केंद्र में सभी राष्ट्रभक्त वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् का निर्माण होना चाहिए। इसी प्रकार सर्वदलीय जिला समितियाँ भी बनाई जाएँ।

सुरक्षा मंत्रालय में परिवर्तन बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था। सुरक्षा के उत्तरदायित्व को वही सँभाल सकता है, जिसका व्यक्तित्व विवाद का विषय न हो तथा जो देश की जनता एवं सेना में अपने प्रति पूर्ण विश्वास जगा सके। कम्युनिस्ट चीन से राजनीतिक संबंध तोड़ने का प्रश्न भी अब आगे नहीं टाला जा सकता।

भारत सरकार को तिब्बत से निष्कासित दलाई लामा की सरकार को तुरंत मान्यता प्रदान करनी चाहिए तथा उसके सहयोग से अपनी भूमि को ही नहीं, तिब्बत को भी आक्रमणकारी से वापस प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

नवयुवकों को सैनिक शिक्षा प्रदान करने की एक बड़ी योजना बनानी चाहिए, जिससे कम-से-कम हमारे पास 10 लाख सैनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति तैयार हो सकें। सेना से अवकाश प्राप्त सभी लोगों को तुरंत बुला लिया जाए तथा भूतपूर्व सेनापति श्री करियप्पा के सुझावों को कार्य रूप में परिणित किया जाए।

किसी भी गुट में शामिल न होने की अपनी नीति को रखते हुए, लड़ाई का सामान जहाँ से संभव हो प्राप्त करने के लिए कार्रवाई की जाए। तीसरी पंचवर्षीय योजना में इस प्रकार का संशोधन किया जाए, जिससे देश की सुरक्षा को शक्ति प्रदान करनेवाले विषयों के अतिरिक्त शेष भाग काट दिए जाएँ।

पाकिस्तान की सीमा पर रहनेवाले नागरिकों को हथियार दिए जाएँ, जिससे वे उस ओर से होने वाली किसी भी शरारत का सफलता से सामना कर सकें।

देश के सभी पंचमांगी तत्वों पर कड़ी निगाह रहनी चाहिए। यद्यपि आज कुछ कम्युनिस्ट अपनी देशभक्ति की बढ़-चढ़कर घोषणाएँ कर रहे हैं, परंतु उनकी घोषणाओं

1. बीजू पटनायक (1916-1997) ओडिशा के 1961 से 63 तक मुख्यमंत्री थे।

से उनकी सत्यता को नहीं आँका जा सकता। जब तक वे 'कामिन फार्म' से पूर्णतः संबंध विच्छेद नहीं करते, भारतीय कम्युनिस्टों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि इस प्रकार के क्रदम उठाए जाएँ तो देश में एकता और दृढ़ता का वातावरण निर्माण होगा तथा देश की जनता केवल नारे लगाने के बजाय, वर्तमान चुनौती का सामना करने के लिए राष्ट्र को सन्नद्ध करने में अपनी कार्यशक्ति को लगा सकेगी।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 12, 1962



52

भारत में कम्युनिस्टों और पाकिस्तानियों का अपवित्र गठबंधन

भारत के लोगों और सरकार ने कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण से निबटने के लिए अपने दृढ़ संकल्प को स्पष्टतः व्यक्त किया है। लोग जहाँ सरकार के साथ एकजुट हो रहे हैं और राष्ट्र की रक्षा करने में अपना योगदान देने में एक-दूसरे से होड़ कर रहे हैं, वहीं सरकार ने भी दुश्मन का सामना करने के लिए कई उपाय किए हैं, हालाँकि अभी आक्रमण की प्रकृति और रणनीति का सही मूल्यांकन किया जाना शेष है। चीनी आक्रमण को अंतरराष्ट्रीय कम्युनिज्म की विस्तार योजना से अलग करके देखना नितांत अवास्तविक होगा। चीनी आक्रमण के प्रश्न पर कम्युनिस्ट जगत् में कल्पित मतभेद या भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में कथित फूट किसी भी तरह न तो आक्रमण की प्रकृति को बदलता है और न ही आक्रमण के संभावित खतरों को न्यूनतम करता है।

सीपीआई पर प्रतिबंध लगे

कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण को प्रभावी रूप से मात देने की किसी भी योजना में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध को आवश्यक रूप से शामिल किया जाना चाहिए। जब तक कि देश में चीन के घुसपैठिये सक्रिय हैं, सैन्य उपाय आक्रमणकारी के दुस्साहस को हतोत्साहित करने के लिए पर्याप्त साबित नहीं होंगे। कम्युनिस्ट निश्चित रूप से समय की प्रतीक्षा करेंगे और सर्वहारा क्रांति की अपनी योजना के अनुरूप किसी नाजुक अवसर पर व्यापक स्तर पर तोड़-फोड़ की गतिविधियों में शामिल होंगे। देश में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और पाकिस्तानी सांप्रदायिक तत्त्वों के बीच अपवित्र गठबंधन पहले से

ही मौजूद है। पाकिस्तान और कम्युनिस्ट चीन के बीच वर्तमान संबंधों को देखते हुए इन अनुमानित असंगत तत्त्वों का गठजोड़ और अधिक खतरनाक हो जाता है। श्रमिक संकट के अलावा यदि वे सांप्रदायिक दंगों को उकसाने का भी प्रयास करें तो किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए। सरकार को सतर्क रहना चाहिए और इस संकट के पनपने से पहले ही समाप्त करने के उपाय करने चाहिए।

सीमावर्ती क्षेत्रों के निवासियों को राइफल चलाने का प्रशिक्षण देने का भारत सरकार का निर्णय स्वागतयोग्य है। यद्यपि यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि कम्युनिस्टों और पाकिस्तान समर्थक सोच के चिह्नित लोगों को इन रक्षा योजनाओं से बाहर रखा जाए, वरना पूरी कार्रवाई आत्मघाती साबित होगी।

राज्यसभा में प्रधानमंत्री की यह घोषणा कि भारत अब 'चीन के तथाकथित शांतिपूर्ण आक्रमण' के झाँसे में आने वाला नहीं है, आश्चर्यकारी है। परंतु यह पर्याप्त नहीं है। वस्तुतः जब हम दुश्मन को अपने क्षेत्र से खदेड़ने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाने में जुटे हुए हैं, ऐसे में कोई भी समझौता-वार्ता ध्यान भंग करनेवाली साबित होगी। 8 सितंबर से पहले भारतीय सीमा से वापसी की स्थिति में चीन से वार्ता का भारत सरकार का प्रस्ताव राष्ट्र के वर्तमान मनोभाव और नीतियों के अनुरूप नहीं है। अब जबकि चीन ने इन प्रस्तावों को खारिज कर दिया है, हमें भी इसे छोड़ देना चाहिए। हम पहले नेफा और लद्दाख में आक्रमण से पूर्व की सैन्य स्थिति बहाल करें और तब फिर वार्ता की बात पर विचार करें। यदि हम वार्ता के प्रस्तावों और प्रति-प्रस्तावों के मकड़जाल में स्वयं को फँसा लेते हैं तो हम चीन के जाल में फँस जाएँगे और चीन को उसकी स्थिति मजबूत करने का समय दे देंगे।

चीन के साथ रणनीतिक संबंध जारी रखने का भारत सरकार का निर्णय उचित नहीं है। यह मात्र यही दर्शाता है कि चीन के साथ समझौते के लिए कोई गुप्त दौड़पेच जारी है। इस संदर्भ में हम जितनी जल्दी किसी भ्रम से स्वयं निकल जाएँगे, अच्छा है कि यह हो जाए। हम तत्काल इन संबंधों का विच्छेद किए जाने की माँग करेंगे।

एनडीसी की पक्षपातपूर्ण संरचना

राष्ट्रीय रक्षा परिषद् का गठन सही दिशा में एक क़दम है। यद्यपि इस परिषद् का गठन और गठित की गई विभिन्न अन्य समितियाँ यह दर्शाती हैं कि कांग्रेस सरकार अन्य तत्त्वों को विश्वास में लेने के लिए तैयार नहीं है। वे अभी भी देश की सुरक्षा को कांग्रेस पार्टी की शोभा की वस्तु बनाए रखना चाहती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि राष्ट्रीय संकट के समय में और लोगों ने जब अपने सभी मतभेदों को भुला दिया है और वर्तमान कांग्रेस सरकारों के सभी पापों को क्षमा कर दिया है, सरकार अवसर के अनुरूप

आचरण में विफल रही है। स्थिति की माँग यह है कि सरकार अपना अहं और पूर्वग्रह छोड़े और लोगों की एकता को बनाए रखने और मजबूत करने और उनके उत्साह को राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रभावी मार्गों के रूप में व्यवस्थित करने के मार्ग और माध्यमों को तलाशे। यद्यपि मुझे उम्मीद है कि यह कांग्रेस सरकार विफल भी हो जाती है तो भी जनता विफल नहीं होगी। राष्ट्रीय सुरक्षा में अपने समस्त छोटे-छोटे योगदान करने के उनके प्रयास समाप्त नहीं होंगे।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 19, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



53

आसाम तक पहुँची युद्ध की सीमा

वालॉग, सेला पास और बोमडिला के पतन के साथ ही कम्युनिस्ट चीन की युद्ध की सीमा असलियत में असम के द्वार तक पहुँच गई है। जिस तरह से हमारी पराजय हुई, उसकी प्रकृति काफ़ी गंभीर है। सरकार ने 19 नवंबर को प्रधानमंत्री की ओर से राष्ट्र के नाम संदेश में स्थिति पर अपनी प्रतिक्रिया दी। उन्होंने राष्ट्र के सामने प्रतिज्ञा की कि हम अंतिम दम तक लड़ेंगे और अंत में भारत की विजय होगी। उन्होंने किसी भी तरह के समझौते की संभावना को नकार दिया और संकेत दिया कि भारत सभी स्रोतों से हथियार खरीदने को तत्पर है। यह प्रशंसनीय संदेश है और जनभावनाओं को परिलक्षित करता है। यह उन शांतिकामी नीतियों की समाप्ति है, जिसका हम पालन करते आ रहे थे। अब कोई अनिश्चय या ऊहापोह नहीं।

हम युद्ध मंत्री चव्हाण का स्वागत करते हैं

प्रधानमंत्री के साथ नए रक्षा मंत्री¹ भी अपनी नीतियों एवं रणनीतियों की रूपरेखा बना रहे हैं और उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि वे युद्ध मंत्री की भूमिका निभाने जा रहे हैं, न कि एक निष्क्रिय रक्षा मंत्री की। यह सत्य है कि भारत की कभी किसी देश पर आक्रमण की मंशा नहीं रही और हम निरपेक्ष अपनी रक्षा के बारे में ही सोचते रहे। परंतु स्थितियाँ बदलती हैं और रक्षा के लिए युद्ध आवश्यक हो जाता है। यह युद्ध हम पर एक धूर्त मित्र की ओर से थोपा गया है। कम्युनिस्ट चीन को उसी की भाषा में हमें जवाब देना होगा। श्री चव्हाण ने बिना लागलपेट के स्पष्ट रूप से कहा है (1) जनता का

1. 31 अक्टूबर, 1962 को वी.के. कृष्ण मेनन के रक्षा मंत्री पद से इस्तीफ़ा देने के बाद यशवंतराव बलवंतराव चव्हाण (1913-1984) भारत के रक्षा मंत्री बनाए गए थे, ये इस पद पर 1966 तक रहे।

जनादेश युद्ध के लिए है, समझौते के लिए नहीं; (2) और भारत को अब उन देशों के साथ अलग तरह का बरताव करना होगा, जिन्होंने संकट की इस घड़ी में हमारी अपेक्षाओं पर तुषारपात किया है; और (3) हम उन मित्रवत् देशों के साथ संबंधों को प्रगाढ़ करेंगे, जिन्होंने हमारी सहायता का प्रस्ताव किया है। उनका यह कथन सामान्य जनभावना की ही अभिव्यक्ति है।

संपूर्ण विजय के लिए समग्र तैयारी

समय आ गया है, जब हम शत्रु के संपूर्ण विनाश के लिए समग्र तैयारियों में जुट जाएँ और इसमें किसी हिचकिचाहट या अवरोध को आड़े न आने दें। सभी नीतियों को इस प्रकार परिवर्तित या परिवर्धित करने की आवश्यकता है, जो इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक बनें। निश्चित रूप से कुछ ऐसे लोग होंगे, विशेष रूप से कम्युनिस्ट और उनके सहयात्री, जो शांतिपूर्ण समझौते की, गुटनिरपेक्षता की या ऐसी ही अन्य पुरानी धुनें बजाकर मुद्दों पर भ्रमित करने का प्रयास करेंगे। आज एक राष्ट्र के रूप में जब हमारा अस्तित्व ही खतरे में है तो हम छद्म दार्शनिकता की विलासिता का बोझ नहीं उठा सकते। बहुत हो चुकी यह कृत्रिमता। इस झटके ने हमें गहरी नींद से जगा दिया है। इसमें थोड़ा समय लगा, पर कम्युनिस्ट चीन के एक के बाद एक आक्रामक क्रदमों के बाद अब यह पूरी तरह से हमारी समझ में आ गया है। युद्ध टालने की इच्छा के वशीभूत होकर हमने कई बार स्वयं को झूठा विश्वास दिलाया कि शत्रु अब इस या उस रेखा पर रुक जाएगा। परंतु यह विभ्रम अब पूरी तरह से दूर हो चुका है। कम्युनिस्ट चीन चहुँमुखी युद्ध पर आमादा है, हमें इसके लिए तैयार रहना होगा।

तैयारियाँ सभी दिशाओं में होनी चाहिए। यह पर्याप्त और समय पर होनी चाहिए। हमारी जो आवश्यकताएँ आज हैं, उन्हें स्थगित कर भविष्य की तिथि पर नहीं टाला जाना चाहिए। उदाहरणस्वरूप देश में हथियारों और अन्य उपकरणों के निर्माण के लिए उद्योगों की स्थापना की योजना कागज़ों पर है। परंतु शत्रु हमें इन योजनाओं के फलीभूत होने का समय नहीं देने जा रहा। इस पर काबू पाना अनिवार्य है। यह अकेले ही दीर्घ काल और लघु काल दोनों में प्रभावी होगा। यह अकेले ही प्रतिरोधक का काम करेगा।

हमें आंतरिक और बाह्य नीतियों में समरूपता लानी होगी

प्रधानमंत्री ने कहा है कि चीनी हमला सिर्फ भारत के लिए ही नहीं अपितु एशिया और पूरी मानवता के लिए खतरा है। यदि ऐसा है तो वे उनके साथ आम राय बनाने के लिए क्रदम क्यों नहीं उठाते, जो वर्तमान परिस्थितियों की गंभीरता को समझ रहे हैं। वस्तुतः यह अकेले भारत का युद्ध नहीं अपितु संपूर्ण लोकतांत्रिक विश्व का है। कम्युनिस्ट देश,

यदि वे हमारे साथ सहानुभूति भी जताएँ, तो भी हमारी सहायता को नहीं आ सकते। और हमें सिर्फ शब्दों की नहीं अपितु इस युद्ध को जीतने के लिए सक्रिय समर्थन की आवश्यकता है। वह चरण जहाँ कि कूटनीति या वैश्विक राय कोई भूमिका निभा सकती थी, काफ़ी पहले ही बीत चुका है। अभी तक हमने अपनी रक्षा तैयारियों को कूटनीति की ज़रूरतों से बाँध रखा था। अब इसे उलटा करना होगा। हमारे अंतरराष्ट्रीय संबंध सफलतापूर्वक युद्ध लड़ने की हमारी आवश्यकताओं के हिसाब से तय होने होंगे। पुराना अध्याय बंद हो चुका है, नया अध्याय शुरू होना चाहिए। हमें आगे बढ़कर नए शत्रु बनाने की आवश्यकता नहीं है, परंतु इसके साथ ही हमें उनसे सहायता की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, जो अपने कारणों की वजह से संभवतया हमारी सहायता के लिए आगे न आ पाएँ। प्रधानमंत्री को इतना साहसी होना होगा कि वे यह क्रांतिकारी क़दम उठा सकें।

हमारी आंतरिक नीतियों में भी तदनुसार परिवर्तन होना चाहिए। लंबे समय से सरकार ने कम्युनिस्टों के प्रति नरम रुख अपना रखा है। यहाँ तक कि जो चीनी इरादों और आक्रामकता को लेकर किसी धोखे में नहीं हैं, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय परिषद् में पारित प्रस्ताव में इस मृदुल रुख को इस आधार पर उचित ठहराने का प्रयास किया गया है कि इससे हमें अन्य कम्युनिस्ट देशों की सहानुभूति अर्जित करने में सहायता मिलेगी। श्री डांगे² को विश्व की सभी कम्युनिस्ट पार्टियों को पत्र लिखने की स्वीकृति दी गई। सोवियत रूस ने स्पष्ट रूप से भारत और कम्युनिस्ट चीन में विभेद किया है। चीन, सोवियत रूस का कम्युनिस्ट भाई है और ऐसे में भारत थोड़ी सी मित्रवत् तवज्जो से अधिक का दावा नहीं कर सकता। खून हमेशा पानी से गाढ़ा होता है। यहाँ तक कि यदि कुछ साम्यवादी देश चीन की कार्रवाइयों को पसंद नहीं करते हों, तो भी ऐसा नहीं लगता कि वे चाउ (एन लाइ) को अपनी शैतानी योजनाओं पर अमल से रोक पाएँगे। संकट की इस घड़ी में क्या हम इन देशद्रोहियों को दुष्प्रचार युद्ध जारी रखने की अनुमति देकर उन्हें अपने हाथ मज़बूत करने की स्वतंत्रता दें? यह आत्मघाती होगा।

शत्रुओं व मित्रों की पहचान करना सीखें

विपक्षी पार्टियों के प्रति सत्तारूढ़ दल के रवैये को कहीं से भी उचित या वांछनीय नहीं कहा जा सकता। इस तथ्य के बावजूद कि उन्होंने युद्ध प्रयासों का पूर्णरूपेण समर्थन किया है, इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इस उद्देश्य के लिए गठित किन्हीं भी समितियों या परिषदों से उन्हें पूरी तरह बाहर रखा जाए। यहाँ तक कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से जारी एक परिपत्र में सरकारी नीतियों की आलोचना के लिए

2. श्रीपाद अमृत डांगे (1899-1991) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्य और बंबई दक्षिण-मध्य लोकसभा से सांसद थे।

विपक्षी पार्टियों और विशेष रूप से भारतीय जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी को 'देशद्रोही' तक करार दिया गया है। यद्यपि कम्युनिस्टों को '100 प्रतिशत राष्ट्रवादी' बताकर उन्हें साफ़-सुथरा होने का प्रमाणपत्र दिया गया है, जबकि जनसंघ व स्वतंत्र पार्टी को देशद्रोही घोषित किया गया है। प्रतीत होता है कि कांग्रेस पार्टी के पास कुछ अनोखे मानदंड हैं। हम यही कह सकते हैं कि हमारी सिर्फ़ भारत माता के प्रति संपूर्ण और एकनिष्ठ निष्ठा है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी के प्रति हमारी निष्ठा नहीं है। यदि हमने कोई अपराध किया है तो वह सिर्फ़ यह है कि हम कई वर्षों से वे बातें कह रहे हैं, जो प्रधानमंत्री और कांग्रेस के नेता आज कह रहे हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह परिपत्र कांग्रेसी खेमे में उनके कम्युनिस्ट सहयात्रियों की करतूत है। इसे कांग्रेस के राष्ट्रवादी खेमे में पसंद नहीं किया गया। मैंने कई ऐसे लोगों से भेंट की और पाया कि इस चालबाजी से उन्हें भी उतनी ही पीड़ा हुई, जितनी हमें।

कम्युनिस्टों की रणनीति राष्ट्रवादियों को विभाजित रखने की है, क्योंकि वे जानते हैं कि एकजुट राष्ट्रवादी भारत घुसपैठियों और आक्रांताओं के सामने अटल चट्टान की तरह होगा। हमारे कुछ महान् नेता अकसर उनके इस धिनौने खेल और बारीक दुष्प्रचार के झाँसे में आ जाते हैं। वे स्वयं को प्रधानमंत्री का सबसे बड़ा समर्थक बताने की परेड करते फिरते हैं और अन्यो को उनके विरोधी की संज्ञा देते हैं। वे राष्ट्र और प्रधानमंत्री के बीच विभेद करते हैं। उन्हें संभवतया देश से प्रेम नहीं है, पर प्रधानमंत्री में वे अपना पूर्ण विश्वास जताते हैं। वास्तविकता यह है कि प्रधानमंत्री और सरकार सिर्फ़ राष्ट्र की सेवा का एक औजार है। जो राष्ट्र के साथ नहीं है, वह प्रधानमंत्री के साथ भी नहीं हो सकता। यदि दुर्भाग्य से हम पर ऐसी आपदा आई कि चीनियों ने यहाँ क़ब्ज़ा जमा लिया तो पंडित नेहरू सबसे पहले शिकार होंगे। पेकिंग रेडियो प्रतिदिन उनके ख़िलाफ़ विषवमन करता है और शायद ही यह अपेक्षा की जा सकती है कि कम्युनिस्ट चीन के प्यादों की भावना भी उनके प्रति कोई अलग होगी। आज यदि वे अलग-अलग भाषा बोल रहे हैं तो इसके पीछे उनके रणनीतिक कारण हैं, नेहरू के प्रति सच्चा प्रेम नहीं।

मित्र चेतावनी देता है, शत्रु आक्रमण करता है

एक चाटुकार या पाखंडी शत्रु का व्यवहार हमेशा किसी भी सच्चे मित्र के मुकाबले ज्यादा मीठा होता है। यदि हम प्रधानमंत्री की आलोचना करते हैं तो इसलिए करते हैं कि वे हमारे अपने हैं। हमारी आलोचना का अर्थ यह नहीं है कि हमें उनसे रत्ती भर भी प्रेम नहीं है। हमें कोई कपटपूर्ण भूमिका नहीं निभानी है। परंतु कम्युनिस्टों का बरताव एकदम उसी तरह का है, जैसा चाउ एन लाइ का था, जब उन्होंने नेहरू को अपना

महानतम मित्र घोषित किया था। उनके समदेशी भारतीय मित्र भी इससे कुछ अलग नहीं होंगे। यह सब जानने के बाद मैं आश्वस्त हूँ कि राष्ट्रवादी भारत उनकी तिकड़मों के चंगुल में नहीं फँसेगा। कांग्रेस पार्टी में कुछ ऐसे तत्त्व होंगे, जिनके लिए दलगत निष्ठा से ऊपर उठना संभव न हो। उन पर तरस खाना चाहिए। आज जब हम एक बाहरी शत्रु से गंभीर खतरे का सामना कर रहे हों तो पार्टियाँ और इस तरह की चीजों की अहमियत अपने आप में नगण्य हो चुकी है। हमें किसी को एक विशेष पार्टी के प्रतिनिधि के रूप में देखना तत्काल बंद कर देना चाहिए। चीनियों के विरोध में कांग्रेसी कहीं से भी कांग्रेसी नहीं बल्कि भारतीय हैं और किसी भी तरह से जनसंघ से अलग नहीं हैं। यहाँ तक कि वर्तमान सरकार भी अब कांग्रेस की सरकार नहीं रह गई है बल्कि यह युद्ध का संचालन कर रही भारत की सरकार है। इसी कारण से सभी पार्टियाँ प्रधानमंत्री के समर्थन में खड़ी हो गई हैं।

राष्ट्रभक्ति स्वतः अपना पुरस्कार है

यदि कांग्रेस ने और उदार रवैया अपनाया होता तो यह नासमझी होती। ऐसा प्रतीत होता है कि इस संबंध में अपनी नीतियाँ प्रतिपादित करने के समय उन्हें चीनी हमले की भयावहता का अनुमान नहीं था। अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं और खतरे के समय और कुछ नहीं बल्कि हम एकजुट हैं। कांग्रेस जो भी करे, पर मैं सभी पार्टियों और विशेष रूप से जनसंघ के सदस्यों से इस मौके पर उठ खड़े होने की अपील करता हूँ। हमारी लड़ाई आज कांग्रेस के साथ नहीं अपितु चीनियों से है। कांग्रेस भले विफल हो जाए पर हमें नहीं होना है। हमें इसके एवज में किसी पहचान या सम्मान की चिंता नहीं करनी है। सेवा स्वयं में अपना पारितोषिक है। राष्ट्रभक्ति किसी सम्मान की माँग नहीं करती और न तो निंदा या भर्त्सना से कमतर होती है। जो देशभक्तों का उपहास करते हैं, वे स्वतः अभिशप्त हैं।

मातृभूमि के प्रति निष्काम समर्पण की इस महानतम भावना से प्रेरित होकर हमें स्वयं को स्वतंत्रता की रक्षा में समर्पित कर देना चाहिए। तमाम तरह के खतरों से जूझते हुए आत्म-बलिदान को तैयार मोरचे पर लड़ रहे हमारे जवान किसी सम्मान के पीछे नहीं भाग रहे हैं। उनका एकमात्र ध्येय शत्रु को खदेड़ना है और यदि उन्हें सफलता मिलती है तो यही उनके परिश्रम का पुरस्कार है। हम उनके उदाहरण का अनुकरण करें। आज की राजनीति सेवा की राजनीति है, राष्ट्र की अनथक सेवा की राजनीति। यह ईश्वर प्रदत्त अवसर है। पिछले 15 साल के दौरान दलगत राजनीतिक कलह व अनबन के कीचड़ के कुछ छींटे हमारी आत्मा पर भी पड़े होंगे, अब हम अपने शुद्धीकरण का यत्न करें। एक राष्ट्रीय भागीरथी की लहर हमारे द्वार आई है। वह कितना दुर्भाग्यशाली

होगा, जो इस घड़ी में अपने शुद्धीकरण के लिए इसमें डुबकी न लगाए। लोग जाति व संप्रदाय के सभी मतभेदों को भूल चुके हैं। क्यों न राजनीतिक पार्टियाँ भी उनका अनुकरण करें। अन्य चाहे जो भी करें, पर जनसंघ इसमें विफल नहीं होगा। मुझे आशा और विश्वास है कि इस घड़ी में पूरे देश में जनसंघ के कार्यकर्ता तटस्थता और भारत माता की निस्स्वार्थ सेवा की भावना का महान् उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्ति ।

लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥

अद्यैव मरणमस्तु कालान्तरे वा

न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।

(यशोगान या तिरस्कार से विचलित हुए बिना,

लक्ष्मी के आने या जाने पर ध्यान दिए बिना,

मृत्यु चाहे आज आए या ठहरकर,

दृढ़ आत्माएँ न्याय के पथ पर अविचलित बढ़ती जाती हैं।)

—ऑर्गनाइज़र, 26 नवंबर 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



54

चीनी प्रस्ताव का एक्स-रे

भारत की सरकार ने यद्यपि चीनी युद्धविराम प्रस्ताव के कुछ अस्पष्ट बिंदुओं पर चीनी सरकार से स्पष्टीकरण माँगा है, वहीं देश की जनता ने इस पर तीखी प्रतिक्रिया जताते हुए इसे सिरे से नकार दिया है। कम्युनिस्टों और उनके सहयात्रियों के अपवाद को छोड़ दिया जाए तो अब कदाचित् ही कोई बचा है, जो चीनियों की बात पर विश्वास करने को तैयार है। स्वाभाविक है कि प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए कम्युनिस्ट मचल रहे हैं। कामरेड जेड.ए. अहमद¹ एक अपवाद हो सकते हैं, जिन्होंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने की सलाह दी है। अपने संपादकीय आलेखों में 'ब्लिट्ज' ने इसे पंडित नेहरू की कूटनीतिक विजय तक करार दे दिया है और उसे लगता है कि युद्धविराम का यह चीनी प्रस्ताव इस युद्धपिपासु ड्रैगन के लिए समर्पण करने के समान है। प्रत्यक्षतः यह समाचार पत्र कामरेड चाउ के दुष्प्रचार का प्यादा बनने का प्रयास कर रहा है और जनता में भ्रांति फैलाने का षड्यंत्र रच रहा है, ताकि झाँसे में डालकर भारत को इस अपमानजनक प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए सहमत कर लिया जाए।

विश्वास की कमी

जनता के मनोबल को तोड़ने के इन प्रयासों के बावजूद लोगों में चीन के प्रति गहरा अविश्वास है। उस देश की साम्यवादी सरकार ने अपने वादों को अकसर और इतने कपटी तरीके से तोड़ा है कि अब भोले से भोला आदमी भी उन पर विश्वास करने को तैयार नहीं है। जैसा कि प्रधानमंत्री ने स्वयं 14 नवंबर को लिखी अपनी चिट्ठी में कहा कि विश्वास का संकट रहा है। हम कम्युनिस्ट चीन की सदाशयता में किसी भी

1. डॉ. जेड.ए. अहमद (1908-1999), कम्युनिस्ट पार्टी के उत्तर प्रदेश समिति के सचिव तथा राज्यसभा के सदस्य थे।

तरह का विश्वास खो चुके हैं। चीन यदि स्वयं का कूटनयिक विश्व में पुनर्वास चाहता है तो उसे अस्पष्ट घोषणाओं की बजाय प्रभावी कार्रवाई करने की आवश्यकता है।

तथापि, युद्ध और शांति से जुड़े मामलों में मिथ्याभिमान और पूर्वग्रह से प्रभावित होकर निर्णय लेना अंतरराष्ट्रीय कूटनीति में कहीं से भी उचित नहीं होगा। हम सजग व चौकन्ने हो सकते हैं, परंतु वस्तुस्थिति के आकलन में पूरी तरह यथार्थवादी होना चाहिए। चीनी प्रस्ताव के इसी आलोक में जाँच और विश्लेषण की आवश्यकता है।

पेकिंग में 20 नवंबर को विदेशी प्रेस को जारी किए गए चीन के मुख्य युद्धविराम प्रस्ताव में मुख्य प्रस्ताव का इस तरह उल्लेख है :

तीन बिंदु

एतद्वारा चीन की सरकार निम्नवत् घोषणाएँ करती है—

1. 22 नवंबर, 1962 को दिन के प्रारंभ और यह वक्तव्य जारी करने के समय जो कि 00.00 है, से चीन के फ्रंटियर गार्ड समूची सीमा पर गोलीबारी बंद कर देंगे।
2. एक दिसंबर, 1962 से चीन के फ्रंटियर गार्ड वास्तविक नियंत्रण रेखा से जो कि 7 नवंबर, 1959 को थी, से 20 किलोमीटर पीछे हट जाएँगे।
यद्यपि पूर्वी क्षेत्र में परंपरागत रूप से प्रचलित रेखा के उत्तर में स्थित चीनी क्षेत्र में जहाँ कि चीनी फ्रंटियर गार्ड आत्मरक्षा में युद्ध कर रहे थे, वे वास्तविक नियंत्रण रेखा के उत्तर में स्थित अपने वर्तमान मोर्चों से जो कि अवैध मैकमोहन रेखा के उत्तर में है, से 20 किलोमीटर पीछे हट जाएँगे।
मध्य व पश्चिमी क्षेत्र में चीनी फ्रंटियर गार्ड वास्तविक नियंत्रण रेखा से 20 किलोमीटर पीछे हट जाएँगे।
3. चीन-भारत सीमा क्षेत्र के निवासियों की सामान्य आवाजाही सुनिश्चित करने और व्यवस्था बनाए रखने एवं अंतर्ध्वंसक तत्त्वों की गतिविधियों के लिए चीन वास्तविक नियंत्रण रेखा पर अपनी सीमा में जगह-जगह सीमा चौकियाँ बनाएगा और इनकी निगरानी के लिए एक निश्चित संख्या में नागरिक पुलिस तैनात की जाएगी।

चीन ने इस प्रस्ताव पर इकतरफा तरीके से अमल की घोषणा की और वह भारत से समय रहते सिर्फ इसके उचित प्रतिदान की अपेक्षा रखता है।

उनके कुटिल अभिप्राय

ऊपर से देखने पर यह प्रस्ताव चीन की ओर से शांति की दिशा में उठाया गया कदम लगता है, परंतु जो सात नवंबर, 1959, 8 सितंबर, 1962 और 22 नवंबर, 1962

को मैकमोहन लाइन पर भारत व चीन की स्थित व इनके नियंत्रण वाले क्षेत्रों के विस्तृत ब्योरे से अवगत नहीं हैं, वे आसानी से इससे भ्रमित हो सकते हैं, विशेष रूप से जब चीन जोर देकर यह कहता है :

‘विशेष रूप से इस बात पर ध्यान दिलाया जाता है कि पीछे हटने के बाद भी चीनी फ्रंटियर गार्ड 8 सितंबर, 1962 से पूर्व के अपने स्थानों से काफ़ी पीछे रहेंगे।’

वस्तुतः चीनी प्रस्ताव ‘वास्तविक नियंत्रण रेखा’ शब्दावली का विभिन्न संदर्भों व विभिन्न अर्थों में प्रयोग कर भ्रांति उत्पन्न करने का प्रयास कर रहा है और इस तरह सैनिकों की तैनाती या सैन्य छावनियों व सीमा चौकियों की स्थापना में भेद कर रहा है। सर्वप्रथम यह रेखा जो सात नवंबर, 1959 को अस्तित्व में थी, के रूप में विशेषीकृत की गई है। परंतु अन्य सभी स्थानों पर यह सामान्य अर्थ में प्रयुक्त की गई है, जिसका अभिप्राय 22 नवंबर, 1962 की वास्तविक रेखा से है। यदि चीनी प्रस्ताव के तीसरे खंड का संदर्भ लें तो हम पाएँगे कि हमारी व्याख्या सटीक है। चीनी जिन सीमा चौकियों की स्थापना की बात कर रहे हैं, वे 22 नवंबर, 1962 की रेखा पर उनके कब्जे वाले इलाकों में होंगी और जो उनके अनुसार चीनी क्षेत्र में हैं और ‘फिर भी अवैध मैकमोहन रेखा के उत्तर’ में हैं। इस प्रकार प्रत्येक नए प्रस्ताव के साथ तथाकथित चीनी क्षेत्र फैलता जा रहा है एवं ‘अवैध’ मैकमोहन रेखा और दक्षिण सिकुड़ती जा रही है।

स्वाभाविक है कि युद्धविराम का यह प्रस्ताव लोगों को भ्रमाकर अवैध कब्जे वाले इलाकों में अपना नियंत्रण मज़बूत करने के लिए कुछ समय हासिल करना है।

भारत यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है तो यह नेफा और लद्दाख का चीन को समर्पण कर देने के बराबर होगा। इस प्रकार यह चीनी पेशकश शांति का प्रस्ताव नहीं बल्कि आत्मसमर्पण का अल्टीमेटम है। यह सत्य है कि चीनियों ने अगर अपने प्रस्ताव पर ईमानदारी से अमल किया तो वे अपनी सेनाओं को 7 नवंबर, 1959 की वास्तविक नियंत्रण रेखा से 20 किलोमीटर पीछे वापस बुला लेंगे और निश्चित रूप से यह रेखा 8 सितंबर, 1962 से और उत्तर है। परंतु हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वर्तमान नियंत्रण रेखा और चीनी सेनाएँ वापस बुलाने की रेखा के बीच का भाग भारत को वापस कर दिया जाएगा या चीनी वहाँ अपनी गतिविधियों पर विराम लगा देंगे। इसकी बजाय चीन उस इलाके में नागरिक प्रशासन की स्थापना का प्रस्ताव रख रहा है। यह एक कुटिल चाल है और यदि एक बार उस क्षेत्र में चीनी नागरिक प्रशासन को कार्य करने की अनुमति दे दी गई तो चीनी वहाँ और गहरी जड़ें जमा लेंगे।

भयावह चेतावनी

कुछ ऐसे शांतिकामी हो सकते हैं, जो चाहेंगे कि एशिया के दो महान् देशों के बीच

युद्ध टालने की गर्ज से भारत को यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए, भले ही यह कितना भी अपमानजनक हो। उन्हें यह बताने की आवश्यकता है कि चीन यहीं नहीं रुकने जा रहा है। उन्होंने जो भी हड़पा है, यदि हम उन सभी का समर्पण कर दें तो भी आगे वे और की माँग करेंगे। बीते इतिहास के अतिरिक्त ऊपर से निर्दोष से दिखने वाले इस युद्धविराम वक्तव्य के बिल्कुल अंत में यह बात स्पष्ट हो जाती है। चीनी नीयत को स्वयं उन्हीं के शब्दों को उद्धृत करके समझा जा सकता है—तथापि चीन की सरकार को इन संभावित घटनाक्रमों पर भी ध्यान देना होगा :

1. कि गोलीबारी बंद करने के बाद पीछे लौट रहे चीनी सैनिकों पर भारतीय सेना आक्रमण न करे।
2. कि पूरी वास्तविक नियंत्रण रेखा से चीनी सैनिकों के पीछे हटने के बाद भारतीय सेनाएँ फिर से पूर्वी क्षेत्र में वास्तविक नियंत्रण रेखा जो कि अवैध मैकमोहन लाइन है, की ओर आगे बढ़ें या मध्य एवं पश्चिमी क्षेत्र में पीछे हटने से इनकार कर दें और वास्तविक नियंत्रण पर जमी रहें।
3. कि समूची वास्तविक नियंत्रण रेखा से चीनी सैनिकों के पीछे हटने के बाद भारतीय सेनाएँ फिर से वास्तविक नियंत्रण रेखा को पार कर आठ सितंबर से पूर्व की अपनी स्थिति वाले इलाकों पर फिर से नियंत्रण कर लें, या ये कहें कि वे अवैध मैकमोहन रेखा के पार पूर्वी क्षेत्र की रेखा के उत्तर में केचिलांग नदी क्षेत्र पर फिर से नियंत्रण कर लें या मध्य क्षेत्र में वुजे (बाराहोती) पर फिर से नियंत्रण कर लें या वे चिप-चाप नदी घाटी, गलवान नदी घाटी, पांगोंग झील क्षेत्र में अपने उन 43 मजबूत ठिकानों को पुनर्स्थापित कर लें जिनका उपयोग पश्चिमी क्षेत्र में चीनी इलाकों पर हमले में किया जा सकता है।

‘चीनी सरकार दृढ़तापूर्वक यह घोषणा करती है कि यदि ऊपर उल्लिखित संभावनाओं में से एक भी घटना घटी तो चीन आत्मरक्षा में प्रत्याक्रमण का अधिकार अपने पास रखता है, और इसके जो भी भयावह परिणाम होंगे, उसके लिए पूरी तरह भारत सरकार उत्तरदायी होगी।’

मेमना हमेशा ग़लत रहेगा और भेड़िया हमेशा सही

कम्युनिस्ट चीन ने जो संभावित घटनाएँ कल्पित की हैं, वे सिर्फ़ वे बहाने हैं, जिनकी आड़ में वह जब ठीक समझेगा, भारत पर आगे और हमले करेगा। और बहुधा की तरह उसकी यह कार्रवाई भी आत्मरक्षा में होगी। यदि हम ऐसी किसी दुर्घटना को टालना चाहते हैं तो हमें सिर्फ़ हारें हुए इलाकों को दोबारा अपने नियंत्रण में लेने के प्रयास से ही दूर नहीं रहना होगा अपितु हमारे जो वर्तमान मानवरहित और अरक्षित

ठिकाने हैं, उन्हें भी छोड़ना पड़ेगा। यदि हम 'मज़बूत ठिकाने' स्थापित करते हैं तो चीन हम पर हमला करेगा। और ये 'मज़बूत ठिकाने' हैं, इस बात का निर्णय कौन करेगा? चीन करेगा और कोई नहीं। इस प्रकार यह एइसाप की भेड़िया और मेमने की दंतकथा की तरह है, जहाँ भारतीय मेमना सदैव गलत रहेगा और एक अपराधी तथा अभिमानी मेमने पर चीनी भेड़िए का झपट्टा हमेशा न्यायोचित होगा।

इस प्रस्ताव के पीछे जो भी नीयत छिपी हो, भारत इसे स्वीकार नहीं कर सकता। ये अपमानजनक और कपटपूर्ण है। सत्य तो यह है कि ये 24 अक्टूबर के उन 24 प्रस्तावों से भी बदतर हैं, जिसमें सात नवंबर, 1959 की रेखा से सीधे-सीधे पूरी तरह से 20 किलोमीटर पीछे हटने की परिकल्पना थी। जब भारत सरकार ने आठ सितंबर की स्थिति पर जोर दिया तो यह हमारे पूर्व के दृढ़ रुख से बहुत नीचे आना था। हम झुक गए। समय आ गया है कि जब हम यह घोषणा करें कि एक मक्कार आक्रमणकारी के साथ कोई मोलभाव नहीं होगा, जब तक कि वह भारतीय भूमि से पूरी तरह पीछे नहीं हट जाता या हम उसे पीछे न धकेल दें। भारत सरकार को इस वर्तमान स्थिति पर बने रहस्य का तुरंत अंत करना चाहिए। इस प्रस्ताव की प्रकृति इकतरफ़ा है, भारत को पेकिंग को कोई आधिकारिक उत्तर नहीं भेजना चाहिए। परंतु जनता को उसे यह स्पष्ट करना चाहिए कि हम झुकने या समर्पण को तैयार नहीं हैं। इस क्षण इसमें कोई भी हिचकिचाहट जनता को हतोत्साहित करेगी और राष्ट्र को पीछे ले जाएगी।

हमने शांति और समझौते की बहुत बातें कर लीं। जो सिर्फ़ अपने आलस्य में व विलासी संतुष्टि के लिए भारत के हितों व क्षेत्रीय अखंडता का बलिदान कर भी अस्थायी शांति के इच्छुक हैं, उनके साथ बिगाड़ की कीमत पर भी हमें इन सब बातों पर तुरंत विराम लगाना होगा। आज हमारी स्वतंत्रता व सम्मान पर संकट है, भारत की जनता सर्वस्व बलिदान देकर इसकी रक्षा के लिए एकजुट व दृढ़प्रतिज्ञ है। यदि हम हारी हुई भूमि को पुनः प्राप्त करने के लिए लड़ेंगे तो हमारी मृत्यु नहीं होगी, परंतु यदि हमने खोये हुए इलाकों को यथार्थ रूप में शत्रु के वास्तविक क़ब्ज़े में छोड़ दिया और एक हेय समझौते पर समर्पण कर दिया या इस पर दुःखदायी रहस्य बनाए रखा तो हम जीवित भी नहीं रहेंगे। जितना शीघ्र संभव हो, अपनी सेनाओं को फिर से संगठित करें, उन्हें पर्याप्त रूप से हथियारों से सुसज्जित करें, गोला-बारूद व रसद आपूर्ति की व्यवस्था करें और चीनियों को भारत की पवित्र धरा से खदेड़ने का अभियान आरंभ करें।

—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 3, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



यदि पाक नेताओं के दिल में सच्चाई है तो भारत का युद्ध-निषेध प्रस्ताव स्वीकार करें

कश्मीर के संबंध में भारत के दृष्टिकोण का प्रधानमंत्री द्वारा विशद विवेचन करने के उपरांत भी जनसंघ भारत और पाकिस्तान के बीच प्रस्तावित वार्ता से इस विषय में आशंकित है। प्रधानमंत्री के इस स्पष्टीकरण ने कि हम वार्ता में बिना किसी शर्त के भाग लेंगे, उनके पूर्व वक्तव्य को निरर्थक एवं इतिहास की वस्तु बना दिया है। वास्तविकता तो यह है कि कश्मीर पर भारत और पाकिस्तान के दृष्टिकोण में इतना मौलिक और भारी अंतर है कि दोनों का मेल खाना कठिन है। यदि भारत अपना अधिकार छोड़ देता है तो उसके गंभीर एवं व्यापक परिणाम हो सकते हैं। पाकिस्तान के नेताओं ने वहाँ की जनता में इतना जिहादी जोश उभाड़ा है कि उनके लिए भारत के न्यायसंगत अधिकार को मानना कठिन हो जाएगा। अतः आज वार्ता से सम्मानपूर्ण हल निकालना तो दूर, यही हो सकता है कि अंत में मनमुटाव और बढ़ जाए। सत्य तो यह है कि बातचीत के लिए वर्तमान समय अनुपयुक्त है। आज संकट की घड़ी में शांतिपूर्वक एवं तथ्यात्मक विश्लेषण नहीं हो सकता। यदि भारत के ऊपर कोई समझौता ज़बरदस्ती थोपा गया तो वह उसे मान नहीं सकता और यदि उसने माना भी तो चीन का मुकाबला करने के लिए जिस उद्देश्य से यह सबकुछ किया जा रहा है, उसमें वह निर्बल हो जाएगा। पाकिस्तान की इससे भूख और बढ़ेगी तथा कल उसकी ओर से और नई माँगें रखी जा सकती हैं।

पं. नेहरू का युद्ध-निषेध प्रस्ताव माने

भारतीय जनसंघ का मत है कि वर्तमान प्रक्रिया उल्टी है। पाकिस्तान यदि भारत के समान ही कम्युनिस्ट चीन के संकट को अनुभव करता है तो हम दोनों मिलकर उसका मुकाबला करें और तब तक आपस की समस्याओं को एक ओर रख दें। साथ काम करने से पारस्परिक सद्भावना और सहयोग का वातावरण बनेगा, जो सभी प्रश्नों को सुलझाने में सहायक हो सकेगा। इस विषय में उसे अमरीका और ग्रेट-ब्रिटेन के उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए। यदि पाकिस्तान भारत के साथ सच में शांति चाहता है तो उसे प्रधानमंत्री श्री नेहरू का युद्धनिषेध प्रस्ताव मान लेना चाहिए।

सभी समस्याओं पर विचार हो

यदि पाकिस्तान के साथ बातचीत करनी है तो भारत को यह ध्यान में रखना होगा कि वे दोनों देशों के बीच की सभी समस्याओं पर एक साथ विचार करें। अभी तक पाकिस्तान उन प्रश्नों को लेता रहा, जिसमें उसकी दिलचस्पी है तथा अन्य प्रश्नों पर टालमटोल करता रहा है। एक ओर हम हर बार पाकिस्तान की मित्रता के नाम पर एक-एक करके अपने हितों का बलिदान करते रहे हैं। अब किसी दूसरे प्रश्न को लेने के पहले हमें विभाजन पूर्व के ऋण एवं निष्क्रांत सांप्रतिक प्रश्नों को लेना चाहिए। इससे पता चल जाएगा कि पाकिस्तान के मन में कितनी सच्चाई है।

इस जाल से बचें

चीन के आक्रमण का हमें सुदृढ़ प्रतिकार करना चाहिए। भारत सरकार का यह निश्चय हो जाने के बाद कि चीन के प्रस्ताव में भारत के बड़े भूभाग को हड़पने की चाल मात्र है, हमें लंबे पत्र व्यवहार के जाल से बचना चाहिए। चीन को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने तथा रसद मार्ग को पूरा करने के लिए अधिक समय देना ठीक नहीं होगा। चीनी सेनाओं के पीछे हटने के बाद भारत द्वारा उस क्षेत्र में केवल नागरिक अधिकारियों को भेजने की नीति की सरकार द्वारा घोषणा उचित नहीं है। हम अपनी ही भूमि में अपने सैनिकों के प्रवेश पर कैसे रोकथाम कर सकते हैं?

आक्रमण के स्वरूप को समझें

यदि चीन के आक्रमण का सफलतापूर्वक मुकाबला करना है तो हमें उसके पूरे और सही रूप को समझना होगा। यह हमला केवल कुछ सीमांत क्षेत्रों पर अधिकार करने के लिए नहीं, बल्कि संपूर्ण एशिया को चीन के नेतृत्व में कम्युनिस्ट बनाने के उद्देश्य से है। उसकी शांति और युद्ध की नीतियों का निर्धारण इसी आधार पर होता है। हमें भी तदनुसार अपने युद्ध के लक्ष्यों को निर्धारित कर उनकी प्राप्ति के लिए अपनी

अन्य नीतियों का पुनर्गठन करना होगा। जब तक चीन भारत की भूमि से बाहर नहीं हो जाता तथा तिब्बत स्वतंत्र नहीं होता, हमें बातचीत का विचार छोड़ देना चाहिए। तिब्बत की स्वतंत्रता भारत की सीमाओं की सुरक्षा तथा एशिया की शांति के लिए अनिवार्य है।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 10, 1962

□

कश्मीर पर बहस का समय नहीं

राष्ट्रमंडल सचिव इंग्लैंड के श्री डंकन सैंडीज और अमरीका के सुदूर पूर्व मामलों के सहायक विदेश मंत्री श्री एवेरेल हैरीमैन हाल ही में क्रम से इंग्लैंड और अमरीका के सैन्य मिशनों के मुखिया के रूप में भारत आए थे। इनकी यात्रा का उद्देश्य कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण के सफलतापूर्वक प्रतिरोध के लिए भारत को जिन रक्षा उपकरणों की आवश्यकता है, उसका स्वयं मौके पर आकलन करने का था। परंतु ये दोनों भारत के प्रधानमंत्री और कुछ हद तक पाकिस्तान के राष्ट्रपति पर भी दबाव डालकर भारत-पाकिस्तान के बीच समस्याओं का संतोषजनक समाधान निकालने के लिए समझौता-वार्ता प्रारंभ करने के लिए सहमत करने में सफल हो गए। श्री सैंडीज इसमें व्यक्तिगत रूप से रुचि लेते दिखे और उन्होंने कई बार दिल्ली और रावलपिंडी के बीच उड़ानें भरीं। वे संयुक्त वक्तव्य पर दोनों देशों के नेताओं के हस्ताक्षर करवाने में भी कामयाब हो गए। दौरे पर आए इन दोनों अधिकारियों ने इस संयुक्त बयान पर संतोष जताया और लंदन तथा वाशिंगटन ने इस समूचे घटनाक्रम का स्वागत किया। परिणामों को लेकर वे आशावादी दिखते हैं। यह कहना जल्दबाजी होगी कि उनका यह आशावाद इसमें शामिल पक्षों या किसी भी पक्ष के साथ परदे के पीछे बनी किसी समझ या सहमति पर आधारित है या महज उस इच्छा की अभिव्यक्ति है, जो सामान्य रूप से सभी मध्यस्थों की होती है।

पाकिस्तान का कृत्रिम क्रोध

यद्यपि इंग्लैंड और अमरीका दोनों की यह राय रही है कि भारत व पाकिस्तान को अपनी समस्याओं को लेकर किसी तरह के समझौते पर पहुँचना चाहिए, पर वर्तमान परिस्थितियों में वार्ता पर लगातार जोर देने के पीछे उनकी तात्कालिक चिंता यह है कि

भारत को शस्त्र सहायता के प्रश्न पर पाकिस्तान को किसी तरह शांत किया जाए। इस मुद्दे पर पाकिस्तान ने अमरीका और इंग्लैंड के खिलाफ हिंसात्मक प्रदर्शनों का आयोजन ही नहीं किया है अपितु वह कम्युनिस्ट चीन के साथ जाने और उसके साथ अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर की धमकी दे रहा है।

श्री सैंडी के प्रस्ताव को स्वीकार करने में पाकिस्तान ने जो तत्परता दिखाई, उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन सारी चीजों की भूमिका परदे के पीछे रची जा चुकी थी। पाकिस्तान के कम्युनिस्ट खेमे में जाने का अर्थ यह होता कि उसे C.E.N.T.O.¹ व S.E.A.T.O.² की सदस्यता को तिलांजलि देनी पड़ती और साथ ही अमरीका से उसे मिल रही आर्थिक व सैन्य सहायता भी बंद हो जाती। फलतः राष्ट्रपति अयूब खान ने नेशनल असेंबली में स्पष्ट रूप से कहा कि इन गठबंधनों को तिलांजलि देने का कोई प्रश्न ही नहीं है। स्पष्ट है कि खीझ में चीन के साथ गलबहियाँ करने की धमकी पर क्रियान्वयन की नीयत नहीं थी। यद्यपि यह धमकी इन दोनों पश्चिमी देशों के सामने कारगर साबित हुई और भारत ने भी घुटने टेक दिए। परिणामस्वरूप बिना इस बात की परवाह किए कि इस माहौल में बातचीत उचित है या नहीं और इसका कोई संतोषजनक नतीजा निकलेगा या नहीं, वार्ता के प्रस्ताव पर सहमति बन गई।

इस सदृच्छ के अतिरिक्त कि दोनों पड़ोसी देशों के बीच सद्भावपूर्ण माहौल में सभी समस्याओं का निपटारा हो जाए और एक-दूसरे के प्रति दुर्भावना का कोई कारण नहीं बचे, भारत-पाक मैत्री की आवश्यकता पूरे क्षेत्र में कम्युनिस्ट चीन के आक्रामक इरादों और इस दृष्टि से रक्षा आवश्यकताओं के संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। श्री सैंडर्स ने सामान्य रूप से इसी भावना या संदेश को पहुँचाने का प्रयास किया कि चीन से अपनी रक्षा करनी है तो यह कोई समझदारी की बात नहीं है कि उसकी बजाय अपने सबसे निकट पड़ोसी देश की सीमा पर सैनिक तैनात कर रक्षा संसाधनों का अपव्यय किया जाए। यदि भारत व पाकिस्तान एक-दूसरे के खिलाफ तैनात सैनिकों को मोरचे से हटा लें तो इससे अलग-अलग और संयुक्त रूप से भी दोनों देशों की रक्षा क्षमताएँ भी बढ़ जाएँगी।

एक विनयपूर्ण असहमति

इन समस्त तर्कों में कुछ भी अनुचित नहीं है, यदि वे सटीक अनुमानों व धारणाओं

1. 1955 में बगदाद में ईरान, इराक, पाकिस्तान, टर्की और ब्रिटेन ने मध्य-पूर्व संधि संगठन (M.E.T.O.) या केन्द्रीय संधि संगठन (C.E.N.T.O.) की स्थापना की, बगदाद पैक्ट राष्ट्र 1979 में भंग कर दी गई थी।
2. सितंबर 1954 में संयुक्त राज्य अमरीका, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया, फिलीपींस, थाईलैंड और पाकिस्तान ने 'मनीला पैक्ट' द्वारा दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र में साम्यवाद को रोकने के लिए दक्षिण-पूर्व एशिया संधि संगठन (S.E.A.T.O.) का गठन किया था।

पर आधारित हों। हम निश्चित रूप से भारत व पाकिस्तान के बीच मैत्री व आपसी समझ चाहते हैं। परंतु शत्रुतापूर्ण संबंधों के पीछे कुछ निश्चित कारणों का अस्तित्व है। और क्या इनका समाधान इस तरह से किया जा सकता है, जिसे सम्मानजनक व संतोषजनक कहा जा सके और इस प्रकार तनाव को कम किया जा सके। अधिकतर लोग स्वीकारात्मक रूप से इस प्रश्न का उत्तर देंगे। परंतु मेरी उनसे विनयपूर्ण असहमति है। यदि हम पाकिस्तान की उत्पत्ति और उसके उद्विकास को देखें तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि भारत व पाकिस्तान के संबंध इस तरह से नियंत्रित या व्यवस्थित नहीं हैं, जो दोनों पड़ोसी संप्रभु देशों के बरताव को साँचे में ढाल सके।

पाकिस्तान का निर्माण इसलिए हुआ कि मुसलिम लीग के नेता एक अलग देश चाहते थे। पाकिस्तान की माँग इस आधार पर आगे बढ़ाई गई कि हिंदू और मुसलमान परस्पर विरोधी हैं। इस माँग को समर्थन देने के लिए दोनों के बीच कल्पित भिन्नताओं का आविष्कार किया गया और वहाँ भी समस्याएँ खड़ी की गईं, जहाँ नहीं थीं। यहाँ तक कि यह प्रक्रिया आज भी जारी है। पाकिस्तानी नेता महसूस करते हैं कि यदि भारत-पाक के बीच कोई समस्या नहीं रह गई तो उस दिन उन्हें पाकिस्तान के कृत्रिम अस्तित्व को बचाए व बनाए रखना कठिन हो जाएगा। इस प्रकार पिछले 17 वर्ष से हम पाते हैं कि रोजाना नई समस्याएँ खड़ी की जा रही हैं और पुराने मुद्दों को ज़िलाए रखा जा रहा है।

एकता पहले, टीकाएँ बाद में

समस्या के समाधान का अर्थ तथ्यों एवं तर्कों के आधार पर विश्लेषण नहीं है। विचारणा के स्तर पर दो लोगों में मतभेद हो सकता है, यहाँ बुद्धिसंगत व्याख्या की कदाचित् ही कोई गुंजाइश है। इस प्रकार 'समझौता' का अर्थ पाकिस्तान के सामने पूर्ण या आंशिक समर्पण हो सकता है। इस निष्कर्ष की पुष्टि के लिए भारत-पाकिस्तान के बीच किसी भी समझौते की बारीकी से जाँच कर लें, जब-जब हमने पाकिस्तान के साथ मैत्री की व्यर्थ आशा में नेहरू-लियाकत समझौता या नेहरू-नून समझौता या सिंधुजल समझौते को चुपचाप स्वीकार किया है, तब-तब इसके पीछे एक ही कहानी रही है। जब-जब भारत ने अपने हितों की बलि चढ़ाई है, तब-तब समझौते को यह कहकर ऐतिहासिक करार दिया गया कि यह भारत-पाक मैत्री की दिशा में है। परंतु प्रत्येक समझौते के बाद पाकिस्तान पहले से भी अधिक उग्र हो उठा। क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि इस बार यह प्रक्रिया उलट जाएगी? निश्चित रूप से नहीं।

यदि हम आपसी समझ एवं सहयोग चाहते हैं तो हमें इस प्रक्रिया को उलटना होगा। पहले एकता हो और उसके बाद जो भी समस्याएँ हों, उनके समाधान का प्रयत्न किया जाए। वर्तमान परिस्थितियाँ इसके अनुकूल हैं। भारत व पाकिस्तान, दोनों के लिए

ही कम्युनिस्ट चीन साझा खतरा है। यह सही है कि आज भारत अकेले इसकी आक्रामकता से पीड़ित है। परंतु कोई भी देख सकता है कि पाकिस्तान भी अधिक दिन सुरक्षित नहीं रहेगा। परंतु क्या पाकिस्तान इस खतरे की ओर देखने को तैयार है? क्या पाकिस्तान के पश्चिमी मित्र उसे इस दिनोदिन गहराती जा रही खतरे की परछाई के प्रति सचेत कर सकते हैं? यदि ऐसा है तो हम बिना शर्त एक साथ हो सकते हैं। हम एक साथ शत्रु से लड़ें। यह साझा प्रयास हमारी साझा समझ को पुनर्जीवित करेगा, जो समस्याओं के सम्मानजनक समाधान के लिए पूरी तरह से अनिवार्य है।

भारत-पाक के बीच कश्मीर अकेली समस्या नहीं है!

समस्याएँ उठाने या गड़े मुरदे उखाड़ने के लिए यह वर्तमान सबसे अनुचित समय है। यदि भारत ने अपने अधिकारों पर दृढ़ता से जोर दिया, जो उसे करना भी चाहिए तो समझौते या सौदेबाजी की यह पूरी कसरत सिर्फ कड़वाहट को और बढ़ाएगी। यदि हम समर्पण कर दें और वह भी कश्मीर जैसे अत्यावश्यक मुद्दे पर, तो जनता पर इसका भ्रामक एवं हतोत्साहित करनेवाला प्रभाव पड़ेगा। यह राष्ट्रीय भावना के लिए तगड़ा झटका होगा। निश्चित रूप से एक अपमानित और असंवेदी भारत शत्रुओं से मुकाबले में बहुत कमजोर हो जाएगा। राष्ट्रवादी भारतीय इसे सहन नहीं करेंगे। इससे भी अधिक कम्युनिस्ट अवसर का लाभ उठाएँगे और कलह के बीज बोएँगे। ऐसे में उनके लिए जनता का ध्यान चीन की आक्रामकता से हटाकर कश्मीर में समर्पण की तरफ मोड़ देना आसान होगा। इसमें सैन्य मोरचे पर मिलने वाला लाभ तो संदेहास्पद है ही, अन्य दिशाओं में होने वाला नुकसान कई गुना है। जहाँ तक पाकिस्तान की बात है, तो हम कह नहीं सकते कि तुष्टीकरण से आगे इसकी भूख और नहीं बढ़ेगी। यथार्थ रूप में आज एक तिहाई कश्मीर उसके अवैध कब्जे में है। इसे वापस लेने के लिए भारत ने कोई कदम नहीं उठाया है। परंतु पाकिस्तान इतने से ही संतुष्ट नहीं है। वह और हड़पना चाहता है। ह्मसमान प्रतिफल या घटते मुनाफे का सिद्धांत पाकिस्तान की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं पर लागू नहीं होता।

पाकिस्तान ने जिस तरह से हरकतें की हैं, वे यह दर्शाती हैं कि वह साझा खतरे से मुकाबले के बजाय भारत की कठिनाइयों का फायदा उठाने का ज्यादा इच्छुक है। मित्रों की संतुष्टि के लिए हम बैठे-ठाले मनबहलाव के रूप में वार्ता में भाग ले सकते हैं। परंतु एक बात निश्चित है कि वर्तमान परिस्थितियों में वार्ता के वांछित परिणाम नहीं मिलेंगे। हमें जिस बात की आवश्यकता है, वह यह है कि हम भारत-पाक के बीच सभी समस्याओं को ठंडे बस्ते में डाल दें। यदि पाकिस्तान कुछ मुद्दों पर उत्सुक है तो भारत भी उतना ही उत्सुक है। यदि मुद्दों को ठंडे बस्ते में डालने में दोनों पक्षों को त्याग करना

पड़े तो पाकिस्तान को यह समझना पड़ेगा कि वह सिर्फ वही मुद्दे नहीं उठा सकता जिसके लिए वह इच्छुक है और बाक़ी मुद्दे नेपथ्य में चले जाएँ। यदि वार्ता प्रारंभ होनी है तो भारत को कदाचित् सबसे पहले पाकिस्तान के सामने विभाजन से पूर्व के ऋणों के भुगतान एवं विस्थापितों की संपत्तियों से संबंधित दावों के निपटान का प्रश्न उठाना चाहिए। श्रेष्ठतर यही होगा कि इस समय हम ज़्यादा मोल-भाव नहीं करें।

अब अयूब नेहरू को जवाब दें

जहाँ तक परस्पर अविश्वास और भय का सवाल है, अनाक्रमण समझौता, जिसका प्रस्ताव प्रधानमंत्री ने किया है, सर्वथा उचित है। प्रधानमंत्री पहले ही पाकिस्तान को आश्वासन दे चुके हैं कि भारत अपनी ओर से युद्ध की शुरुआत नहीं करेगा। क्या पाकिस्तान को समुचित जवाब नहीं देना चाहिए। यदि वह चीन के साथ अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर की सोच सकता है तो भारत के साथ यही करने में उसे क्या चीज रोक रही है? यदि वह हिचकिचा रहा है तो निश्चित रूप से इसका अर्थ है कि उसके तरकश में कुछ और तीर हैं। साम्यवादी विस्तारवाद को रोकने के प्रयास में पाकिस्तान का शस्त्रीकरण कर रहे पश्चिमी देशों को सिर्फ पछतावा हाथ लगेगा।

भारत के प्रति पाकिस्तान के रवैये से इसका संकेत मिलेगा कि वह साम्यवाद का समर्थक है या विरोधी।

—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 10, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



भारतीय जनसंघ, दशम वार्षिक अधिवेशन; भोपाल महामंत्री प्रतिवेदन*

26, 27 मई, 1962 को कोटा में भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक में तृतीय आम चुनावों के संबंध का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। अतः उसके उपरांत चालू वर्ष में जनसंघ के कार्य का वृत्त ही यहाँ दे रहा हूँ।

भारतीय प्रतिनिधि सभा ने कोटा के अधिवेशन में यह निर्णय लिया था कि विभिन्न प्रदेशों और केंद्र में नए करें का, विशेषकर जिनका परिणाम जनसामान्य पर एवं उत्पादन पर प्रतिकूल पड़ता हो, डटकर विरोध किया जाए। 1 जुलाई, 1962 से रेल के किरायों में बढ़ोतरी होनी थी। उस दिन इस वृद्धि के तथा सामान्यतः अन्य नए करें के विरुद्ध रेलवे स्टेशनों पर प्रदर्शन करने का निश्चय हुआ। प्रदर्शन शांतिपूर्ण हों, यात्रियों तथा रेल कर्मचारियों को कोई असुविधा न हो तथा कानून भंग न हो, यह भी तय हुआ था। तदनुसार संपूर्ण देश में छोटे, बड़े सभी स्टेशनों तथा सभी गाड़ियों पर प्रदर्शन हुए। स्थान-स्थान पर यात्रियों में परचे बाँटकर उन्हें इन करें के विषय में भी समझाया है। एकाध स्थान को छोड़कर जहाँ रेलवे कर्मचारियों ने प्लेटफार्म टिकिट नहीं दिए, अथवा प्लेटफार्म टिकिट होने पर भी पुलिस ने कुछ प्रदर्शनकारियों को बंदी बना लिया, कोई अप्रिय घटना नहीं हुई। हमारी ओर से प्रदर्शन अनुशासनपूर्ण था तथा शासन ने भी किसी प्रकार की बाधा डालने का प्रयत्न नहीं किया। उसी दिन राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन और डॉ. विधानचंद्र राय का स्वर्गवास हुआ।¹ अतः अनेक स्थानों पर या तो प्रदर्शन स्थगित कर दिए गए अथवा मूक हुए।

केंद्रीय करें में वृद्धि के अतिरिक्त राज्यों में भी नए-नए करें और पुराने करें में

* देखें परिशिष्ट IV, पृष्ठ 331 तथा परिशिष्ट VI, पृष्ठ 337।

1. राजर्षि टंडन और प. बंगाल के मुख्यमंत्री विधानचंद्र राय का निधन 1 जुलाई, 1962 को हुआ था।

वृद्धि के प्रस्ताव आए। भू-राजस्व की वृद्धि प्रायः सभी राज्यों में किसी-न-किसी रूप में की गई। बिक्रीकर में भी भारी बढ़ोतरी हुई। कुछ राज्यों ने नगर क्षेत्र में, नगरपालिकाओं के गृहकर अथवा संपत्ति कर होते हुए भी प्रांतीय कोष के निमित्त अलग से संपत्ति कर लगा दिया। ये सब कर निश्चित ही प्रतिगामी रूप के थे। फलतः भारतीय जनसंघ की शाखाओं ने इनका डटकर विरोध किया। गुजरात, पंजाब, बिहार, आंध्र में तो यह विरोध हस्ताक्षर संग्रह, सभाएँ, प्रदर्शन आदि तक ही सीमित रहा, किंतु मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में इस विरोध के परिणामस्वरूप भारी संख्या में लोगों को जेलयात्रा भी करनी पड़ी। मध्य प्रदेश का सत्याग्रह विधानसभा की सत्रावधि तक ही था। इस सत्याग्रह में जनसंघ के विधायकों, संसद् सदस्यों तथा अन्य कार्यकर्ताओं के साथ-साथ प्रदेश के किसानों ने भारी तादाद में भाग लिया था। सत्याग्रह के पूर्व सभाओं, हस्ताक्षर संग्रह अभियान तथा प्रदर्शन आदि के कार्यक्रमों के द्वारा संपूर्ण प्रदेश का जनमत जाग्रत् एवं संगठित हो गया था। जनसंघ के साथ ही प्रदेश के अन्य विरोधी दल भी सत्याग्रह में सम्मिलित हो गए थे। जनमत के दबाव का परिणाम यह हुआ कि शासन ने छोटी अराजियों को दस एकड़ तक, इस नई वृद्धि से मुक्त कर दिया। विधेयक पारित होने के उपरांत जनसंघ का शिष्टमंडल राज्यपाल से मिला था। उनसे निवेदन किया था कि वे इस विधेयक पर अपनी स्वीकृति न दें। अभी तक यह स्वीकृति नहीं दी गई है।

उत्तर प्रदेश में शासन की ओर से लगान में वृद्धि की संभावनाओं की घोषणा होने के तुरंत बाद ही जनसंघ ने गाँव-गाँव में जनता को प्रस्तावित कर की अनुपयुक्तता को समझाने तथा उसको संगठित करने का कार्यक्रम लिया। कानपुर की प्रतिनिधि सभा एवं कार्यकर्ताओं के अध्ययन वर्ग में इस आंदोलन को और तीव्र करने का निश्चय हुआ। सात सदस्यों की एक संघर्ष समिति भी बनाई गई।

शासन ने भूमि कर में वृद्धि के प्रस्तावों के पूर्व ही नगर क्षेत्र संपत्ति कर विधेयक प्रस्तुत कर दिया। संपूर्ण प्रदेश की जनता इस कर से अत्यंत क्षुब्ध हुई। राजनीतिक दल इस कर के संबंध में असावधान थे। भारतीय जनसंघ ने एकदम 7 सितंबर को इस कर के विरोध में प्रांतव्यापी हड़ताल करने का निर्णय लिया। उस दिन कर-वृद्धि विरोधी दिवस मनाने का निर्णय इसके पूर्व ही लिया जा चुका था। सभी प्रमुख नगरों में पूरी-पूरी हड़ताल रही। नगरपालिकाओं द्वारा भी इस कर के विरोध में प्रस्ताव पारित करवाए गए। लखनऊ में इसी दिन विधानसभा के सम्मुख प्रदर्शन किया गया। पाँच हजार से अधिक प्रदर्शनकारी इसमें सम्मिलित थे।

जनमत का दबाव इतना बढ़ता गया कि उसके परिणामस्वरूप कांग्रेस दल में भी लगान-वृद्धि के प्रश्न को लेकर दो गुट बन गए। पर अंदर और बाहर का इतना व्यापक विरोध होते हुए भी शासन अपने हठ को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। फलतः यह

निश्चय किया गया कि प्रत्येक विधायक को अपील की जाए कि वह इस प्रतिगामी एवं जनविरोधी विधेयक का विरोध करे। इस हेतु दिनांक 1 अक्टूबर से विधानसभा के समक्ष धरना देने का कार्यक्रम लिया गया। आगे संघर्ष और बढ़ सकता है, इस दृष्टि से तैयारी करने के लिए प्रत्येक ग्राम से ग्रामवीरों की भरती का भी निर्णय किया। ग्रामसभाओं एवं पंचायतों से विधेयक का विरोध करनेवाले प्रस्ताव भी पारित करवाए गए। राज्यपाल को प्रदेश भर से पत्र भेजकर लगान वृद्धि न करने का आग्रह किया गया। साथ ही विधानसभा को विभिन्न जिलों से हस्ताक्षर संगृहीत कर कई याचिकाएँ प्रस्तुत की गईं। विधानमंडल में भी विधेयक का प्रत्येक पग पर विरोध करने का निर्णय लिया गया।

विधानसभा के समक्ष शांतिपूर्ण धरना देने वालों को शासन ने बंदी बनाना आरंभ कर दिया। फलतः एक के बाद एक जत्था इस हेतु आगे आने लगा। प्रदेश से संसद् के तथा विधानसभा के कुछ सदस्यों ने उनका नेतृत्व किया। दिनांक 1 अक्टूबर से प्रारंभ होकर 18 अक्टूबर तक कार्यक्रम चला। इसी समय उत्तर-पूर्व सीमांत एवं लद्दाख में कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण के परिणामस्वरूप युद्धजन्य संकट की स्थिति पैदा हो गई। राष्ट्रपति ने संपूर्ण देश का आह्वान कर एकजुट होकर शत्रु के विरुद्ध मोरचा लेने की अपील की। संघर्ष समिति ने इस परिस्थिति में आंदोलन समाप्त करने का निर्णय लिया। शासन ने भी विधेयक को स्थगित कर दिया।

राजस्थान में प्रदेश शासन ने नगरपालिका क्षेत्र में अनिवार्य गृहकर का आदेश दिया। जनसंघ ने माँग की कि यह कर नगरपालिकाओं की इच्छा पर छोड़ दिया जाए तथा उसकी दरें कम की जाएँ। साथ ही जहाँ पर निर्वाचित नगरपालिकाएँ नहीं हैं, वहाँ निर्वाचन तक यह कर न लगाया जाए। इस हेतु प्रांत भर जनजागरण किया गया। कर में कुछ सुविधाएँ मिल गईं। 1 अप्रैल, 1960 के स्थान पर 1 अक्टूबर, 1962 से कर लगाना तय हुआ तथा साठ रुपए तक के वार्षिक किराए के स्थान पर एक सौ बीस रुपए तक के वार्षिक किराए के मकानों को इस कर से छूट मिल गई। संकट की स्थिति उत्पन्न होने के कारण आंदोलन को आगे न चलाने का निर्णय लिया गया।

बिहार में भूमि कर में वृद्धि के साथ-साथ भूमि के रूप में लेवी की योजना भी शासन ने रखी। भारतीय जनसंघ ने दोनों का डटकर विरोध किया। गाँवों में सभाएँ की गईं तथा विधानसभा के समक्ष 3 सितंबर, 1962 को एक बड़ा भारी प्रदर्शन किया गया। आंदोलन और युद्ध संकट से जो स्थिति उत्पन्न हुई, इसे देखते हुए शासन ने दोनों ही प्रस्ताव स्थगित कर दिए हैं।

कश्मीर

संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर के विवाद पर भारत ने असंदिग्ध एवं दृढ़तापूर्वक

अपने पक्ष का प्रतिपादन किया। जनसंघ जिस दृष्टिकोण को बराबर प्रस्तुत करता आ रहा था, यह उनके अनुरूप ही था। किंतु कश्मीर की संवैधानिक स्थिति इस दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है। इस विसंगति को दूर करना उसके भविष्य तथा वहाँ के नागरिकों को भारतीय संविधान में प्राप्त सभी अधिकारों का पूर्ण उपभोग कराने की दृष्टि से आवश्यक है। भारतीय जनसंघ ने संविधान के अनुच्छेद 370 को समाप्त कर कश्मीर को भारत के अन्य राज्यों के समक्ष लाने की माँग रखते हुए दिनांक 3 जून, 1962 को देश भर में कश्मीर दिवस मनाया। प्रजा परिषद् ने राज्य में जनमत को संगठित करने तथा आवश्यकता हुई तो सक्रिय आंदोलन छेड़ने की तैयारी की। युद्ध संकट के कारण यह आंदोलन भी स्थगित कर देना पड़ा, किंतु पाकिस्तान के साथ बातचीत में कश्मीर प्रश्न को समाविष्ट करके एक नई दुविधा की स्थिति उत्पन्न कर दी गई है। उसका विचार कर कश्मीर की रक्षा के लिए हमें आवश्यक उपाय योजना करनी होगी।

राजभाषा एवं आकाशवाणी की हिंदी

संविधान में हिंदी को केंद्र की राजभाषा स्वीकार किया है तथा प्रदेशों को अपने क्षेत्र की भाषाओं को राजभाषा स्वीकार करने की छूट दी है। किंतु पंद्रह वर्ष तक अंग्रेजी को बनाए रखने का भी प्रविधान किया गया है। शासन ने कुछ अंग्रेजी भक्तों को तुष्ट करने के लिए घोषणा की कि वह अंग्रेजी को सदैव के लिए 'सखी भाषा' बनाने के लिए विधेयक लाएगी। निश्चित ही यह पग भाषा की दृष्टि से राष्ट्रीयता पर कुठाराघात करनेवाला था। भारतीय जनसंघ ने निश्चय किया कि इस विधेयक का डटकर विरोध किया जाए। इस हेतु जनसंघ ने मंच के अतिरिक्त अन्य दलों एवं स्वतंत्र व्यक्तियों तथा आगे आने वाले कांग्रेस जनों का भी सहयोग लेकर आंदोलन करने का निर्णय लिया। डॉ. रघुवीर² ने भारतीय भाषा सम्मेलन के रूप में एक निर्दलीय पीठ का निर्माण किया। जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने उसमें पक्षातीत भूमिका से सहयोग दिया। साथ ही जनसंघ की ओर से संसदीय क्षेत्रों में सम्मेलन आयोजित हुए तथा वहाँ के निर्वाचित प्रतिनिधि को आदेश दिया गया कि वह इस विधेयक का विरोध करें। दिनांक 19 अक्टूबर को संसद् के समक्ष एक भारी प्रदर्शन का भी आयोजन किया गया था। किंतु युद्ध के कारण स्थिति बदल गई। शासन ने हमारे इस प्रस्ताव को मान लिया कि संकटकालीन स्थिति में

2. डॉ. आचार्य रघुवीर (1902-1963) महान् भाषाविद्, कोशकार, शब्दशास्त्री तथा भारतीय धरोहर के मनीषी थे। इन्होंने 4 लाख शब्दों वाला अंग्रेजी-हिंदी तकनीकी शब्दकोश के निर्माण का महान् कार्य कर राष्ट्रभाषा हिंदी का शब्द भंडार बढ़ाया, वहीं दूसरी ओर विश्व में विशेषतः एशिया में फैली हुई भारतीय संस्कृति की खोज कर उसका संग्रह एवं संरक्षण किया। ये भारतीय संविधान सभा के सदस्य रहे थे और दो बार (1952 व 1958) राज्य सभा के लिए चुने गए। नेहरू की आत्मघाती चीन-नीति से खिन्न होकर 1961 में कांग्रेस से अलग होकर भारतीय जनसंघ के साथ आ गए तथा 1963 में जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष बने।

इस महत्वपूर्ण एवं विवादग्रस्त विधेयक को वह उपस्थित न करे।

हिंदी के सार्वदेशिक स्वरूप को देखते हुए यह स्वाभाविक है कि प्रशासन के काम-काज की हिंदी संस्कृत बहुल हो। आकाशवाणी के हिंदी समाचारों का प्रसारण देश के सभी केंद्रों से होने के कारण वे देश भर में समझे जा सकें, ऐसी भाषा में होने चाहिए। इसी आधार पर पिछले पंद्रह वर्षों से आकाशवाणी की हिंदी संबंधी नीति चल रही थी। किंतु इस वर्ष कुछ राजनीतिक कारणों से सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने निश्चित किया कि वे 'चाँदनी चौक' की हिंदी में समाचारों को प्रसारित करेंगे। उनकी यह नीति हिंदी को सार्वदेशिक भाषा बनाने के लक्ष्य तथा संविधान के तत्संबंधी निर्देश के विरुद्ध है। चारों ओर से इस नीति का विरोध हुआ। भारतीय जनसंघ ने भी जनमत जाग्रत किया। कहने को तो इस नीति का परित्याग कर दिया है, किंतु व्यवहार में समाचार-प्रसारण की भाषा दिन प्रतिदिन बदलती जा रही है तथा उसमें जान-बूझकर फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का अधिकाधिक समावेश किया जा रहा है।

कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण का विरोध

दिनांक 8 सितंबर को कम्युनिस्ट चीन ने भारतीय सीमाओं का अतिक्रमण किया। यह अतिक्रमण उत्तर-पूर्वी सीमा के क्षेत्र में था। इससे यह संकेत मिलता था कि चीन एक नया मोरचा खोलना चाहता है। उस समय प्रधानमंत्री देश के बाहर थे तथा रक्षा मंत्री भी संयुक्त राष्ट्रसंघ की बैठक के लिए जानेवाले थे। आक्रमण की आशंका के कारण रक्षामंत्री से माँग की गई कि वे अपनी विदेश-यात्रा स्थगित कर दें तथा सीमा की सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था करें। किंतु स्थिति सामान्य है, यह कहकर वे चले गए। धीरे-धीरे आक्रमण की गंभीरता सामने आती गई। अक्टूबर के तीसरे सप्ताह में चीनी सेनाओं ने बड़े पैमाने पर आक्रमण बोल दिया। यह स्पष्ट हो गया कि अब लड़ाई केवल कुछ चौकियों की नहीं, बल्कि अघोषित संपूर्ण युद्ध है। भारतीय जनसंघ ने स्थान-स्थान पर माँग की कि इस युद्ध की भीषणता को समझकर पूरी तैयारी से उसे लड़ा जाए। राष्ट्रपति ने संकटकालीन स्थिति की घोषणा की। राष्ट्र से एकजुट होकर संकट का सामना करने की अपील की। देश ने जिस एकता और राष्ट्रभक्ति का परिचय दिया है, वह सबके सम्मुख है।

भारतीय जनसंघ प्रारंभ से ही कम्युनिस्ट चीन के संकट से देश को सचेत करता रहा है। इस गंभीर स्थिति में भी उसके कार्यकर्ता स्थान-स्थान पर आगे आए। उन्होंने जनोत्साह के प्रभावी प्रकटीकरण, रचनात्मक सहयोग तथा जनता के मनोबल के दृढीकरण की दृष्टि से प्रयास किया। बंबई और पंजाब के कार्यकर्ताओं ने सबसे जवानों के लिए रक्त लेने का कार्यक्रम बनाया। तदुपरांत शासन ने भी इस कार्यक्रम को स्वीकार कर रक्तदानियों से रक्त लेने की व्यवस्था की। इसी प्रकार सेना के लिए गरम कपड़े तथा

अन्य सामान, सुरक्षा कोष के लिए धन आदि के एकत्रीकरण का कार्यक्रम भी स्थान-स्थान पर लिया गया। नागरिक सुरक्षा व्यवस्था में भी कार्यकर्ता पूर्ण उत्साह के साथ भाग ले रहे हैं।

आंध्र प्रदेश ने 26 अक्टूबर को ही 'सुरक्षा दिवस' मनाया। गुजरात में चीन के युद्ध विराम के बाद दिनांक 25 नवंबर से 'दृढ़ता सप्ताह' मनाया गया। महाराष्ट्र 1 दिसंबर से लेकर 25 दिसंबर तक 'जन जागरण' का अभियान लिया। इसके अंतर्गत छोटे-छोटे क्षेत्रों में जनता को इकट्ठा करके नक्सों की सहायता से चीनी आक्रमण की स्थिति को समझाया। अकेले बंबई नगर में इस अवधि में तीन हजार से अधिक सभाएँ की गई हैं।

अन्य प्रांतों में भी जनसभाओं के द्वारा जनता को स्थिति की जानकारी दी गई।

श्री बलराज मधोक ने इस वर्ष दो बार उत्तरी सीमांत का दौरा किया। एक बार वे लद्दाख के क्षेत्र में गए तथा अभी हाल ही हिमाचल क्षेत्र में होकर आए हैं। शिमला और राजपुर बुशयरा में 'हिमालय बचाओ' सम्मेलन किए गए। समाजवादी दल के साथ इस प्रकार के सम्मेलन दिल्ली, पटना आदि स्थानों पर भी हुए।

बंगाल, सिक्किम एवं आसाम क्षेत्र में युद्ध के बाद श्री नानाजी देशमुख, श्री भाऊराव जुगादे³ तथा श्री भैरोसिंह ने भी दौरा किया।

पश्चिमी बंगाल में भी पाकिस्तान के सीमा क्षेत्र में स्थिति गंभीर है। वहाँ पाकिस्तानियों का अनुप्रवेश एवं षड्यंत्र बराबर चलता रहता है। श्री हरिपद भारती एवं भाऊ जुगादे ने उस क्षेत्र का दौरा करके वहाँ की जनता को आश्वस्त एवं राष्ट्रीय शक्तियों के संगठन की क्रियात्मक व्यवस्था की।

राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न पक्षातीत है। दुःख है कि शासन ने इस प्रश्न को इस दृष्टि से नहीं लिया। केंद्रीय स्तर पर जो समितियाँ बनाई गई हैं, वे सबका प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। प्रदेशों में भी मनमाने तरीके से समितियों का निर्माण हुआ है। सभी स्थानों पर कांग्रेस की संख्या और पद दोनों की दृष्टियों से प्रभुत्व बना रहे, इसका विशेष ध्यान रखा गया है।

इतना दलीय अलगाव का भाव होते हुए भी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति शासन की नीति आश्चर्यजनक एवं दुःखद है। कम्युनिस्टों को सुरक्षा समितियों में स्थान देने तथा उनका सहयोग लेने में अपने को कृतकृत्य मानने की प्रवृत्ति सब जगह दिखी है। किंतु जनता के सामने कम्युनिस्टों की कलाई खुल चुकी है। वह नहीं चाहती कि रक्षा प्रयत्नों में पंचमांगी तत्वों को शामिल करके सुरक्षा का मखौल बनाया जाए तथा भारी खतरा मोल लिया जाए। भारतीय जनसंघ ने गैर-कम्युनिस्ट एवं गैर-कांग्रेसी दलों को साथ लेकर

3. भाऊराव जुगादे 1940 से संघ के प्रचारक थे, भारतीय जनसंघ की स्थापना के बाद पश्चिम बंगाल के प्रदेश मंत्री रहे।

आग्रह किया कि कम्युनिस्टों को कोई स्थान न दिया जाए। जनक्षोभ कम्युनिस्टों के इतना विरुद्ध है कि शासन को इस प्रश्न पर झुकना पड़ा है। फिर भी समिति में न होते हुए भी अन्य प्रकारों से वे उनको साथ लेकर चलने तथा प्रतिष्ठा देने की कोशिश करते हैं। अपने अलगाव को समाप्त करने तथा राष्ट्रीय शक्तियों की एकता में बाधा डालने के कुत्सित इरादे से कम्युनिस्ट एवं उनके सहयात्रियों ने जनसंघ एवं तथाकथित 'दक्षिणपंथी' तत्त्वों के विरुद्ध बड़ी तेजी से अपप्रचार प्रारंभ कर दिया है। इस षड्यंत्र में उन्होंने प्रधानमंत्री को अपना मोहरा बनाया है। उन्होंने 'प्रधानमंत्री के लिए खतरे' की बोली खड़ी की है। स्वयं ऊपर से प्रधानमंत्री की खुशामद का राग अलापते हुए अन्यो को उनका शत्रु घोषित कर रहे हैं। उनकी चाल में कुछ कांग्रेसी भी फँसते जा रहे हैं तथा शासन की नीतियों की आलोचना को शत्रुत्व का लक्षण मानकर अपनी अप्रजातांत्रीय एवं असहिष्णु प्रवृत्ति का परिचय दे रहे हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने एक परिपत्र निकालकर उन लोगों को, जो प्रधानमंत्री की आलोचना करते हैं, 'राष्ट्रोद्घोषी' घोषित कर दिया तथा उनके विरुद्ध जिहाद का आदेश दिया। प्रधानमंत्री ने श्री रंगा को लिखे गए अपने पत्र में इस परिपत्र को अनुचित ठहराया है और कहा है कि उनकी आलोचना करने के कारण कोई भी देशद्रोही नहीं हो सकता। ऐसा लगता है कि कांग्रेस में घुसे हुए कम्युनिस्टों के सहयात्री अथवा अत्यंत ही क्षुद्र दलीय वृत्ति के कुछ लोग यह खेल खेल रहे हैं अन्यथा बहुसंख्य कांग्रेसजन संकट के काल में राष्ट्रीय शक्तियों की एकता और सहयोग की उपयुक्तता तथा कम्युनिस्टों के दमन की आवश्यकता को समझते हैं।

उपचुनाव

आम चुनाव के बाद राज्यसभा तथा विधान परिषद् के चुनावों में जनसंघ ने राज्यसभा में दो स्थान⁴ (एक उत्तर प्रदेश और एक मध्य प्रदेश से) तथा पाँच विधान परिषद् के स्थान जीते। इनमें एक उत्तर प्रदेश विधानसभा क्षेत्र से, दो विदर्भ स्नातक क्षेत्र से तथा एक महाराष्ट्र अध्यापक क्षेत्र से महाराष्ट्र विधान परिषद् के लिए तथा एक विजयवाड़ा स्नातक क्षेत्र से आंध्र विधान परिषद् के लिए हैं। महाराष्ट्र और आंध्र में ये विजय विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि वहाँ की विधानसभाओं में अपना कोई प्रतिनिधि नहीं है। विदर्भ स्नातक क्षेत्र में हम दोनों स्थानों पर विजयी हुए। पिछली दो बार भी इस क्षेत्र में जनसंघ का प्रत्याशी चुना जाता रहा है।

बिहार विधान सभा में मुंगेर के उपचुनाव में विजयी होकर जनसंघ का एक और सदस्य बढ़ गया है। राजनीतिक दृष्टि से यह विजय भी बड़ी महत्वपूर्ण रही है।

4. राज्यसभा में 1962 में उत्तर प्रदेश से अटल बिहारी वाजपेयी तथा मध्य प्रदेश से विमल कुमार चोडिया निर्वाचित हुए थे।

संकटकालीन स्थिति की घोषणा के बाद उपचुनाव भी स्थगित कर दिए गए हैं। स्थानीय निकायों के चुनाव जहाँ हुए हैं, जनसंघ ने उनमें भाग लिया है। इनमें ठाणा और तेलगाँव (महाराष्ट्र), जूनागढ़ (गुजरात), बागली (मध्य प्रदेश) में जनसंघ को महत्वपूर्ण विजय प्राप्त हुई। उत्तर प्रदेश में पिछले वर्ष आम चुनावों के कारण और इस वर्ष संकटकालीन स्थिति के कारण नगरपालिकाओं के चुनाव टाल दिए हैं। राजस्थान में भी बहुत सी नगरपालिकाओं में चुनाव काफ़ी दिनों से नहीं कराए गए हैं। जनसंघ की ओर से प्रांत भर में इस संबंध में माँग भी की गई थी। केरल में नगरपालिकाओं में जनसंघ की ओर से चुनाव में प्रत्याशी खड़े किए गए थे। पालघाट, अरणाकुलम और कोचीन में वे विजयी हुए हैं। नागपुर में प्रथम बार कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य दलों के हाथ में निगम के सूत्र आए हैं। जनसंघ का वहाँ उप महापौर है।

संगठनात्मक

चुनाव के बाद संगठन को मजबूत करने, नई समितियाँ गठित करने तथा जहाँ-जहाँ चुनाव के समय हम पहुँचे हैं, वहाँ जनसंघ की शाखा खोलकर कार्य विस्तार की आवश्यकता सभी कार्यकर्ता अनुभव कर रहे थे। इस वर्ष के कार्यक्रम की रचना इसी उद्देश्य की थी। किंतु विभिन्न आंदोलनों तथा बाद में युद्धजन्य संकट की स्थिति उत्पन्न होने के कारण उस ओर जितना ध्यान देना चाहिए था, उतना संभव नहीं हुआ है। अभी तक सब प्रांतों से सदस्यता तथा समितियों की संख्या के आँकड़े प्राप्त नहीं हुए हैं। किंतु यह कहा जा सकता है कि पिछले वर्ष जितनी समितियाँ थीं, उनमें वृद्धि अवश्य हुई है।

इस वर्ष प्रादेशिक स्तर पर कार्यकर्ताओं के अध्ययन वर्ग पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, आंध्र, केरल और गुजरात में आयोजित हुए। कार्यकर्ताओं को जनसंघ के सिद्धांत और कार्यक्रम के सभी पहलुओं से अवगत कराने तथा एक साथ विचार विनिमय करके कार्य की रूपरेखा तैयार करने की दृष्टि से इन वर्गों का विशेष उपयोग हुआ है।

इस वर्ष का अधिवेशन पहले इंदौर में एक बड़े पैमाने पर करने का तय किया था। किंतु संकटकालीन अवस्था के कारण उस निर्णय में परिवर्तन कर भोपाल में तथा छोटे पैमाने पर कामकाजी स्वरूप का अधिवेशन हो रहा है। मुझे विश्वास है कि इस अधिवेशन का संगठनात्मक दृष्टि से पर्याप्त लाभ होगा।

कम्युनिस्ट चीन के भारी आक्रमण तथा राष्ट्रपति द्वारा संकटकालीन अवस्था की घोषणा से देश की राजनीतिक स्थिति भी सामान्य नहीं है। जनता की सुप्त राष्ट्रीय चेतना जाग उठी है। एकता का वातावरण बना है। विभिन्न दलों के एक मंच पर आने के कारण एक-दूसरे को समझने तथा पूर्वग्रहों से मुक्त होने का अवसर मिला है। यदि यह

सहयोग और सद्भावना का वातावरण बना रहा तो निश्चित ही देश के राजनीतिक विकास के लिए स्वास्थ्यकर होगा।

दुर्भाग्य का विषय है कि राष्ट्रीय आपत्ति के इस काल में 'फासिस्ट प्रवृत्ति' बड़ी तेज़ी के साथ बल पकड़ती जा रही है। शत्रु का सामना करने के लिए सभी दलों ने आगे बढ़कर शासन का साथ दिया है। किंतु ऐसा लगता है कि कांग्रेस का नेतृ वर्ग इतने से संतुष्ट नहीं। वह परिस्थिति का लाभ उठाकर अपने विचारों और नेतृत्व को सबके ऊपर थोपने के लिए प्रयत्नशील है। यह प्रवृत्ति प्रजातंत्र के लिए तो घातक है तथा देश को शत्रु का सामना करने के लिए सशक्त बनाने के स्थान पर दुर्बल ही करेगी। कम्युनिस्ट इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए प्रयत्नशील हैं। उनका प्रयास है कि कांग्रेस के अंदर राष्ट्रवादी और प्रजातंत्रीय शक्तियाँ दुर्बल एवं प्रभावहीन हो जाएँ अथवा अन्य शक्तियों के साथ दलीय संघर्ष में उलझ जाएँ। इस हेतु कई स्थानों पर कम्युनिस्ट अपनी पार्टी छोड़कर अथवा उसे भंग करके कांग्रेस में सम्मिलित हो रहे हैं। निश्चित ही वे कम्युनिस्ट चीन के साथ संघर्ष में शासन को पंगु बनाने का अंदर-ही-अंदर षड्यंत्र करेंगे।

राष्ट्रीय प्रजातंत्रीय शक्तियों को इस भेदनीति के विरुद्ध अत्यंत जागरूकता, एकता और सूझ-बूझ से काम करना होगा। उसे एक ओर प्रजातंत्र की दृढ़ता से रक्षा करनी होगी तथा दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता की शक्तियों में किसी भी प्रकार की दरार पड़ने से बचना होगा।

कम्युनिस्ट चीन के विरुद्ध युद्ध में संपूर्ण जनता एक होकर खड़ी है। उसकी इस एकता के भाव को स्थायी करने तथा युद्ध प्रयासों में सहयोग की व्यवस्था करनी होगी। शासन ने इस हेतु योजनाएँ बनाई हैं। हमें उनमें पूर्ण सहयोग देना चाहिए। जनता का मनोबल बनाए रखने का काम बहुत गुरुतर है। हमें अपना संगठन अधिकाधिक व्यापक एवं दृढ़ करना चाहिए, जिससे हम जनभावनाओं का प्रतिनिधित्व कर सकें तथा घोर संकट में भी उसके मनोबल को बनाए रखने में समर्थ हो सकें।

जय भारत।

— भोपाल, दिसंबर 29, 30, 1962



प्रश्न हमारे, उत्तर महामंत्री के

प्रश्न : आपका दल कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध लगाने की माँग करता है। क्या ऐसा करने पर इनकी जो गुप्त कार्रवाइयाँ चालू होंगी, वे विशेष घातक नहीं होंगी ?

उत्तर : कम्युनिस्ट पार्टी के संबंध में भारत सरकार का रुख उसकी रक्षा नीति की सबसे कमजोर कड़ी है। बिना प्रतिबंध लगाए इस नीति में ऊपर से नीचे तक परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। आज उनको खुली छूट है और इसलिए वे छद्म नीति का पालन कर जनता को धोखा दे सकते हैं। उनकी गुप्त कार्रवाइयों से अधिक खतरनाक यह नीति है। उन्हें आज सभी क्षेत्रों में अनुप्रवेश की सुविधा है। उनके प्रस्ताव और वक्तव्य आज हमें भले लगते होंगे, किंतु आगे चलकर हानिकर सिद्ध होंगे।

जहाँ तक गुप्त कार्रवाइयों का संबंध है, वे तो आज भी चल रही हैं। उनका मुकाबला तो शासन को अपने ढंग से ही करना होगा। हाँ, प्रतिबंध लग जाने के कारण उनका मनोबल एकदम टूट जाएगा तथा जनता से भी आज जो प्रश्रय उन्हें मिलता है, वह नहीं मिल पाएगा।

प्रश्न : क्या ऐसा करके साम्यवादी जगत् का रोष मोल लेना इस समय उपयुक्त होगा ?

उत्तर : कम्युनिस्ट जगत् इस कदम का बुरा मान सकता है? किंतु उसका ऐसा कोई परिणाम नहीं होने वाला, जिसकी हम विशेष रूप से चिंता करें। मिस्र और अलजीरिया में कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध है, किंतु उसके कारण उनके कम्युनिस्ट राष्ट्रों से संबंध खराब नहीं हुए। इसके विपरीत इटली और इंग्लैंड

में कम्युनिस्ट पार्टी वैध है। किंतु उनके संबंध रूस आदि देशों के साथ कोई बहुत अच्छे नहीं हैं। फिर यह प्रतिबंध संकटकालीन अवस्था तक ही है। हम अपने आंतरिक प्रश्नों को कैसे सुलझाएँ, इस विषय में हमें दुनिया के देशों की खुशी-ना-खुशी की चिंता नहीं करनी चाहिए। यदि ऐसा किया तो हमारी सर्वप्रभुता में कमी आ जाएगी।

प्रश्न : क्या राजाजी¹ के इस मत से आप सहमत हैं कि भारत सुरक्षा क़ानून अब अनावश्यक है और इसे कांग्रेस सरकार केवल दलगत स्वार्थ के लिए उपयोग करना चाहती है ?

उत्तर : जिन परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए भारत सुरक्षा क़ानून बनाया गया, वे समाप्त नहीं हुई। यदि हम उसे अनावश्यक मान लें तो यही अर्थ होगा कि हम चाहते हैं कि अब सरकार युद्ध न करे। हम तो चाहते हैं कि अपना इलाक़ा वापिस लेने के लिए भारत को पहल करनी होगी। अतः युद्ध परिस्थिति मौजूद है। रही क़ानून के दुरुपयोग की बात, इस संबंध में संसद् में आशंकाएँ प्रकट की गई थीं। वे सत्य सिद्ध हो रही हैं। सरकार ने ऐसे कई लोगों को गिरफ़्तार किया, जो चीनी आक्रमण के विरोध में अगुआ थे। हमें इस संकुचित प्रवृत्ति का अवश्य विरोध करना होगा। दलीय दृष्टि से भी यह नीति कांग्रेस के लिए लाभदायक सिद्ध नहीं होगी। आज जनता इनती जागरूक है कि उसे सहज ही न तो भुलाया जा सकता है, न डराया और दबाया जा सकता है।

प्रश्न : जनसंघ ने सरकार को पूर्ण सहयोग का वचन दिया है। फिर भी उसका नेतृत्व प्रधानमंत्री और सरकार की नीतियों की आलोचना करता है। क्या इस प्रकार की आलोचना से जनता का विश्वास सरकार पर से नहीं उठ जाएगा ?

उत्तर : सहयोग का अर्थ यह कभी नहीं है कि स्वस्थ, रचनात्मक एवं सुधारात्मक आलोचना न की जाए। वास्तव में इस प्रकार की आलोचना के अभाव में सहयोग, खुशामद या बोझा मात्र बनकर रह जाएगा। सहयोग वही कर सकता है जो स्थिति को भली-भाँति समझता हो तथा उसपर सब पहलुओं से विचार कर सकता हो। विचार विनिमय में मतभिन्नता आ सकती है। 'वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः' हर प्रश्न के अनेक पहलू इसी प्रकार सामने आते हैं।

1. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी 'राजाजी' (1878-1972) ने कांग्रेस तथा नेहरू कैबिनेट द्वारा समाजवादी नीति अपनाए जाने के विरोध में पार्टी से इस्तीफ़ा दे दिया था तथा अगस्त 1959 में 'स्वतंत्र पार्टी' की नींव रखी थी। इन्होंने कथित 'लाइसेंस-परमिट राज' को समाप्त कर मुक्त अर्थव्यवस्था की वकालत की। 1962 के आम चुनाव में इस दल को 7.89 प्रतिशत मत तथा 18 सीटें मिली थीं।

प्रजातंत्र का यही गुण है। अधिनायकवादी समाज में ऊपर से तो शक्ति दिखती है, किंतु वे अंदर से खोखले होते हैं। जो प्रजातंत्र की प्रकृति कार्यपद्धति और महत्ता को जानता है, वह आलोचना से कभी नहीं डरता बल्कि उसका स्वागत करता है। किंतु यह समझना चाहिए कि आलोचना माने विरोध नहीं है। रास्ता चलते असावधान हो जाने पर यदि आप सचेत कर दें तो यह चलने वाले का विरोध नहीं अपितु उसके साथ सहयोग है।

ऐसे भी अनेक प्रश्न होते हैं, जिनपर शासन अपना मुँह नहीं खोल सकता। उसकी कुछ मर्यादाएँ रहती हैं। किंतु विरोधी दल उन प्रश्नों पर जन-भावनाओं को मुखरित करते हैं। यदि वे यह सहयोग न करें तो शासन बड़ी कठिनाई में पड़ जाए तथा देश को हानि उठानी पड़े। सच तो यह है कि हमारे प्रधानमंत्री कुछ अधिक ही बोलते हैं, इसलिए कभी-कभी नाजुक स्थिति भी पैदा हो जाती है। यदि वे यह काम दूसरों पर छोड़ दें तो प्रजातंत्र में जो परस्पर-पूरकता अपेक्षित है, वह संभव हो जाए।

आलोचना से जनता का सरकार पर से विश्वास नहीं हटता। वास्तव में तो प्रजातंत्र में सरकार जनता की होती है। जनता का अपने ऊपर विश्वास रहा तो सरकार भी बलशाली होगी। आलोचना से, विशेषकर जब वह जन-भावनाओं को प्रतिध्वनित करते हुए उसे संगठित करती हो, तो जनता का आत्मविश्वास बढ़ता है। वह अपने आपको निस्सहाय नहीं अनुभव करती। उसे यह नहीं लगता कि जिस गलती को वह देख रही है, उसे कोई देखनेवाला या शासन को बताने वाला भी नहीं है। हर आदमी तो मन की बात शासन तक पहुँचाने नहीं जाता। प्रजातंत्र के अनेक मार्ग ही इसके साधन हैं। आलोचना से जनता के मन का असंतोष धुलकर वह अधिक क्रियाशील हो सकती है।

हाँ, आलोचना करते समय यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि जनता के मन में निराशा न आए तथा उसका मनोबल न टूटे।

प्रश्न : वर्तमान परिस्थितियों में सर्वदलीय सरकार की स्थापना क्या सुरक्षा प्रयासों में एकरूपता एवं शीघ्रता लाने में सहायक हो सकेगी ?

उत्तर : भारत में जो दलीय स्थिति विद्यमान है, उसमें सर्वदलीय सरकार संभव नहीं दिखती। हाँ, निर्दलीय सरकार अवश्य बनाई जा सकती है, जो इस बात का प्रयत्न करे कि अधिकाधिक लोगों को बिना किसी दलगत भावना अथवा पूर्वग्रहों के विश्वास में लेकर चलने का प्रयत्न करे।

प्रश्न : आपने एक वक्तव्य में विधानमंडलों को वर्तमान काल में अनावश्यक बताते हुए उन्हें भंग करने का सुझाव दिया था। क्या इस प्रकार का कोई

ऋदम हमारे लोकतंत्रीय ढाँचे को कमजोर नहीं करेगा ?

उत्तर : लोकतंत्र विधानसभाओं या कमेटियों की संख्या पर निर्भर नहीं करता। संसद् का गठन पूर्णतः लोकतंत्रीय आधार पर हुआ है। वहाँ सुरक्षा संबंधी सभी विचारों का प्रतिनिधित्व हो सकता है। संकटकाल में राज्य विधानमंडल बने रहे तो उन क्षेत्रीय एवं संकुचित भावनाओं के फिर से उमड़ आने की संभावना है, जो आज दब गई हैं। मितव्ययता, दक्षता आदि भी इससे संभव होगी। सुरक्षा की संपूर्ण ज़िम्मेदारी केंद्र पर है। अतः उसमें राज्यों और केंद्र के बीच किसी भी खींचतान की संभावना को निर्मूल करना ही उपयुक्त होगा।

प्रश्न : चीन से लंबे संघर्ष के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता होगी। उसकी पूर्ति के साधन क्या हो सकते हैं। क्या इसके लिए जनसंघ सभी टैक्सों का समर्थन करेगा ?

उत्तर : मितव्ययता, कर, ऋण और अनुदान—ये ही धन संग्रह के साधन हैं। प्रत्येक का विचार प्रस्तुत परिस्थिति में उसके गुणावगुण पर ही करना होगा। युद्ध के कारण शासन को किसी भी विषय में चेक नहीं दिया जा सकता। यहाँ यह बराबर ध्यान रखना होगा कि इन उपायों से जनता के मनोबल और शासन की दक्षता में कमी न आए तथा देश की राजनीतिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक सुस्थिरता पर विपरीत परिणाम न हों।

प्रश्न : क्या विदेश नीति में वर्तमान समय में कोई मूलभूत अंतर करने की आवश्यकता है ?

उत्तर : प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम अपनी विदेश नीति का मूलभूत आधार क्या मानते हैं। सामान्यतः हमारी विदेश नीति का 'दोनों गुटों से अलग रहने की नीति' के रूप में निरूपण किया जाता रहा है। इसमें हमें कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। किंतु इस नीति का व्यवहार अनेक बार सही रूप में नहीं हुआ तथा कुछ कारणों से यह धारणा पैदा हुई कि हम रूसी गुट की ओर कुछ अधिक झुके हुए हैं तथा अमरीकी गुट के विरोधी नहीं तो भी उसके प्रति उदासीन हैं। इस धारणा को दूर करना होगा। साथ ही अब तक हमने अपनी नीति का घोषवाक्य रखा था कि 'हम दोनों गुटों के मित्र हैं।' अब हमारा नारा होना चाहिए कि दोनों शक्ति गुटों में हमारा शत्रु कोई नहीं है। किंतु मित्रता में तो घट-बढ़ हो ही सकती है। कुछ देश हमारे साथ अधिक मित्रता बरतते हुए कम्युनिस्ट चीन के विरुद्ध युद्ध में सहायता कर सकेंगे तथा तैयार हैं। कुछ के लिए यह संभव नहीं। निश्चित ही जो साथ आ रहे हैं, उनके साथ संबंध दृढ़ करने होंगे; पर जो नहीं आ रहे हैं, उन्हें शत्रु बनाने की आवश्यकता नहीं।

गुटों से अलग रहने की नीति रूस और अमरीका के दो गुट की पृष्ठभूमि में थी। उस पृष्ठभूमि में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, किंतु अब चीन एक नई आक्रामक शक्ति के रूप में उदित हुआ है। उसके विरुद्ध नया गुट बनाया जा सकता है। भारत को उस दृष्टि से पहल करनी चाहिए।

प्रश्न : क्या सरकार की वर्तमान चीन नीति में कोई परिवर्तन आवश्यक है ?

उत्तर : चीन के प्रति अपनाई गई नीति में पूर्ण परिवर्तन अपेक्षित है। उससे दौत्य संबंध तोड़ लेने चाहिए तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में उसका किसी भी प्रकार समर्थन नहीं करना चाहिए। अब तक हमने उसके संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश पर बल दिया था, इसलिए अब भी देना चाहिए, यह युक्तिसंगत नहीं। वर्तमान स्थिति में हमें ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जिससे यह पता चले कि हमारा उसके साथ विरोध कोई अर्थ नहीं रखता। 'शटे शाय्' की नीति अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में पूरी तरह मौजूद है।

प्रश्न : नेपाल और तिब्बत नीति में आपकी दृष्टि से कौन से परिवर्तन अपेक्षित हैं ?

उत्तर : भारत के साथ सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक सूत्रों में बँधा हुआ नेपाल एक स्वतंत्र राज्य है। भारत सदैव उसकी स्वतंत्रता का आदर करता रहा है। वस्तुतः आकार में छोटा होते हुए भी नेपाल स्वतंत्र, परंपरा की दृष्टि से प्रतिष्ठा में बड़ा है, यह हमें स्वीकार करना चाहिए। पंचशील को अक्षरशः व्यवहार में लाते हुए हम अपने समान सूत्रों और हितों के आधार पर सहयोग का वातावरण पैदा कर सकते हैं। आज की स्थिति में चीन-भारत विवाद में यदि नेपाल तटस्थता की घोषणा करता है तो हमें उसका विचार भावुकतावश नहीं, यथार्थ की भूमिका पर करना चाहिए। हवन करते हाथ जलाना तो बुद्धिमाननी नहीं होगी।

जहाँ तक तिब्बत का सवाल है, उसकी स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करनेवालों को हमारा समर्थन मिलना चाहिए। दलाई लामा की सरकार को मान्यता देनी चाहिए। इससे चीन भारत संघर्ष का स्वरूप ही बदल जाएगा। साथ ही चीन के संकट से ग्रस्त सब देशों की स्वतंत्रताप्रेमी जनता को एक नया बल मिलेगा। चीन ने तिब्बत के संबंध के अपने सब वचन भंग किए हैं। अतः उनसे बँधे रहने का हमारे लिए कोई कारण नहीं।

प्रश्न : क्या पाकिस्तान से समझौता न करते हुए हम चीन का मुकाबला कर सकते हैं ?

उत्तर : हाँ, कर सकते हैं। कुछ अधिक सतर्कता और प्रयत्नों की आवश्यकता होगी। साथ ही हमें यह भी स्पष्ट करना होगा कि हम पाकिस्तान के ऊपर कोई

आक्रमण नहीं करेंगे किंतु यदि पाकिस्तान ने पहल की तो उसका परिणाम उसे भुगतना होगा। यदि भारत पाकिस्तान की शरारत नहीं रोक सकता तो वह चीन से कैसे लड़ेगा? हमें तो दोनों से यदि आवश्यकता पड़ी तो, निपटने की तैयारी करनी होगी।

फिर भी यदि पाकिस्तान से कोई स्थायी या तात्कालिक सम्मानजनक संधि हो तो वह दोनों के ही हित में होगी। चीन का संकेत दोनों के लिए समान है। यदि पाकिस्तान के शासक इस संकट को न समझते हुए भारत की परेशानी से नाजायज लाभ उठाने की सोचें तो हमें किसी प्रकार भी झुकना नहीं चाहिए। रही हमारे मित्रों की बात, तो उन्होंने हमें सहायता कम्युनिस्ट चीन का विरोध करने को दी है, पाकिस्तान को खुश करने के लिए नहीं। यदि पाकिस्तान बीच में बाधा डालता है तो यह उनका काम है कि उसे समझाएँ और यदि नहीं समझता तो उसकी असलियत को पहचानकर उसके साथ वैसा व्यवहार करें। कम्युनिस्ट चीन का विरोध करने के लिए पाश्चात्य देशों ने पाकिस्तान को सैनिक सहायता दी थी। संधि के अनुसार तो आज जबकि कम्युनिस्ट चीन अपने विस्तारवादी मंसूबों को पूरा करने के लिए सक्रिय मैदान में आ कूदा है, पाकिस्तान का कर्तव्य है कि वह उसके मार्ग में बाधा डाले। उलटे यदि वह भारत को दबाने की कोशिश करता है तो पाकिस्तान को सैन्य सहायता देते समय भारत ने जो आशंकाएँ व्यक्त की थीं, उनकी पुष्टि होगी। पाश्चात्य शक्तियों ने अभी तक जो रुख अपनाया है, उससे यह नहीं लगता कि पाकिस्तान को खुश करने के लिए भारत को कमजोर करेंगी।

प्रश्न : भारतीय जनसंघ की दृष्टि से सुरक्षा प्रयासों में किन बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है ?

उत्तर : सर्वप्रथम हमें सुरक्षा के उद्देश्यों की स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए। अब प्रश्न उत्तर की सीमाओं की रक्षा का नहीं अपितु खोई हुई सीमाओं को वापस लाने का है। देश के सभी वर्गों में शासन, सेना और जनता के मन में इसकी स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए।

इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए हमें सैनिक दृष्टि से पहल करनी होगी। तदनुरूप हमारी तैयारी चाहिए। इसका परिणाम युद्ध के विस्तार और व्यापक होने में हो सकता है। हमें इस संभावना के लिए सुसज्ज रहना होगा।

अंतरराष्ट्रीय कूटनीतिक प्रयास इस सैनिक उद्देश्य के पूरक हों। मस्तिष्क में से यह विचार निकाल देना चाहिए कि कूटनीतिक दबावों से चीन का आक्रमण समाप्त हो जाएगा। जितना हमारा सैनिक सामर्थ्य बढ़ता जाएगा उतनी अधिक कूटनीति प्रभावी होती जाएगी।

सेना का बल बढ़ाने की दृष्टि से संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों दृष्टि से विचार करना होगा। संख्या में तेजी से वृद्धि होनी चाहिए। देश के सभी स्वस्थ नागरिकों को सैनिक शिक्षा देनी चाहिए। असैनिक कामों में लगे व्यक्तियों को भी यदि सैनिक शिक्षा दी गई तो संकटकाल में रिजर्व अथवा नागरिक सुरक्षा के अतिरिक्त उनके वर्तमान कार्य में भी दक्षता बढ़ेगी। समाज के आत्मविश्वास में वृद्धि होकर उसका मनोबल दृढ़ होगा।

सेना को आधुनिकतम हथियारों से लैस करना चाहिए। उनका उत्पादन होने तक बैठे रहने की ज़रूरत नहीं। उन्हें बाहर से प्राप्त करना चाहिए। जंगल, पर्वतीय तथा गुरिल्ला सब प्रकार के युद्ध की दृष्टि से सेना का प्रशिक्षण आवश्यक है।

सेना, सरकार और जनता में परस्पर पूर्ण विश्वास की आवश्यकता है। सुरक्षामंत्री के नेतृत्व में गठित सुरक्षा-समिति एक योग्य पग है। सामान्य नीति का निर्धारण सरकार को तथा उसके अंतर्गत सुरक्षा नीति के निर्धारण की पूर्ण जिम्मेदारी सुरक्षा समिति की होनी चाहिए।

बाह्य आक्रमण के सफल प्रतिरोध के लिए आंतरिक शांति और व्यवस्था भी आवश्यक है। जनता की एकता और राष्ट्रीय भावना का उद्रेक इस दृष्टि से बड़ी पूँजी सिद्ध हो सकती है। इस भावना को सही दिशा देनी चाहिए। जो स्वयंसेवक दल बन रहे हैं, उनको रचनात्मक काम में लगाना चाहिए। भाषण और कमेटियाँ जितनी कम हों, उतना ही अच्छा। पंचमांगी तत्त्वों पर कड़ी नज़र रखनी चाहिए।

संपूर्ण अर्थव्यवस्था को शांतिकालीन विकास की पृष्ठभूमि से हटाकर युद्धकालीन अर्थव्यवस्था के रूप में ढालना चाहिए। इस दृष्टि से तीसरी योजना में काट-छाँट करनी होगी। सुरक्षा उद्योगों तथा जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना होगा। ऐश-आराम की वस्तुओं का निर्माण घटाना होगा। शासन को मितव्ययता बरतनी होगी, जिससे प्रत्येक जन उसका अनुकरण कर सके। क्रीमियों को बढ़ने से रोकना होगा।

युद्ध! अंतिम विजय तक युद्ध! यही विचार प्रत्येक भारतीय के मन में हो और उस दृष्टि से देश की सभी नीतियाँ बनें, यही संक्षेप में युद्ध-प्रयासों की सफलता की कुंजी है।

— पाञ्चजन्य, दिसंबर 31, 1962

□

59

धर्म धारण से है

राष्ट्रचिंतन में दीनदयाल जी की पुस्तक 'धर्म धारण से है?' शीर्षक से सम्मिलित यह लेख बाद में 1978 में राष्ट्रधर्म के दीनदयाल उपाध्याय स्मृति अंक में 'राष्ट्र की उन्नति उसकी आत्मा की अवहेलना करके नहीं' शीर्षक से छपा। 'राष्ट्रचिंतन' दीनदयालजी के आलेखों व भाषणों की संपादित पुस्तक है, जो 1962 में प्रकाशित हुई थी।

वास्तव में समाज धर्म के आधार पर काम करता है। इस प्रकार काम करने से स्वाभाविक रूप से जो कुछ प्राप्त होता है, वह उन्नति है। वह परम वैभव होता है। इन दोनों का सम्मिलन आवश्यक है। जैसे शरीर और आत्मा का मेल होने के बाद शरीर आत्मा के अनुसार, आत्मा की भावना को ध्यान में रखकर काम करता है, तो यह काम ही उसकी उन्नति होती है। फिर अड़चन नहीं रहती। अड़चन तो तभी होती है, जब आत्मा और शरीर के अंदर किसी प्रकार का अंतर आकर खड़ा हो जाए। आत्मा और शरीर का जैसे मेल रहता है और मेल रहने के बाद जो काम होता है, वह ठीक होता है—उसमें कभी कोई अड़चन नहीं आती। स्वाभाविक रूप से उन्नति क्या है, उसे देखना हो तो इससे पता लग जाएगा। वास्तविकता यह है कि अगर इन क्षेत्रों का मेल नहीं, आत्मा के प्रतिकूल अथवा आत्मा की अवहेलना करते हुए शरीर काम करने लगे, तो फिर वे सब क्रियाएँ उन्नति की ओर ले जानेवाली क्रियाएँ नहीं होंगी। वे अवनति की ओर ले जानेवाली क्रियाएँ होंगी। इन सबका मेल बैठाकर यदि काम किया जाएगा तो वह काम ठीक होगा। उसी प्रकार समाज और धर्म का संबंध है। समाज का आधार धर्म है।

मैंने धर्म शब्द का बार-बार प्रयोग किया है। मैं समझता हूँ कि इससे धर्म क्या है,

इसकी थोड़ी-बहुत कल्पना आपको हो जानी चाहिए। यह शब्द ही ऐसा है कि इसका प्रयोग बहुत होता है। इतना प्रयोग होता है कि आज धर्म शब्द के कई जगह अर्थ के अनर्थ भी हो गए हैं। बहुत बार तो धर्म के अंतर्गत जो चीजें नहीं आती हैं, वे भी धर्म के नाम पर लागू कर दी गई हैं। इतना भी हो गया है कि धर्म एक व्यापक शब्द होने के बाद भी जो छोटी-छोटी चीजें हैं, उसके जो छोटे-छोटे अंग हैं, उन्हीं को लोग धर्म समझने लगे हैं। इस प्रकार हमको नहीं समझना चाहिए; क्योंकि कई बार लोग धर्म का इतना ही अर्थ लगाते हैं कि धर्म यानी मंदिर, मसजिद, गिरजाघर। कहते हैं कि उनका अलग धर्म है। जो मंदिर में जाता है, वह बड़ा धर्मात्मा है। मंदिर में जाना ठीक है, यह धर्म का एक अंग है। परंतु मंदिर जाना ही धर्म नहीं है। धर्म वास्तव में क्या है? उसको भी हमें थोड़ा समझने की जरूरत है। इसलिए समझने की जरूरत है कि धर्म के नाम पर ऐसी बहुत सी चीजें चल गई हैं, जो वास्तव में धर्म नहीं हैं। कभी-कभी बहुत से लोग आकर आपके सामने खड़े हो जाते हैं और कहते हैं कि यही धर्म है। बाहर के लोग आए। अंग्रेजी का जो शब्द 'रेलिजन' है, उस शब्द ने बहुत बड़ी गलती कर दी। क्योंकि अंग्रेज जब यहाँ पर आए और यहाँ पर उन्होंने धर्म शब्द सुना तो वे धर्म का अनुवाद करने लगे। बेचारों के सामने यह कठिनाई आ गई कि धर्म का अनुवाद क्या करें? फिर धर्म जैसा व्यापक शब्द, धर्म जैसी कोई कल्पना अंग्रेजों के यहाँ पर है ही नहीं। जब उनकी समझ में नहीं आया तो उन्होंने 'रेलिजन' शब्द से धर्म का अनुवाद कर दिया। यह अनुवाद की गलती है। अनुवाद के कारण ऐसी बहुत सी गलती हो जाती हैं। नानी हो या दादी हो, कहेंगे 'ग्रांड मदर' ही। अपने यहाँ तो नानी और दादी, इनमें जमीन-आसमान का अंतर है। परंतु वहाँ पर नानी-दादी दोनों के लिए एक ही शब्द है। वहाँ पर आपकी चाहे भाभी हो या साली हो, चाहे सलहज हो, सबके लिए सिस्टर-इन-लॉ एक शब्द का प्रयोग है।

ऐसे अंग्रेजी में अनेक शब्द हैं। उनके कारण गड़बड़ी हो जाती है। इसलिए अंग्रेज लोग जब यहाँ आए तो उन्होंने 'धर्म' शब्द का अनुवाद 'रेलिजन' कर दिया। 'रेलिजन' यानी पंथ, संप्रदाय। पूजा करने की पद्धति यानी संप्रदाय। जब उन्होंने अनुवाद कर दिया तो हम भी उसका प्रयोग करने लगे और कहने लगे कि यही धर्म है। परंतु हमको धर्म शब्द का यथार्थ रूप समझना चाहिए। हम लोग हिंदू धर्म की रक्षा करने की बात करते हैं तो वह कोई 'रेलिजन' नहीं है। पर बहुत बार तो हिंदू धर्म का अनुवाद भी 'हिंदू रेलिजन' कर देते हैं, पर 'रेलिजन' जैसा अपने यहाँ पर कुछ भी नहीं। यहाँ पर वैष्णव 'रेलिजन' है। यहाँ पर सिख 'रेलिजन' है, यहाँ पर जैन 'रेलिजन' है, यहाँ पर शैव 'रेलिजन' है, यहाँ पर लिंगायत 'रेलिजन' है। वास्तव में हिंदू धर्म में अनेक 'रेलिजन' हैं, अनेक मत हैं, अनेक संप्रदाय हैं। प्रार्थना की अनेक पद्धतियाँ हैं और इन सबको

मिलाकर हिंदू धर्म है। इस प्रकार इन सबको मिलाने के बाद भी जिसे धर्म कहते हैं, वह एक ही है। यानी शैव, वैष्णव, सिख, लिंगायत और जैन उनका धर्म वास्तव में अलग नहीं है। मत अलग है, पंथ अलग है। 'धर्म' एक है। धर्म वही है, जो सबके लिए लाभकर हो, मोक्ष का मार्ग उसके द्वारा प्रशस्त होता हो। धर्म की जो साधारण व्याख्या की गई है, वह व्याख्या है 'धारणात् धर्ममाहुः'।

धारणा से धर्म है। यानी जिस चीज़ के कारण, जिस शक्ति के कारण, जिस भाव के कारण, जिन नियमों के कारण, जिस अवस्था के कारण कोई चीज़ टिके, वह धर्म है। इसलिए संपूर्ण प्रजा, जनसमाज और उससे भी अगर आगे बढ़ना हो तो सृष्टि; इसकी धारणा धर्म के द्वारा होती है। जिससे यह टिके वह है धर्म। धर्म हट जाए तो वह चीज़ टिकेगी नहीं, ख़तम हो जाएगी। इसलिए अपने यहाँ धर्म का प्रतीक बैल बताया, और धर्म के चार चरण बताए। बैल अपने पैरों के सहारे पर टिकता है। उसकी स्थिरता इन चार पैरों के सहारे पर है। कल्पना कीजिए कि किसी बैल का एक पैर टूट जाए तो वह कैसे चलेगा? उसको खड़े रहने में कठिनाई, और दो टूट जाएँ तो और भी कठिनाई, और तीन टूट जाएँ, तो बिल्कुल गिर पड़ेगा। जैसे बैल ठीक प्रकार से खड़ा रहे, ठीक प्रकार से चल सके, इसके लिए उसको चार पैर आवश्यक हैं। वैसे ही धर्म के भी चार पैर आवश्यक हैं। यानी इसके पीछे की मूल धारणा यह है कि वह टिक सके। धर्म का अर्थ है—धारणा। शरीर की धारणा के लिए भी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में अलग धर्म है। सब एक काल पर लागू नहीं होता। हमारे एक मित्र एक बार गरमी के दिनों में लखनऊ गए। वहाँ लखनऊ के पुराने नवाब रहते हैं। वे शाम के समय अपना मलमल का कुरता-टोपी पहनकर, इत्र वगैरह लगाकर आराम से घूमते हैं। उन्होंने इनसे कहा "तुम तो बिल्कुल गाँव के आदमी लगते हो।" यह सुनकर इन्होंने भी कुरता सिलवाया और इसी तरह घूमते रहे। अब दो-तीन महीने रहते-रहते जाड़ा आ गया और ये गाँव लौट गए। गाँव में वापस आए, सोचा कि गाँव के जो लोग हैं, उन्हें कुछ पता नहीं। इसलिए वे पाँच बजे अपना कुरता निकालकर इत्र वगैरह लगाकर टहलने के लिए गए। गाँव का बूढ़ा शॉल ओढ़कर लेटा था। उसने पूछा, "बेटा, कहाँ जा रहे हो?" उसने कहा, "घूमने जा रहे हैं।" बूढ़े ने कहा, "ऐसे जा रहे हो तो बीमार पड़ जाओगे।" उसने कहा, "वाह, बीमार कैसे हो जाएँगे?" आखिर में उसे निमोनिया हो गया और शॉल ओढ़ाकर लिटा दिया गया। सारी मुसीबत गाँववालों को सहनी पड़ी। उसका यह हाल हो गया, क्योंकि उसने काल का विचार नहीं किया।

किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका विचार करना पड़ता है। धर्म यानी शरीर की धारणा और शरीर की धारणा के नियम हैं, जो बदलते चले जाएँगे। समय के अनुसार बदलेंगे, स्थिति के अनुसार बदलेंगे। मन में अनेक चीज़ें हैं, उनके

अनुसार बदलेंगे। ये ऋतु के अनुसार बदलती चली जाती हैं। इसमें कोई स्थायित्व नहीं है। परंतु शरीर के साथ-साथ बुद्धि है, मन है, इस सबकी धारणा होनी चाहिए और उन सबका मेल बिठाया जाना चाहिए। वास्तव में धर्म का काम क्या है? धारणा करना और धारणा करके यह जो शरीर, मन, बुद्धि है, इन सबके बीच में एक मेल बैठाना। सामंजस्य दोनों प्रकार से बैठाय़ा जाता है। कुछ सामंजस्य बिठाने के लिए नियम बनाए जाते हैं, और कुछ सामंजस्य ऐसा बिठाया जाता है कि कितने भी नियम बना दीजिए, पर कुछ परिणाम नहीं होता। कितने भी नियम बनाए तो भी सब नियम जीवन की सभी चीज़ों को लेकर नहीं चल सकते। अनेक ऐसी स्थितियाँ आती हैं कि जब आपको नियम नहीं मिलेंगे। इसीलिए अपने यहाँ स्मृति, शास्त्र, श्रुति सबकुछ है। पर अगर ऐसी स्थिति आ जाए तो क्या करेंगे? तो आप अपने मन से पूछें। मन आपको गवाही देगा, मन आपको बताएगा, कहा भी है—“मनः पूततं समाचरेत्।” आप उसके अनुसार व्यवहार करिए, पर यह हर एक का मन नहीं कर सकता। जो इस प्रकार बन जाए कि ठीक-ठीक निर्णय ले सके, वही इसे कर सकता है।

शरीर के अंदर मन, बुद्धि और इंद्रियों का हिसाब भी बना दिया गया है। यदि प्रकृति के साथ इनका सामंजस्य बैठाने की कोशिश नहीं की गई तो अड़चन आ जाएगी। प्रकृति का विचार करना ही पड़ता है, यह मैंने पहले बताया है। देश-काल का जैसे विचार करते हैं, उसी प्रकार समस्त प्रकृति के साथ सामंजस्य होना चाहिए। प्रकृति की व्याख्या के अनुसार मन का, बुद्धि का, शरीर का, सबका सामंजस्य बैठ सके, इसका विचार करना चाहिए। वैसे ही एक व्यक्ति और अनेक व्यक्ति का भी विचार होना चाहिए। व्यक्ति अकेला भी है और अनेक भी है। उसका दूसरों के साथ संबंध आता है। भाई-भाई के बीच सामंजस्य बैठाने वाला भी कोई चाहिए। कोई इच्छा चाहिए, कोई मन की प्रकृति चाहिए। वास्तव में यह सामंजस्य बैठाने का काम भी धर्म ही करता है, जिसके कारण भाई-भाई के बीच झगड़ा नहीं होता, एक भाई दूसरे भाई से प्रेम करना सीखता है। ऐसे ही पति और पत्नी के बीच में, जिससे सामंजस्य बैठेगा, पिता और पुत्र के बीच में जिससे सामंजस्य बैठेगा, वहाँ पर उनके बीच में जिस-जिस के कारण तालमेल होगा, मिलकर काम कर सकेंगे, उनके बीच का संघर्ष मिटेगा, उनके बीच का विरोध कम होगा और एक-दूसरे को चाहते हुए ठीक से काम कर सकेंगे, वह सब चीज़ वास्तव में धर्म है। इसलिए पिता और पुत्र के बीच में पिता का धर्म यह है कि पुत्र का पालन-पोषण करे, पुत्र का धर्म है पिता की योग्य सेवा करे, पिता की आज्ञा माने। यदि दोनों ठीक प्रकार से अपने-अपने धर्म का पालन करें तो पिता और पुत्र के बीच का संघर्ष मिट जाएगा। यानी विरोध हटकर दोनों एक-दूसरे से मिलकर एक-दूसरे को सुखी बनाते चले जाएँगे। पति और पत्नी के बीच में जिससे सामंजस्य आवे, वह भी

वास्तव में एक धर्म है। अब व्यक्ति और राष्ट्र के बीच में जिससे मेल बैठ सके, वह राष्ट्र और व्यक्ति के बीच का धर्म है।

अपने राष्ट्र के साथ-साथ संपूर्ण मानव समाज है। इस मानव समाज के साथ भी सामंजस्य होना चाहिए। सारा समाज तो नष्ट हो जावे, सारे मानव समाज का नुकसान हो जावे और हमारा राष्ट्र बहुत ऊँचा हो जावे, यह भावना भी हमें अपेक्षित नहीं। जहाँ पर इस प्रकार का केवल अपना-अपना विचार किया गया, अपने राष्ट्रगत स्वार्थ का विचार हुआ, मानव समाज का विचार नहीं हुआ तो जैसा पश्चिम में आजकल चल रहा है, वहाँ पर राष्ट्र और मानव समाज के बीच में एक खाई बराबर बनी रही। हमें तो संसार के प्रत्येक प्राणी का विचार करना है। यहाँ तक कि मूक पशु-पक्षियों का भी हमें ध्यान रखना होगा। उनके हमारे बीच में कोई सामंजस्य हो सकता है क्या? दोनों के बीच का संघर्ष मिटाया जा सकता है क्या? इसका भी तो विचार करना पड़ेगा। गाय, बैल, पशु-पक्षी न जाने कितने कीटाणु एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। इन सबके बीच में एक संघर्ष की भूमिका समाप्त करके कोई एक सामंजस्य की भूमिका पैदा करने से ही सृष्टि चलेगी। फिर पशु-पक्षी तथा अपना जो चल जगत् दिखलाई देता है, इतना ही नहीं, यहाँ पर प्रकृति है, पेड़ हैं, पौधे हैं; इनके बीच में भी कोई सामंजस्य स्थापित करना होगा। आखिर इन्हीं के द्वारा हमें भोजन मिलता है। अगर आम हमें लेना है तो आम, आम का पेड़ और आम के पेड़ का स्वामी, इनके बीच में सामंजस्य लाना ही होगा।

प्रकृति के साथ भी किसी-न-किसी प्रकार का सामंजस्य बैठाकर रखना आवश्यक है। उसमें जो उल्लास है, वह हमारे जीवन में भी पैदा हो, इस प्रकार का संबंध होना चाहिए। वास्तव में एक व्यक्ति के अंदर उसके शरीर-धारण से लेकर संपूर्ण सृष्टि तक जितने भी भिन्न-भिन्न नाते-रिश्ते आते हैं, उनके बीच में सामंजस्य बैठाने का काम है; यह काम धर्म का है। हमारे यहाँ धर्म की जो व्याख्या की गई, उसमें दस लक्षण बताए गए हैं—क्षमा, अस्तेय-चोरी नहीं करना, शौच, इंद्रिय निग्रह, सत्य, बुद्धि, विद्या आदि ये धर्म के लक्षण हैं। इनके द्वारा हमारा धर्म चलता है। अब इनके आधार के ऊपर फिर बाक़ी समय-समय के नियम, व्यवस्था बनती जाती है। वह समय और स्थान के अनुसार बनती है।

—राष्ट्रचिंतन, दिसंबर 1962



स्वतंत्रता के साधन और सिद्धि

स्वतंत्रता के साधन और सिद्धि नाम से यह लेख हमें पाञ्चजन्य के स्वाधीनता विशेषांक, 1968 में से प्राप्त हुआ। यही लेख एक अन्य पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ है 1987 में। किंतु सर्वप्रथम दीनदयालजी का यह लेख उन्हीं की पुस्तक 'राष्ट्रचिंतन' में आया था।

स्वराज्य जीवंत राष्ट्र का साधारण लक्षण है। बिना स्वराज्य के राष्ट्र न तो अपना हित-संपादन कर सकता है और न अपनी अभिव्यक्ति। अतः प्राणिमात्र में जैसे प्रापेक्षणा स्वाभाविक है, वैसे ही राष्ट्र में स्वतंत्रता की चाह उसके जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। बिना इस भूख के कोई भी मानव-समूह राष्ट्र की संज्ञा नहीं पा सकता। अतः इसमें आश्चर्य नहीं कि राष्ट्रों के इतिहास में स्वराज्य की प्राप्ति, संरक्षण और संवर्धन के प्रयत्नों का ही बहुत बड़ा भाग रहा है।

जिस प्रकार प्राणों का स्पंदन ही जीवन नहीं, वैसे ही स्वराज्य ही संपूर्ण राष्ट्र का पूर्ण रूप नहीं है। सामान्य जीवन से विकास की पीढ़ी पर जैसे-जैसे प्राणी ऊपर उठता है, उसका जीवन आहार, निद्रा, भय, मैथुन जैसी प्राकृतिक क्रियाओं के अतिरिक्त निश्चित ध्येय-केंद्रित क्रिया-कलापों का साधन बन जाता है। 'ध्येय ही जीवन है,' यह वाक्य चरितार्थ होता है। राष्ट्रों के जीवन में भी स्वराज्य एक साधन है—समाज की वह स्थिति है, जिसमें वह निर्बाध रूप में अपने विवेक के अनुसार निश्चित ध्येय की ओर बढ़ सकता है।

15 अगस्त, 1947 को अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद हमें राजनीतिक स्वतंत्रता

मिली। राष्ट्र-जीवन की अभिव्यक्ति और अपने पुरुषार्थ को प्रकट करने का हमें अवसर मिला। किंतु यह अवसर भी पूर्ण और स्पष्ट नहीं था। हमारी राजनीतिक सत्ता भी काफ़ी अंशों में मर्यादित थी। देशी राज्यों के विलीनीकरण, गोवा, पांडिचेरी आदि की मुक्ति से हमने इस कमी को कुछ अंशों में पूरा किया है। किंतु पाकिस्तान का अस्तित्व भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता को अभी खंडित किए हुए है। पाकिस्तान को अलग स्वतंत्र राज्य मानना भूल होगी। वह उस मनोवृत्ति और परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है, जो भारत की राष्ट्रीय अस्मिता को समाप्त कर यहाँ परकीय राज्य और निष्ठाएँ प्रतिष्ठापित करना चाहती थी। पाकिस्तान के रहनेवाले भारतीय राष्ट्र के अंग होने के बाद भी उनका गुरुत्वाकर्षण केंद्र भारत की भूमि, जन, इतिहास, संस्कृति और सभ्यता में नहीं है। अतः पाकिस्तान भारत की गुलामी का अवशेष है। वहाँ के अपने बंधुओं को उस दासता से मुक्त किए बिना हमारी राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी ही रहेगी। शरीर में व्याप्त विष के समान वह हमें सदैव सालती रहेगी।

स्वराज्य के बाद स्वराज्य क्यों, यह प्रश्न सहज है। इसका उत्तर मनमाने ढंग से नहीं दिया जा सकता। भारत अभी तक यह उत्तर ठीक प्रकार से नहीं दे पाया है। अतः वह अपने में कुछ खोया-खोया सा अनुभव कर रहा है। यही कारण है कि विदेशी आक्रमणों के अवसर पर तो हमारी चेतना एकदम जाग्रत हो जाती है, किंतु शेष समय हम रचनात्मक रूप में अपनी शक्तियों को सँजोकर क्रियाशील नहीं हो पाते।

इस उत्तर को देने के पहले हमें एक तथ्य भली-भाँति मनोगत कर लेना होगा कि कोई भी राष्ट्र मानवों का समुच्चय मात्र नहीं, अपितु एक जीवंत इकाई है।

इस इकाई की अपनी एक विशेष प्रकृति होती है, जो केवल ऐतिहासिक क्रियाओं अथवा सामाजिक संस्कारों और वातावरण का परिणाम नहीं, अपितु मूलगत है। शास्त्र ने इसे 'चिति' कहा है। चिति ही उसके विकास की दिशा निश्चित करती है। इसी मार्ग पर आगे बढ़कर राष्ट्र अपने जीवनोद्देश्य की सिद्धि करता हुआ मानव की एकता की अनुभूति और उसकी प्रगति में योगदान कर सकता है। योगी अरविंद ने इसी तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है—“प्रत्येक राष्ट्र एक विकासोन्मुख मानवात्मा की एक शक्ति के रूप में अभिव्यक्ति है तथा वह उन सिद्धांतों के आधार पर ही जीता है, जिनका यह मूर्तमान रूप है।”

भारत की भी अपनी एक प्रकृति है। उसकी भी एक आत्मा है। उसके साक्षात्कार का प्रयत्न ही हमारा साध्य होना चाहिए। इसी के द्वारा हम अपनी समस्याओं का समाधान कर सकेंगे, अपने देश की समृद्धि तथा जन के सुख और हित की व्यवस्था कर सकेंगे, तथा मानव की प्रगति में अपना कुछ योगदान दे सकेंगे। इस ध्येय के सहारे ही हम राष्ट्र के जन-जन में प्रबल पुरुषार्थ, त्याग और तपस्या के भाव पैदा कर सकेंगे।

इसी स्थिति में उन्हें कर्म की प्रेरणा मिलेगी तथा उस कर्म की आराधना में उनके जीवन का विकास होगा। इसी से उनकी आत्मा को सुख मिलेगा।

अंग्रेजों के जाने के बाद गांधीजी ज़्यादा दिन जिंदा नहीं रह पाए तथा राज्य-सत्ता जिनके हाथों में आई, वे भारत की भाषा और भावना को न तो समझ पाए और न उसके वह सपने रख पाए, जो उसे अपने लगते। अंग्रेजों से लड़ते समय हमने चाहे जितना स्वदेशी का नारा लगाया हो, किंतु उनके जाने के बाद हमने अपने संपूर्ण जीवन को तथा अपनी समस्याओं को उसी के चश्मे से देखा। फलतः हमारी राजनीति, अर्थनीति, समाज व्यवस्था, साहित्य और संस्कृति पर अंग्रेजियत की गहरी छाप है। भारतीयता अगर कहीं दिखती है तो वह ऊपर-ऊपर है। हमारी मौलिक धारणाएँ विदेशी हैं। हमारा संविधान मुख्यतः 1935 के इंडिया एक्ट का ही थोड़ा सा सज़ा-सँवरा रूप है। मौलिक अधिकारों तथा अन्य इसी प्रकार के विषयों के संबंध में हमने उसमें जो कुछ जोड़ा है, वह बाहर के संविधानों के उधार लिया है तथा उसके ऊपर यूरोप और इंग्लैंड के राजनीतिक दर्शनों की छाप है।

विभिन्न राजनीतिक दल, वे समाजवादी हों या गैर-समाजवादी, यूरोप की राजनीतिक विचारधाराओं से ही प्रभावित हैं तथा वे भारत को किसी-न-किसी देश की अनुकृति बनाना चाहते हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू का 'समाजवाद' ब्रिटेन की मज़दूर पार्टी के समाजवाद से भिन्न नहीं था। वे प्रजातंत्र और समाजवाद, दोनों का मेल बिठाना चाहते थे। इससे एक ओर तो प्रजातंत्र के हामियों के मन में आशंकाएँ पैदा हो गईं और दूसरी ओर समाजवाद के समर्थकों को संतोष नहीं हुआ।

प्रजातंत्र और समाजवाद यूरोप की दो भिन्न-भिन्न क्रांतियों की देन हैं। कालक्रम से 'समाजवाद' नया है। उसने प्रजातंत्रीय यूरोप में विभिन्न कारणों से, जिनमें औद्योगीकरण प्रमुख है, उत्पन्न समस्याओं और समाधान का प्रयास किया। किंतु इस प्रयास में प्रजातंत्रीय मूल्यों की बलि देनी पड़ी। जिनकी प्रजातंत्र में विशेष आस्था नहीं थी, उन्होंने तो इसकी चिंता नहीं की, किंतु शेष समाजवाद के प्रति शंकाकुल हो गए। उनमें से कुछ ने तो समाजवाद को त्याग्य समझकर छोड़ दिया। कुछ ने समाजवाद और प्रजातंत्र, दोनों का समन्वय करने का प्रयत्न किया। किंतु यह अभी तक संभव नहीं हो पाया है। कुछ विचारक यह मानते हैं, किंतु यह कभी संभव नहीं होगा।

भारत ने भी पंडित जवाहरलाल नेहरू के शासनकाल में प्रजातंत्रीय समाजवाद का नारा लगाया। हमें इसमें सफलता नहीं मिली, क्योंकि अभी तक हम प्रजातंत्र और समाजवाद, दोनों के उस स्वरूप और विवेचन के आधार पर ही प्रयत्न कर रहे हैं, जो मूलतः विदेशी और अधूरा है। गंभीरता से विचार करें, तो ये दोनों ही विचारधाराएँ जीवन के एक-एक पहलू और उनसे संबंधित सत्यों की अभिव्यक्ति करती हैं। उनका

समन्वय संभव है। किंतु वह तभी होगा, जब हमारा दृष्टिकोण संश्लेषणात्मक हो। पश्चिम में विकसित प्रजातंत्रीय संस्थाओं एवं परंपराओं के अथवा कार्ल मार्क्स द्वारा प्रकल्पित और लेनिन-स्टालिन प्रभृति द्वारा रूस में प्रयुक्त समाजवाद के बने-बनाए ढाँचे में संपूर्ण जीवन को कसना ठीक नहीं होगा। भारत का जीवन इन दोनों कल्पनाओं से बड़ा है। अतः इस प्रयत्न में हम जो खींचतान करते हैं, उसमें हमारी हानि होती है। भारत पर पश्चिमी राजनीति का प्रक्षेपण करने के स्थान पर हमें अपने ही राजनीतिक-दर्शन का विकास करना होगा। इसमें हम पश्चिम के चिंतन का लाभ उठा सकते हैं। किंतु न तो हम उससे अभिभूत हों और न उसे ध्रुव सत्य मानकर चलें। यह देश-काल दोनों ही दृष्टि से ठीक नहीं होगा।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय राजनीति-दर्शन का विचार बिल्कुल नहीं हुआ। यह कहना सत्य नहीं होगा। किंतु अभी संकलित प्रयत्न करना बाकी है। गांधीजी की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए तथा भारतीय दृष्टिकोण से विचार करते हुए, सर्वोदय के विभिन्न नेताओं ने महत्त्वपूर्ण कल्पनाएँ रखी हैं। किंतु आचार्य विनोबा भावे ने ग्रामदान के कार्यक्रम को जो अतिरेकी महत्त्व दिया है, उससे उनका वैचारिक क्षेत्र का योगदान पिछड़ गया है। जयप्रकाश बाबू भी जिन पचड़ों में पड़ गए हैं, उससे उनका चिंतन का कार्यक्रम रुक गया है। रामराज्य परिषद् के संस्थापक स्वामी करपात्रीजी ने भी 'कम्युनिज्म और समाजवाद' लिखकर पाश्चात्य राजनीतिक दर्शनों की मीमांसा की है तथा अपने विचार रखे हैं। किंतु उनका दृष्टिकोण मूलतः सनातनी होने के कारण वे सुधारवादी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को पूर्ण कर पाते। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघ चालक श्री मा.सं. गोलवलकर भी समय-समय पर भारतीय दृष्टिकोण से वर्तमान राजनीतिक प्रश्नों का विवेचन करते रहे हैं। भारतीय जनसंघ ने भी 'एकात्म मानववाद' के आधार पर उस दिशा में कुछ प्रयत्न किया है। हिंदू सभा ने 'हिंदू समाजवाद' के नाम पर समाजवाद की कुछ अलग व्यवस्था करने का प्रयत्न किया था, किंतु वह विवरणात्मक रूप में सामने नहीं आ पाया। डॉ. संपूर्णानंद ने भी समाजवाद पर जो विचार व्यक्त किए हैं, उनमें भारतीय जीवन-दर्शन का अच्छा विवेचन है। चिंतन की इस दिशा को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

भारतीय राजनीति का विचार भारत की संस्कृति और जीवन-दर्शन से अलग हटकर नहीं किया जा सकता। भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है। सृष्टि की विभिन्न सत्ताओं तथा जीवन के विभिन्न अंगों के दृश्य-भेद स्वीकार करते हुए, वह उनके अंतर में एकता की खोजकर उनमें समन्वय की स्थापना करती है। समाजवाद और प्रजातंत्र, दोनों ही वर्ग-संघर्ष में से पैदा हुए हैं। यद्यपि दोनों का उद्देश्य इस संघर्ष को समाप्त कर एकता प्रतिष्ठापित करना है। किंतु इस उद्देश्य की सिद्धि का जो रास्ता उन्होंने

अपनाया है, उसमें वर्गों की समाप्ति न होकर केवल रूपांतर हुआ है तथा संघर्ष और अधिक भीषण हो गया है। प्रजातंत्र ने राजा और प्रजा के संघर्ष को स्थायी मानकर राजा को समाप्त किया। पर प्रजा के विभिन्न दलों में संघर्ष प्रजातंत्र की स्थायी मान्यता बन गई है। समाजवाद ने सस्वत्व निस्वत्व के बीच के संघर्ष को आधार बनाया। वर्ग बदल गए और संघर्ष समाप्त नहीं हुआ। इसका कारण पश्चिम की सभी विचारधाराओं के मूल में विद्यमान डार्विन का जीवन-संघर्ष का सिद्धांत है। सृष्टि संघर्ष पर नहीं समन्वय और सहयोग पर टिकी है। पुरुष प्रकृति के संघर्ष से नहीं, अपितु उनकी परंपराधीनता से सृष्टि बनती और चलती है। अतः वर्ग-विरोध और संघर्ष के स्थान पर परस्परालंबन पूरकता, अनुकूलता और सहयोग के स्थान पर ही समग्र क्रिया-कलापों का विवेचन और उनकी भावात्मक दिशा का निर्धारण होना चाहिए।

व्यक्ति और समाज के बीच भी कोई संघर्ष नहीं है। यदि कहीं है, तो वह विकृति है। समष्टि हित के लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में स्वैराचार में व्यक्ति का विकास नहीं, विनाश है। समष्टि के साथ एकात्मता ही व्यक्ति की पूर्ण विकसित अवस्था है। व्यक्ति ही समष्टि की पूर्णता का माध्यम और माप है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य और समाजहित अविरोधी हैं। लोकतंत्र लोक-कर्तव्य के निर्वाह का एक साधन मात्र है। साधन की प्रभाव-क्षमता, लोक-जीवन में राष्ट्र के प्रति एकात्मता, अपने उत्तरदायित्व का भाव तथा अनुशासन पर निर्भर है। यदि नागरिक में ये संस्कार न रहें तो लोकतंत्र व्यक्ति, वर्ग तथा दलों के निहित स्वार्थों के लक्षण और संवर्धन का साधन बनकर विकृत हो जाता है।

संपत्ति-संबंधी अथवा अन्य मूलाधिकार शाश्वत नहीं हैं। वे सब समाजहित सापेक्ष हैं। वास्तव में ये अधिकार व्यक्ति को इसलिए दिए जाते हैं कि उनके द्वारा वह अपने सामाजिक कर्तव्यों का निर्वाह कर सके। सिपाही को हथियार इसलिए दिया जाता है कि उससे वह समाज की रक्षा करे। यदि वह अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता तो वह शस्त्र-धारण का अधिकारी नहीं रहता। चोर और डाकू के पास हथियार नहीं रहने दिए जा सकते। इसी प्रकार व्यक्ति को संपत्ति-संबंधी अधिकार इसलिए मिले हैं कि वह अपने कर्तव्यों का पालन करे। इस कार्य के लिए समय-समय पर इन अधिकारों की व्याख्या और मर्यादा में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। संपत्ति का कोई अधिकार समाज-निरपेक्ष नहीं है।

भारतीय संस्कृति के एकात्मवादी, समन्वय-प्रधान तथा कर्तव्यमूलक दृष्टिकोण से विचार किया जाए तो प्रजातंत्र और समाजवाद परस्पर विरोधी न होकर समन्वित हो सकते हैं। किंतु यह समाजवाद राज्याधिष्ठित अथवा शासन-केंद्रित नहीं होगा। राज्य को समाज की एकमेव प्रतिनिधि संस्था मानना भूल है। इसी से राज्य को समाप्त करने का

वादा करके भी कम्युनिज्म ने राज्य को सर्वग्राही बना दिया। समाज अपने हित के लिए कुटुंब से लेकर राज्य तक तथा विवाह से लेकर संन्यास तक अनेक संस्थाओं का निर्माण करता है। व्यक्ति भी समाज का प्रतिनिधि है। यदि व्यक्ति समाजनिष्ठ न रहा तो केवल संस्थागत परिवर्तनों से काम नहीं चलेगा। इस परिस्थिति में यदि समाजवाद के उद्देश्य से राज्य अधिकाधिक जीवन का स्वामी और नियंता बनता गया, तो राज्य कर्मचारियों के भ्रष्टाचार से समाज-हित का अधिकाधिक लोप होता जाएगा तथा पूँजीवादी व्यवस्था की जिन बुराइयों को दूर करने के लिए ये संस्थागत परिवर्तन होंगे, वे और भी बढ़ जाएँगी।

अतः समाजवाद और प्रजातंत्र, दोनों की सफलता ग़ैर-सरकारी तथा राजनीति-निरपेक्ष आंदोलनों तथा शिक्षा पर निर्भर है। लोक-संस्कार का सर्वाधिक महत्त्व है। दयानंद, गांधी और हेडगेवार ने जिस प्रकार प्रेरणा पैदा की, उस ओर यदि देश का ध्यान गया, तो समाज की धारणा-शक्ति प्रबल होगी। इससे ही राष्ट्र की चिति जाग्रत् होकर, उसका विराट् प्रबल होगा। चिति और विराट् का वही संबंध है, जो आत्मा और प्राणों का है। विभिन्न संस्थाएँ शरीर की इंद्रियाँ हैं। इंद्रियाँ प्राणों से ही सजग और सक्षम होती हैं। प्राण बिना आत्मा के संचार नहीं कर सकते।

जहाँ तक राजनीति-क्षेत्र का संबंध है, वहाँ जल्दबाजी से काम नहीं चलेगा। हमें वर्तमान संविधान और उसकी मान्यताओं के अंतर्गत ही काम करना पड़ेगा। जब-जब वह समाज के हितों में बाधक होगा, उसका संशोधन आवश्यक हो जाएगा। पिछले पंद्रह वर्षों में यह अनेक बार हुआ भी है। अभी तक हमारा कोई भी सुधारवादी अथवा क्रांतिकारी कार्यक्रम संविधान की अड़चन के कारण रुका नहीं। किंतु समाज में योग्य शिक्षा तथा प्रशासन में कर्तव्यनिष्ठा के अभाव के कारण हमारे अधिकांश कार्यक्रम ऊपरी परिवर्तन मात्र रह गए हैं। अतः संस्थागत परिवर्तन के स्थान पर मानव-परिवर्तन पर अधिक बल देना होगा।

आर्थिक विकास के लिए भी वर्तमान संविधान बाधक सिद्ध नहीं हुआ। यदि बाधा रही है तो यही कि हमने देश के सभी साधनों की, जिनमें सरकारी और ग़ैर-सरकारी दोनों क्षेत्र सम्मिलित हैं, पूरी तरह सँजोकर काम नहीं किया। अभी तक हमारे यहाँ विभिन्न क्षेत्रों में शीतयुद्ध चल रहा है। सरकारी और निजी क्षेत्र एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं, पर वे इस ढंग से काम कर रहे हैं, मानो प्रतिस्पर्धा हो। यही हाल सरकारी क्षेत्र का है। इस नीति का परिणाम यह हुआ है कि सभी क्षेत्रों में साहस की कमी नज़र आती है तथा वे अधिकाधिक राज्य-मुखापेक्षी बनते जा रहे हैं। यदि संपूर्ण भारत के पुरुषार्थ और पराक्रम को प्रगट होने का अवसर मिले, तो हम पश्चिम के पूँजीवादी तथा रूस के समाजवादी युग से भी कम समय में अपनी प्रगति कर लेंगे, कारण कि कालक्रम से हम

दोनों के अनुभवों से लाभ उठा सकते हैं। पूँजीवादी देशों की प्रगति में यदि कुछ अधिक समय लगा तो उसका कारण पूँजीवादी व्यवस्था नहीं, अपितु वैज्ञानिक आविष्कारों तथा उद्योगों के विकास में लगने वाला समय भी उस कालखंड में सम्मिलित है। रूस ने जब अपना औद्योगिक विकास प्रारंभ किया तो उसे यह ज्ञान सहज ही मिल गया। हम भी आज पिछले मानव-ज्ञान का लाभ उठाकर आगे का विचार कर सकते हैं। अतः जुटकर काम हुआ तो हम तुलनात्मक दृष्टि से कम समय में अपनी अर्थनीति को सचेत और समृद्ध कर सकते हैं। थोड़ा-बहुत काम तो व्यक्ति अथवा वर्ग के स्वार्थों को जगाकर अथवा उसके जीवन की किसी एक भूख को संतुष्ट करने के नाम पर भी हो सकता है। प्रतिक्रिया से भी प्रेरणा मिलती है। पूँजीवाद और समाजवाद यही कर रहे हैं। इससे प्रेय मिल सकता है, किंतु श्रेय नहीं। श्रेय और प्रेय दोनों को प्राप्त करने के लिए राष्ट्र को आदर्शवादी बनाना होगा। चिति से इस आदर्श का निश्चय होगा। इस आधार पर विराट् जाग्रत् हुआ, तो राजनीतिक स्वतंत्रता तथा आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होगा। इसमें से ही वह विवेक और सामर्थ्य पैदा होंगे, जिनसे हम पुरानी रूढ़ियों को बदलकर तथा विदेशी प्रभावों से मुक्त होकर, नई स्वस्थ एवं चैतन्य संस्थाओं को जन्म दे सकेंगे। इसी से हमारा राष्ट्र विश्व के लिए भार न बनकर तथा परावलंबी और परमुखापेक्षी न रहकर, नए विश्व की रचना में अपना योगदान दे सकेगा। यही हमारी नियति है। यही स्वतंत्रता की साधना और सिद्धि होनी चाहिए।

— राष्ट्रचिंतन, दिसंबर 1962



61

विकेंद्रित अर्थव्यवस्था

भारतीय जनसंघ के पास एक स्पष्ट आर्थिक कार्यक्रम है, किंतु उसका स्थान हमारे संपूर्ण कार्यक्रम में उतना ही है, जितना भारतीय संस्कृति में अर्थ का है। पाश्चात्य संस्कृति भौतिकवादी होने के कारण अर्थ-प्रधान है। हम भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद दोनों का समन्वय करके चलना चाहते हैं। अतः यह निश्चित है कि जनसंघ उन अर्थ-शास्त्रियों एवं दलों से जो अर्थ के सामने जीवन के प्रत्येक मूल्य की उपेक्षा करके चलना चाहते हैं, इस मामले में सदैव पीछे रहेगा। जनसंघ हृदय, मस्तिष्क और शरीर तीनों का सम्मिलित विचार करता है। इसी कारण कुछ लोग जनसंघ पर यह आरोप भी लगाते हैं कि जनसंघ आध्यात्मिकता की उपेक्षा करता है; महर्षि अरविंद आदि आध्यात्मिक महापुरुषों की भाषा नहीं बोल पाता है। हम दोनों ही प्रकार के आरोपों का स्वागत करते हैं और इतना ही कहना चाहते हैं कि जो अर्थ समाज की धारणा के लिए आवश्यक है, जितने मात्र से व्यक्ति अपना भरण-पोषण करके अन्य श्रेष्ठ मूल्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास कर सके, उतने को ही हमने अपने कार्यक्रम में स्थान दिया है।

यह संघर्ष नहीं है

आज विश्व में दो गुटों का संघर्ष चल रहा है। एक ओर अमरीका के नेतृत्व में पूँजीवादी देश हैं तो दूसरी ओर रूस के नेतृत्व में समाजवादी अथवा साम्यवादी गुट। यद्यपि हमारी विदेश-नीति तटस्थ है, पर वैचारिक दृष्टि से हमें उनमें से एक गुट अर्थात् समाजवादी गुट में सम्मिलित होने के लिए तैयार किया जा रहा है। जनसंघ चाहता है कि विदेश-नीति के समान ही हमें वैचारिक क्षेत्र में भी तटस्थ रहना चाहिए। जो लोग पश्चिमी विचारधाराओं में पले हैं और उन विचारधाराओं में प्रयुक्त शब्दावली के आधार पर ही दुनिया की सब चीजों को समझ सकते हैं, उनका कहना है कि भारत में भी

पूँजीवाद और समाजवाद का संघर्ष चल रहा है। वास्तव में यह विश्व के वैचारिक संघर्ष की प्रतिच्छाया मात्र है, उसका अस्तित्व हमारे यहाँ है नहीं। हमारा कहना है कि निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के संघर्ष की चर्चा उठाना निरर्थक और निराधार है। हमें ऊपर उठकर समस्याओं की ओर देखना चाहिए।

व्यवस्था से पहले मनुष्य

यदि हम सूक्ष्म विश्लेषण करें तो दिखाई पड़ेगा कि दोनों के दोषों का मूल कारण एक है। उसकी जड़ें अलग-अलग नहीं हैं। अतः हम यह खोजें कि बुराई कहाँ है? बुराई का वास्तविक कारण व्यवस्था नहीं, मनुष्य है। मनुष्य ही प्रथम आता है। बुरा व्यक्ति अच्छी से अच्छी व्यवस्था में घुसकर बुराई फैला देगा। समाज की प्रत्येक परंपरा और व्यवस्था किसी-न-किसी अच्छे व्यक्ति द्वारा प्रारंभ की गई। परंतु उसी अच्छी परंपरा पर जब बुरा व्यक्ति आ बैठा तो वहाँ बुराई आ गई। राज्य-संस्था को ही लें। क्या रामचंद्रजी राजा नहीं थे? जहाँ उन्होंने अपने श्रेष्ठ जीवन से राज्य-संस्था के गौरव में वृद्धि की, वहाँ अनेकों ने दोषों से उसी को इतना अपवित्र कर दिया कि कई बार राज्य-संस्था का नाम लेने से चिढ़ उत्पन्न होती है। इसी दृष्टि से निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के संघर्ष की ओर देखें। इसकी क्या गारंटी है कि यदि कोई व्यक्ति निजी क्षेत्र में स्वतंत्र रहकर बुराई करता है तो उसके स्थान पर राज्य का व्यक्ति बैठा देने पर बुराई न फैलेगी? अतः हमारा ध्यान व्यक्ति की कर्तव्य-भावना को जगाने पर केंद्रित होना चाहिए था।

‘आर्थिक मनुष्य’ की भ्रामक कल्पना

परंतु हुआ क्या? व्यक्ति की ओर दुर्लक्ष्य और बाह्य व्यवस्था पर जोर दिया गया। निर्जीव व्यवस्था के सामने चेतन मनुष्य नगण्य माना गया। व्यक्ति के अंदर विद्यमान सद्गुणों के विकास करने के स्थान पर उनका ह्रास करनेवाले उपायों का ही अवलंबन किया गया। राष्ट्र-निर्माण की योजनाएँ बनाने वालों ने इस तथ्य को सर्वदा भुला दिया कि प्रयास करने पर मनुष्य मानव से देवता बन सकता है। उन्होंने मानव का गृहित स्वरूप ही सामने लाकर रखा। वे पूँजीवाद के आधार में एक ऐसे मनुष्य की कल्पना करके चलते हैं, जो विशुद्ध ‘आर्थिक मनुष्य’ (Economic man) है। यह केवल एक कल्पना है। ऐसा कोई व्यक्ति न कभी पैदा हुआ है और न होगा। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि मनुष्य का, चाहे वह पूँजीपति हो या मजदूर; प्रत्येक कार्य अर्थ की दृष्टि से होता हो। वह ‘अर्थ’ का विचार भले ही करता होगा, पर उसके कार्य का प्रेरक अर्थ ही नहीं हो सकता। अर्थ-शास्त्र के नियमों की कसौटी पर यदि मानवीय व्यवहार को कसा जाए तो आपको कहीं भी ‘आर्थिक-मनुष्य’ के दर्शन नहीं होंगे, बल्कि उससे कहीं

विशाल संपूर्ण मानव (Wholeman) का अस्तित्व दिखाई देगा।

पूँजीवाद का आधार यदि आर्थिक मनुष्य (Economic man) माना गया तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप समाजवाद ने सामूहिक मनुष्य (Mass man) की कल्पना की। मनुष्य को एक प्रकार (Type) मान लिया। उस (Mass man) की आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने का लक्ष्य ही सामने रखा। उसके जीवन की अन्य आवश्यकताओं की पूरी उपेक्षा कर दी गई। दोनों व्यवस्थाओं में मनुष्यता का विचार नहीं है।

मनुष्य पुर्जा बन गया

मनुष्यता की व्याख्या कठिन है। अनेक बातें समान होते हुए भी प्रत्येक मनुष्य में कुछ-न-कुछ विशिष्टता है। उसकी विविधताओं का विचार आवश्यक है। भारतीय संस्कृति ने एक विचार किया कि मनुष्य विविधताओं का स्वाभाविक विकास करते हुए भी आंतरिक एकात्मता की अनुभूति करता चले। व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वप्रथम है। जब टाटा-बिरला, व्यक्ति-स्वातंत्र्य या मुक्त प्रेरणा की बात करते हैं तो उसका अभिप्राय होता है, उनकी अपनी स्वतंत्रता, उनके कारखानों में गुलाम बने हुए लाखों-करोड़ों मजदूरों की स्वतंत्रता नहीं। हमें तो लाखों-करोड़ों मानवों की स्वतंत्रता का विचार करना है। शक्ति चाहे वह राजनीतिक हो या आर्थिक, केंद्रीकरण से व्यक्ति-स्वातंत्र्य समाप्त हो जाता है। पूँजीवाद और समाजवाद दोनों केंद्रीकरण के हामी हैं। पूँजीवाद में धीरे-धीरे मुक्त प्रतियोगिता समाप्त होकर आर्थिक शक्ति पर कुछ व्यक्तियों का एकाधिकार (Monopoly) स्थापित हो जाता है। अमरीका आदि पूँजीवादी देशों में जो बड़े-बड़े औद्योगिक साम्राज्य (Industrial Empires) बसे हुए हैं, उनकी क्या स्थिति है? आज जितने Anti Trust Laws अमरीका में बनाने पड़े हैं, उतने कहीं भी नहीं हैं। वहाँ व्यवहार व्यक्तियों के साथ नहीं, फाइलों के साथ होता है। आर्थिक शक्ति को राज्य के हाथों में सौंपने वाले समाजवाद में भी ऐसा ही होता है। राज्य की नौकरशाही भी यही करती है। परिणाम हो रहा है कि जीवन यंत्रवत् होता जा रहा है। मनुष्य का स्थान फाइलें ले रही हैं। मानवता समाप्त होती जाती है। दोनों व्यवस्थाओं में मनुष्य का विचार होता है तो परिमाणात्मक (Quantitative) आधार पर, न कि गुणात्मक (Qualitative) आधार पर।

मानववाद चाहिए

जब तक एक-एक व्यक्ति की विशिष्टता-विविधता को ध्यान में रखकर उसके विकास की चिंता नहीं करेंगे, तब तक मानवता की सच्ची सेवा नहीं होगी। समाजवाद और पूँजीवाद दोनों मनुष्य को उस आधार के निजीकरण के लिए एक-एक पुर्जा मात्र बना डाला। एक

स्वतंत्र जुलाहे को समाप्त कर उसे विशाल कारखाने का मजदूर बना दिया गया। बजाज के स्थान पर एक विभागीय स्टोर्स बना दिया गया। दर्जी के स्थान पर रेडीमेड कपड़ा लाकर रख दिया गया। मनुष्य यानी एक जंतु, जो आठ घंटे यंत्रवत् मजदूरी करे और 16 घंटे खाए। कार्य और जीवन के बीच एक दीवार खड़ी हो गई। पश्चिम के कई देशों में कहा जाता है, पाँच दिन काम के और दो दिन छुट्टी के। उन दो दिनों में केवल मस्ती, केवल खाना-पीना और मौज, काम की बात भी नहीं। अर्थात् वे पाँच दिन कमाई करते हैं और दो दिन जीवित रहते हैं। अतः हमें मनुष्य-मनुष्य के कमाई के साधनों का इस प्रकार निर्धारण करना होगा कि उसके कार्य और वास्तविक जीवन के बीच कोई खाई न रहे। हाड़-मांस के मनुष्य, जिसके पास हृदय, मस्तिष्क और शरीर, तीनों की भूख है, का ही विचार करना होगा। अन्यथा कार्य के 8 घंटों का जो अमानवीय प्रभाव (Dehumanising Effect) होता है, उसे समाप्त करने में ही उसके शेष 16 घंटे व्यतीत हो जाते हैं, उनके समाप्त होते ही, वह पुनः उन 8 घंटों के चक्र में फँस जाता है।

विज्ञान और मानवता

अतः हम पूँजीवाद और समाजवाद के चक्कर से मुक्त होकर 'मानववाद' का विचार करें। मानव-जीवन के समस्त पहलुओं का विचार कर आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन, वितरण और उपभोग के साधन तथा व्यवस्था बनाएँ। फिर उसके लिए विज्ञान का उपभोग करें। यह आवश्यक नहीं कि हम विज्ञान के पुराने प्रयोगों को ज्यों-का-त्यों अपना लें। आज हम पश्चिम की टेक्नोलॉजी की आँख मूँदकर नक़ल कर रहे हैं। इसे बंद करना होगा और टेक्नोलॉजी का प्रयोग मानवता के विकास के लिए करना होगा।

विकेंद्रित अर्थव्यवस्था

इसके लिए विकेंद्रित अर्थव्यवस्था चाहिए। स्वयंसेवी क्षेत्र (Self Employed Sector) को खड़ा करना होगा। यह क्षेत्र जितना बड़ा होगा, उतना ही मनुष्य आगे बढ़ सकेगा, मनुष्यता का विकास हो सकेगा, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का विचार कर सकेगा। प्रत्येक मनुष्य की व्यक्तिशः आवश्यकताओं और विशेषताओं का विचार करके उसे काम देने पर उसके गुणों का विकास हो सकता है। यह विकेंद्रित अर्थव्यवस्था भारत ही संसार को दे सकता है। हम नए सिरे से आर्थिक निर्माण कार्य शुरू कर रहे हैं। अतः हमें यह विकेंद्रित अर्थव्यवस्था खड़ी करने में सुविधा हो सकती है, जबकि दुनिया शायद यह बात आसानी से न कर पाए। यदि एक बार बड़े भारी कारखाने का निर्माण हो गया तो उसे समाप्त करने की बात सोचने से अनेकों व्यावहारिक कठिनाइयाँ आती हैं। उसके लिए बड़ा साहस बटोरना पड़ता है। भारी उथल-पुथल के लिए तैयार होना पड़ता है।

अतः राष्ट्र-निर्माण की इस प्रारंभिक वेला में अपना पग आगे बढ़ाते समय हम अच्छी प्रकार विचार करें।

यदि इसी चीज को खेती के क्षेत्र में लाकर देखें तो सहकारी खेती का अंतिम चित्र होगा। 'ग्राम-व्यवस्था' (Village management) उसमें किसान का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। अभी मैं उत्पादन के प्रश्न को नहीं उठाता; वह दूसरे नंबर पर है। प्रथम बात तो यह है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता छिन जाने के कारण सुख के स्थान पर दुःख आता चला जाएगा। आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्रता समाप्त हुई तो राजनीतिक क्षेत्र में भी समाप्त हो जाती है। समाजवाद और प्रजातंत्र साथ-साथ नहीं चल सकते। सच्चे प्रजातंत्र का आधार आर्थिक विकेंद्रीकरण ही हो सकता है। अतः सिद्धांततः हमें छोटे-छोटे उद्योगों को ही अपनाना चाहिए।

बेकारी का प्रश्न

अब व्यावहारिक दृष्टि से देखें। हमारी योजनाएँ श्रमप्रधान होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को काम मिलना चाहिए। आज की योजनाओं की सबसे बड़ी खराबी यह है कि उनमें देश की स्थिति और आवश्यकताओं का विचार नहीं किया गया। पश्चिम हमें बड़ी-बड़ी मशीनें दे रहा है, हम लेते जा रहे हैं। एक ऐसी अर्थव्यवस्था लाई जा रही है, जिसके कारण देश की बेकारी बढ़ती जा रही है। यदि बेकारी कम होने के स्थान पर बढ़ती ही गई तो देश की प्रगति का आधार क्या? यह मैं मान सकता हूँ कि बेकारी एकदम दूर नहीं हो सकती, पर योजनाएँ बनाने से पहले हमें 'प्रत्येक व्यक्ति को काम' के सिद्धांत को मान्यता देनी पड़ेगी। यदि इसे मान लिया गया तो योजनाओं की दिशा एवं स्वरूप बदल जाएगा, भले ही बेकारी धीरे-धीरे दूर हो।

राष्ट्रीय आय

आजकल राष्ट्रीय आय का विचार 'औसत के सिद्धांत' (Law of Average) के आधार पर किया जाता है। पर यह बहुत बड़ा भ्रम है। राष्ट्रीय आय बढ़ती जाने के बाद भी देश की गरीबी बढ़ती जा रही है। यह क्यों? राष्ट्रीय आय के बढ़ने का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति की आय बढ़े। प्रत्येक को काम दिया जाए तो गरीबी घटेगी, प्रत्येक की आय में वृद्धि होगी। इससे उत्पादन में भी वृद्धि होगी। यह सत्य है कि कम मनुष्यों का उपयोग करनेवाली बड़ी मशीनों के द्वारा भी उत्पादन बढ़ सकता है, पर वह हमारे देश के लिए उपयुक्त नहीं। गांधीजी कहा करते थे, 'मैं विशाल उत्पादन चाहता हूँ, परंतु विशाल जनसमूह के द्वारा उत्पादन चाहता हूँ, (I want mass production by masses as well.)

उत्पादन का सही ढंग

अब बड़ी मशीनों के आधार पर जो उत्पादन बढ़ाने का प्रयास चल रहा है, उससे देश में बेकारी तो बढ़ ही रही है, विदेश ऋण भी बढ़ता जा रहा है। आज हमारे राष्ट्र की पूरी आय के 55 प्रतिशत के अधिक हम पर ऋण है। बढ़ते हुए विदेश ऋण के कारण विदेशी मुद्रा विनिमय की समस्या खड़ी हो गई है। अतः उसके कारण हमारा नारा 'उत्पादन करो या मर जाओ' के स्थान पर 'निर्यात करो या मर जाओ' हो गया है। हमारी भावी योजनाएँ निर्यात पर आधारित होने के कारण जो चीज़ हम पैदा करते हैं, उसका भी उपयोग नहीं कर पाते। उदाहरणार्थ, चीनी का हम स्वयं पूर्ण बाज़ार खड़ा कर सकते थे, पर हमें विदेशी मुद्रा की प्राप्ति के लिए चीनी सस्ते मूल्य पर विदेशों में बेचनी पड़ती है, अतः देश में वह महँगे मूल्य पर बेची जा रही है। अपनी गाय-भैसों को खली और भूसा न खिलाकर हम विदेशों को भेज रहे हैं और दूध के डिब्बों का आयात कर रहे हैं। वेजिटेबल घी बनाने वाली मशीनों को मँगा रहे हैं।

आज हम देश की प्रगति का हिसाब मशीनों में लगाते हैं। एक सज्जन ने अमरीका की तुलना में भारत के पिछड़ेपन का उल्लेख करते हुए इस्पात के उपभोग (Steel consumption) को मानदंड के रूप में प्रस्तुत किया। अतः उन्होंने कहा कि पूरी शक्ति लगाकर अमरीका के बराबर पहुँचना चाहिए। पर वे यह भूल गए कि अब तो प्लास्टिक का युग प्रारंभ हो गया है। अगर पाँच-दस साल में हम इस्पात के उत्पादन में अमरीका के बराबर पहुँच भी गए तो आर्थिक प्रगति का मापदंड 'प्लास्टिक' का उपयोग हो जाएगा और हम पुनः पिछड़े के पिछड़े रह जाएँगे। अतः हम जीवन-स्तर का ठीक निश्चय करें।

इसका विचार करके ही हम उत्पादन के साधनों का निश्चय करें। यदि अधिक आदमियों का उपयोग करनेवाले छोटे-छोटे कुटीर उद्योग अपनाए गए तो कम पूँजी तथा मशीनों की आवश्यकता पड़ेगी, जिससे नौकरशाही का बोझ कम होगा, विदेशी ऋण को भी नहीं लेना पड़ेगा, देश की सच्ची प्रगति होगी तथा प्रजातंत्र की नींव पक्की हो सकेगी।

—राष्ट्रचिंतन, दिसंबर 1962



धर्मराज्य क्या और क्यों?

भूमि, जन और संस्कृति के संघात से राष्ट्र का निर्माण होता है। जन और संस्कृति के कारण ही जड़भूमि चैतन्यमयी बन जाती है। भूमि और संस्कृति से ही मरणशील जन अमरता प्राप्त करता है, नित्य बदलते हुए भी स्थिर हो जाता है। उसके जीवन की दिशा और परिभाषा, व्यवहार की मर्यादाएँ और नियम इन दोनों के ही अधिष्ठान पर बनते हैं। संस्कृति तो जन और भूमि के पारस्परिक संबंधों, क्रिया-प्रतिक्रियाओं का ही परिणाम है। कुछ शास्त्रवेत्ताओं के अनुसार जन एक अमैथुनिक सृष्टि के रूप में ईश्वर की ओर से ही कुछ विशेषता लेकर पैदा हुआ है तथा उस मूल तत्त्व का विकसित स्वरूप ही संस्कृति है। अन्यो के अनुसार मानन-मानव के बीच के प्रवृत्त व्यवहार को जब एक निश्चित आदर्शोन्मुख दिशा प्राप्त होती है, तो उन व्यवहारों का मन पर संस्कार, जो स्वयं व्यवहारों का नियंत्रक भी होता है, संस्कृति कहलाती है। संस्कृति जन के कर्तव्यों का कारण एवं परिणाम दोनों ही है। भूमि के साथ जन का जो मनत्व तथा साधक-साध्य, पोषक-पोष्य, रक्षक-रक्षित, दौहक-दुध्य का नाता है, उसी से संस्कृति का साज-शृंगार होता है। तात्पर्य यह है कि भूमि, जन और संस्कृति तीनों ही अन्योन्याश्रित हैं। तत्त्ववेत्ता किसी एक या एकाधिक को विशेष महत्त्व भले ही दें, किंतु जीव, आत्मा और देह तीनों ही सत्य हैं। वैसे ही भूमि, जन और संस्कृति तीनों में से किसी एक को भी हम कम मानकर नहीं चल सकते। राष्ट्र का अस्तित्व इनके बिना नहीं रहेगा।

इन तीनों तत्त्वों के संघात से उत्पन्न राष्ट्र की रक्षा, अभिवृद्धि एवं समृद्धि जिन व्यवहारों से हो, उनका अधिष्ठान धर्म है। धर्म से ही धारणा होती है। उससे ही अभ्युदय और निःश्रेयस की उपलब्धि होती है, व्यष्टि और समष्टि के हितों का सामंजस्य धर्म से ही होता है। जैसे धर्म का पालन करनेवाला व्यक्ति देह को स्वस्थ और सक्षम बनाते हुए

आत्मा का साक्षात्कार कर जीव को भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार का आनंद प्राप्त करता है, वैसे ही धर्मानुयायी राष्ट्र, भूमि, जन और संस्कृति तीनों के लिए कल्याणकारी होता है। धर्म की यह कल्पना होने के कारण ही भूमि-पूजन, तीर्थयात्रा, मातृ-वंदना, समाज-व्यवस्था, यज्ञ-योगादि सभी का हमारे धर्म में अंतर्भाव है। यह धर्म व्यक्ति-व्यक्ति के, व्यक्ति और समष्टि के, एक समष्टि और दूसरी समष्टि के, जड़ और चेतन के सभी व्यवहारों का नियंत्रक होकर उनके संबंधों को परस्परानुकूल बनाता है। धर्म ही हमारे संपूर्ण जीवन को व्याप्त किए हुए है।

धर्म का यह स्थान होने के कारण हमारी सभी संस्थाएँ धर्माधिष्ठित रहीं। राज्य, जिसका उद्भव मूलतः राष्ट्र के रक्षण के लिए हुआ, धर्म की अवहेलना करके नहीं चल सकता। भोजन पकाने के लिए नियुक्त रसोइया ईंधन और उसकी दाहकता से विमुख होकर अपना दायित्व नहीं निभा सकता है। धारणा करनेवाले धर्म की ओर उदासीन होकर राज्य यदि चला तो वह राष्ट्र की रक्षा नहीं कर पाएगा। अतः हमारे यहाँ राज्य का स्वरूप धर्मराज्य का रखा है। उसके अन्य भेद गौण हैं। यदि राज्य धर्माधिष्ठित रहा तो वह लोकतंत्रीय हो अथवा एकतंत्रीय, दोनों ही अवस्थाओं में कल्याणकर सिद्ध होगा। इसके विपरीत लोकतंत्र और एकतंत्र दोनों के द्वारा प्रजा के उत्पीड़न के उदाहरण इतिहास में उपलब्ध हैं।

धर्मराज्य में भूमि की एकता, अखंडता और उसके प्रति श्रद्धा प्रमुख रूप में विद्यमान रहेगी। धर्मराज्य कभी संकुचित होकर नहीं चल सकता। अति तुच्छ वस्तुओं को पूज्य बना देने का धर्म का गुण है। भूमि की ओर अत्यंत श्रद्धा और आदर से देखना इसी गुण की करामात है। निस्स्वार्थ देशभक्ति धर्मातीत नहीं हो सकती। लोकाराधन धर्मराज्य का एकमेव उद्देश्य रहता है। एक भी जन के भूखे रहते हुए धर्मानुयायी शासक को भोजन करने का अधिकार नहीं। लोकरंजन के कारण ही 'राजा' की संज्ञा शासक को प्राप्त हुई है। धर्मनीति मूलतः लोकनीति होगी। धर्मभाव जन को विभक्त न देखकर उनका संपूर्णता के साथ विचार करता है। देह और अवयव के समान ही लोक एवं लोक-संस्थाओं तथा विभिन्न आधार पर बने हुए उनके विविध वर्गों का संबंध रहता है। न तो अंग की ही अवहेलना की जा सकती है और न देह की। फूल का अस्तित्व पंखुड़ियों से है तथा पंखुड़ियों की शोभा और जीवन की सार्थकता पुष्प के साथ उसके स्वरूप को बनाने और निखारने में है। पृथक्तावाद के लिए यहाँ गुंजाइश नहीं। सांस्कृतिक दृष्टि से भी धर्म एकात्मवादी है। जीवन की एकात्मता की अनुभूति ही भारतीय संस्कृति की विशेषता है तथा इस भाव से अनुस्यूत आचार संहिता ही धर्म है। निश्चित ही इस आचार-संहिता का लक्ष्य समष्टि का संरक्षण तथा व्यक्ति का विकास होगा। व्यक्ति और समाज में एक को ही लक्ष्य बनाकर चलना एकांगी है। भारतीय संस्कृति दोनों के हितों को समान रूप

से साधती है। प्रजातंत्र और समाजवाद इस युक्ति को नहीं बैठा पाए। धर्म से यह सहज संभव है।

धर्मराज्य का स्वरूप 'पंथराज्य' से बिल्कुल भिन्न है। धर्म और पंथ एक नहीं। अंग्रेजी के 'रिलीजन' शब्द से धर्म का अनुवाद करने के कारण यह भ्रम हुआ है। 'धर्म' व्यापक है। उपासना, संप्रदाय जीवन के एक अंग का ही विचार करते हैं। चार पुरुषार्थों में से एक का व्यक्तिगत आधार पर पंथ में विचार होता है। धर्म चारों पुरुषार्थों में से एक होता हुआ भी सबका अधिष्ठान है। अतः धर्म-राज्य थियोक्रेटिक स्टेट नहीं होगा। जब राजा ही धर्मगुरु हो जाता है तब थियोक्रेसी का जन्म होता है। भारत ने राजा को यह स्थान कभी नहीं दिया। राज्य में संपूर्ण शक्ति केंद्रित हो जाने पर वास्तव में थियोक्रेसी उत्पन्न होती है। शासक का मत ईश्वरवादी अथवा किसी पंथ विशेष से संबद्ध रहा तो वह उसके आधार पर संपूर्ण समाज के जीवन का नियंत्रण करता है। यूरोप में गैर-ईसाइयों तथा ईसाइयों में भी बाइबिल के मान्य सिद्धांतों के विरोध में बोलने वालों के विरुद्ध राज्य की शक्ति रही। गैलीलियो को इसीलिए जेल में डाला गया।¹ खिलाफ़त और पोपडम इसी दृष्टिकोण की उपज हैं। आज भी रूस और चीन में जो चल रहा है, वह थियोक्रेसी से भिन्न नहीं। साम्यवादियों का मजहब ईश्वरवादी नहीं किंतु मतवाद के सभी लक्षण वहाँ मौजूद हैं। समाजवाद का उद्देश्य लेकर चलने वाले सभी लोग यदि सफल हो गए तो इसी प्रकार के पंथिक राज्य स्थापित करेंगे। समाजवाद ही उनका पंथ है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक (आत्मिक को यहाँ स्थान नहीं) सभी शक्तियाँ राज्य के अधीन रहेंगी।

धर्मराज्य शक्तियों के विकेंद्रीकरण अथवा सुनियोजीकरण में विश्वास रखता है। 'राजा करे सो न्याय' का सिद्धांत यहाँ मान्य नहीं, अपितु राजा को न्याय करना चाहिए। 'न्याय' क्या है, इसका निर्णय राज्य नहीं अपितु धर्म करेगा। आज की परिभाषा में इसे संवैधानिक शासन Constitutional Government कह सकते हैं, किंतु अंतर इतना ही है कि आज का संविधान साधारण मनुष्यों के द्वारा बनाया हुआ तथा उनके हाथ का खिलौना बन गया है। अतः वे उसे मनमाने ढंग से बदलते रहते हैं। फलतः आज संविधान के अनुसार शासन होने के स्थान पर शासन के अनुसार संविधान, यही स्थिति हो गई है। धर्म के सिद्धांत द्वंद्वातीत महापुरुषों द्वारा सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का अंतर्दृष्टि से

1. गैलीलियो गैलिली (1564-1642) इटली के खगोलशास्त्री, भौतिक विज्ञानी और गणितज्ञ थे। इन्होंने आधुनिक दूरदर्शी के प्रयोग से निष्कर्ष निकाला कि अरस्तू का वैश्विक मानचित्र, जो अपने समय में व्यापक रूप से विश्वसनीय था, गलत है। इसके बजाय उन्होंने कॉपरनिकस के 'सूर्य केंद्रीय सिद्धांत' का समर्थन किया। यह बात तत्कालीन वैज्ञानिक और धार्मिक मान्यताओं के विरुद्ध जाती थी, कैथोलिक चर्चों ने इसे बाइबिल के विरुद्ध माना और इन पर मुकदमा चलाया गया। इन्हें जीवन के अंतिम आठ वर्ष रोमन साम्राज्य की कैद में बिताने पड़े थे।

साक्षात्कार करने के उपरांत निश्चित होते हैं। यहाँ लिखित नियम से अधिक अलिखित नियम का प्राधान्य रहता है। समाज अपने व्यवहार से अपनी आत्मा को अभिव्यक्त करता रहता है। नियम तथा स्मृतियाँ समाज के इन अंतराल का प्रक्षेपण मात्र होनी चाहिए। समाज स्वयं धर्मसम्मत शिष्टानुमोदित आचार का अनुगामी होने के कारण व्यवहार में कभी स्वैरभाव या स्वच्छंदता नहीं दिखाता। इस प्रकार धर्मराज्य मोबोकेसी और ऑटोकेसी दोनों ही बुराइयों से बच जाता है।

धर्मराज्य किसी किताब पर आधारित नहीं। वह स्थिर न होकर गतिमान है, किंतु उसकी गतिशीलता, अस्थिरता अथवा परागतिता का दूसरा नाम नहीं। देश और काल के अनुसार वह बदलता है, फिर भी जीवन के निश्चित सिद्धांतों के विषय में वह अपरिवर्तनशील है। यहाँ समाज की विधायिनी शक्ति राजा के पास नहीं, अपितु धर्म के पास है। व्यवहार में विधायिका शासक वर्ग से भिन्न होनी चाहिए। धर्मराज्य को साधारणतः 'रूल ऑफ लॉ' कहा गया है। किंतु जहाँ विधिनिर्माण का अधिकार शासक (Ruler) के हाथ में ही हो, वहाँ उसका व्यावहारिक अर्थ इतना ही रह जाएगा कि Rule of Law to be framed by the ruler शासन को यह अधिकार धर्मराज्य के अंतर्गत प्राप्त नहीं होगा।

धर्मराज्य आज के प्रजातंत्र से भिन्न है। प्रजातंत्र राजा का कर्तव्य होने के उपरांत भी वह मूलतः धर्म से नियंत्रित है। प्रजा का भी नियंत्रण धर्म से होता है। जैसे धर्मानुयायी प्रजाजन को दंड देने अथवा हटाने का अधिकार राजा को नहीं; वैसे ही धर्मपालक राजा को हटाने का अधिकार प्रजा को नहीं। प्रजातंत्र राजा और प्रजा के हितों में स्थायी विरोध मानकर राजा को बराबर प्रजा के नियंत्रण में रखने के लिए विरोधी दल के रूप में एक निरंतर चलने वाले विद्रोह की तलवार राजा के सिर पर लटकाकर रखता है। प्रजातंत्र का यह स्वरूप मानव विकास के उपयुक्त नहीं तथा संभवतः ईश्वर और शैतान की द्वैतवादी ईसाई विचारधारा में से उत्पन्न हुआ है। प्रजा राजा को हटा सकती है, यदि हम धर्म के विरुद्ध काम करें। राजा को हटाना प्रजा का धर्म नहीं अपितु धर्म का पालन करना प्रजा का धर्म है। जब राजा धर्म पालन के मार्ग में बाधक बन जाए तो उसे हटाना धर्म हो जाता है।

धर्म का महत्त्व अनेक स्वीकार करते हैं। किंतु वे धर्म-राज्य की घोषणा को आवश्यक नहीं समझते। वे लोग यदि अंतर्मुख होकर सोचेंगे तो उनके इस निर्णय के पीछे धर्म के संबंध में भ्रममूलक कल्पनाएँ तथा पिछली अर्द्ध-शताब्दी की राजनीति ही है। यदि हम इस दिशा को बदलना चाहते हैं तो हमें अपने राज्य के स्वरूप की स्पष्ट शब्दों में घोषणा करनी होगी। सेक्युलर स्टेट, वेलफेयर स्टेट, सोशलिस्ट स्टेट आदि अनेक नारे लगाए गए हैं, किंतु वे मूलतः भारतीय परंपरा तथा प्रकृति के प्रतिकूल होने

के कारण न तो जनता में कुछ निर्माण कर पाए हैं और न समाज में व्यवस्था ही। धर्म राज्य निश्चित ही यह जादू कर सकता है। हमारी सुप्त आकांक्षाओं को जगाने की सामर्थ्य उसमें है। हो सकता है कि 'धर्म राज्य' की कल्पना के संबंध में आज मतैक्य न हो। 'धर्म' एक सत्य होने के उपरान्त भी उसके स्वरूप-दर्शन में सदैव मतभिन्नता रही है। इसी प्रकार 'धर्मराज्य' के संबंध में भी हो सकती है। किंतु इस दृष्टि से समाजवाद आदि की भी गति कोई अच्छी नहीं। उनके संबंध में भी यही कहा जा सकता है कि जितने समाजवादी हैं, उतने ही समाजवाद के प्रकार हैं। किंतु ये सब कल्पनाएँ मूलतः विदेशी हैं, इसलिए उनको स्वीकार करने पर हमारी दृष्टि बाहर की ओर हो जाती है। 'धर्मराज्य' प्रमुखतः भारतीय कल्पना होने के कारण, मतभेद रहें तो भी, हम अंतर्मुख होकर ही सोचेंगे। राष्ट्रस्थ होकर सोचने और व्यवहार करनेवालों से देश को कभी नुकसान नहीं होगा। 'वादे-वादे जायते तत्त्वबोध' के अनुसार हमें भी धर्मबोध हो सकेगा।

—राष्ट्रचिंतन, दिसंबर 1962



परिशिष्ट

संस्कृत-सामान्य-विज्ञान-प्रश्नोत्तर-संग्रह

आदर्श

दीनदयाल उपाध्याय का मध्य प्रदेश दौरा

जनसंघ के महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय ने खंडवा व रतलाम में विशाल जनसभाओं में भाषण दिए व जनसंघ के सिद्धांतों को जनता के समक्ष रखा।

खंडवा में उपाध्याय का भाषण सुनने के लिए भारी सर्दी पड़ने पर भी जनता बैठी रही। सभा प्रारंभ होने के पश्चात् विभिन्न संस्थाओं किराना मर्चेट एसोसिएशन, जनरल मर्चेट एसोसिएशन, माहेश्वरी नवयुवक मंडल, सिंधी पंचायत, हिंदी साहित्य समिति, आरा मजदूर संघ, बरतन मर्चेट एसोसिएशन, बुधवारा मंडी महिला जनसंघ, राठौर मंडल आदि की ओर से जनसंघ महामंत्री का स्वागत करते हुए मालाएँ अर्पित की गईं। इस प्रकार का भव्य स्वागत खंडवा में आज तक किसी भी राजनीतिक दल के नेता का नहीं हुआ। सभा में श्री दीनदयाल उपाध्याय को एक थैली भी अर्पित की गई।

आज विदेशों से ऋण लेकर हमारे नेतागण यह समझते हैं कि देश की प्रतिष्ठा बाहर काफ़ी बढ़ रही है, पर इसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारा सारा आर्थिक ढाँचा विदेशियों के रंग में रंगा जा रहा है। योजनाओं के नाम पर आज देश में महँगाई बढ़ती जा रही है और टैक्सों पर टैक्स लगते जा रहे हैं। आज बाहर से खाद्यान्न मँगाने पर भी लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिलता। आपने सहकारी खेती और राष्ट्रीयकरण की सरकारी नीति का भी विरोध किया।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 4, 1962



पंजाब प्रतिनिधि सभा

आम आदमी पर कर का भारी बोझ कम किया जाना चाहिए; माल्वा टैक्स, प्रोफेशनल टैक्स आदि समाप्त होंगे।

पंजाब बीजेएस ने प्रांतीय घोषणापत्र को स्वीकार किया

अमृतसर। पंजाब जनसंघ की प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने यहाँ अपने वार्षिक सत्र में पिछले सप्ताह राज्य इकाई के लिए चुनावी घोषणा-पत्र को स्वीकार कर लिया। यह पार्टी के केंद्रीय घोषणा-पत्र के परिशिष्ट की तरह होगा।

अन्य बातों के साथ, घोषणा-पत्र करों में भारी कटौती का वादा करता है, 1953 में प्रतिपादित पार्टी की भाषा नीति को दोहराता है, स्थानीय निकायों की शक्तियों का विस्तार कर 'असली' लोकतंत्र की स्थापना का वादा करता है, कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग करना आदि, शिक्षा के राष्ट्रीयकरण के विरोध और राज्य के पिछड़े क्षेत्रों के त्वरित विकास के लिए योजनाओं की रूपरेखा बनाने की बात कहता है।

जारी किए गए घोषणा-पत्र के कुछ महत्वपूर्ण अंश नीचे दिए गए हैं—

भाषा की समस्या

केंद्र सरकार ने हमारे राज्य की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए अपना दृढ़ संकल्प व्यक्त किया है और उस हद तक वृहत्तर पंजाब के पक्ष में यह जनसंघ का एक औचित्य साधन है, लेकिन पंजाब सरकार की निम्नलिखित नीतियाँ उस विचार की विरोधाभासी हैं :

- (क) क्षेत्रीय समितियों की बहाली और आगे उन्हें सुदृढ़ करने के आश्वासन आगे चलकर हमारे राज्य की एकता को कमजोर करेंगे।
- (ख) जबकि जनसंघ पंजाबी भाषा के प्रचार और विकास के लिए सभी कदमों का स्वागत करता है, तो ऐसा लगता है कि पंजाबी विश्वविद्यालय अधिनियम 1961 के कुछ अप्रिय खंड आगे हमारे राज्य में भाषाई विवाद जटिल बना

देंगे। यह पिछले दरवाजे से पेप्सू भाषा को लाने के बराबर होगा। जनसंघ को लगता है कि पंजाबी विश्वविद्यालय अधिनियम 1961 के मुताबिक पंजाबी यूनिवर्सिटी की स्थापना आगे हमारे राज्य की एकता को कमजोर करेगी।

- (ग) भारत के प्रधानमंत्री द्वारा की गई यह घोषणा कि कुल मिलाकर पंजाब मुख्य रूप से पंजाबी बोलने वाला राज्य है, यह हमारे राज्य के द्विभाषी चरित्र और स्थिति के विपरीत होगी।
- (घ) सिख समुदाय के खिलाफ भेदभाव करने के आरोपों (जो काल्पनिक हैं और जिनका वास्तव में अस्तित्व नहीं है) की जाँच के लिए एक उच्चस्तरीय आयोग का गठन करके केंद्र सरकार द्वारा एक गलत परंपरा स्थापित की जा रही है, यह अपने आप में अनावश्यक और आपत्तिजनक है।
- (ङ) इसलिए जनसंघ महापंजाब के साथ ही भाषा की समस्या के पक्ष में अपना निश्चित निर्णय दोहराता है, जो यह 1953 के बाद से लगातार उठा रहा है।

कराधान नीति

आम आदमी पर असहनीय कर-बोझ को हल्का करने के क्रम में जनसंघ

- (क) वसूली रोकेगा और क्रय-कर निरस्त करेगा :
- (ख) बिक्री-कर से जीवनोपयोगी वस्तुओं में छूट देने का प्रयास करेगा, जोकि अन्य सामग्रियों पर काफ़ी कम हो जाएगा;
- (ग) समुन्नति कर अविलंब रोकने के लिए प्रयास करेगा;
- (घ) संपत्ति कर और भू-राजस्व में हाल ही में वृद्धि को रद्द करने का प्रयास करेगा;
- (च) कराधान पूछताछ समिति की सिफारिशों के अनुसार केवल एक कर लगेगा, या तो संपत्ति कर या हाउस टैक्स;
- (च) देखेगा कि सामग्री की पर्याप्त संख्या पर बिक्री कर लगाए जाने की बजाय उत्पादन के स्तर पर उत्पाद शुल्क लगाया जाए;
- (छ) राज्य के कराधान कानूनों में संशोधन इस तरीके से करेगा कि
 - (1) व्यापार की आवश्यक स्वतंत्रता पर सरकारी मशीनरी के अतिक्रमण पर रोक लगे।
 - (2) विस्तृत खाते आदि रखने की अत्यंत दुःखित करनेवाली जिम्मेदारी न्यूनतम हो।
 - (3) व्यापारी निरीक्षकों की अन्यायपूर्ण कठोरता से मुक्त रहें;

- (ज) स्टॉप शुल्क में हाल ही में असामान्य वृद्धि को वापस लेगा;
 - (झ) माला कर और पेशेवर कर वापस लेंगे;
 - (ट) एक ही अधिकारी में निहित न्यायिक और आकलन शक्तियों को तत्काल बंद कर देगा;
 - (ठ) सरकारी अधिकारियों की व्यापक विवेकाधीन शक्तियों में गंभीरता से कटौती करेगा;
 - (ड) देखेगा कि खातों आदि की देरी से प्रस्तुति जैसे बहुत तकनीकी और साधारण अपराधों के लिए असाधारण रूप से जुरमाना न लगे;
- उपरोक्त उपायों के कार्यान्वयन के फलस्वरूप सरकारी खजाने का नुकसान पूरा करने के लिए जनसंघ निम्नलिखित कदम उठाएगा :
- (क) संसाधन और छूटनी समिति की सिफारिशों को सख्ती से लागू किया जाएगा। इसके परिणामस्वरूप प्रति वर्ष 17 करोड़ रुपए की शुद्ध बचत होगी;
 - (ख) जनता की गाढी कमाई की भारी बरबादी को पूरी तरह से रोकने के लिए मितव्ययिता के सख्त उपाय किए जाएंगे;
 - (ग) भारी व्यय कर से महलनुमा इमारतें खड़ी करने की बढ़ती सनक को पूरी तरह से हतोत्साहित किया जाएगा;
 - (घ) विधान परिषद् को समाप्त कर दिया जाएगा;
 - (च) मंत्रियों और उच्च सरकारी अधिकारियों के आवास और अन्य भत्ते काफ़ी कम किए जाएंगे;
 - (छ) देखेंगे कि प्रशासनिक मशीनरी का ऊपरी हिस्सा कहीं भारी तो नहीं हो गया है कि गिर जाए;
 - (ज) मंत्रियों और उप मंत्रियों की संख्या कम की जाएगी, और
 - (झ) मंत्रियों और उप मंत्रियों के वेतन में कटौती की जाएगी।

वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना

1. **स्थानीय निकाय** : सभी विधायी क़ानूनों, जो राज्य सरकार को स्थानीय निकायों के अधिकार स्वयं ले लेने के लिए या किसी सक्षम निष्पक्ष न्यायिक प्राधिकरण द्वारा न्यायिक जाँच के बिना इन इकाइयों के किसी भी निर्वाचित प्रतिनिधि को हटाने के लिए सशक्त बनाते हैं, में उपयुक्त संशोधन किया जाएगा, ताकि ऐसे निकायों को सही मायने में लोकतांत्रिक बनाया जा सके।
2. **लोक सेवा आयोग** : जनसंघ लोक सेवा आयोग के दायरे से अधिक-से-अधिक सेवाओं को दूर करने की राज्य सरकार की ओर से बढ़ रही निरंकुश

प्रवृत्ति का विरोध करता है। यह लोगों को भरोसा दिलाता है कि इस तरह की सभी सेवाओं को वापस लोक सेवा आयोग के दायरे में लाने के लिए अपना अधिकतम प्रयास करेगा।

3. **सरकारी कर्मचारियों द्वारा धन-संग्रह तत्काल रोका जाएगा :** जनसंघ धन की वसूली के लिए सरकारी कर्मचारियों द्वारा शोषण करने की नापाक कोशिश रोकेगा। विशेष रूप से जिस तरह से सरकारी कर्मचारियों के माध्यम से राष्ट्रीय बचत एकत्र की जा रही है, उसे तत्काल बंद कर दिया जाएगा।
4. **कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग करना :** जनसंघ न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने का प्रयास करेगा।

सरकारी कर्मचारी

जनसंघ राज्य सरकार के कर्मचारियों को केंद्रीय कर्मचारियों के बराबर वेतन और अन्य भत्ते दिलाने में अपनी पूरी ताकत लगा देगा।

शिक्षा

जनसंघ शिक्षा के राष्ट्रीयकरण का विरोध करता है। यह निजी तौर पर संचालित शैक्षिक संस्थानों के प्रति असहयोगी व्यवहार की राज्य सरकार की वर्तमान नीति का जोरदार ढंग से विरोध करता है, जिसके तहत उन्हें राज्य के नियंत्रण में लाने की कोशिश कर उनका अस्तित्व मिटाना सरकार का उद्देश्य दिखता है। इन संस्थानों को राज्य सरकार द्वारा इस हद तक वित्तीय मदद दी जाएगी कि वे भी निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने में सक्षम बन जाएँ।

हमारे राज्य के पिछड़े क्षेत्रों का विकास

हमारे राज्य के सभी क्षेत्रों के समान विकास की गारंटी सुनिश्चित करने के लिए जनसंघ कठोर परिश्रम करेगा।

- (क) कि संपूर्ण रूप से राज्य बजट अपनी कुल आय का 40 प्रतिशत तथाकथित पंजाबी क्षेत्र पर और कम-से-कम 60 प्रतिशत तथाकथित हिंदी-क्षेत्र पर खर्च करे।
- (ख) कि केंद्र सरकार हमारे राज्य, हमारे राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों के विकास के लिए धन उतना आवंटन करती है, जितना हिमाचल प्रदेश के लिए जनसंख्या के आधार पर करती है, ऐसे में सटे पहाड़ी क्षेत्रों में मौजूद असमानता को खत्म किया जाए।

उद्योग विभाग

जहाँ जनसंघ लघु उद्योग पर बल देने की प्रशंसा करता है, वहीं यह सिर्फ सत्तारूढ़ पार्टी के सदस्यों के पक्ष में परमिट, कोटा आदि जारी करने में सरकारी सत्ता के दोहन को बहुत ही गंभीरता से लेता है। जनसंघ यह सुनिश्चित करने के लिए सभी संभव कदम उठाएगा कि कोटा, परमिट के वितरण के लिए जिम्मेदार सरकारी तंत्र राजनीतिक खींचतान और दबाव से पूरी तरह से अछूता रहे।

जल-जमाव की समस्या

जनसंघ जल-जमाव की समस्या को सर्वोच्च प्राथमिकता देगा। इस समस्या से सख्ती से निपटने के लिए हमारे राज्य की पूरी मानवशक्ति को स्वैच्छिक और राष्ट्रीय भावना से प्रेरित किया जाएगा।

पंजाब से पशुधन का निर्यात बंद किया जाएगा

पंजाब राज्य से पशुधन के निर्यात को रोकने के लिए जनसंघ भारतीय संघ के राष्ट्रपति की अनुमति से कानून बनाएगा।

—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 8, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



राष्ट्रीय एकता व सैन्य तैयारी चाहता है जनसंघ

भोपाल में बजा बिगुल

श्री उपाध्यायजी का भाषण प्रेरणादायक था, जिसने स्पष्ट किया कि किस तरह सत्ताधारी दल की नीतियों से विरोध है, वे विफल हैं और जनसंघ का दृष्टिकोण एवं प्रवृत्ति रचनात्मक है।

जनता के लिए भारतीय जनसंघ का संदेश

महासचिव ने अपने भाषण में सत्र में पारित प्रस्तावों को स्पष्ट करते हुए कार्यकर्ताओं के लिए दो स्तरीय कार्य निर्धारित किया। सर्वप्रथम, उन लाखों कार्यकर्ताओं के लिए संदेश था, जो भोपाल नहीं आ सके थे। (राष्ट्रीय आपातकाल के पश्चात् आर्थिक कारणों से इस साल भोपाल सत्र मंडल एवं उच्च स्तरीय कार्यकर्ताओं के लिए सीमित रखा गया था) और जनता के लिए संदेश था। श्री उपाध्यायजी ने सुझाव दिया कि सभी इकाइयों के सत्र की बैठक के बाद प्राथमिक सदस्यों का सम्मेलन हो और आम सभा की जाए।

श्री उपाध्यायजी ने कहा कि दूसरा प्रयोजन रक्षा से जुड़े पारित प्रस्तावों को कार्यान्वित करना है, विशेषकर जब वो हमारे हितों से जुड़े हों। श्री उपाध्यायजी ने कहा 'ये सुनिश्चित करना हमारा कर्तव्य है कि चीनी आक्रमण के अनुभवों से सीख लेते हुए सरकार उदासीन और अकर्मण्य न हो और हम ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की अनुमति नहीं दे सकते, जिसमें हमने आपको पहले नहीं कहा था? जैसे तर्क ढाढ़स बँधाने के लिए दिए जाएँ।'

सिर्फ आलोचनात्मक भाईचारा

श्री उपाध्यायजी ने कहा कि कुछ ताकतें सरकार को पुनः निद्रावस्था में ले जाने के लिए तत्परता से प्रयास कर रही हैं। प्रावदा ने भारतीय कम्युनिस्टों को स्पष्ट संदेश दिया

है कि वे भारत-चीन शांति के लिए दबाव बनाएँ। श्री उपाध्यायजी ने कहा, 'यह समझ लेना चाहिए कि कम्युनिस्टों और उनके समर्थकों द्वारा शांति स्थापित करने के प्रयास युद्ध के लिए हमारे लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में सबसे बड़ा रोड़ा हैं।'

भारतीय जनसंघ नेता ने कहा कि जनसंघ कार्यकर्ताओं को यह स्पष्ट होना चाहिए कि हमारा शत्रु कौन है। बाहरी शक्तियों के रूप में हमारा शत्रु चीन है और आंतरिक शक्तियों के रूप में चीन समर्थक कम्युनिस्ट एवं उनके सहयोगी। इस विषय में कोई संदेह नहीं होना चाहिए और शत्रुओं को अलग-थलग करने के लक्ष्य से बिल्कुल ही भटकना नहीं चाहिए। सामान्यतः लोकतांत्रिक ढाँचे में एक दल और उसके कार्यकर्ता प्रतिशोधात्मक प्रवृत्ति रखते हैं और विरोधी दलों से उनका प्रतिशोध आम चुनावों में भी सामने आता रहता है। लेकिन यह विरोध बिल्कुल भिन्न होता है। श्री उपाध्यायजी ने कहा, जनसंघ कार्यकर्ता इस सत्य से पूर्णतया अवगत हैं कि कांग्रेस या अन्य राष्ट्रीय दलों के प्रति उनका विरोध कम्युनिस्ट दल के प्रति विरोध से सर्वथा भिन्न है।

कम्युनिस्ट नीतियों को निष्फल करें

श्री उपाध्यायजी ने चेतावनी दी कि निकट भविष्य में चीन से हमारे युद्ध के तरीकों में आमूल परिवर्तन आ सकता है। अभी केवल हिमालय के भूभाग में सीमाओं पर युद्ध लड़ा जा रहा है। परंतु एक बार चीन इन क्षेत्रों पर कब्जा करने में सफल हो जाता है, तो वह अपनी रणनीति में परिवर्तन ला सकता है, और भारतवर्ष के शेष भागों में अपनी सेना की सहायता से आक्रमण करने की बजाय हमारे देशवासियों में ही अपने पिट्टुओं का उपयोग कर सकता है। श्री उपाध्यायजी ने याद दिलाया कि तिब्बत में कम्युनिस्टों ने न केवल दलाई लामा को निकाल बाहर किया बल्कि उनकी जगह पर पंचेन लामा को बिठा दिया। सभी राष्ट्रवादियों को ऐसी गतिविधियों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। क्योंकि इस नीति के सहारे युद्ध हमारे शहरों और कस्बों की सड़कों तथा गलियों तक में फैल जाएगा।

यह स्थिति देश के कई हिस्सों में उत्पन्न हो चुकी है। श्री उपाध्यायजी ने कहा कि कम्युनिस्टों में जनता का सामना करने की हिम्मत नहीं है। वे जनसभा नहीं कर सकते। फिर भी वे तीन या चार लोगों के गुट में फुसफुसाते फिरते हैं, ताकि आम लोगों को शक्तिशाली चीन से भिड़ने की व्यर्थता का विश्वास दिला सकें और इस तरह उनका मनोबल गिरा सकें। ये सभी राष्ट्रवादियों का और विशेषकर भारतीय जनसंघ के कार्यकर्ताओं का कर्तव्य है कि वे ऐसे क्रदमों का भरपूर विरोध करें और ऐसी स्थिति उत्पन्न करें कि ये कम्युनिस्ट व्यक्तिगत बातचीत के आधार पर भी ऐसे हानिकारक प्रचार न कर सकें।

सभी राष्ट्रवादी तत्वों के साथ सहयोग

इस संदर्भ में श्री उपाध्यायजी ने सभी राष्ट्रवादी दलों के बीच सहयोग और एकमत

होने की आवश्यकता पर भी बल दिया। वर्तमान वातावरण में विभिन्न दलों के बीच पूर्वग्रह व पक्षपातपूर्ण रवैया समाप्त हो सकता है एवं राष्ट्रीय हितों के विषयों पर सभी एकमत हो सकते हैं। बहुत हद तक यह हुआ भी है, लेकिन इस दिशा में अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। श्री उपाध्यायजी ने कहा कि जनसंघ कार्यकर्ताओं को आत्मचिंतन करने की आवश्यकता है। उन्हें सुनिश्चित करना होगा कि इस विषय में दलगत विरोध और दूसरे दलों से दूरी बनाने का रवैया आड़े न आए। हाँ, सत्ताधारी दल की बेकार नीतियों की आलोचना उनका कर्तव्य है। युद्ध के स्तर पर सहयोगात्मक कार्य करने के बावजूद जनसंघ लोकतांत्रिक आलोचना का अधिकार छोड़ने को तैयार नहीं है। श्री उपाध्यायजी ने कहा कि फिर भी भारतीय जनसंघ कार्यकर्ताओं को यह स्पष्ट होना चाहिए कि कम्युनिस्टों ने राष्ट्रीय एकता के विरोध में मोर्चा खोल रखा है, जिसका आधार चीन का हमला है, जो सभी दलों की नीतियों से अलग है। कम्युनिस्टों की यह नीति कभी सफल नहीं होनी चाहिए।

कर्म करो : पुरस्कार की चिंता छोड़ो

इसके बाद श्री उपाध्यायजी ने युद्ध के स्तर पर लागू की गई कई सरकारी योजनाओं का उल्लेख किया और कहा कि जनसंघ कार्यकर्ताओं को इन्हें सफल बनाने के लिए पूरा सहयोग करना चाहिए। श्री उपाध्यायजी ने कहा कि मेरे पास कई कार्यकर्ता शिकायत लेकर आए कि समितियों के गठन में भेदभाव किए जा रहे हैं। कांग्रेस इनकी आड़ में दलीय हितों को साध रही है, इत्यादि। मैं जानता हूँ कि ये शिकायतें बिल्कुल सत्य हैं। वास्तव में ऐसी नीतियों के कारण हम सदा सत्ताधारी दल की आलोचना करते आए हैं। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अपने कर्तव्यों के पालन में कांग्रेस की विफलता हमारी विफलता का कारण नहीं बनना चाहिए। भारतीय जनसंघ के किसी कार्यकर्ता को अपनी सेवाओं के बदले पुरस्कार की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। इस घड़ी में हमें सिर्फ अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए। यह हमेशा याद रखना चाहिए कि पिछले कुछ महीनों से ही नहीं, बल्कि जब से चीन का आक्रमण हुआ, तब से हम चीन के साथ सख्त व्यवहार के लिए सरकार पर दबाव डालने में अग्रणी रहे हैं। अतः वर्तमान परिस्थितियों में दूसरों की बजाय हमारे ऊपर अधिक जिम्मेदारियाँ हैं। कभी-कभी ऐसा सुनने में आता है कि कांग्रेस की नीतियाँ जनसंघ के राजनीतिक हितों के विरुद्ध हैं। मेरी आप सब से अपील है—राजनीतिक हितों की चिंता न करें। अभी केवल राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य के विषय में सोचें और युद्ध में सफलता के लिए इससे संबंधित प्रयासों में अपनी संपूर्ण सामर्थ्य के साथ जुट जाएँ। राजनीतिक हित स्वयं सध जाएँगे।

जवानों के विषय में दो बातें

श्री उपाध्यायजी ने कहा कि युद्ध नीतियों में सहयोग के अलावा जनसंघ कार्यकर्ताओं

का एक अति आवश्यक कार्य जनता का मनोबल बनाए रखना है। 'जनसंघ के हर कार्यकर्ता को संकल्प लेना चाहिए कि चाहे कितनी भी नकारात्मक परिस्थिति क्यों न आए, वो अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटेगा। हाल में पूर्वी सीमाओं की घटनाओं ने स्पष्ट कर दिया है कि युद्ध लड़ने में योगदान के साथ भी पूरी तत्परता से अपने कर्तव्य पूरे किए जा सकते हैं।'

श्री उपाध्यायजी ने जवानों और उनके परिवार को दो महत्वपूर्ण सुझाव दिए। श्री उपाध्यायजी ने कहा कि सेना में भरती होने वाले हर जवान को उसके परिवार और गाँव की ओर से भावभीनी विदाई दी जानी चाहिए। उन्हें इस बात की अनुभूति होनी चाहिए कि लोग उनकी सेवाओं को कितना उत्कृष्ट समझ रहे हैं। उन्होंने जोर दिया कि कार्यकर्ताओं को जवानों के परिवारों से संपर्क बनाए रखना चाहिए और उनके उत्थान के लिए सुनिश्चित सरकारी नीतियों को लागू कराने का पूरा प्रयास करना चाहिए।

हम भारत में कम्युनिज्म की कब्रगाह बनाएँगे

कम्युनिस्टों को शैतान बताते हुए जनसंघ नेता ने कहा कि वो सिर्फ विनाशकारी नीतियाँ बनाते हैं। उन्होंने कहा, 'मैंने एक से मुलाकात की, जिसने भारत का अंधकारमय चित्र पेश किया। भयंकर भ्रष्टाचार, अच्छी तरीके से मोर्चाबंदी किए कम्युनिस्ट, सीमा पर चीनी सेना का आक्रमण, चीन की पार्टी गुओमिनदांग के साथ समरूपता का प्रयास, और पंडित नेहरू के चांग काई शेक की नकल करने की अटल भविष्यवाणी।' श्री उपाध्यायजी ने कहा कि इतिहास की नकल अकसर गुमराह करनेवाली होती है। यह भलीभाँति समझना चाहिए कि भारत में कम्युनिस्ट भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं। चीन के संदर्भ के बिना एक तीसरा बिंदु यह है कि वे राष्ट्रवादी नहीं हैं। भारत का राष्ट्रवाद निश्चित रूप से यहाँ के कम्युनिस्टों के विरुद्ध है। श्री उपाध्यायजी ने घोषणा की कि 'कम्युनिस्टों को अपनी नीतियों पर चलने दें, लेकिन हम भारत को दूसरा चीन नहीं बनने देंगे।

श्री उपाध्यायजी ने कहा कि राष्ट्रीय एकता और सैन्य तैयारी वर्तमान समय की दो महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं और जनसंघ को ये सुनिश्चित करना चाहिए कि दोनों राष्ट्रीय आवश्यकताएँ निश्चित रूप से पूरी हों।

—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 15, 1963 *

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



* चौक यह आयोजन 1962 में हुआ था, इसलिए इसे इस खंड में शामिल किया गया है।

दिल्ली में बी.जे.एस. कार्यकारिणी की बैठक

लोकसभा में नवीनतम दलीय स्थिति

लोकसभा में नवीनतम दलीय स्थिति निम्न प्रकार है (कोष्ठ की संख्याएँ 1957 में जीती सीटें हैं)।

	कुल सीटें 494	
	सीट घोषित 485	
कांग्रेस	353	(371)
कम्युनिस्ट	29	(27 बाद में बढ़ कर 30)
पीएसपी	12	(19)
बीजेएस	14	(4, बाद में बढ़ कर 6)
स्वतंत्र	18	(नवप्रवेशी)
सोशलिस्ट	5	(8)
हिंदू सभा	1	(2)
जी.पी.	4	(7)
अन्य	49	

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 12, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



भारतीय जनसंघ प्रतिनिधि सभा : कोटा

विगत सप्ताह जनसंघ की अ.भा. प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन के अवसर पर दल की अ.भा. कार्यसमिति की बैठक भी संपन्न हुई, जिसमें कार्यसमिति ने केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा करों में की जानेवाली अत्यधिक वृद्धि की तीव्र आलोचना की। इन करों की वृद्धि का विरोध करने के लिए जनता का आह्वान करते हुए एक प्रस्ताव पारित कर कार्यसमिति ने कहा कि केंद्रीय बजट में 71 करोड़ के तथा प्रदेशों के बजटों में भी इतनी ही राशि के कर या तो लगा दिए गए हैं या आगामी मासों में लगाने की घोषणा की गई है। रेल का यात्री और मालभाड़ा भी इस वर्ष बढ़ा दिया है, जिससे लगभग 30 करोड़ रु. वार्षिक की आमदनी की गई है। सार्वजनिक उद्योगों से अधिकाधिक मुनाफा करने की नीति के अंतर्गत उनके उत्पादनों के दाम भी क्रमशः बढ़ाए जा रहे हैं। वे मूल्य किसी प्रतियोगिता के अधीन पण्य-व्यवस्था के आधार पर निश्चित नहीं किए जाते अपितु शासन द्वारा मनमाने तौर पर तय कर दिए जाते हैं।

जनहित के प्रतिकूल

भारतीय जनसंघ का मत है कि कराधान की यह नीति जनहित एवं अर्थव्यवस्था के समुचित विकास, दोनों ही दृष्टि से गलत है। केंद्र, प्रांत और स्थानीय निकायों की कराधान नीति एवं आर्थिक योजनाओं के बीच कोई तालमेल नहीं बचा है। आवश्यकता है कि इस दुर्व्यवस्था को दूर किया जाए। सभा का मत है कि एक कराधान जाँच आयोग नियुक्त करके संपूर्ण कर पद्धति को एक तर्क शुद्ध आधार पर खड़ा किया जाए।

भारतीय प्रतिनिधि सभा जनसंघ की सभी शाखाओं का आह्वान करती है कि वह नए दुर्वह करों, रेल किराए की वृद्धि तथा लगान में प्रस्तावित वृद्धि के विरोध में जनता के क्षोभ को संगठित रूप से प्रकट करे। शासन से हमारी माँग है कि वह अपनी कर नीति पर पुनर्विचार करे तथा जनसामान्य पर बोझ डालने वाले करों को कम करके जनता को राहत दे।

पाक अधिकृत भू-भाग मुक्त हो

कश्मीर प्रश्न पर भारतीय जनसंघ द्वारा प्रतिपादित नीति की यथार्थता का उल्लेख करते हुए कार्यसमिति ने एक अन्य प्रस्ताव में कहा कि इस बार राष्ट्रसंघ में भारतीय प्रतिनिधि द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण ने जनसंघ नीति का औचित्य सिद्ध कर दिया है।

भारतीय कार्यसमिति शासन को पुनः आगाह करती है कि वह पाकिस्तान के किसी भी दुस्साहसपूर्ण आक्रमण की संकटपूर्ण संभावनाओं के प्रति सतर्क रहे। पाकिस्तान द्वारा चीन से इस विषय में साँठगाँठ के प्रयत्नों से उन शक्तियों की भी आँख खुल जानी चाहिए, जो कम्युनिस्ट चीन का विस्तार रोकने की इच्छा से पाकिस्तान की उसकी शरारत में सहायता करते रहे हैं।

हमारी कश्मीर संबंधी आंतरिक नीति के भी पुनर्निर्धारण की आवश्यकता है। हमें संविधान के अनुच्छेद 370 को हटाकर कश्मीर की विशेष स्थिति को समाप्त कर देना चाहिए। जम्मू और कश्मीर राज्य के संबंध में अपनी आंतरिक नीति में यदि हमने परिवर्तन नहीं किए तो वह हमारी सुरक्षा परिषद् में की गई घोषणाओं के प्रतिकूल होगा तथा राज्य में पाकिस्तान के लिए अनुकूल स्थिति पैदा करने तथा सामान्य अवस्था के निर्माण में बाधा उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी होगा। इसके साथ ही हमें पाक अधिकृत भूभाग को मुक्त करने के लिए भी सक्रिय पग उठाने चाहिए।

सीमाओं की सुरक्षा केंद्र सरकार करे

देश में पाकिस्तानी पंचमांगियों के अवैध प्रवेश पर देश का ध्यान आकृष्ट करते हुए एक प्रस्ताव में कहा गया कि आसाम, पश्चिम बंगाल तथा त्रिपुरा में जिस भारी संख्या में पाकिस्तान से मुसलमानों का अवैध प्रवेश हो रहा है, वह देश की सुरक्षा तथा इन प्रदेशों की शांति और व्यवस्था के लिए गंभीर संकट का रूप धारण करता जा रहा है। इसका आर्थिक कारणों से, जो प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने इस विषय में दिए हैं, कोई संबंध नहीं है। वस्तुतः ये लोग पाकिस्तान की योजना के अंतर्गत असम प्रदेश और पश्चिम बंगाल तथा त्रिपुरा के सीमा क्षेत्र को मुसलिम बहुल बनाने के उद्देश्य से आ रहे हैं। शासन ने अभी तक न तो इस समस्या की गंभीरता को समझा है और न इसके निदान के लिए कोई प्रभावी पग ही उठाए हैं। अतः भारतीय जनसंघ माँग करता है कि

1. सीमाओं की रक्षा का भार केंद्र ग्रहण करे;
2. सीमा क्षेत्रों को उन सभी तत्वों से निरापद किया जाए, जिनकी निष्ठाएँ संदिग्ध हैं;
3. भारत में अवैध रूप से आए हुए अथवा पाक-पत्र की अवधि के उपरांत भी टिके हुए सभी पाकिस्तानियों का निष्कासन किया जाए।

पाक से भूमि की माँग

पूर्वी बंगाल से हिंदुओं के व्यापक निष्क्रमण के संबंध में गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए प्रतिनिधि सभा ने एक प्रस्ताव में कहा कि पूर्वी बंगाल में हाल में हिंदुओं के विरुद्ध जो व्यापक दंगे हुए हैं, उससे एक बार पुनः यह स्पष्ट हो गया है कि पाकिस्तान के इसलामी राज्य में अन्य सामान्य मतावलंबियों के लिए कोई स्थान नहीं है। ये दंगे आकस्मिक नहीं, अपितु एक सुनियोजित षड्यंत्र के परिणाम हैं, जिसमें पाकिस्तान के उच्चतम अधिकारी भी सम्मिलित हैं। राजशाही, ढाका तथा अन्य स्थानों पर खुलेआम हिंदुओं पर व्यापक हमले, लूटमार तथा अग्निकांड—इस षड्यंत्र की कड़ियाँ मात्र हैं। स्मरण रहे, विभाजन इसी शर्त पर स्वीकार किया गया था कि पाकिस्तान में हिंदुओं के साथ समानता का व्यवहार किया जाएगा और वे सब प्रकार से सुरक्षित रहेंगे। नेहरू-लियाकत समझौते में इसी बात की पुनः घोषणा की गई थी। किंतु पाकिस्तान ने हिंदुओं को द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनाकर और उनकी समाप्ति का निरंतर योजनाबद्ध अभियान चलाकर यह सिद्ध कर दिया है कि वह अपने आश्वासनों का निर्वाह करने के लिए तैयार नहीं है। इस स्थिति में भारत के सम्मुख इसके सिवा कोई मार्ग नहीं है कि वह पूर्वी पाकिस्तान में बचे हुए हिंदुओं को बसाने के लिए तत्पर हो और इस हेतु पाकिस्तान से भूमि की और पाकिस्तान में छोड़ी गई हिंदुओं की संपूर्ण संपत्ति के लिए पूर्ण क्षतिपूर्ति की माँग करे।

उक्त प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा के समुख दिल्ली जनसंघ के नेता श्री केदारनाथ साहनी ने प्रस्तुत किया तथा प. बंगाल जनसंघ के मंत्री श्री भाऊराव जुगादे ने उसका समर्थन किया।

कर-वृद्धि के विरुद्ध व्यापक आंदोलन

1 जुलाई को रेलवे स्टेशनों पर प्रदर्शन

भारतीय जनसंघ की प्रतिनिधि सभा कर-वृद्धि के विरोध में केवल प्रस्ताव पारित कर ही चुप नहीं बैठी, उसने संपूर्ण देश में नए दुर्वह करों, रेल किराए की वृद्धि तथा लगान में प्रस्तावित वृद्धि के विरोध में जनता के क्षोभ को संगठित रूप से प्रकट करने के लिए एक व्यापक आंदोलन छेड़ने की योजना भी बनाई है, जिसके अंतर्गत आगामी 1 जुलाई को रेलवे स्टेशनों पर जोरदार प्रदर्शन करने की तैयारियाँ प्रारंभ हो गई हैं। यह आंदोलन अभी तो केवल प्रदर्शनों तक ही सीमित है, पर आवश्यकता पड़ने पर 'सविनय अवज्ञा' का रूप भी धारण कर सकता है।

चीन से दौत्य संबंध भंग हो

कम्युनिस्ट चीन के आक्रामक रुख के प्रति भारत सरकार की शिथिल नीति की

आलोचना एवं चीन से संबंध विच्छेद की माँग करते हुए संसद सदस्य श्री विमल कुमार चोरडिया ने कहा कि भारतभूमि में चीन ने अपने आक्रमणों के साथ-साथ भारत के विरुद्ध आरोप और अपप्रचार का अभियान भी प्रारंभ कर दिया है। सभी राजनयिक सुविधाओं एवं आचरण नियमों का उल्लंघन करके भारत स्थित चीन दूतावास भी इस कुत्सित प्रचार में संलग्न है। 'चाइना' के हाल के अंक में भारतविरोधी लेखों का प्रकाशन इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। यह अत्यंत ही क्षोभ का कारण है कि भारत सरकार अपने ही देश में चलने वाली इन भारतविरोधी कार्रवाइयों को शांति के साथ सहन करती रही है।

चीन की इस धमकी का कि भारत ने यदि अपनी सीमा चौकियों से रक्षक नहीं हटाए तो बल प्रयोग करेगा, प्रधानमंत्री ने जो प्रत्युत्तर दिया है, वह स्वागत योग्य है। किंतु चीन के आक्रमण का मुक्काबला कोरी साहसपूर्ण घोषणाओं अथवा कड़े विरोध-पत्रों से नहीं किया जा सकता। भारतीय प्रतिनिधि सभा का मत है कि हमारी सीमा सुरक्षा को तेज़ी के साथ सुदृढ़ करते हुए तथा चीन द्वारा आक्रमण भूभाग की मुक्ति के लिए क्रियात्मक पग उठाए जाएँ। सभा यह भी अनुभव करती है कि हमारे पेकिंग स्थित दूतावास को जिस भेदभावपूर्ण बंधनों में काम करना पड़ता है, उससे अब उसका कोई उपयोग नहीं बचा। अतः भारतीय प्रतिनिधि सभा माँग करती है कि चीन के साथ दौत्य संबंधों का विच्छेद कर उसकी आक्रमणकारी नीति के प्रति रोष प्रकट करे तथा अपनी क्रियात्मक नीति का सूत्रपात करे।

श्री यज्ञनारायण ने प्रस्ताव का समर्थन किया।

भारत-नेपाल की मैत्री आवश्यक

भारत-नेपाल के पारस्परिक संबंध के विषय में एक प्रस्ताव व्यक्त करते हुए उत्तरांचल जनसंघ के संगठक श्री बलराज मधोक ने कहा कि युग-युगों से भाई के समान चले आ रहे इन दो देशों में पिछले कुछ दिनों से गाँठ सी पड़ती जा रही है, जिसका लाभ उठाकर चीन एवं उसके कम्युनिस्ट हस्त भारत और नेपाल के बीच खाई पैदा करने और नेपाल को चीन के प्रभाव क्षेत्र में खींचने की कोशिश कर रहे हैं। इतिहास का तथ्य कि चीन ने पिछले दो सौ वर्षों में नेपाल को हड़पकर अपने साम्राज्य में मिलाने के लिए तीन बार आक्रमण किया। चीन की नेपाल के प्रति अपनाई गई कूटनीति एवं उसके प्रति नेपाली प्रतिक्रिया में भारत और नेपाल दोनों की सुरक्षा के लिए निहित संकटों की संभावनाओं को स्पष्ट करता है।

पर यह स्थिति दोनों देशों की राजनीतिक तथा भौगोलिक स्थिति से मेल खाती है। अतः कार्यसमिति भारत और नेपाल दोनों ही देशों की सरकार से अपील करती है कि

दोनों एक-दूसरे के प्रति अधिक सद्भावना का दृष्टिकोण लेकर चलें तथा दोनों सुरक्षा और विकास के व्यापक हितों को ध्यान में रखकर परस्पर के सांस्कृतिक एवं आर्थिक सूत्रों को सुदृढ़ करने के लिए सभी संभव उपाय अपनाएँ।

चुनाव के पूर्व मंत्रिमंडल भंग किए जाएँ

चुनाव के समय कांग्रेसियों द्वारा बरती जानेवाली अनियमितता और चुनाव में सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग किए जाने का उल्लेख प्रस्ताव में किया गया और प्रतिनिधियों की सभा ने माँग की कि इन अनियमितताओं को रोकने के लिए केंद्रीय और सभी राज्यों में मतदान को विघटित कर देना चाहिए, जिससे लोगों की प्रजातांत्रिक पद्धति में आस्था बनी रहे। यह प्रस्ताव पंजाब के विधायक श्री बलरामजी दास टंडन ने किया और इसके अनुमोदक थे पंजाब विधानसभा के जनसंघ दल के नेता डॉ. बलदेव। सभी प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा द्वारा पारित कर दिए गए।

—पाञ्चजन्य, जून 4, 1962



जनसंघ का लक्ष्य

नंबर 1 पार्टी बनना, नंबर 2 नहीं

व्यापक स्तर पर संभावित चुनावी मोर्चा बनाने की नीति से यू.पी. एवं एम.पी. में काफी लाभ मिलेगा। तीसरे आम चुनावों के लिए जनसंघ की चुनावी रणनीति पर 4 घंटे की उत्साहपूर्ण बहस 27 मई को कोटा में संपन्न पार्टी की भारतीय प्रतिनिधि सभा के दो दिवसीय सत्र की मुख्य बात रही।

श्री ए. रामा राव ने अध्यक्षता की। एक सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यहाँ की कष्टप्रद गरमी के बीच इस व्यावहारिक सत्र में शायद ही प्रतिभागियों के उत्साह और जोश को प्रभावित होते देखा गया हो।

महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा चुनावों पर पेश एक व्यापक रिपोर्ट, जिसे कार्यसमिति ने पहले ही स्वीकार कर लिया था, ने चर्चा के लिए मूल सामग्री उपलब्ध कराई।

हालाँकि वक्ताओं ने रिपोर्ट में उठाए गए अनेक बिंदुओं पर चर्चा की, बहस मुख्यतः इस बात पर टिक गई कि क्या अधिकतम संख्या में प्रत्याशी उतारने की पार्टी की रणनीति का लाभ मिला या इससे शक्ति और संसाधनों का अपव्यय हुआ। पंजाब के कई प्रतिनिधियों ने अपव्यय के पक्ष में अपनी बात कही, जबकि उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश से आए सदस्यों ने जोरदार पुष्टि की कि यह पार्टी की रणनीति थी, जिसने उन्हें सफलता दिलाई।

विचार-विमर्श की शुरुआत महाराष्ट्र बीजेएस के संयुक्त सचिव श्री रामदास कलस्कर द्वारा महाराष्ट्र में पार्टी के प्रदर्शन की समीक्षा के साथ हुई। किसी और नीति को अपनाने की तुलना में एक अलग नीति के पक्ष में न दिखते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि अकेले चुनाव में जाने का जनसंघ का फैसला अत्यावश्यक था, क्योंकि अन्य सभी पार्टियाँ जनसंघ के खिलाफ एक हो गई थीं, उन्होंने अनुभव किया कि उम्मीदवारों की संख्या

बड़ी थी, लेकिन इस ओर भी संकेत किया कि जिन निर्वाचन क्षेत्रों से अच्छे परिणाम की उम्मीद थी, वहाँ उचित ध्यान दिया गया और संसाधनों को झोंका गया।

पंजाब के एम.एल.ए. डॉ. मंगल सेन ने हालाँकि दृढ़ता से कहा कि पंजाब इकाई ने अपनी क्षमता से कहीं ज्यादा परिश्रम किया और अगर कम संख्या में सीटों पर चुनाव लड़ा गया होता तो परिणाम बेहतर होता। उन्होंने यह भी खेद व्यक्त किया कि दिल्ली में पार्टी को इस तरह का 'गंभीर अनपेक्षित' नुकसान उठाना पड़ा।

डॉ. मंगल सेन के विचार का पंजाब के कुछ अन्य प्रतिनिधियों द्वारा समर्थन किया गया, लेकिन पूर्वी उत्तर प्रदेश के आयोजन सचिव श्री हरीश चंद्र श्रीवास्तव ने प्रभावशाली ढंग से इस पर प्रश्न उठाए। अपने तर्कपूर्ण भाषण में श्री श्रीवास्तव ने जोर देकर कहा कि चुनावी सफलता में योगदान के लिए मुख्य कारक काम का परिमाण है, जो स्थानीय रूप से पार्टी और उम्मीदवार ने किया है। बाहर से आए प्रचारकों या कार्यकर्ताओं ने एक उम्मीदवार की संभावनाओं को बेहतर बनाने में बहुत कम योगदान किया। इसलिए किसी निर्वाचन क्षेत्र में नहीं लड़ने से, जहाँ निश्चित रूप से इसके कुछ नकारात्मक परिणाम सामने आते, 'एकाग्रता' के नजरिए से कोई सकारात्मक परिणाम सामने नहीं आया। एक चुनाव की उथलपुथल निरपवाद रूप से कई व्यक्तियों को नष्ट कर देती है और बहुत बार निर्वाचन क्षेत्रों में जहाँ जनसंघ उम्मीदवारों को उतारने में विफल रहा, उसके अपने समर्थक (जिनकी वैचारिक प्रतिबद्धता कमजोर है) दूसरे दलों के साथ जुड़ जाते हैं। श्री श्रीवास्तव ने कहा, उत्तर प्रदेश में महत्त्वपूर्ण कारकों में एक यह भी है, जिसकी वजह से आम आदमी जनसंघ को आने वाले समय में कांग्रेस के विकल्प के रूप में देख रहा है, जिसके पास बड़ी संख्या में उम्मीदवार खड़े करने की क्षमता थी।

एम.पी. श्री आर.वी. बडे द्वारा दिए भाषण में श्री श्रीवास्तव को जबर्दस्त समर्थन मिला। श्री बडे ने उस घटना का वर्णन किया कि खरगौन (एम.पी.) निर्वाचन क्षेत्र से 1957 के लोकसभा चुनाव में अपनी हार के बाद कैसे उनके ही सहयोगियों की सोच आत्मविश्वासहीनता और रूढ़िवादी योजना से ग्रस्त थी। लेकिन 5 वर्ष तक अपना ध्यान स्थानीय काम पर केंद्रित कर और महत्वाकांक्षी योजना बनाकर, जनसंघ ने न केवल 1962 में विधानसभा की सभी 8 सीटें जीतीं, बल्कि मेरे निर्वाचन क्षेत्र की लोकसभा सीट भी जीत ली।

चुनावी गठबंधनों के मामले में राजस्थान के श्री रवि दत्त वैद्य ने व्यावहारिक दृष्टिकोण का समर्थन किया। उन्होंने यह भी महसूस किया कि कम्युनिस्टों और उनकी दगाबाज गतिविधियों पर जनसंघ के हमले उतने नियोजित और सशक्त नहीं रहे, जितने होने चाहिए थे।

गठबंधनों पर श्री वैद्य के विचारों से जुड़े हुए मध्य प्रदेश के श्री शिव कुमार मिश्रा

और बिहार के श्री सुरेश दत्त शर्मा ने पुष्टि की कि अनैतिक गठबंधन के प्रति जनसंघ की सख्त अस्वीकृति थी, जिसने मैदान में उतरे अन्य दलों के 'अवसरवादी समूह' की तुलना में जनसंघ को प्रतिष्ठित बना दिया। उन्हें लगा कि विशुद्ध पार्टी हितों के दृष्टिकोण से भी जनसंघ की वर्तमान नीति लाभदायक थी।

मध्य प्रदेश में बीजेएस समूह के नेता श्री वीरेंद्र कुमार सकलेचा द्वारा अविवेकपूर्ण गठबंधनों और अधिकतम स्तर तक पार्टी के चुनावी मोरचे का विस्तार करने के लाभों को आरेखों के जरिए प्रबलता से समझाया गया। श्री सकलेचा ने कहा कि जनसंघ ने दूसरे चुनावों के तुरंत बाद कुछ विशिष्ट निर्वाचन क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करने की रणनीति को स्वीकार किया था। पाँच साल तक उन्होंने वहाँ काम किया था और प्रयासों के अनुरूप परिणाम आए थे। लेकिन चुनाव की पूर्व संध्या पर ध्यान केंद्रित करने के विचार मात्र का कोई मतलब नहीं था। मुख्य आपत्तियों में से एक यह उठाई गई थी कि बड़ी संख्या में उम्मीदवार उतार देने से हमारे शीर्ष प्रचारक तो बहुत से विधानसभा क्षेत्रों का दौरा नहीं कर सके। श्री सकलेचा ने कहा कि यह सोचना गलत था कि चुनाव इन भाषणों से जीता जाता है। मुख्य रूप से यह काम होता है जो स्थानीय इकाइयों द्वारा किया जाता है, वही मायने रखता है।

बहस का समापन करते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि चर्चा के दौरान एक शंका यह व्यक्त की गई कि जनसंघ की दूसरे नंबर की पार्टी बनने की आकांक्षा अति महत्वाकांक्षा थी।

श्री उपाध्याय ने कहा कि वह दृढ़ता से इस विचार के साथ सहमत नहीं हैं और वास्तव में महसूस करते हैं कि लोकतंत्र में कोई भी पार्टी सिर्फ दूसरे स्थान के लिए आकांक्षा नहीं कर सकती। स्वाभाविक रूप से उद्देश्य नंबर 1 पार्टी के रूप में उभरना होता है।

उन्होंने कहा, "एक बार यह उद्देश्य स्पष्ट हो जाए तो यह आसानी से दिख जाएगा कि हमने जो उम्मीदवार उतारे, वे वास्तव में कम थे, और हमने इतनी संख्या तय की सिर्फ इसलिए कि हम और अधिक नहीं उतार सकते थे।"

श्री उपाध्याय ने कहा कि जैसे-जैसे पार्टी बढ़ेगी, इसका संगठनात्मक आधार विस्तारित होगा, इससे बहुत सारी राजनीतिक मजबूरियाँ सामने आएँगी, जो एक तरह से अपनी चुनावी रणनीति तय करने का मार्ग प्रशस्त करेंगी। उन्होंने कहा, "उदाहरण के लिए एम.पी. और यू.पी. को लो। इन इकाइयों के क्षेत्रों में इस बार मतदाताओं ने जनसंघ में विश्वास व्यक्त किया है। अगले चुनाव के लिए यह एक बड़ी जिम्मेदारी है।"

जनसंघ के प्रदर्शन को श्री उपाध्याय ने अत्यंत ख़ुशी का पहलु बताते हुए कहा कि

हर प्रांत में, ग्रामीण इलाकों में पार्टी का समर्थन काफ़ी हो गया।

एम.पी. विधानसभा में लौटे सभी 41 उम्मीदवार ग्रामीण विधानसभा क्षेत्रों से थे, जबकि यू.पी. में जीती 49 सीटों में से 48 ग्रामीण क्षेत्रों से थीं।

श्री उपाध्याय ने एक प्रतिनिधि का भी जिक्र किया, जिसने कांग्रेस के कदाचार और अनियमितताओं, वोटों की खरीद और सांप्रदायिक भावनाओं से खिलवाड़ के विरुद्ध अपनी कड़वाहट व्यक्त की थी और सलाह दी थी कि चुनावों में 'जैसे को तैसा' नीति अपनाई जाए, इस पर श्री उपाध्याय ने कहा कि जनसंघ ऐसा करने से दृढ़ता से इनकार करता है। उन्होंने कहा, 'जिस दिन हम ऐसा करेंगे, बीजेएस उम्मीदवार तो बड़ी संख्या में जीत सकते हैं, लेकिन जनसंघ हार जाएगा।'।

—ऑर्गनाइज़र, जून 4, 1962

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



जनसंघ नेता ने लगाया नेहरू पर आरोप

भोपाल, 29 दिसंबर। जनसंघ के पूर्व अध्यक्ष श्री डी.पी. घोष ने आज प्रधानमंत्री श्री नेहरू पर इन सभी वर्षों में देश को 'भ्रमित' करने का आरोप लगाया और राष्ट्रपति से यह सुनिश्चित करने का आग्रह किया कि प्रधानमंत्री पुरानी भूलों को न दोहराएँ।

श्री घोष पार्टी की विषय समिति बैठक को संबोधित कर रहे थे। सत्र में भाग ले रहे लगभग 800 प्रतिनिधियों ने भारत-पाकिस्तान विवाद और चीन के आक्रमण पर आधिकारिक प्रस्ताव पारित किया।

चीन के आक्रमण पर प्रस्ताव का समर्थन करते हुए श्री घोष ने कहा कि आक्रमण पर स्पष्टीकरण चाहने पर चीन के इकतरफा युद्धविराम के प्रयासों को सरकार द्वारा स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप श्री नेहरू के पुनः पुरानी भूलें करने की आशंका बढ़ रही है।

चीन की अवमानना

चीन ने भारत और भारतीय सेना के प्रति अपनी अवमानना के रुख को प्रदर्शित किया था।

इसने निरंतर अपनी सेना की तैनाती बढ़ाई है, जो आक्रमण को निष्प्रभावी कर देगी और आगे आक्रमण को असंभव बनाएगी।

राजस्थान के श्री भैरों सिंह ने प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

श्री मधोक और श्री प्रेमनाथ डोगरा ने भारत द्वारा कश्मीर में राजनीतिक और आर्थिक आधार पर जनमत संग्रह पर विचार कर सकने के श्री नेहरू के कथित वक्तव्य को एक बुरा खयाल बताया। ये दोनों रावलपिंडी में भारत-पाकिस्तान वार्ता पर आधिकारिक प्रस्ताव के समर्थन में बोल रहे थे।

श्री मधोक ने कहा कि वर्तमान परिस्थितियों में धार्मिक उन्मादियों से किसी जनमत

संग्रह का अर्थ नहीं है।

श्री डोगरा ने कहा कि कश्मीर के लोग पहले ही कई बार अपना जनादेश दे चुके हैं और वे किसी जनमत संग्रह को स्वीकार नहीं करेंगे।

प्रस्ताव में कहा गया है कि चीनी आक्रमण के जरिए उसके द्वारा रचे गए खतरे को स्वीकार करने में पाकिस्तान के विफल रहने से भारत-पाकिस्तान वार्ता की उपयोगिता और सफलता संदेहास्पद है।

दोनों देशों के लिए अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर करना और आक्रमण का संयुक्त रूप से मुकाबला करना ही उपयुक्त रास्ता होगा। यह सहयोग और सदृच्छ के वातावरण को बढ़ावा देगा और दोनों देशों के बीच समस्याओं के समाधान में सहायता करेगा। यह भी कहा गया कि समस्याओं को अभी ठंडे बस्ते में डाल देना चाहिए और बाद में समग्रता के आधार पर इनका समाधान निकालना चाहिए।

पाकिस्तान की चोंचलेबाज़ी

आशा है कि चीन के साथ पाकिस्तान का गठजोड़ पश्चिमी शक्तियों की आँखें खोल देगा, जिन्होंने पाकिस्तान को कम्युनिस्ट विरोधी आधार बनाने के लिए उसका सशस्त्रीकरण किया था।

विषय समिति ने चीन के आक्रमणकारियों से लड़ने के दौरान शहीद हुए जवानों की स्मृति में दो मिनट का मौन रखा।

आज शाम प्रारंभ हुए सम्मेलन के खुले सत्र सादगीपूर्ण ढंग से शुरू हुए।

वक्ताओं ने चीनी आक्रमणकारियों को निकाल बाहर करने और भारत के विरुद्ध आक्रमण को असंभव बनाने के उद्देश्य के लिए वृहद रक्षा प्रयास करने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी और युद्ध-विरोधियों को छोड़कर सभी राजनीतिक दलों के नेताओं को सम्मिलित कर एक राष्ट्रीय रक्षा परिषद् के गठन की बात कही गई।

डॉ. रघुवीर ने राष्ट्रीय गठबंधन कैबिनेट के लिए ऐसी 4 परिषदों का प्रस्ताव किया, जिसमें चार में से तीन सदस्य कांग्रेस की जगह विपक्ष के रखे जाएँगे।

उन्होंने पिछली कुछ सदियों में चीन के ऐतिहासिक, राजनीतिक और सैन्य घटनाक्रमों, तिब्बत की स्वतंत्रता छिन जाने, भारत के लोकतंत्र के दायित्व और चीन के आक्रमण से इसके पड़ोसियों को खतरे, पर्याप्त सैन्य तैयारियों की आकस्मिकता, सामाजिक और आर्थिक न्याय प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय योजनाओं के कार्यकाल और देश की सोच एवं प्रशासन पर अंग्रेजी का बोलबाला बनाए रखने के प्रयासों पर सतर्कता की आवश्यकता पर विस्तार से प्रकाश डाला।

डॉ. रघुवीर ने कहा कि देश काफ़ी जागरूक हो गया है और यह देखने के लिए दृढ़

संकल्पित है कि चीन के आक्रमण की स्थिति में सरकार ने अपना कर्तव्य निभाया। 'पिछले वर्षों की घटनाओं' से कांग्रेस की अहिंसा की विचारधारा गलत साबित हुई है।

उन्होंने कहा कि पिछले कुछ वर्षों के अपने स्वतंत्र अस्तित्व में चीन के सैन्यशक्ति के रूप में विकसित होने पर भारत आँखें मूँदे रहा, जबकि कई छोटे-से-छोटे एशियाई देश 'सोये नहीं थे।'

डॉ. रघुवीर ने कहा कि भारत सार्वभौमिक सैन्य प्रशिक्षण से चीन की तरह ही बड़ी सेना बना सकता है।

फासीवादी प्रवृत्तियाँ

पार्टी सत्र में अपनी रिपोर्ट में महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने 'वर्तमान आपात स्थिति के दौरान सत्तारूढ़ दल में फासीवादी प्रवृत्तियों में खतरनाक स्तर तक वृद्धि' की भर्त्सना की।

उन्होंने कहा कि कांग्रेस नेतृत्व विभिन्न नागरिक सुरक्षा संगठनों में विपक्षी दलों, जिन्होंने रक्षा प्रयासों को पूर्ण समर्थन दिया था, परंतु अपनी विचारधारा और नेतृत्व को आगे बढ़ाने के लिए आपातस्थिति का लाभ उठाने का प्रयास कर रहे थे, की क्रीमत पर इसके सदस्यों को दी गई तवज्जो से स्पष्टतया संतुष्ट नहीं है।

उन्होंने आरोप लगाया कि रक्षा प्रयासों को क्षति पहुँचाने के इच्छुक रहे कम्युनिस्ट श्री नेहरू के नेतृत्व पर खतरे की आशंका को उठाकर कांग्रेस की इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित कर रहे हैं। कुछ स्थानों पर कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण का मुँहतोड़ प्रत्युत्तर देने की राष्ट्रीय इच्छा को दबाने के अपने अभियान को आगे बढ़ाने के लिए कांग्रेस को तैयार कर रहे थे।

—*द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिसंबर 30, 1962*
(अंग्रेज़ी से अनूदित)



संदर्भिका

अ

अंतरराष्ट्रीय असंतुलन 208
 अंतरराष्ट्रीय कम्युनिज्म 258
 अंतरराष्ट्रीय वायुमंडल 191
 अकाली दल 68, 110, 114, 121
 अक्साइ चिन 21
 अखंड प्रवाह 243
 अखंड भारत 28, 32, 89
 अटलबिहारी वाजपेयीजी 112
 अटलांटिक चार्टर 189
 अधिनायकवाद 81
 अनाक्रमण समझौता 279
 अमरीकी सरकार 146
 अर्थ विज्ञान 210
 अलगाववाद 161, 201
 अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय 33
 असम और कश्मीर 21
 असहयोग और खिलाफत 84

आ

आकाशवाणी 6, 205, 283-284
 आगरा छात्र संघ 235

आचार्य नरेंद्र देव 63

आत्म-ग्लानि 184
 आदर्शवाद 29, 65, 227-228, 245
 आध्यात्मिक 178, 242-243, 308, 315
 आय विषमता 5, 15
 आर्थिक मनुष्य 309-310
 आर-रीडिंग 228
 आर्यसमाजी 92
 ऑल इंडिया रेडियो 203

इ

इंटरनेशनल इकोनॉमी 210
 इंद्रिय निग्रह 145, 300

उ

उत्पादन 15-16, 30, 34, 36, 39-40,
 42, 47, 51, 146, 208, 210-211,
 214
 उपपट्टेदारी 51
 उपभोक्ता उद्योगों 30-31, 41, 43
 उपभोग 15, 31, 74, 146, 208-209,
 212
 उपादान कारण 172

ए

एकता परिषद् 130, 161
 एकात्मकता 81, 167-168, 179-180,
 221-222
 एकात्मवादी 222, 304-305, 315
 एकाधिकार 15, 310
 एवेरेल हैरीमैन 275

ओ

ओलावक्कोर 28

औ

औद्योगिक साम्राज्य 310
 औद्योगिक नीति 43
 औद्योगीकरण 35, 40, 42-43, 46, 251

क

कमाल अतातुर्क 85
 कर-विरोधी आंदोलन 162
 कर-वृद्धि विरोधी दिवस 281
 कर्तव्य 22, 61, 63, 69, 80-81, 155,
 171, 179, 183-184, 192, 202,
 294, 305-306, 309, 317
 कल्याण 31, 202, 217
 कश्मीर से कन्याकुमारी 108
 कांग्रेस सरकार 5, 49, 74, 256, 259-
 260
 कानपुर नगर महापालिका 215
 कॉमनवेल्थ 252
 काश्तकारी क़ानून 47
 कृषि पैदावार 52

केंद्रीकरण या विकेंद्रीकरण 33

केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय 228

केचिलांग नदी 270

क्रूसेड्स 28

क्षेत्रवाद 161

ख

खिलाफ़त 84-85, 316

खुशहाली टैक्स 54

खेतिहरों 50

ग

गंगा 156, 166, 169, 175, 180

गणतंत्र दिवस 37, 73

गणतंत्र परिषद् 60, 116, 119

गलवान नदी 270

गांधी शांति प्रतिष्ठान 188

गुन्नार मिर्डल 209

गृहकर 281-282

गोयबल्स 50

गो-वध 55

गोवा कार्रवाई 3

ग्रामीण उद्योगों 41

घ

घनश्याम बेरीवाल 223

घोषणा-पत्र 6, 14-17, 28-29, 31, 33,
 38-45, 48-52, 55, 73

च

चंदेर आर. रायसिंघानी 28

चंद्रगुप्त मौर्य 171

चतुष्टय 185
 चारु एन लाई 223
 चिति 220, 302, 306-307
 चिप-चाप नदी 270
 चीनी आक्रमण 22-23, 36, 238, 258,
 285, 290

छ

छत्रपति 109, 243
 छद्म राष्ट्रवाद 85
 छुआछूत 137, 167

ज

जन जागरण 285
 जन्मसिद्ध अधिकार 83
 जमींदारी 47, 54
 जम्मू और कश्मीर रियासत 9
 जलियाँवाला बाग 27
 जातिवाद 31, 59, 122, 128
 जॉनसन 227
 जेहाद 22
 ज्ञानमार्गी 244

झ

झारखंड पार्टी 114, 122

ट

टी.टी. कृष्णमाचारी 211
 ट्रेनिंग कॉलेज 227

ड

डलहौजी 243

डांग 238-239
 डार्विन 151, 179, 219, 305
 डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट 185
 डीएमके 161

ढ

ढाका 97-98

त

तपस्या 160, 174, 185, 302
 तानाशाही 68, 196-197, 224
 तालुकदारों 74
 तिब्बत 5, 19-20, 27, 36, 88, 224,
 256, 274, 293
 तीसरी पंचवर्षीय योजना 40-41, 45-46
 तुकेरग्राम 22
 तेलंगाना 115, 119-120
 त्रिवेणी 166

थ

थाईलैंड 276

द

दक्षिण-पूर्वी एशिया 19-20
 दलाई लामा 256
 दशम वार्षिक अधिवेशन 280
 दूसरी पंचवर्षीय योजना 31, 46
 देशद्रोही 264
 द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम 110, 114, 122,
 161, 220-221
 द्रविड़ संस्कृति 161

द्रविड़स्थान 109
द्वितीय भाषा आयोग 204

ध

धर्मार्थ कार्यों 254
धर्मार्थ संस्थाओं 50
ध्येय निष्ठा 175, 177

न

नगरपालिका समाजवाद 32
ननकाना साहिब 171
नागनाथम परमकुड़ी 26
नाथूराम गोडसे 158
निरपेक्षतावाद 250
निरस्त्रीकरण 188
निर्यात व्यापार 42
निर्यात संवर्धन 207
निर्वाचन 8-9, 23, 57-60, 63, 69, 75,
77, 123, 233-236, 282
निलंबन कांड 232
निषेधाधिकार 191, 193
न्यूनतम जीवन 16
न्यूनतम मूल्य 55

प

पंचवर्षीय योजना 40, 45
पंथराज्य 316
पटना कांग्रेस 26, 29
पथरिया जंगल 22
परमवैभव 220
परमाणु ऊर्जा क्षेत्र 45

परमाणु विरोधी सम्मेलन 188
परमेष्ठि 219
पश्चिमीकरण 213, 250, 252
पांगोंग झील 270
पाकिस्तानी खतरा 238
पारमार्थिकता 170
पीपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट 119-120
पुनर्भुगतान 208, 212
पूँजीगत उद्योगों 41
पूँजीवाद 16, 33, 71, 307, 309-311
पूँजी संचय उद्योग 16
पूरकतावादी 222
पृथकीकरण 219
पेकिंग रेडियो 264
प्रजा समाजवादी दल 9-10, 21-22, 24,
67, 114, 117, 121
प्रथम राजभाषा आयोग 205
प्रतिरक्षा मंत्रालय 22
प्राकृतिक सहकारिता 252
प्रेम विवाह 179

फ

फारवर्ड ब्लाक बंगाल 122
फिजो 98
फैशन 181, 235
फोरमैन 210

ब

बाँगला भाषा 219
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय 33
बाह्य आक्रमण 18, 295

बिक्रीकर 197, 281
बुद्धि 58, 141-143, 145, 153, 177,
184-186, 299-300

बेरूबारी 36
बैंक बैलेंस 183
ब्रह्मपुत्र नदी 88
ब्रितानी राज 83
ब्लिट्ज 76, 267

भ

भक्तिमार्गी 244
भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी 11, 17, 23, 98,
258, 263
भारतीय जनसंघ 4, 6, 12, 16-17, 20,
24, 26, 28, 30, 33-36, 38-41, 44,
50, 53, 55-56, 76-77, 79-80, 93,
110-112, 115, 120, 124, 126,
196, 204, 206, 233, 248-249,
264, 273, 280-285, 294, 308
भारतीय प्रतिनिधि सभा 110, 280
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 64, 81, 113, 119,
200
भारतीय संस्कृति 12, 34-35, 129, 200,
202, 217, 221, 244, 247, 283,
304- 305
भाषा समस्या 204
भुगतान संतुलन 31, 147, 208
भूमि कर 47, 54-55, 281-282
भूमिहीन मजदूरों 50
भू-स्वामित्व 47-49, 51, 54
भू-राजस्व 162, 281

भू-सुधार कार्यक्रमों 17
भोगभूमि 169

म

मनः पूतम् समाचरेत् 143
महामंत्री प्रतिवेदन 110, 280
महारानी पद्मिनी 170
महालनोबिस समिति 212
मातृभूमि 25, 29, 35-36, 83-84, 169,
171, 242-244, 246, 255, 265
माधवरावजी 173
मार्क्सवादी दर्शन 71
मिजोलैंड 246
मितव्ययता 292, 295
मुंगेर विधानसभा उपचुनाव 163
मुगल सत्ता 84
मुसलिम 28, 89-92, 98-99, 122, 125,
167, 218
मुसलिम-कन्वेंशन 12
मुसलिम लीग 9, 26, 68, 110, 122, 125,
277
मुसलिम सांप्रदायिकता 68, 113
मैकमोहन रेखा 23
मैदारीपुर मतदान केंद्र 163
मोहनजोदड़ो 218

य

यंत्रीकरण 51-52, 56
यज्ञ 102, 155, 159, 179, 234, 315
युगोस्लाविया 219
युद्धविराम-रेखा समझौते 22

योजना आयोग 16-17, 55, 210, 240,
251

र

राजभाषा 64, 204-205, 224, 283
राजा दाहिर 218
राज्यशास्त्र 71
राज्यसभा 90, 123, 230, 259, 267, 286
राष्ट्रधर्म 191
राष्ट्रमंडल 28, 275
राष्ट्रवाद 11, 81, 217-219
राष्ट्रवादी और मानववादी 77
राष्ट्र संघ 19, 191-193, 282, 293
राष्ट्रीय आय 34, 46, 208
राष्ट्रीय एकता 8-10, 12-13, 18, 108,
221, 288

राष्ट्रीयकरण 34, 42-45, 47, 77

राष्ट्रीय विकास परिषद् 17

राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् 24, 256

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 86, 172-173

रिसाइट 228

रिपब्लिकन पार्टी 114, 121-122

रिलीजन 137-138, 316

रैयतवारी प्रथा 47, 54

ल

लददाख 5, 19, 27, 97, 109, 123, 223,
259, 269, 282, 285

लाइसेंस 43, 211, 290

लिंगायत 138

लूमामऊ कांड 79, 113

लैटिन 128, 202

लोकतांत्रिक समाजवाद 38

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण 33

लोक-संग्रह 175-177

लोकाज्ञा 57, 59

व

वास्तविक राष्ट्रवाद 85

विंध्यप्रदेश 234

विकेंद्रीकरण 13, 33, 42, 239, 253, 316

विदेशी मुद्रा 146, 207, 210, 212, 313

विनोबा भाव 189

विल्फ्रेड मंडेलबम 212

वृंदावन 175

वैष्णव 138, 297-298

व्यक्तिवादी 222

व्यास पूर्णिमा 228

श

शनिवारवाड़ा 4

शिक्षक दिवस 129, 226, 228

शिवाजी नगर विधानसभा क्षेत्र 5

शीतयुद्ध 96, 188, 192, 213, 306

शेडूल्ड कास्ट फेडरेशन 121

शौच 145, 300

श्रद्धा 12, 25, 35, 164, 171, 227-228,
234, 242-245, 315

श्रेय 76, 220, 240, 307

स

संघ शिक्षा वर्ग 100, 105

संपत्ति कर 281

संपूर्ण निरस्त्रीकरण 188

संयुक्त परिवार 252
 संयुक्त महाराष्ट्र समिति 114, 122
 संयुक्त मोरचा 67-69, 110, 114, 122,
 125
 संयुक्त राज्य अमरीका 207-208, 276
 संवैधानिक शासन 316
 संसदीय समिति 204-205
 सघन खेती 34, 47, 53
 सतीत्व 170, 220
 समन्वयवादी 222
 समष्टि 175, 186, 219, 221-222, 305
 समाजवाद 15-16, 33, 39, 44, 71-72,
 74, 81, 118, 197, 303-307, 309-
 312, 316, 318
 समाजवादी दल 9-10, 14, 19, 34, 118,
 230, 285
 सर्वाधिकारवाद 252
 सशस्त्रीकरण 98
 सहकारी खेती 52-53, 56, 74, 81
 सहिष्णुता 155, 170, 179, 244
 सांप्रदायिक संगठन 88
 सामंतवाद 50
 सामान्य बीमा 42
 साम्यवादी समाजवाद 72
 सांस्कृतिक चरित्र 201
 सांस्कृतिक मूल्य 171
 सिंचाई परियोजनाओं 54
 सिंधुजल समझौते 277
 सुपरसॉनिक 146
 सुरक्षा दिवस 285

सुरक्षा परिषद् 1, 4, 24, 95-96, 191-
 193
 सेवाभाव 126, 173
 सैनिक अभ्यास 252
 सोवियत मॉडल 40
 स्टर्लिंग बॉक 252
 स्टेट्समैन 23
 स्टैंड-बाई क्रेडिट 207
 स्वयंसेवकत्व 173-175
 स्वायत्तता 215

ह

हदबंदी 49-51, 53
 हल्के इंजीनियरिंग उद्योग 43
 हस्तांतरण 36, 49-50, 53
 हस्ताक्षर संग्रह अभियान 281
 हाउस ऑफ कॉमन्स 233
 हिंदी साहित्य सम्मेलन 162
 हिंदुस्तान क्लब 93
 हिंदुत्व 9, 28, 72, 84, 109, 135, 167-
 169
 हिंदूकुश 171
 हिंदू उत्तराधिकार क़ानून 53
 हिंदू महासभा 31, 56, 201
 हिंदू राष्ट्र 85, 131, 133, 135, 159,
 164-167, 169, 174-175
 हिंदू संस्कृति 133
 हिंसा और गोली 68
 हिमालय 27, 168-169, 171, 285



परिचय

भूमिका लेखक

डॉ. कृष्ण गोपाल

आगरा विश्वविद्यालय से पर्यावरण विज्ञान में एम.एस-सी. तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् से पी-एच.डी. की उपाधि। पूर्वोत्तर में संघ के क्षेत्रीय प्रचारक रहे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सहसंस्कार्यवाह हैं।



वह काल लेखक

श्री बनवारी

दिल्ली में 1947 में जन्म। दिल्ली विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में उच्च अध्ययन। कुछ वर्ष तक अध्यापन। इसके उपरांत पत्रकारिता। पहले 'दिनमान' से जुड़े तथा बाद में 'जनसत्ता' में कार्य करते हुए संपादक पद से सेवानिवृत्त। भारतीय पर्यावरण परंपरा पर केंद्रित 'पंचवटी' एवं 'महारास' चर्चित कृतियाँ।



समर्पण परिचय लेखक

श्री हितेश शंकर

दिल्ली में 15 फरवरी, 1976 को जन्म। दिल्ली विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में एम.ए. तथा गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार से पत्रकारिता की पढ़ाई। दैनिक जागरण, इंडिया टुडे, हिंदुस्तान में पत्रकारिता। पर्यावरण से जुड़े वृत्तचित्र और धारावाहिकों के निर्माण कार्य से जुड़े रहे। संप्रति 'पाञ्चजन्य' के संपादक।



अनुसंधान एवं संपादन सहायक

श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

- श्री राजेश राजन
- डॉ. विकास द्विवेदी
- श्रीमती सुमेधा मिश्रा
- श्री देवेश खंडेलवाल
- श्री राम शिरोमणि शुक्ल
- डॉ. अरुण भारद्वाज

टंकण एवं सज्जा

- श्री प्रेम प्रकाश राय
- श्री राकेश शुक्ल
- श्री नरेंद्र कुमार
- श्रीमती दीपा सूद

शुक्रवार १८७७ [र. उ. ७१७, र. अ. ६२१]
 जनेवारी ता. १७ वार मंगल पोष शुदी ४ संवत् २०१२
 2. TUESDAY 17th JANUARY 1956

का. १.

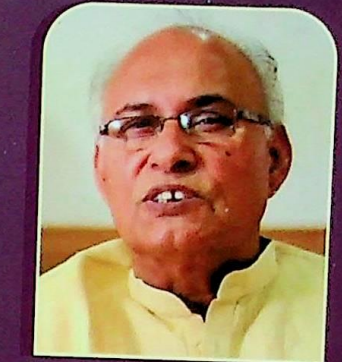
संघ का कार्य हिन्दू संघटन का है। भावात्मक हिन्दुता हमारे सामुख है। हिन्दू राज्य से, जिसका अर्थ है कि हमारे अकेले कुछ लक्षण रहे। व्यापक आगे कुछ विशालता सामान्य की उत्पत्ति करती है, उस के पुनर्निर्माण करने वाला एक ही नया चलने वाला हिन्दू समाज। अन्य भाषा होने हुए भी अपने संघटन का ही भाव है। लिये है इसके मूल कर्ष।

१. शान का लक्षण = एकल का बोध है; अनेकता का बोध- अज्ञान। स्वात्मता का बोध करने का प्रयत्न करना होगा।

अपने हृदय में सबके लिये समान आदर होना चाहे जो वाक्य इनके पोषक न हों उन्हें हम व्यवहार में निकालें हिन्दुत्व के लक्षण सबके समान रूप से मिलेंगे। भाषा का दर्शन सभी कर सकते हैं। सभी भाषाओं में एक ही भाव व्यक्त होता है। १०० वर्ष पूर्व विचार Good will ने लार्ड कर्जन के अलगाव के प्रचार किया। किन्तु तत्काल से धर्म, अर्थ, समाज के लक्षण हैं।

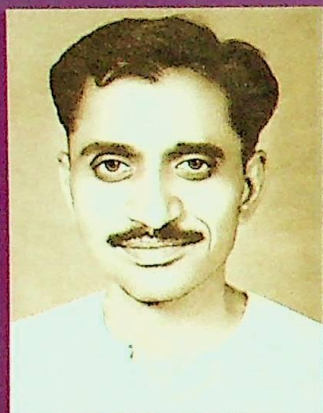
import of iron and
 less than 10 months to
 the sum of 4.3 million
 value of imports of steel
 machinery in 1956-
 325 crore.

Some industries have
 licensed for a capital
 excess of the plan
 some have also
 near the target
 for the end of the plan
 There are super
 rubber, tyres, tu
 alcohol, soda as
 soda, refractor
 transmitter form
 and rayon fil



डॉ. महेश चंद्र शर्मा

जन्म : राजस्थान के चुरू कस्बे में 7 सितंबर, 1948 को।
 शिक्षा : बी.ए. ऑनर्स (हिंदी), एम.ए. एवं पी-एच.डी. (राजनीति शास्त्र)।
 कृतित्व : 1973 में प्राध्यापक की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बने। आपातकाल में अगस्त 1975 से अप्रैल 1977 तक जयपुर जेल में 'मीसा' बंदी रहे। सन् 1977 से 1983 तक अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में उत्तरांचल के संगठन मंत्री, 1983 से 1986 तक राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि के लिए 'दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक जीवन चरित-कर्तृत्व व विचार सरणी' विषय पर शोधकार्य। 1983 से साप्ताहिक 'विश्ववार्ता' व 'अपना देश' स्तंभ नियमित रूप से भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में लिखते रहे।
 सन् 1986 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के सचिव बने। शोध पत्रिका 'मंथन' का संपादन। 1986 से वार्षिक 'अखंड भारत स्मरणिका' का संपादन। 1996 से 2002 तक राजस्थान से राज्यसभा सदस्य एवं सदन में भाजपा के मुख्य सचेतक रहे। 2002 से 2004 तक नेहरू युवा केंद्र के उपाध्यक्ष। 2006 से 2008 तक भाजपा राजस्थान के अध्यक्ष। 2008-2009 राजस्थान विकास एवं निवेश बोर्ड के अध्यक्ष। 1999 से एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष। पंद्रह खंडों में प्रकाशित 'पं. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के संपादक।




पं. दीनदयाल उपाध्याय का बचपन बहुत ही विकट स्थितियों में बीता, तो भी वे सदैव एक मेधावी छात्र के रूप में रेखांकित हुए। द्वि-राष्ट्रवाद की छाया ने जब भारत की आजादी की लड़ाई को आवृत कर लिया था, तब 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। वे उत्तम संगठक, साहित्यकार, पत्रकार एवं वक्ता के नाते संघ-कार्य को बल देते रहे।

1951 में जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई, तभी उनका राजनीति में प्रवेश हुआ। देश की अखंडता के लिए कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन तथा बेरुबाड़ी के हस्तांतरण के विरुद्ध आंदोलन चलाकर उन्होंने भारत की राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को जीवित रखा। भारत की अखंडता के लिए उनका पूरा जीवन लगा।

देश के लोकतंत्र को सबल विपक्ष की आवश्यकता थी; प्रथम तीन लोकसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनसंघ एक ताकतवर विपक्षी दल के रूप में उभरा। वह विपक्ष कालांतर में विकल्प बन सके, इसकी उन्होंने संपूर्ण तैयारी की।

केवल तंत्र ही नहीं, मंत्र का भी विकल्प आवश्यक था। विदेशीवादों के स्थान पर उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीयकरण का आह्वान किया। 1951 से 1967 तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1968 में उन्हें अध्यक्ष का दायित्व मिला। अचानक उनकी हत्या कर दी गई। उनके द्वारा विकसित किया गया दल 'भारतीय जनता पार्टी' ही देश में राजनैतिक विकल्प बना।

 **प्रभात
प्रकाशन**
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com

ISBN 978-93-86231-25-3

9 789386 231253
₹ 400/-

एकात्म
मानवदर्शन 
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान